कौरवी लोकनाट्य का इतिहास

राजेन्द्र बड़गूजर

कौरवी लोकनाट्य का इतिहास

राजेन्द्र बड़गूजर

भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान
राष्ट्रपति निवास, शिमला

समर्पण

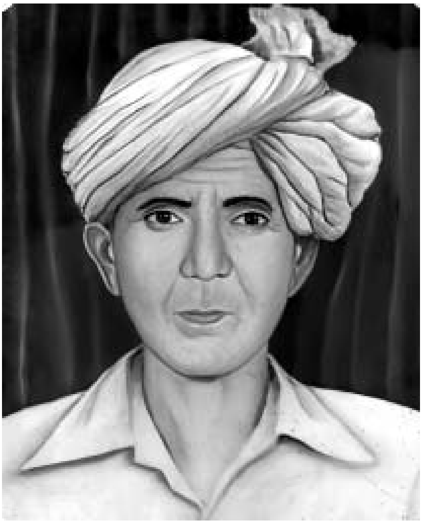

काका चौ. ताराचंद बड़गूजर को

© भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला
© Indian Institute of Advanced Study, Shimla

प्रथम संस्करण, 2025
First Edition, 2025

सर्वाधिकार सुरक्षित।
प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में या माध्यम से पुस्तक का कोई भी भाग पुनः प्रस्तुत या प्रसारित नहीं किया जा सकता है।
All rights reserved.
No part of book may be reproduced or transmitted, in any form or by any means, without the written permission of the publisher.

ISBN: 978-81-987318-0-7

आवरण चित्र :

मूल्य | Price : 590/-

सचिव
भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान
राष्ट्रपति निवास, शिमला–171005 द्वारा प्रकाशित

Published by
The Secretary
Indian Institute of Advanced Study
Rashtrapati Nivas, Shimla-171005

मुद्रक : एक्सेल प्रिंटिंग यूनिवर्स, नई दिल्ली
Printed at Excel Printing Universe, New Delhi

टाइपसेट : ऊषा कश्यप, नई दिल्ली
Typeset by : Usha Kashyap, New Delhi

भूमिका

किसी भी क्षेत्र-विशेष के लोक को जानने का सबसे बड़ा माध्यम लोक साहित्य ही होता है। लोक साहित्य में लोक का संस्कार, चिंतन, जीवन शैली, विचार-प्रवाह और विकास-क्रम सब कुछ समाहित हो जाता है।

कौरवी लोकभाषा उत्तरी भारत की एक अति महत्त्वपूर्ण भाषा है। कुरु जनपद की बोली होने के कारण इसका नाम कौरवी पड़ा। यह लोकभाषा उत्तर प्रदेश के रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर और देहरादून के मैदानी इलाकों से लेकर हरियाणा के अंबाला, पानीपत, सोनीपत, रोहतक आदि तक फैली हुई है। पंजाब के पटियाला तक इसका प्रभाव रहा। हरियाणा और उत्तर प्रदेश के कौरवी लोकभाषा के ये कवि राजस्थान तक में लोकप्रिय रहे। हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के अनेक सांगियों ने सांगों और रागणियों में रचित लोकसाहित्य के माध्यम से इस भाषा को अत्यधिक लोकप्रियता दी। एक समय ऐसा भी था इन प्रदेशों से मुंबई, हावड़ा, हैदराबाद और देश के दूसरे हिस्सों में जाकर बसे लोग इन सांगियों-भजनीयों (लोकनाट्यकारों) को बुलाया करते थे और सांगों के माध्यम से मनोरंजन किया करते थे।

कौरवी लोकसाहित्य में रागणी एवं सांग का विशेष महत्त्व है। किशनलाल भाट, बंसीलाल, पं. शंकरदास, दीपचंद, हरदेवा, दुलीचंद, चतरू सांगी, बाजे भगत, पं. लखमीचंद, मुंशीराम जांडली, बलवंत सिंह बुल्ली, सगुवा सिंह, बुंदू मीर, पं. माँगेराम, राय धनपतसिंह निंदाना, बंदा मीर, चंद्रलाल बादी, महाशय दयाचंद मायना, देईचंद, मा. नेकीराम, रामकिशन व्यास, मा. दयाचंद आज़ाद सिंघाना, महाशय छज्जूलाल सिलाना, गुणपाल सिंह कासंडा और पं. रामकुमार खालेटिया आदि अनेक लोककवियों और सांगियों ने कौरवी लोकनाट्य को अपने सृजन से समृद्ध किया है। 'सांग' लोकनाट्य का ही लोकप्रचलित दूसरा नाम है।

एक समय में सांग हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली आदि अनेक राज्यों में बहुत ही लोकप्रिय मनोरंजक और जीवंत विधा थी। अधुनातन सोशल मीडिया और तकनीकी विस्फोट से पहले सांग ही ग्रामीण लोक के मनोरंजन का साधन होता था। सांग ही लोगों का संस्कार निर्मित करता था। सांगियों के प्रति लोक में एक विशेष आदर होता था। वही लोक के कबीर, तुलसी और सूर या रैदास होते थे।

कौरवी लोक साहित्य में सांग (लोकनाट्य) सबसे प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय विधा है। सांग-सर्जक (लोकनाट्यकार) एवं प्रस्तुतकर्ता को 'सांगी' कहा जाता है। गीत-संगीत-अभिनय से जुड़ी तमाम विधाएँ सांग में स्थान पाती हैं। सांग का कौरवी क्षेत्र में सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव रहा है। जीवंत और मंचीय विधा होने के कारण सांग (लोकनाट्य) फिल्मों से अधिक प्रभावी हैं। कौरवी के सांगी किसी भी रूप में हिंदी के श्रेष्ठ कवियों से किसी भी मायने में कम नहीं हैं। जरूरत है उनके संकलन और संपादन की एवं शोध का विषय बनाने की।

शंकरदास से पहले किशनलाल भाट और बंसीलाल का नाम कौरवी लोकसाहित्य में विशेष सम्मान के साथ लिया जाता है। इनका संज्ञान अंग्रेज विद्वान आर.सी. टेंपल ने भी अपनी पुस्तक 'लिजेंड्स ऑफ पंजाब' (1886) में भी लिया है। सांग और रागणी का जो रूप अब है, वह किशन लाल भाट से पहले और उन तक नहीं था। उनके समय तो एक ढोलकिया, एक सारंगी वादक, एक जनाना और एक मर्दाना गायक और नर्तक के रूप में गली-गली जाकर अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया करते थे। परंतु संत गंगादास (1823-1913) और कवि शंकरदास (1833-1912) में हमें वर्तमान लोकनाट्य की सैद्धांतिकी दिखाई देती है। इन्होंने ही सर्वप्रथम सुव्यवस्थित रूप में सांग और रागणी के वर्तमान रूप को गढ़ा। इनके बाद तो लोकनाट्य विधा में जो विस्फोट हुआ, वह अप्रतिम है। कौरवी क्षेत्र के जाने-माने सांगी पं. लखमीचंद, पं. माँगेराम, राय धनपत सिंह निंदाना, चंद्रलाल बादी इन्हीं की शिष्य परंपरा में हुए।

किसी क्षेत्र विशेष की जीवन-शैली का अध्ययन करने के लिए वहाँ का लोक साहित्य एक अति महत्त्वपूर्ण उपादान है। इस लोक साहित्य की जिज्ञासा और इसके माध्यम से कौरवी लोक को समझने के लिए मैं हरियाणा और उत्तर प्रदेश भर में घूमा। मुझे अनेक कवि छितरे हुए मिले, जिन्होंने अपने-अपने समय में लोक का मनोरंजन किया। मनोरंजन के साथ-साथ लोक की मानसिकताएँ बनाईं। कौरवी भाषा के क्षेत्र

में भ्रमण के दौरान मैंने महसूस किया कि इस क्षेत्र का लोक लोक-कवि की बात को जीवन-आदर्श मानकर स्वीकार करता है और जीवन के विभिन्न महत्त्वपूर्ण निर्णयों में रागणी के अंशों को या लोकनाट्य के अंग विशेष को याद कर पूरे विश्वास के साथ उस निर्णय को अंजाम देता है। इस क्षेत्र का लोकनाट्य अत्यधिक समृद्ध है। इसका इतिहास लगभग आठ सौ साल पुराना है। इस पर अभी तक कोई संपूर्ण रूप से काम नहीं हुआ है। अभी अनेक लोकनाट्यकार गुरु-शिष्य परंपरा में मौखिक रूप से लोक में व्याप्त हैं। जिनके लोकनाट्यों का संकलन किया जाना बाकी है।

शोध-प्रबंध में कहीं-कहीं लोकनाट्य के लिए 'स्वाँग' या 'सांग' शब्द का भी प्रयोग हुआ है। यह इसलिए हुआ है कि कौरवी क्षेत्र में लोकनाट्य को सांग या स्वाँग ही कहा जाता है। 'सांग' शब्द लोक के अधिक निकट है। 'लोकनाट्य' शब्द किताबी और अध्ययन का शब्द है। क्योंकि पूरे भारत में लोकमंच की विधा के लिए लोकसाहित्य के अध्येताओं ने 'लोकनाट्य' शब्द का ही प्रयोग किया है। परंतु क्षेत्रीय स्तर पर जाकर उसका नाम बदल जाता है और क्षेत्र-विशेष के लोग उसे उस नाम से ही जानते हैं। जैसे हिमाचल प्रदेश में 'करियाळा', उड़ीसा में 'जात्रा', राजस्थान में 'ख्याल', महाराष्ट्र में 'तमाशा', केरल में 'ओट्टन थुलाल', तमिलनाडू में 'तूरुकुट्टू', आंध्र प्रदेश में 'भाम कलापम', उत्तर प्रदेश के कई भागों में 'नौटंकी' या 'रासलीला', कोंकण में 'दशावतार', राजस्थान में 'भवाई', मध्यप्रदेश में 'माचा' तथा 'पंडवानी' और असम में 'अंकिया नाट' कहलाता है।

कौरवी लोकनाट्यों के विषय अधिक नहीं हैं। अधिकतर लोकनाट्यकारों ने एक जैसी लोककथाओं को लेकर लोकनाट्यों की रचना की है। कथा एक-सी होने के बावजूद वह कवित्व की मौलिकता के कारण दूसरों से अलग हो जाता है। हर लोकनाट्यकार का सृजन उसका मौलिक है। इसको इस रूप में कहा जा सकता है कि कथा एक होने के बावजूद हर कवि की रागनी या पद्य उसका अपना मौलिक होता है। जैसे 'राजा हरिश्चंद्र' लोकनाट्य अधिकतर सांगियों ने लिखा और गाया है। इस हिसाब से लोकनाट्यकारों में प्रतिस्पर्धा-सी भी बन जाती थी कि वह एक ही कथा को दूसरों से अधिक रोचक तरीके से प्रस्तुत करे। इसलिए हर लोकनाट्यकार अपनी पूरी बौद्धिक क्षमता से लोकनाट्य की रचना करता है।

इस इतिहास लेखन से पहले भी कौरवी लोकनाट्यों का इतिहास लेखन का काम हुआ है। कुछ इतिहासकारों ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश के लोकनाट्यकारों को

अधिक तवज्जो देते हुए नामकरण किया और कुछ ने हरियाणा के लोकनाट्यकारों को तवज्जो दी और उसके आधार पर ही नामकरण कर दिया। कौरवी लोकनाट्य के मूर्धन्य विद्वान डॉ. शंकरलाल यादव का शोधकार्य हरियाणा के लोकनाट्य पर केंद्रित रहा। इन्होंने लोकनाट्यों का काल विभाजन करते समय पं. दीपचंद को केन्द्र में रखा। उनका कहना था, ''हरियाणवी सांग का आरंभिक इतिहास खोजते समय पं. दीपचंद ऐसे सांगी मिलते हैं, जिन्हें हम युग-प्रवर्तक के नाम से पुकार सकते हैं। इन्होंने सांगों में एक नया मोड़ दिया। सांगों को नई दिशा मिली और उस साहित्य ने एक नई करवट ली। अतः दीपचंद को हम सांग साहित्य के इतिहास का केन्द्र-बिन्दु मानकर और उसके नाम पर युग स्थापित करके आगे बढ़ेंगे। इस प्रकार समस्त हरियाणवी सांग साहित्य तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है -

क) पूर्व दीपचंद युग

ख) दीपचंद युग

ग) उत्तर दीपचंद युग

उन्होंने विभाजन की दूसरी दिशा इस रूप में सुझाई -

क) प्रथमावस्था

ख) द्वितीयावस्था

ग) तृतीयावस्था (अंतिमावस्था)''[1]

डॉ. शंकरलाल यादव द्वारा किया गया उपर्युक्त नामकरण कौरवी लोकनाट्य के वृहद् इतिहास के लिए बहुत ही संकुचित और प्रारंभिक हो जाता है। एक तो उन्होंने इसे मात्र हरियाणा तक सीमित रखा है, दूसरे पं. दीपचंद से अधिक सुविख्यात और भी लोकनाट्यकार हुए हैं। दीपचंद की ख्याति एक सांगी के रूप में कम बल्कि प्रथम विश्वयुद्ध के अंग्रेजों के सहायक के रूप में अधिक है। इनका लोकनाट्य साहित्य भी अनुपलब्ध है। 'भर्ती होल्यो रै थारै बाहर खड़े रंगरूट' जैसी कुछ रागनियाँ ही मिलती हैं। इसलिए पं. दीपचंद को केन्द्र में रखकर तो नामकरण किया ही नहीं जा सकता। दूसरे प्रथमावस्था, द्वितीयावस्था और तृतीयावस्था नामकरण भी अपर्याप्त

1. हरियाना प्रदेश का लोकसाहित्य, शंकरलाल यादव, पृष्ठ 394

ही है, क्योंकि अब लोकनाट्य क्षेत्र में एक से एक लोकनाट्यकारों का आगमन हुआ है। डॉ. शंकरलाल यादव के समय तक लोकनाट्यकारों का इतना अधिक संपादन भी नहीं हुआ था। अनेक लोकनाट्यकार मौखिक परंपरा में ही जीवित थे।

इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण काम डॉ. राममेहर सिंह ने किया। उनके शोध का विषय है - हरियाणी सांगीत का उद्भव और विकास। उन्होंने हरियाणी सांगीत (सांग) को चार कालों में विभक्त किया - आविर्भाव काल (1730-1900), विकास काल (1900-1923), स्वर्णकाल (1923-50) और आधुनिक काल (1950 से अब तक)।[2] इस काल विभाजन में उन्होंने 1923-50 तक के कला को स्वर्णकाल बता दिया, जबकि सन् 1950 के बाद ही कौरवी क्षेत्र में सांगियों (लोकनाट्यकारों) का बड़ी मात्रा में पदार्पण होता है। सांगियों और सांग-दर्शकों की मात्रा में भारी इजाफ़ा होता है। 1950 के बाद लोकनाट्यों की विषयवस्तु में भी बदलाव होता है तथा शैली भी विकसित होती है। लोकनाट्य ने 1950 के बाद ही प्रोफेशनल रूप लिया। डॉ. राममेहर सिंह के इस नामकरण की एक सीमा यह है कि इन्होंने भी अपना शोध हरियाणा तक ही सीमित रखा। 'हरियाणी सांगीत' से उनका मतलब हरियाणा प्रदेश के लोकनाट्यों से ही है। जबकि हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के लोकनाट्यों को किसी भी प्रकार से अलगाया नहीं जा सकता। एक ही समय में हरियाणा के अनेक लोकनाट्यकार पश्चिमी उत्तर में सुप्रसिद्ध हुए और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के अनेक लोकनाट्यकार हरियाणा में सुप्रसिद्ध हुए। भाषा ने उनको जोड़े रखा। राज्य की सीमा उनकी प्रतिभा को नहीं रोक पाई। चंद्रलाल बादी पैदा हरियाणा में हुए थे और रहे जाकर उत्तर प्रदेश के दत्तनगर गाँव में। इन सारी बातों को देखते हुए इनका नामकरण भी पूरे कौरवी लोकनाट्य के परिप्रेक्ष्य में सटीक नहीं बैठता। हाँ, हरियाणा के विषय में यह उचित प्रतीत होता है। इसके बावजूद वे सांगीत (सांग) के स्वर्णयुग को निर्धारित करने में चूक गए। यह भी संभव है कि उनके समय तक अनेक महत्त्वपूर्ण सांगियों का प्रलेखीकरण ही न हुआ हो।

डॉ. इन्द्र शर्मा 'वारिज' ने भी इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया है। इनकी पुस्तक 'सांग नौटंकी' में उन्होंने स्वांग (सांग) को तीन कालखण्ड में विभक्त किया है - पूर्व शंकर युग, शंकर युग और उत्तर शंकर युग। उनका कहना है, "स्वांग कला

2. हरियाणी सांगीत का उद्भव और विकास, डॉ. राम मेहर सिंह, पृष्ठ VII-IX

के विकास में स्वामी शंकरदास युगप्रवर्त्तक हैं। इनकी साधना ने स्वांग कला को जो ख्याति प्रदान की उसी का ही यह परिणाम हुआ कि स्वांग ने कुरु प्रदेश की सीमा को लाँघकर हरियाणा में प्रवेश करना आरंभ कर दिया। इसलिए काल विभाजन के लिए स्वामी शंकरदास को आधार माना जा सकता है। पूरे स्वांग के इतिहास को पूर्व शंकर युग, शंकर युग और उत्तर शंकर युग में विभाजित किया जा सकता है।''[3] संभवतः इन्होंने कुरु प्रदेश पश्चिमी उत्तर प्रदेश को मानकर अपनी बात कही है। जबकि कुरु प्रदेश में पश्चिमी उत्तर प्रदेश व हरियाणा शामिल हैं। दूसरे, शंकरदास लोकनाट्य के इतिहास में एक बड़ा नाम अवश्य है, परन्तु यह संदिग्ध ही है कि उन्होंने अपने लोकनाट्यों का मंचन भी किया होगा। उनकी शिष्य प्रणाली में भी अनेक सुप्रसिद्ध लोकनाट्यकार हुए हैं। जिन्होंने लोकनाट्य के क्षेत्र में अद्भुत योगदान दिया। कौरवी लोकनाट्य का काल विभाजन केवल शंकरदास को ही केन्द्र में रखकर इसलिए नहीं किया जा सकता है कि उनका देहांत सन् 1912 में ही हो चुका था और लोकनाट्य का चरमोत्कर्ष तो उसके बाद ही होता है। उसके बाद एक से एक बढ़कर सांगी आए, जिन्होंने लोकनाट्य विधा में विषयवस्तु और शैली में अद्भुत बदलाव किए। शंकरदास का एक भी लोकनाट्य समसामयिक घटनाओं पर आधारित नहीं है।

उपर्युक्त जितने भी शोधकार्य लोकनाट्य के इतिहास पर हुए हैं, वे बहुत पहले के हैं। तब तक अनेक लोकनाट्यकारों का संपादन नहीं हुआ था। इसलिए इतिहासकारों को बस कुछ ही लोकनाट्यकार दिखते थे। उन्होंने उनके समय तक उपलब्ध सामग्री के आधार पर कौरवी लोकनाट्य का काल विभाजन किया। परंतु अब कौरवी लोकनाट्य के क्षेत्र में पर्याप्त मात्रात्मक और गुणात्मक विस्तार हो चुका है, जिसको समायोजित करते हुए पुनः इसका काल विभाजन करना आवश्यक है।

मैंने 'कौरवी लोकनाट्य के इतिहास' को उसकी समग्रता को रेखांकित करते हुए निम्न बारह अध्यायों में विभक्त किया है -

पहला अध्याय है - कौरवी : अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप। इस अध्याय में मैंने कौरवी लोकभाषा का क्षेत्र का निर्धारण तथा इस क्षेत्र के व्यापक लोक साहित्य का परिचय दिया है।

---

3. स्वांग नौटंकी, लेखक इंद्र शर्मा 'वारिज', संपादक कैलाश दहिया, पृष्ठ 43

दूसरा अध्याय है - कौरवी लोकनाट्य : अर्थ, स्वरूप, परिभाषा एवं विविध आयाम। इस अध्याय में लोकनाट्य का सैद्धांतिक विश्लेषण किया गया है। लोकनाट्य (सांग) का उद्भव और विकास के साथ-साथ उसकी प्राचीनता को भी चिह्नित किया गया है। लोकनाट्य (सांग) के अंगों पर विस्तार से विवेचन-विश्लेषण किया गया है।

तीसरा अध्याय है - आविर्भाव युग। यह लोकनाट्य के प्रारंभ से 1800 ई. तक का काल है। इसमें किशनलाल भाट, सादुल्ला, पं. सदासुखमल, अंबाराम, वंशीधर शुक्ल, पं. बेहूसिंह, उस्ताद मूलराज आदि लोकनाट्यों को स्थान मिला है। इस काल में कौरवी लोकनाट्य का स्वरूप निर्मित हुआ। इस काल में इसका प्रस्तुतीकरण भी बाद के लोकनाट्यों से सर्वथा भिन्न था। किसनलाल भाट इस काल के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लोकनाट्यकार हैं।

चौथा अध्याय है - बंसीलाल युग। सन् 1800 ई. से 1850 ई. तक के लोकनाट्यकारों को इस काल के अंतर्गत रखा गया है। बंसीलाल इस काल के सर्वाधिक लोकप्रिय लोकनाट्यकार हुए, जिनका संज्ञान अंग्रेज विद्वान आर.सी. टेंपल ने भी लिया। लछमन गीर, सेढू सिंह, चौधरी घीसा राम, शीशराम, मीरदाद आदि ने लोकनाट्य के क्षेत्र में पर्याप्त योगदान दिया।

पाँचवें अध्याय का नाम है - शंकरदास युग। शंकरदास (1832 ई.-1912 ई.) लोकनाट्य के क्षेत्र में शैलीगत बदलाव के लिए सुविख्यात हैं। इनकी शिष्य परंपरा में अनेक लोकनाट्यकारों ने लोकनाट्य का मार्ग-प्रशस्त किया। हीरादास उदासी, ताऊ सांगी, गुणी सुखीराम, अलीबख्श, भोला मिश्र, बग्गा सिंह, शंकरलाल शुक्ल, पं. दीपचंद, हरदेवा स्वामी, योगेश्वर बालकराम 'रंगत' आदि लोकनाट्यकारों ने लोकनाट्य के क्षेत्र में अद्भुत काम किया। शंकरदास ने लोकनाट्य में रागनी विधा को अनिवार्य कर दिया।

छठा अध्याय है - बाजे भगत युग। इसका समय है 1912 ई. से 1930 ई.। इस समय बाजे भगत लोकनाट्य के क्षेत्र में पूरी तरह से छा गए थे। इस युग में खचेड़ू खाँ, सरूपचंद, चतरू सांगी को लिया गया है। चतरू सांगी इस काल के एक अत्यधिक लोकप्रिय सांगी रहे है।

सातवाँ अध्याय है - पं. लखमीचंद युग। पं. लखमीचंद युग की समय सीमा 1935 ई.-1945 ई. तक प्रस्तावित हैं। पं. लखमीचंद सांग के क्षेत्र में सर्वाधिक

प्रसिद्ध लोकनाट्यकारों में से एक माने जाते हैं। इस समय तक लोकनाट्यकार का जादू लोगों के सिर चढ़कर बोलने लगा था। लोकनाट्य प्रविधि तय हो चुकी थी। पं. माँगेराम इनके शिष्य थे। लाला घनश्यामदास, पं. महोर सिंह, जमुआ मीर, पं. शादीराम, सगुवा सिंह, दयाचंद गोपाल, निहालचंद, पं. नंदलाल मुनीमपुरिया और पं. हरफूलसिंह गौड़ इस युग के महती लोकनाट्कार थे।

आठवाँ अध्याय है - पृथ्वीसिंह बेधड़क युग। इस युग का समय 1946 ई. - 1955 ई. का निर्धारित किया गया है। पृथ्वीसिंह बेधड़क ने लोकनाट्य की विषयवस्तु में आर्य समाज की शिक्षाओं को स्थान दिया। मुंशीराम जाडली, स्वामी भीष्म जी, चौ. ईश्वर सिंह गहलोत, कुंवर जौहरी सिंह, बलवंत सिंह बुल्ली और रूपचंद गन्नौर इस युग के महती लोकनाट्यकार हैं।

नौवाँ अध्याय है - राय धनपतसिंह निंदाना युग। और इसका समय है - सन् 1956 ई. - 1970 ई.। धनपत सिंह निंदाना जमुवा मीर के शिष्य थे और उनकी शिष्य परंपरा में अनेक लोकनाट्यकार हुए। पं. माँगेराम, ठहरो श्याम धरौदी, बनवारी ठेल, देईचंद, पं. रघुनाथ, पं. तेजराम, मौजीराम स्वामी, गिरवर सिंह पवार, माईचंद और खचेड़ू दास इस युग के महती लोकनाट्यकार हुए। धनपत सिंह निंदाना ने सांग को प्रोफेशनल रूप दिया।

दसवाँ अध्याय है - महाशय दयाचंद मायना युग। इस युग की समय-सीमा सन् 1971 ई. -1985 ई. है। महाशय दयाचंद के साथ-साथ इस काल में मास्टर नेकीराम, धर्मपाल भालोठिया, महाशय छज्जूलाल सिलाना, गुणपाल कासंडा, मास्टर दयाचंद आज़ाद सिंघाना, मास्टर रामानंद आज़ाद, चौ. जगत सिंह अल्हाण, चौ. पोलूराम आज़ाद, प्रेमलाल चौहान और कृष्णचंद्र नादान आदि लोकनाट्यकार आते हैं। इस युग को लोकनाट्य का समाज-सुधार काल भी कहा जा सकता है।

ग्यारहवाँ अध्याय है - चंद्रलाल बादी युग। इसकी समय सीमा सन् 1985 ई. - 2004 ई. है। यह समय सांग की लोकप्रियता का समय रहा। इस काल में अनेक लोकनाट्यकारों ने सांग का परचम लहराया। चंद्रलाल बादी ने पर्याप्त मात्रा में सांगों का सृजन किया तथा धन व यश कमाया।

बारहवाँ अध्याय है - अर्वाचीन युग। यह सन् 2004 ई. के बाद का समय है। इसमें अनेक ऐसे लोकनाट्यकारों को स्थान मिला है जो वर्तमान में भी सांग लिख रहे हैं। इस युग में सांग सर्जक अधिक है तथा मंचन करने वाले कम हैं।

कौरवी लोकनाट्य का इतिहास का काल विभाजन करते हुए मैंने 'आविर्भाव युग' को छोड़कर बाकी के कालों को उस काल के अति महत्त्वपूर्ण नेतृत्व क्षमता से भरपूर लोकनाट्यकार के नाम से किया है। आविर्भाव काल का समय लम्बा है इसलिए इस काल को यह नाम दिया गया। अन्यथा एक विकल्प हमारे पास 'किशनलाल भाट युग' के नाम से भी था। किशनलाल भाट ने अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कौरवी लोकनाट्य के क्षेत्र में अति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। वैसे भी इस काल में अधिकतर लोकनाट्यकार अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के ही है। इस आधार पर इस काल का नामकरण 'किशनलाल भाट युग' भी सटीक बैठता है।

मैंने 'कौरवी लोकनाट्य का इतिहास' का काल-विभाजन लोकनाट्यकारों के नाम से किया है। इसका आधार है कि जिस काल-विशेष का नामकरण जिस लोकनाट्यकार के नाम पर रखा गया है उस काल-विशेष में वह सबसे शिद्दत लोकनाट्यकार रहा है। हालांकि उस काल-विशेष से पहले व बाद में भी उसका सृजन चलता रहा। हिन्दी साहित्य में भी साहित्यकारों के नाम से नामकरण हुए हैं। मैंने लोकनाट्यकार के चरमोत्कर्ष काल को उसके नाम से नामकरण करने का प्रयास किया है। किसी काल के अंतर्गत आने वाले लोकनाट्यकार उस काल की समय सीमा के बाद तक जीवित रहे, संभावित हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में अभी तक प्रकाशित लोकनाट्यकारों की पुस्तकों के संदर्भ तो आए हैं परंतु अनेक लोकनाट्यकार अभी भी अप्रकाशित रूप में ही हैं जिनकी मैंने परिश्रमपूर्वक पाण्डुलिपियाँ जुटाई हैं। उन पाण्डुलिपियों से भी मैंने संदर्भ लिए हैं। यह भी अपरिहार्य ही था।

कौरवी क्षेत्र में लोकनाट्य को सांग ही कहा जाता है। इसलिए मेरे इस शोध में लोकनाट्य के लिए 'सांग' शब्द ही बहुतायत मात्रा में प्रयुक्त हुआ है। कौरवी क्षेत्र में लोकनाट्य के अनेक रूप प्रचलित हैं, यथा - खोड़िया, रामलीला, बोकड़ा, कठपुतली, खेड्डा, घोड़ी बाजा, भाण्ड, मदारी व बाजीगरों के लोकनाट्य आदि। परंतु मैंने इस शोधाध्ययन को केवल सांग तक सीमित रखा है।

मैंने पूरी कोशिश की है कि इस इतिहास में मैं कौरवी लोकनाट्यों को संपूर्णता में शामिल करूँ। यह पर्याप्त शिद्दत भरा काम था। इसके लिए मुझे पूरे कौरवी क्षेत्र में भ्रमण करना पड़ा। मैंने ज्ञात-अज्ञात-अल्पज्ञात कवियों की हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ जुटाईं। ये पाण्डुलिपियाँ भी इस शोध का आधार बनी हैं। इस बात की पूरी संभावना

है कि कुछ लोकनाट्यकार अभी भी छूट गए होंगे। कौरवी लोकनाट्य के इतिहास पर यह परियोजना कोई अंतिम परियोजना नहीं है।

संपूर्ण कौरवी लोकनाट्य पर यह एक तरह से पहला शोध है, जिसमें पाठकों को कौरवी लोकनाट्यकारों से संबंधित अनेक सूचनाएँ मिलने वाली हैं। यह संभव है कि कुछ लोकनाट्यकार अभी भी छूट गए होंगे, जिनका लोक में नाम चल रहा होगा या पहले कभी चला होगा। यह शोध कौरवी लोकनाट्य पर शोध करने वाले भावी शोधार्थियों को लोकनाट्य के संकलन-संपादन का भी एक रास्ता दिखाएगा। वे अभी तक अज्ञात और अल्पज्ञात लोकनाट्यकारों की पांडुलिपियों की ढूँढ़ मचाएँगे और उनको प्रकाश में लेकर आएँगे। यह उन शोधार्थियों और विश्वविद्यालयों की लौकिक प्रतिबद्धता होगी। इस शोध की प्रक्रिया के दौरान पूरे कौरवी क्षेत्र में भ्रमण के अपने अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ कि अभी भी अनेक लोकनाट्यकारों की पांडुलिपियाँ उनके परिजन के घरों में संदूकों, लोहे के बक्सों और झोलों में पड़ी सड़ रही हैं। यह छापकटैयों की बेईमानी के चलते हो रहा है। छापकटैयों ने लोकनाट्यकारों के परिजन का विश्वास तोड़ा है। इस अमूल्य धरोहर को बचाया जाना जरूरी है।

मैं भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला, हिमाचल प्रदेश का आभारी हूँ, जिसने मुझे यह वृहद् कार्य करने की सुविधा प्रदान की। मेरे बचपन से तरुणावस्था का समय हरियाणा में लोकनाट्यों की धमाल का समय था। मेरे काका चौ. ताराचंद बड़गूजर को लोकनाट्य देखने का शौक था। वे सांग देखने के लिए दस-दस किलोमीटर पैदल चले जाते थे। हम भी उनके पीछे दौड़ते-दौड़ते उनको पकड़ा करते थे। मैंने चंद्रलाल बादी और जयनारायण के सांग खूब देखे। मैंने अपना पीएच.डी. का शोध भी देवेन्द्र सत्यार्थी के हिन्दी साहित्य पर किया था। उनकी घुमक्कड़ी प्रवृत्ति की शिद्दत ने मुझे लोकसाहित्य के संकलन-संपादन की ओर उन्मुख किया। फलतः मैं कौरवी क्षेत्र के लोकनाट्यकारों को संपादित करने में पूरी तरह जुट गया। प्रस्तुत शोध उसी प्रक्रिया का सुखद परिणाम है।

28 मार्च, 2024 **- राजेन्द्र बड़गूजर**

अनुक्रमणिका

भूमिका 5

पहला अध्याय

कौरवी : अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप 21

प्रस्तावना
कौरवी का क्षेत्र
कौरवी और खड़ी बोली : अंतर्संबंध
कौरवी लोकसाहित्य -

1. लोकगीत
2. लोककथा
3. लोकनाट्य
4. लोकगाथा
5. लोकनृत्य
6. लोक सुभाषित
   अ. लोकोक्ति
   आ. मुहावरे
7. पहेलियाँ

निष्कर्ष

दूसरा अध्याय

कौरवी लोकनाट्य : अर्थ, स्वरूप, परिभाषा एवं विविध आयाम 36

प्रस्तावना
लोक
नाट्य
लोकनाट्य
लोकनाट्य : सांग
सांग का उद्भव और विकास
कौरवी लोकनाट्य 'सांग' के अंग
बेड़ेबंद
बड़ा रकाना
विदूषक

साज
वेशभूषा
वार्ता
चमोला
रागनी
दोचश्मी रागनी
फुटकर रागनी
सांग व किस्से में क्या अंतर होता है?
मंच
सांग में आए धन का बँटवारा
भरत वाक्य
छापकटैया
पारसी थिएटर और सांग
कौरवी लोकनाट्य की विशेषताएँ
निष्कर्ष

तीसरा अध्याय

आविर्भाव युग 72

प्रस्तावना
सादुल्ला
अम्बाराम
पं. बेहूसिंह
किशनलाल भाट
पं. सदासुख राम
वंशीधर शुक्ल
उस्ताद मूलराज
निष्कर्ष

चौथा अध्याय

बंसीलाल युग 84

प्रस्तावना
बंसीलाल
सेढ़ू सिंह
पं. रेवानंद
लछमन गीर
मीरदाद
निष्कर्ष

पाँचवाँ अध्याय

शंकरदास युग 94

प्रस्तावना

शंकरदास

हीरादास उदासी

गुणी सुखी राम

भोला मिश्र

शंकरलाल शुक्ल

हरदेवा स्वामी

अहमद बख्श थानेसरी

शीशराम

मटरू लाल अत्तार

महात्मा गंगादास

ताऊ सांगी

अलीबख्श

बग्गा सिंह

पं. दीपचंद

योगेश्वर बालकराम ‘रंगत’

चौधरी घीसाराम भटीपुर

चौ. फूलसिंह नंगला

निष्कर्ष

छठा अध्याय

बाजे भगत युग 124

प्रस्तावना

बाजे भगत

खचेड़ू खाँ

चतरू सांगी

चौ. नत्थूदास मीरांपुर

सरूप चंद

निष्कर्ष

सातवाँ अध्याय

पं. लखमीचंद युग 136

प्रस्तावना

पं. लखमीचंद

पं. महोर सिंह गौड़

पं. शादीराम

दयाचंद गोपाल

पं. नंदलाल मुनीमपुरिया

चौ. चंदन सिंह पीपलका

लाला घनश्याम दास

कवि जमुवा मीर

सगुवा सिंह

निहालचंद

पं. हरफूल सिंह गौड़

निष्कर्ष

आठवाँ अध्याय 172

पृथ्वीसिंह बेधड़क युग

प्रस्तावना

पृथ्वीसिंह बेधड़क

स्वामी भीष्म जी

कुंवर जौहरी सिंह

बुंदू मीर

पं. बलवंत सिंह करनावल

कुँवर सुखपाल सिंह आर्य प्रभाकर

मुंशीराम जांडली

चौ. ईश्वर सिंह गहलोत

बलवंत सिंह बुल्ली

रूपचंद गन्नौर

पं. भैयाराम

निष्कर्ष

नौवाँ अध्याय 213

राय धनपत सिंह निंदाना युग

प्रस्तावना

राय धनपत सिंह निंदाना

पं. माँगेराम

सांगी बनवारी ठेल

पं रघुनाथ

मौजीराम स्वामी

पं. माईचंद

रघुबीर शरण सूप

साँवलिया भगत

पं. माईराम

ठहरो श्याम धरौदी

कवि देईचंद

पं. तेजराम

कवि गिरवर सिंह पंवार

चौधरी खचेडू दास

पं. भोलाराम

दीना भगत उर्फ दीना लुहार

निष्कर्ष

दसवाँ अध्याय 264

महाशय दयाचंद मायना युग

प्रस्तावना

महाशय दयाचंद मायना

धर्मपाल भालोठिया

महाशय गुणपाल कासंडा

मास्टर नेकीराम

महाशय छज्जूलाल सिलाणा

मास्टर दयाचंद आज़ाद सिंघाना

मास्टर रामानंद आज़ाद
चौधरी पोलूराम आज़ाद
कृष्णचंद्र नादान
फकरू मीर
गुलाब सिंह भारती
पं. हरिदत्त नादान
पं. श्रीराम शर्मा
सोहनलाल सिवाहा
चौ. जगत सिंह अल्हाण
सांगी प्रेमलाल चौहान
शुभकरण मांडी
सूरत सिंह नांगल
नसरू मीर
भुल्लन सिंह
चौ. मनफूल सिंह त्यागी
पीरू मिलक
निष्कर्ष

ग्यारहवाँ अध्याय 335

चंद्रलाल बादी युग

प्रस्तावना
चंद्रलाल बादी
कवि लिल्ला मीर
पंडित देबीदत्त
सेवाराम बखेता
कवि सुल्तान सिंह शास्त्री
पं. जगदीश चंद्र वत्स
पं. लक्ष्मीचंद वैद्य
जीयालाल
ओमप्रकाश जाटव शिकारपुर
मंगतराम भकलाना
पं. रामेश्वरदास बदनारा
पं. कामसिंह
कदम सिंह
चंदन सिंह बीबीपुर
सफदरजंग राणा
रामकिशन ब्यास
बलराज सिंह भाटी
गुरशरण दास
महाशय दीवान सिंह सिंघवा
श्यामलाल सौरम उर्फ काच्चा श्याम
रामकंवार खालेटिया
भारत भूषण सांघीवाल
चौ. रामशरण अलीपुरा
अध्यापक रामकरण सिंह
ठाकुर तुलाराम सिंह ‘बेफिकर’
रामसिंह कलछीना
महाशय दीनदयाल चंद्रावल
रघुबीर दास शर्मा
हरदेवा सिंह
पं. रामरतन कौशिक
निष्कर्ष

बारहवाँ अध्याय 420

अर्वाचीन युग

प्रस्तावना

भागसिंह आर्य
किशनचंद शर्मा
जनार्दन बैसौया
मदन गोपाल शास्त्री
पं. जगन्नाथ समचाणा
सतबीर पाई
महाशय केदारमल
चतरभुज बंसल
लेखराज चौहान
रामभूल सिंह बड़गूजर
कुंवर विशाल सिंह
फौजी प्रेम सिंह
बीरबल निंबरिया
गंगाराम
सप्पो मीर
मुख्त्यारलाल भाट
पालेराम पांचाल
निष्कर्ष

लड्डन सिंह बंजारा
जबरसिंह खारी
जयकरण सिंह गुर्जर
कृष्णचंद्र रोहणा
सूरज बेदी
ऋषिपाल खदाना
कल्याण सिंह 'बेफिकर'
रामफल गौड़
पंडित हरिपाल गौड़
सुबेलाल
न्यादर सिंह बेचैन
लहणासिंह अत्री
झम्मन लाल
हरेराम बैंसला
मंगतराम शास्त्री
दलबीर सिंह फूल

उपसंहार 491
संदर्भ ग्रंथ सूची 498
परिशिष्ट 517

पहला अध्याय

कौरवी : अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

प्रस्तावना -

भाषा व्यक्ति की अभिव्यक्ति, जीवन-शैली एवं वैचारिकता का एक सशक्त माध्यम है। प्रारंभिक काल से ही भाषा व्यक्ति की श्रेष्ठतम उपलब्धियों का कुतूहल रही है। मनुष्य ने भाषा को इतना सर्वग्राह्य बना लिया है कि इसे सीखने के लिए किसी विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं, अपितु पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह स्वतः मनुष्य के व्यक्तित्व का हिस्सा बनती चली जाती है। भाषा के प्रयोक्ता में भाषा के सैंकड़ों सालों का सफ़र देखा जा सकता है।

कौरवी का क्षेत्र -

कौरवी लोकभाषा उत्तरी भारत की एक महत्त्वपूर्ण भाषा है। कुरु जनपद की बोली होने के कारण इसका नाम कौरवी पड़ा। ''मध्य प्रदेश के महाजनपदों में प्राचीनतम कुरु पंचाल थे। कुरु जनपद की राष्ट्रीय भूमि, गंगा-जमुना की घाटियों के ऊपरी भाग में थी। इस जनपद के संस्थापक कदाचित् वैदिक कालीन 'पुरु' जन थे। ये लोग 'भरत' जन के नाम से भी प्रसिद्ध थे। पुराणों की अनुश्रुति के अनुसार कुरु शासकों का संबंध पुरुरवा द्वारा स्थापित ऐल तथा चंद्रवंश से था। कुरु जनपद की राजधानी मेरठ के निकट गंगा के किनारे हस्तिनापुर या आसंदीवंत थी। बाद में पश्चिमी कुरु या कुरु जांगल की पृथक राजधानी यमुना के किनारे इंद्रप्रस्थ हो गई।''[1] कुरु जनपद के भौगोलिक क्षेत्र में कौरवी भाषा की उत्पत्ति मानी जाती है। सत्या गुप्त ने भी इसका क्षेत्र कुरु जनपद ही बताया है। ''कुरु जनपद आजकल अंबाला, दिल्ली, मेरठ, बिजनौर के आसपास का भाग खड़ी बोली का प्रदेश है और उसकी बोली, रहन-सहन और उपजातियों का एक विशेष व्यक्तित्व है।''[2]

भाषा मानव समूह की जीवन-शैली का एक महत्त्वपूर्ण अंग होती है। व्यक्ति

के व्यक्तित्व में भाषा घुल-मिल कर उसे सामूहिक उद्यम से जोड़ती है। उसे उसका हिस्सा बनाती है।

कौरवी नाम 'कुरु' से प्रभावित है। कुरु जनपद में बोली जाने वाली भाषा को कौरवी लोकभाषा कहा जाता है। राहुल सांकृत्यायन और कृष्णदेव उपाध्याय ने कौरवी भाषा के बाह्य क्षेत्र का परिचय इस प्रकार दिया है, ''कौरवी भाषा उत्तर में सिरमौरी (गढ़वाली), पूर्व में पाँचाली (रुहेली), दक्षिण में कन्नौजी तथा ब्रज तथा पश्चिम में मारवाड़ी और पंजाबी भाषाओं से घिरी है। इसके पश्चिम में अंबाला कमिश्नरी की घग्गर नदी तथा पटियाला और फिरोजपुर जिले हैं। उत्तर में हिमालय के पहाड़ और सिरमौर तथा गढ़वाल जिले, पूर्व में रामपुर और मुरादाबाद जिलों के अवशिष्ट भाग तथा बदाऊँ जिला, दक्षिण में बुलंदशहर का अवशिष्ट भाग तथा गुड़गाँव और अलवर के कौरवी अंश हैं।''[3] इसके अनुसार पूरा हरियाणा एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश कौरवी भाषा के अंतर्गत आ जाते हैं। वे आगे इसके अंदरूनी क्षेत्रों के बारे में लिखते हैं, ''यह प्रायः संपूर्ण अंबाला और मेरठ कमिश्नरियों की भाषा है। गंगा और यमुना के बीच के सहारनपुर, मुजफ्फरनगर जिलों का संपूर्ण भाग एवं गंगा के पूर्व बिजनौर और यमुना के पश्चिमी करनाल, रोहतक, हिसार और दिल्ली कौरवी भाषी हैं। उत्तर में देहरादून, अंबाला, पूर्व में मुरादाबाद और रामपुर, दक्षिण में बुलंदशहर और गुड़गाँव के बहुसंख्यक लोग यही भाषा बोलते हैं। मेरठ जिले की तहसील बागपत को टकसाली कौरवी भाषा का क्षेत्र माना जाता है। जो कौरवी क्षेत्र के मध्य में पड़ता है।[4]

इन दोनों कथनों के आधार पर कहा जा सकता है कि कौरवी उत्तर में हिमाचल प्रदेश, पूर्व में रुहेलखंड, दक्षिण में कन्नौज, पश्चिम में राजस्थान और पंजाब के पटियाला और फिरोजपुर जिलों तक फैली हुई है। बुलंदशहर का पश्चिमी भाग भी कौरवी भाषा-भाषी है। इस प्रकार कौरवी भाषा के क्षेत्र को इस अध्याय के अंत में दिए गए चित्र द्वारा समझा जा सकता है।

कौरवी और खड़ी बोली : अंतर्संबंध -

खड़ी बोली परिनिष्ठित भाषा है और कौरवी उस क्षेत्र की लोकभाषा है। खड़ी बोली ने जहाँ एक ओर राष्ट्रीय स्तर पर इस क्षेत्र को अभिव्यक्ति दी है, वहीं लोकभाषा कौरवी में इस क्षेत्र के लोक का हर्ष-उल्लास, उत्सव और विषाद को वाणी मिली है। जितना समृद्ध इस क्षेत्र का खड़ी बोली का साहित्य है, उससे कहीं अधिक कौरवी लोकभाषा का साहित्य समृद्ध है, जो लोकगीत, लोकनाट्य, लोककथा, लोकगाथा और लोकोक्तियों आदि में विस्तार पाता है। इस क्षेत्र का लोकनाट्य तो अत्यधिक समृद्ध

है। खड़ी बाली के क्षेत्र को उदयनारायण तिवारी ने कुछ इस प्रकार बताया है, ''खड़ी बोली वस्तुतः रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर और देहरादून के मैदानी भाग में बोली जाती है।''[5] यही क्षेत्र लोकभाषा कौरवी के भी हैं। इनके साथ-साथ समस्त हरियाणा का भू-भाग भी कौरवी लोकभाषा से जुड़ जाता है। वासुदेवशरण अग्रवाल ने कौरवी बोली और खड़ी बोली में कोई अंतर नहीं माना। उनका कहना है, ''कौरवी बोली को ही आजकल खड़ी बोली कहा जाता है। इस बोली ने ही अधिकांश राष्ट्रीय एवं अर्वाचीन कवि हिंदी का साहित्यिक रूप ग्रहण किया है। इस बोली का एक छोर ब्रजभाषा और दूसरा हरियाणा की बांगड़ू भाषा से मिला है। इसका शुद्ध रूप मेरठ जनपद के गाँवों में पाया जाता है।''[6]

खड़ी बोली और कौरवी लोकभाषा में अंतर लोक को लेकर किया जा सकता है। जहाँ खड़ी बोली परिनिष्ठित भाषा के तौर पर पढ़े-लिखे विद्वत् समाज की भाषा बनीं, वहीं उस क्षेत्र के अल्पशिक्षित तथा अशिक्षित लोक की भाषा कौरवी बनीं। जहाँ खड़ी बोली ने अभिव्यक्ति के मामले में इस क्षेत्र के साथ-साथ संपूर्ण हिन्दी भाषी क्षेत्र को वाणी दी, वहीं कौरवी बोली ने इस क्षेत्र की लौकिक विधाओं को वाणी दी। इस क्षेत्र-विशेष की भाषा के संबंध में भोलानाथ तिवारी का मत है कि इस क्षेत्र की भाषा को खड़ी बोली की अपेक्षा कौरवी ही कहा जाए, क्योंकि कौरवी का संबंध अति प्राचीनकालीन 'कुरु' शब्द से जा जुड़ता है। खड़ी बोली नामकरण बहुत बाद का है। ''खड़ी बोली आदि की तुलना में कौरवी नाम अधिक अच्छा लगता है। इसके लिए दो कारण दिए जा सकते हैं। एक तो यह क्षेत्र प्रायः वही है, जिसे कुरु जनपद कहते थे। अतः जनपदीय आधार पर कौरवी नाम उचित है और दूसरे यह कि खड़ी बोली मूलतः उसे कहते हैं जिस पर आधुनिक साहित्यिक हिन्दी तथा उर्दू आदि आधारित हैं तथा जो अनेक मूल बातों में इस कौरवी से सर्वथा भिन्न है और भिन्नता के रहते हुए इस जनबोली को भी खड़ी बोली के नाम से पुकारना बहुत भ्रामक तथा अवैज्ञानिक है।''[7]

भोलानाथ तिवारी ने खड़ी बोली और कौरवी में हल्का-सा अंतर किया है परंतु यह अंतर केवल नाम को लेकर है। वे क्षेत्र के मामले में सहमत हैं। जहाँ तक उर्दू शब्दावली की बात है तो कौरवी में भी उसका कम प्रचलन नहीं है। कौरवी लोकभाषा में अनेक लोककवि मुस्लिम जातियों से हुए हैं, जिन्होंने उर्दू शब्दावली का खूब प्रयोग किया है। असल में कौरवी में रचित लोकसाहित्य में फारसी और अरबी के शब्द कुछ इस प्रकार घुल-मिल गए हैं कि उनको चिह्नित करना कठिन है। सत्या गुप्त ने

इसे इस रूप में कहा है, ''मुसलमानी प्रभाव के निकट होने के कारण ग्रामीण खड़ी बोली में भी फारसी, अरबी शब्दों का व्यवहार अन्य बोलियों की अपेक्षा अधिक है, किंतु ये प्रायः अर्द्ध-तत्सम तथा उद्भव रूपों में ही प्रयुक्त करने से खड़ी बोली में उर्दू की झलक आने लगती है।''[8]

खड़ी बोली की समृद्धि में कौरवी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। दोनों के स्वभाव में पर्याप्त समानता दिखाई देती है। खड़ी बोली की ही तरह कौरवी में फारसी, अरबी, अंग्रेजी और तद्भव तथा देशज शब्दों की भरमार है।

यह क्षेत्र राजनीतिक घटनाक्रमों का भी केन्द्र रहा। दिल्ली के आसपास का क्षेत्र होने के कारण अंग्रेजी, अरबी-फारसी और ठेठ ग्रामीण शब्दों का भी खूब प्रचलन है। ''किसी देश के शिष्ट साहित्य से पूर्णतया परिचित होने के लिए उसके लोकसाहित्य का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। शिष्ट साहित्य का लोकसाहित्य से घनिष्ठ संबंध है। वास्तविक बात तो यह है कि शिष्ट साहित्य लोकसाहित्य का ही विकसित, संस्कृत और परिमार्जित स्वरूप है।''[9]

कौरवी लोकसाहित्य -

लोक की सृजना-शक्ति अद्भुत कुतूहलकारक है। वह अपने मनोरंजनार्थ कुछ न कुछ सृजित करती रहती है। लोकसाहित्य भी उनमें से एक है। तमाम लोककलाएँ लोक की कल्पना-शक्ति का ही आविष्कार हैं। लोक साहित्य लोक जीवन की सहज, स्वाभाविक, प्राकृतिक, अशास्त्रीय, सजीव मौखिक अभिव्यक्ति है। लोक साहित्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोक को हस्तांतरित होता रहता है। ''लोक साहित्य एक परंपरा-निधि है जिसे लेखनी ने न कभी संवारा है, न सजाया है और न कदाचित कभी इसे लेखनी की सहायता मिली है। यह तो प्रारंभ से समाज की जिह्वा पर आसीन रहा है। सभ्यता और संस्कृतियों का उत्थान-पतन हुआ, साहित्य बना-बिगड़ा परंतु लोक साहित्य का स्रोत कभी शुष्क नहीं हुआ और आज भी उसकी धारा अविरल रूप से प्रवहमान है।''[10] लोक साहित्य लोक के मनोरंजन का एकमात्र परंपरागत साधन है। लोक की भाव-भंगिमा थिरकन, घुटन, अट्टहास, चिन्तन-मनन आदि का उद्घाटन लोक-साहित्य के द्वारा ही होता है। ''लोक साहित्य वह लोक रंजनी साहित्य है जो सर्वसाधारण समाज की मौखिक रूप से भावमय अभिव्यक्ति करता है।''[11] लोक साहित्य के अन्तर्गत लोकगीत, लोकनाट्य, लोककथा, लोकवार्ता, लोक सुभाषित, लोकनृत्य, लोकोक्तियाँ आदि आते हैं, जिनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है -

1. लोकगीत -

लोकगीत लोक साहित्य में सबसे अग्रणी महत्त्वपूर्ण विधा है। लोकगीत लोक संस्कृति का मूर्त रूप है। ''यह मानव मन की अनुभूतियों की सरस रागात्मक अभिव्यंजना का लयात्मक उपहार है। लोक-संस्कृति की सच्ची, मधुर, मनमोहन तथा स्वरमूला अभिव्यक्ति को लोकगीत की संज्ञा से अलंकृत किया जा सकता है।[12] लोकगीत आदिम काल से पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोक में प्रचलित हैं। एक पीढ़ी इनमें कुछ न कुछ परिवर्तन कर आने वाली पीढ़ी को उत्तराधिकार के स्वरूप भेंट करती रहती है और पूरा का पूरा लोक इन परिवर्तनों सहित लोकगीतों को स्वीकार कर लेता है। देवेन्द्र सत्यार्थी लोकगीतों के आदिम उद्गम से हतप्रभ हैं - ''कहाँ से आते हैं इतने गीत? स्मरण-विस्मरण की आँख मिचौली से, कुछ अट्टहास से, कुछ उदास हृदय से, कहाँ से आते हैं इतने गीत? जीवन के खेत में उगते हैं ये सब गीत। कल्पना भी अपना काम करती है, रसवृत्ति और भावना भी, नृत्य का हिलोरा भी - पर ये सब हैं खाद। जीवन के सुख, जीवन के दुख, ये हैं लोकगीत के बीज।''[13] वस्तुतः लोकगीत लोक के दुख-दर्द, हँसी-खुशी के मुँह बोलते चित्र हैं। लोकगीत किसी शास्त्रीय पद्धति या नियम से आबद्ध नहीं होते। ''शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह न करके सामान्य लोक-व्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपने आनन्द तरंग में जो छन्दोबद्ध वाणी सहज रूप से उद्धृत करता है वही लोकगीत है।''[14] उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लोकगीत लोक की भावनाओं का सहज उद्गार होते हैं। ये अकृत्रिम होते हैं तथा आदिम युग से लोक की सामूहिक सम्पत्ति होते हैं। आने वाली पीढ़ियाँ परिस्थिति, भाषायी आ चुके परिवर्तनों के अनुसार उन्हें अपना लेती हैं परन्तु विषय वही रहता है। लोकगीत काग़ज़ कलमजीवी न होकर कंठजीवी है। इनमें अलंकारों तथा छन्दों का कोई बन्धन स्वीकार्य नहीं। लोकगीत लोक-संस्कृति के सजग प्रहरी हैं। ये पुरातन से वर्तमान का संबंध स्थापित करते हैं। ये स्वतःस्फूर्त हैं। इनके रचनाकार, रचनाकाल तथा रचना स्थल तीनों ही अज्ञात हैं। गेयता तथा संगीतात्मकता इनकी मूल शक्ति है। लोकगीतों का विभिन्न आधारों पर वर्गीकरण संभव है।

कौरवी क्षेत्र में लोकगीतों की एक समृद्ध परंपरा रही है। अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक लोकगीत खेत-खलिहान, खान-पान, तीज-त्योहार से संबधित हैं। संस्कारों, उत्सवों, लोकविश्वासों से संबंधित अनेक लोकगीत इस क्षेत्र में प्रचलित हैं। राष्ट्रीय आंदोलन भी इन गीतों में झलकता है। विवाह के समय पर गाया जाने वाला एक लोकगीत दर्शनीय है -

पाँच पतासे पान्या का बिड़ला।
लै सैयद पै जाइयो जी।
जिस डाली म्हारा सैयद बैठ्या।
वा डाली झुक जाइयो जी।
पाँच पतासे पान्या का बिड़ला।
लै माता पै जाइयो जी।
जिस डाली म्हारी माता बैठी।
वा डाली झुक जाइयो जी।
पाँच पतासे पान्या का बिड़ला।
लै देवी पै जाइयो जी।
जिस डाली म्हारी देवी बैठी।
वा डाली झुक जाइयो जी[15]

खेत में स्त्रियाँ पुरुषों के लिए खाना लेकर मधुर आवाज़ में गीत गाती हुई जाती हैं। बहन अपने भाई की विजय की कामना इस लोकगीत में कुछ इस प्रकार करती है -

सात भाइयों की बहन अकेली, बहन अकेली,
रोटी ले के आई हो ऽ ऽ।
रोटी ले के आई हो ऽ ऽ।
रोटी खालौ बीर 'बिजय सिंह' बीर 'बिजय सिंह'।
मैं तेरी माँ की जायी हो ऽ ऽ।
मैं तेरी माँ की जायी हो ऽ ऽ।[16]

कौरवी लोकगीतों में अधिकतर मंगलकामना की जाती है। वैसे तो इन लोकगीतों के रचयिता का नाम अज्ञात होता है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी ये गीत स्त्री-पुरुषों में चलते आते हैं। कई बार कोई लोककलाकार लोक में 'लिजेण्ड' रूप धारण कर लेता है और उसके गीत (रागनी) लोकगीत की तरह प्रचलित हो जाते हैं जैसे महाशय दयाचंद मायना की 'करकै घाल तड़पती छोड़ी जान क्यूं ना काढ़ लेग्या', और 'घड़ी ना बीती ना पल गुजरे उतरा जहाज शिखर तै' तथा गुलाब सिंह की रागनी 'दारू दुश्मन हो माणस की ना पीणी प्याणी चाहिए'।

2. लोककथा -

लोक साहित्य की विविध विधाओं में लोककथा का विशिष्ट स्थान है। इसकी महत्ता प्रतिपादित करते हुए कृष्णदेव उपाध्याय लिखते हैं - ''सच तो यह है कि इन कथाओं के द्वारा सर्वसाधारण जनता के मन का जितना अनुरंजन हुआ है, उतना अन्य किसी साधन के द्वारा नहीं।''[17] इनका जन्म सृष्टि की उत्पत्ति के साथ हुआ तथा ये सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हैं। सभ्यता तथा संस्कृति के विकास में लोककथाओं का विशेष योगदान है। ये लोककथाएँ मानसिकता की परिपक्वता के लिए नितांत आवश्यक हैं। इनके माध्यम से दादी, नानी खेल-खेल में बच्चों के अंदर संस्कारों, आदर्शों का संचरण करती हैं।

लोक कथाओं की व्यापकता, विषयानुकूलता, मनोरंजकता तथा शैली का अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण विश्व का लोक एक है और लोककथाओं के माध्यम से अपना अनुरंजन करता है। ''जो कथावस्तु तथा उसकी कलात्मक कथन प्रणाली एक साहित्यिक सौंदर्य प्राप्त कर लेती है, लोककथा कही जाती है। लोककथा विश्व व्याप्त है। इसमें लोक जीवन नाना रूपों में प्रकट होता चला आ रहा है। मानव के सुख-दुख, रीति-रिवाज, आस्थाएँ एवं विश्वास इन लोककथाओं में अभिव्यक्त होते रहते हैं। लोककथा मौखिक रूप में होती है।''[18] डॉ. सत्येन्द्र ने भी लोककथाओं के मौखिक स्वरूप को स्वीकारा है। ''लोक में प्रचलित और परंपरा से चली आने वाली मूलतः मौखिक रूप में प्रचलित कहानियाँ लोक कहानियाँ कहलाती हैं।''[19]

कौरवी क्षेत्र में लोककथाओं की भरमार है। कौरवी क्षेत्र में लोककथाएँ ''प्रायः दिवंगत आत्माओं, देवताओं, विलक्षण पुरुषों, राजा-रानी और राजकुमारों से संबंधित होती हैं। इस प्रकार उनमें असाधारण एवं असंभव घटनाओं का प्रदर्शन किया जाता है। लगभग 95 प्रतिशत कहानियाँ 'इक राजा ता' वाक्य से प्रारंभ होती हैं। आगे चलकर राजा रानी के किसी शाप, शर्त या कोई कठिन कार्य कर दिखाने, उसमें दैवीय सहायता प्राप्त होने अथवा किसी साधु संत, जादूगर या मानव की तरह सुनने समझने और बोलने चालने वाले किसी वृक्ष, पशु अथवा पक्षी की सहायता मिलने से कार्यपूर्ति का वर्णन होता है।''[20]

लोककथा सर्वसाधारण के मनोरंजन के लिए पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक परंपरा से चली आती वे कथाएँ हैं जो इस सृष्टि के प्रत्येक कोने में व्याप्त हैं तथा लोक के सुख-दुख, आस्था, विश्वास, आमोद-प्रमोद, रीति-रिवाज की अभिव्यक्ति होती हैं।

3. लोकनाट्य -

'लोकनाट्य' की उत्पत्ति 'लोक' और 'नाट्य' दो शब्दों के योग से हुई है। 'नाट्य' शब्द 'नट' से संबंधित है। 'नट' का प्रमुख उद्देश्य अंग संचालन के माध्यम से किसी व्यक्ति या परिवेश को प्रस्तुत करना होता है जिन्हें अभिनेयता भी कहा जाता है। लोकनाट्य लोक की अकृत्रिम जीवन शैली का यथार्थ अभिनयात्मक प्रतिबिम्ब है। ''लोकनाट्य से तात्पर्य नाटक के उस रूप से है जिसका संबंध विशिष्ट शिक्षित समाज से भिन्न सर्वसाधारण के जीवन से है और जो परंपरा से अपने-अपने क्षेत्र के जन समुदाय के मनोरंजनार्थ सदियों से लोक में व्याप्त है।[21] डॉ. महेन्द्र भानावत के मतानुसार ''लोकधर्मी रूढ़ियों की अनुकरणात्मक अभिव्यक्तियों का वह नाट्य रूप जो अपने-अपने क्षेत्र के लोकमानस को आह्लादित, उल्लासित एवं अनुप्राणित करता है, लोकनाट्य कहलाता है।''[22]

लोकनाट्य सर्वसाधारण जन के लिए मनोरंजन का काम करते हैं। ये किसी भी प्रकार के आडम्बर तथा औपचारिकता से दूर स्वाभाविक तथा सहज होते हैं। लोक में ये परंपरा से चले आ रहे हैं तथा ये अपने-अपने क्षेत्रों में जनता को आह्लादित करते हैं। इनकी विषयवस्तु में लोककथाएँ, लोक विश्वास और लोक तत्त्व होते हैं। इनमें जनजीवन की भावनाओं तथा उपलब्धियों की प्रतिच्छाया होती है। आज जो शास्त्रीय तथा बौद्धिक नाटक लिखे जाते हैं, उनकी मूल प्रेरणा यही लोकनाट्य रहे हैं।

कौरवी क्षेत्र में लोकनाट्य को 'सांग' कहा जाता है। शंकरदास, बाजेभगत, दीपचंद, पं. लखमीचंद, महाशय दयाचंद मायना, धनपत सिंह निंदाना, चंद्रलाल बादी, पं. माँगेराम, बलवंत सिंह बुल्ली, पृथ्वीसिंह बेधड़क, न्यादर सिंह बेचैन, गुणी सुखीराम आदि अनेक लोकनाट्यकार (सांगी) हुए हैं, जिन्होंने कौरवी लोकनाट्य का परचम लहराया है।

4. लोकगाथा -

'लोकगाथा' दो शब्दों 'लोक' और 'गाथा' के मेल से बना है। लोक का पर्याप्त विवेचन पहले हो ही चुका है। गाथा शब्द का सामान्य-सा अर्थ हो सकता है - गेयात्मक कथा अर्थात् लोक में जो गेयात्मक कथा गाई जाती है उसे लोक गाथा कह सकते हैं।[23] लोकगाथा में 'कथा' और गीत दोनों का सम्मिश्रण होता है। राजस्थानी साहित्य के मूर्धन्य विद्वान झबेरचंद मेघाणी इसे 'कथा गीत' कहते हैं।[24]

प्रो. जी.एल. किटरेज ने लोकगाथा की परिभाषा देते हुए कहा है -"बैलेड वह गीत है जिसमें कथा हो अथवा दूसरी दृष्टि से विचार करने पर बैलेड वह कथा है जो गीतों में कही गई हो।"[25]

लोकसाहित्य के भारतीय मूर्धन्य विद्वान डॉ. कुन्दन लाल उप्रेती का मानना है कि "गीत कथा या कथागीत में लोक भावना की गंध नहीं मिलती। यह शब्द प्रयासपूर्वक निर्मित किया गया है और फिर ये अंग्रेजी के 'बैलेड' शब्द के भावानुवाद से प्रतीत होते हैं। लोकगाथा शब्द सार्थक एवं लोकभावना को लिए हुए है। यह अनुवाद से परे भारतीय लोकपरंपरा से अधिक निकट है।"[26] हिन्दी में लोकगाथा शब्द को प्रचलित करने वालों में सबसे पहला नाम है कृष्णदेव उपाध्याय का। उन्होंने कथात्मक गीतों पर विस्तृत रूप से विचार करने के उपरांत ही यह नाम दिया है।[27] लोकगाथा वे प्रबंधात्मक लोकगीत है जो आकार में किसी महाकाव्य को चुनौती दे सकते हैं और जिनमें प्रधान तत्त्व कथा है। "... परंतु लोकगाथा में प्रबन्धात्मकता होती है और यह कथा प्रधान होता है।"[28]

इन परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि लोकगाथा लोक साहित्य की वह विधा है जिसमें गीतात्मक शैली में कथा का विधान होता है, जिसका गायन प्रायः मौखिक ही होता है। उत्तरी भारत में आल्हा, ढोलामारू, हीर रांझा, बनजारा आदि लोकगाथाएँ ही हैं।

कौरवी क्षेत्र में अनेक जोगी आज भी लोकनाट्यों को लोकगाथाओं के रूप में गाते हैं। मुंशीराम जांडली के लोकनाट्य लोकगाथाओं के रूप में गाये जाते हैं।

5. लोकनृत्य -

लोक द्वारा अपने उल्लास को आंगिक भाव भंगिमाओं द्वारा प्रकट करने को लोक नृत्य कहा जाता है। लोक नृत्य के उद्भव के विषय में प्रामाणिक तथ्यों का अभी तक अभाव है। श्री प्रेम कपूर कंचन लोक नृत्य को ईश्वर की आराधना से जोड़ते हैं। वे लिखते हैं "इनका मूल स्रोत है प्रकृति और कुछ अलौकिक शक्तियाँ जो मानव जीवन में स्वतः जन्म लेती और पनपती हैं। इनका घर है गाँव, जिनमें हमारे पुरखों ने जीवन बिताया और फूले फले, उन्होंने अपने जीवन क्रम को क्रमबद्ध रखने के लिए देवता की कल्पना की। उनकी आराधना के साधक नृत्य बने। आज भी दक्षिण भारत के मंदिरों में देवी-देवताओं के लिए विशेष नृत्य का आयोजन इसी बात की पुष्टि करता है।"[29] कंचन जी ने इसके क्रमिक विकास में कहा कि सामंती युग में लोकनृत्य परिवार का हो गया तथा बाद में यह परिवार घरानों के नाम से रूढ़ हो गया।

भारत में नृत्य की चार पद्धतियाँ प्रचलित हैं - कथाकली, भरतनाट्यम, कत्थक और मणिपुरी। नृत्य के आदिदेव शिव माने जाते हैं। नृत्य के दो रूप ताण्डव तथा लास्य है। 'ताण्डव में अंतिम विनाश की अवस्था का प्रदर्शन और लास्य में सृजन की मुस्कान का मुद्राओं द्वारा अभिव्यक्तीकरण होता है।'[30] भारत भौगोलिक रूप से विभिन्नताओं का देश है। यह भौगोलिक विभिन्नता लोकनृत्य में भी बदलाव लाती है। भारत में भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न लोकनृत्य प्रचलित हैं। शास्त्रीय नृत्य का आधार ये लोकनृत्य ही हैं। लोकनृत्य को सांस्कृतिक विरासत मानते हुए शांति अवस्थी लिखते हैं- ''यह लोक नृत्य जीवन गति से सीधे संबंधित होते हैं। लोक नृत्य किसी आदर्श अथवा परानुभूति को व्यक्त न कर जीवन के उल्लास को ही व्यक्त करते हैं। यही कारण है कि वे जीवन गति के आदर्श प्रतीक हैं। इन्हीं लोकनृत्यों ने आत्म समर्पण कर शास्त्रीय नृत्य को जीवन दे हमारी कला को सुरक्षित रखा है तथा जीवन को सांस्कृतिक बना दिया है।''[31] लोक अपने आनंदातिरेक को सामूहिक रूप से प्रकट करने के लिए विभिन्न अवसरों पर शारीरिक भाव भंगिमाओं द्वारा प्रकटीकरण करता है। इसे ही लोकनृत्य कहते हैं।

कौरवी क्षेत्र में लूर, गूगा धमोड़ा, घोड़ी बाजा नृत्य, रास, रसिया, रतवई, खोड़िया, खोड्डी नृत्य, धमाल, डमरू नृत्य आदि प्रचलित हैं।

6. लोक सुभाषित -

लोक में प्रचलित लोकोक्तियाँ, मुहावरे, पहेलियाँ, सूक्तियाँ तथा ढकोसले ही लोक सुभाषित कहलाते हैं।

अ. लोकोक्ति -

'लोकोक्ति' शब्द 'लोक+उक्ति' से मिलकर बना है। यहाँ उक्ति का अर्थ है - कथन, वाक्य, कवित्वमय वचन, पद्य।[32] अर्थात् लोक में प्रचलित कथन। ये कथन लोक के अनुभव के द्वारा समाज में प्रचलित होते हैं। हर लोकोक्ति के पीछे यथार्थ पर आधारित एक लम्बी अनुभव परंपरा विद्यमान रहती है। लोकोक्तियों का प्रयोग प्रायः बहुत लम्बी बात को संक्षेप में और प्रभावपूर्ण तथा सटीक बनाने के लिए किया जाता है। समाज में इनका प्रचलन अत्यंत प्राचीन काल से है। लोकोक्तियाँ वैसे तो छोटी होती हैं परंतु इनमें भाव अपेक्षया बहुत गंभीर होते हैं। उदाहरणार्थ - 'जाके पैर न फटे बिवाई सो क्या जाने पीर पराई'। इस लोकोक्ति के अर्थ में गहन भाव की अभिव्यंजना है, जिसका सामना कभी दुख या पीड़ा से नहीं होता वह किसी दूसरे

के कष्ट या पीड़ा को कैसे समझ सकता है।

लोकोक्तियाँ किसी व्यक्ति विशेष की धरोहर नहीं होतीं। ये लोक के अनुभव संसार पर निर्भर करती हैं। एक-एक लोकोक्ति को लोक में स्थापित होने के लिए पीढ़ियाँ लग जाती हैं। कौरवी क्षेत्र में अनेक जातिसूचक लोकोक्तियाँ भी अधिक मात्रा में प्रचलित हैं। एक आचार-विचार संबंधी लोकोक्ति दर्शनीय है - 'बड़े का कहा और आँवले का खाया, पीछे से मीठा लगता है।' या 'भगवान जब देवै छप्पर फाड़ के देवै।'[33]

कौरवी लोकनाट्यकार मास्टर दयाचंद आज़ाद सिंघाना की रागनी की एक कली दर्शनीय है -

गादड़ की आई मौत गाम का सीधा रास्ता टोह बैठ्या
काग्गा चालै चाल हंस की अपणी भी खुद खो बैठ्या।
सब कुणबे कै लड़ ज्यागा इसा बीज बिघ्न का बो बैठ्या।
अकलमंद कौम सुनारां की बेवकूफ खामखां हो बैठ्या।
ढाई छैल नाम जानी का देख लिए इस्तिहारां नै ओ बेईमान।।[34]

आ. मुहावरे -

अंग्रेजी भाषा के 'इडियम'[35] के हिन्दी पर्याय मुहावरे का अर्थ होता है - परस्पर बातचीत और सवाल-जवाब करना। लोकोक्ति की भाँति मुहावरे का प्रयोग भी गागर में सागर भरने के लिए किया जाता है। मुहावरे की परिभाषा देते हुए रामनरेश त्रिपाठी जी लिखते हैं "मुहावरा किसी बोली या भाषा में प्रयुक्त होने वाला वह अपूर्ण वाक्य खण्ड है जो अपनी उपस्थिति से समस्त वाक्य को सबल, सतेज, रोचक और चुस्त बना देता है। संसार में मनुष्य में लोक-व्यवहार में जिन-जिन वस्तुओं और विचारों को बड़े कौतूहल से देखा और समझा और बार-बार उनका अनुभव किया उन्हीं को उसने शब्दों में बाँध दिया। वे ही मुहावरे कहलाते हैं।"[36]

कौरवी क्षेत्र में कुछ मुहावरे और उनके अर्थ दर्शनीय हैं -

1. जुणसा देगा उसकाए खेल्लेगा - जो खर्चेगा उसी को आनंद होगा - जाते हुए किसी व्यक्ति से कई लोग बोले - "भई, म्हारे बालक नै खिलौणा लाइए।" उसने उत्तर दिया - "बात यो है, जुणसा देगा उसकाए खेल्लेगा।"
2. आबरू का धेल्ला होना - इज्जत घटना - लौंडे के ब्याह म तनै रपय्या ना खर्च करे तो देख लीजो आबरू का धेल्ला हो जागा।

3. लट्टू घूमड़ - अपनी ही बात पर चलना - मार दी बाजी बस, इब तो पंचात म म्हारा ई लट्टू घूमेगा।[37]

7. पहेलियाँ -

मनुष्य का मस्तिष्क रहस्यपूर्ण है। जब मनुष्य परस्पर बात करते हुए चाहते हैं कि उनकी बात को कोई अन्य न समझ पाए तो वे गोपनीय ढंग से वार्तालाप करते हैं जिनसे पहेलियों का जन्म होता है। ''जब मनुष्य चाहता है कि उसके कथन को सर्वसाधारण न समझ सके तो वह ऐसी भाषा का प्रयोग करता है जो जनसाधारण की भाषा से परे होती है। यह पहेली का रूप धारण कर लेता है। मनुष्य की गोपनीय प्रवृत्ति ही पहेलियों की उत्पत्ति करती है।''[38]

ग्रामीण जन जब सारा दिन खेत में काम करके हार थककर घर लौटता है तो उसे भी मानसिक रूप से तरोताजा होने की आवश्यकता पड़ती है। वह घर के सभी सदस्यों के साथ पहेलियों के साथ दिमाग लड़ाते हैं व शारीरिक श्रम को भूल जाते हैं तथा प्रसन्न होते हैं। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने खेती संबंधी, भोज्य पदार्थ संबंधी, घरेलू वस्तु संबंधी, प्राणी संबंधी, प्रकृति, शरीर संबंधी तथा प्रकीर्ण पहेलियाँ आदि के रूप में पहेलियों का वर्गीकरण किया है।''[39] कुछ कौरवी पहेलियाँ दर्शनीय हैं -

1. काले काले बैंगना कुटियार भरे जा
   राजा माँगे मोल तो दिए ना जा। (आँख)
2. हेली रे हेली तू हल्दी से पेली
   छँटाक चुम्मा ले गई, परम दुख दे गई। (ततैया)
3. एक नगर में आग लगी एक नगर में धुआँ
   एक नगर में वास करै एक नगर में कुआँ। (हुक्का)
4. कटोरे में कटोरा, बेटा बाप से भी गोरा (नारियल)[40]

निष्कर्ष -

कौरवी भाषा के क्षेत्र के अंतर्गत संपूर्ण हरियाणा व उत्तर प्रदेश का पश्चिमी भाग आ जाता है, जिसमें सहारनपुर, मुजफरनगर, मेरठ, बुलंदशहर का पश्चिमी भाग, मुरादबाद का उत्तरी भाग आदि क्षेत्र आते हैं। यह क्षेत्र महाभारतकालीन कुरु जनपद के अंतर्गत आता है। कुरु जनपद का क्षेत्र होने के कारण ही इसका नाम कौरवी पड़ा है।

खड़ी बोली और कौरवी का गहरा संबध है। कुछ विद्वान खड़ी बोली को ही कौरवी कहने के पक्ष में हैं, परंतु यह सत्य है कि खड़ी बोली का क्षेत्र विस्तृत है और वह हिन्दी साहित्य की एक परिनिष्ठित भाषा के रूप में विद्यमान है जबकि कौरवी एक लोकभाषा है और अपेक्षया उसका क्षेत्र सीमित है।

कौरवी लोकभाषा में लोकसाहित्य की भरमार है। लोकगीत, लोकगाथा, लोकनाट्य, लोकनृत्य और लोकसुभाषित की दृष्टि से कौरवी लोकभाषा एक अत्यधिक समृद्ध लोकभाषा है। विशेष रूप से लोकनाट्य तो इस प्रदेश का बहुत ही समृद्ध है।

संदर्भ -

1. मध्य प्रदेश : ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सिंहावलोकन, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ 16
2. कौरवी लोकगीत, सत्या गुप्त, पृष्ठ 4
3. हिन्दी का लोकसाहित्य, हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षोडश भाग, राहुल सांकृत्यायन एवं डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृष्ठ 477
4. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षोडश भाग, राहुल सांकृत्यायन एवं डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, हिन्दी का लोकसाहित्य, पृष्ठ 477
5. हिन्दी भाषा का उद्‌गम और विकास, उदयनारायण तिवारी, पृष्ठ 229
6. खड़ी बोली का लोकसाहित्य, वासुदेवशरण अग्रवाल, पूर्व भूमिका, सत्या गुप्त, पृष्ठ ऊ
7. हिन्दी भाषा, भोलानाथ तिवारी, पृष्ठ 186
8. खड़ी बोली का लोकसाहित्य, सत्या गुप्त, पृष्ठ 16
9. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षोडश भाग, हिन्दी का लोकसाहित्य, राहुल सांकृत्यायन संपादकीय, पृष्ठ 13
10. हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ. शंकरलाल यादव, पृष्ठ 20
11. भोजपुरी लोकगाथा, डॉ. सत्यव्रत सिन्हा, पृष्ठ 5
12. लोकसाहित्य शास्त्र, डॉ. नन्दलाल कल्ला, पृष्ठ 90,
13. धरती गाती है, देवेन्द्र सत्यार्थी, पृष्ठ 179,

14. सम्मेलन पत्रिका (लोक-संस्कृति अंक), डॉ. सदाशिव फड़के, पृष्ठ 250
15. हरियाणा के लोकगीत, साधुराम शारदा, पृष्ठ 84
16. ब्रज व कौरवी लोकगीतों में लोकचेतना, डॉ. कुमार विश्वास, पृष्ठ 88
17. लोक संस्कृति की रूपरेखा, कृष्णदेव उपाध्याय, पृष्ठ 293
18. लोक साहित्य के प्रतिमान, डॉ. कुन्दन लाल उप्रेती, पृष्ठ 116
19. हिन्दी साहित्य कोश (भाग 1), डॉ. सत्येन्द्र, पृष्ठ 748
20. हिन्दी का लोकसाहित्य, हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षोडश भाग, राहुल सांकृत्यायन एवं डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृष्ठ 488-489
21. मालवी लोक साहित्य, डॉ. श्याम परमार, पृष्ठ 298
22. लोकनाट्य परंपरा और प्रवृत्तियाँ, डॉ. महेन्द्र भागवत, पृष्ठ 3
23. राजस्थानी लोकगीत, सूर्यकरण पारीक, पृष्ठ 78,
24. लोक साहित्य, झबेरचन्द मेघाणी, पृष्ठ 50,
25. द इंग्लिश एण्ड स्कॉटिश बैलेड, प्रो. जी.एल. किटरेज, पृष्ठ 11
26. लोक साहित्य के प्रतिमान, कुन्दन लाल उप्रेती, पृष्ठ 94
27. भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन, कृष्णदेव उपाध्याय, पृष्ठ 492
28. लोक संस्कृति की भूमिका, कृष्णदेव उपाध्याय, पृष्ठ 282
29. सम्मेलन पत्रिका (लोकसंस्कृति अंक), प्रेमकपूर कंचन, पृष्ठ 372
30. सम्मेलन पत्रिका (लोकसंस्कृति अंक), शांति अवस्थी, पृष्ठ 360
31. सम्मेलन पत्रिका (लोकसंस्कृति अंक), शांति अवस्थी, पृष्ठ 367
32. लोक साहित्य की भूमिका, कृष्णदेव उपाध्याय, पृष्ठ 185
33. भारतीय लोकसाहित्य कोश, डॉ. सुरेश गौतम एवं डॉ. वीणा गौतम, पृष्ठ 1427
34. मा. दयाचंद आज़ाद सिंघाना ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, पृष्ठ 76
35. राजपाल हिन्दी शब्दकोश, हरदेव बाहरी, पृष्ठ 104
36. भार्गवाज स्टैण्डर्ड इलस्ट्रेटिड डिक्शनरी, प्रो. आर.सी. पाठक, पृष्ठ 390
37. हिन्दी का लोकसाहित्य, हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षोडश भाग, राहुल सांकृत्यायन एवं डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, पृष्ठ 493

38. त्रिपथगा अंक 6 (मार्च 1956), रामनरेश त्रिपाठी, पृष्ठ 30
39. लोक साहित्य की भूमिका, कृष्णदेव उपाध्याय, पृष्ठ 206,
40. भारतीय लोकसाहित्य कोश, डॉ. सुरेश गौतम एवं डॉ. वीणा गौतम, पृष्ठ 1457

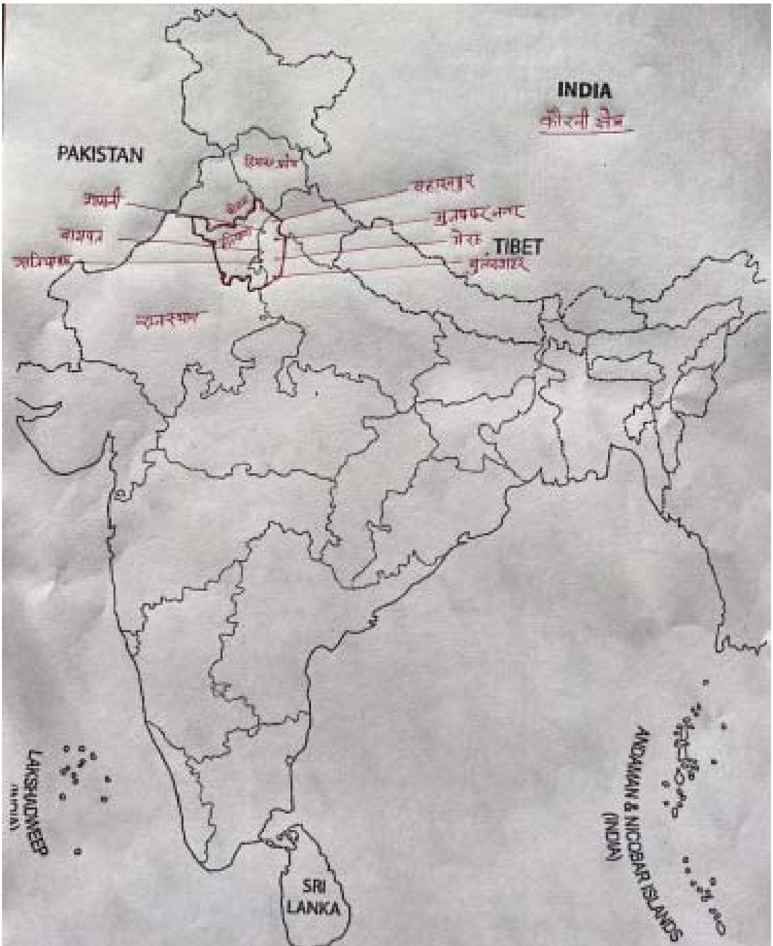

दूसरा अध्याय

कौरवी लोकनाट्य : अर्थ, स्वरूप, परिभाषा एवं विविध आयाम

प्रस्तावना -

इस अध्याय में 'लोक', 'नाट्य' और 'लोकनाट्य' को पारिभाषिक शब्दों की पीठिका के रूप में व्याख्या करना समीचीन समझा गया है। किस प्रकार मनुष्य के जीवन में लोकनाट्य का पदार्पण हुआ तथा प्रत्यक्ष-अपत्यक्ष रूप से से इसका क्या हस्तक्षेप रहा है, इसके कौन-कौन से अंग हैं, यह इस अध्याय का विषय रहा है।

लोक -

लोक जगत् का पर्याय है। 'लोक' शब्द का अर्थ है अवलोकन अर्थात् देखने वाला। समस्त समुदाय जो इस कार्य को करता है, वह लोक कहलाता है। 'लोग' शब्द भी 'लोक' का तद्भव रूप है जिसका अर्थ होता है - सामान्य जनता। इसलिए किसी भू-भाग में रहने वाली सामान्य जनता 'लोक' संज्ञा से अभिहित की जाती है।

'राजपाल हिन्दी शब्द कोश' में लोक का अर्थ प्रजा, लोग, जनसाधारण, जन समुदाय आदि अनेक अर्थ दिये हुए हैं।[1] विभिन्न शब्दकोशों के अध्ययन से 'लोक' शब्द अनेकार्थक लगता है।

अंग्रेजी के इसके पर्याय के रूप में FOLK (फोक), PEOPLE तथा PUBLIC आदि शब्दों का नाम लिया जाता है। संक्षिप्त हिन्दी-अंग्रेजी कोश में लोक का अर्थ वर्ल्ड (संसार) के अतिरिक्त पीपल, पब्लिक तथा फोक दिया हुआ है।[2]

अंग्रेजी-उर्दू कोश में का FOLK अर्थ है - असभ्य, असंस्कृत, आदिम अवस्थाओं में जी रहे मानव समुदाय। परंतु हिन्दी में लोक का अर्थ जन, जनता, सर्वसाधारण जनता, आम लोग, समूह तथा समुदाय है, जो अंग्रेजी के पब्लिक शब्द

से अधिक निकट है। इसलिए 'लोक' शब्द के लिए 'पब्लिक' अंग्रेजी पर्याय ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

महाभारत की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए महर्षि व्यास ने भी इस ग्रंथ को व्यथित लोगों के ज्ञान-चक्षु खोलने वाला बताया है -

अज्ञान तिमिरान्धस्य।
लोकस्य तु विचेष्टतः।
ज्ञानांजन श्लाकामिः।
नेत्रोन्मीलन कारकम्।।[3]

प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं में भी लोकजत्ता, 'लोअप्पवाय' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है जो लोक के रूप में ही है। सम्राट अशोक ने भी अपने शिलालेखों में अपनी प्रजा के लिए लोक शब्द का ही प्रयोग किया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतीय परंपरा में अति प्राचीन काल से लोक शब्द का प्रयोग जन, जन साधारण, जनता, लोगों के लिए होता आया है।

'लोक' शब्द की व्यापकता को लेकर अनेक विद्वानों ने इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक के संबंध में विचार व्यक्त करते हुए कहा है, ''लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर के परिष्कृत, रुचि संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।''[4] द्विवेदी जी ने पारंपरिक प्रवाह में बहने वाले लोगों को 'लोक' के अन्तर्गत रखा है, चाहे वे गाँव में रहते हों या नगर में। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल की मान्यता है -''लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है। उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक ही राष्ट्र का स्वरूप है .... अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्वभूत माता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नए जीवन का अध्यात्म शास्त्र है। इनका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार, और निर्माण का नवीन रूप है।''[5] लोक के सन्दर्भ में डॉ. श्याम परमार लिखते हैं, ''लोक साधारण जन समाज है, जिसमें भू-भाग पर फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित हैं। यह शब्द वर्ग भेद रहित, व्यापक एवं प्राचीन परंपराओं की श्रेष्ठ राशि सहित अर्वाचीन सभ्यता,

संस्कृति के कल्याणमय विकास का द्योतक है। भारतीय समाज में नागरिक एवं ग्रामीण दो भिन्न संस्कृतियों का प्रायः उल्लेख किया जाता है किंतु लोक दोनों ही संस्कृतियों में विद्यमान है। वही समाज का गतिशील अंग है।"[6] 'लोक' शब्द के प्रयोग के विषय में डॉ. श्याम परमार लिखते हैं,"आधुनिक साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों में लोक का प्रयोग गीत, वार्ता, कथा, संगीत, साहित्य आदि से युक्त होकर साधारण जन समाज जिसमें पूर्व संचित परंपराएँ, भावनाएँ, विश्वास और आदर्श सुरक्षित हैं तथा जिसमें भाषा और साहित्य सामग्री ही नहीं अपितु अनेक विषयों के अनगढ़ किंतु ठोस रत्न छिपे हैं, के अर्थ में होता है।"[7] डॉ. श्याम परमार ने इस धरती के ऊपर मनुष्य मात्र को लोक की संज्ञा दी है जिसमें जाति, धर्म, लिंग भेद आदि का कोई स्थान नहीं है।

डॉ. गोविन्द चातक का कहना है कि "लोक का अध्ययन बुद्धि का कुतूहल नहीं है। इसे बस एक और शास्त्र कहकर नहीं टाला जा सकता। लोक सम्पर्क के बिना सब शास्त्र अधूरे हैं। लोक अमृत निष्पंद है जिसे शास्त्रों में नहीं खोजा जा सकता। वह कितना ही पंडिताऊ हो निष्प्राण रहता है।"[8] चातक जी ने सभी शास्त्रों का उद्‌गम लोक को माना है। रामनारायण उपाध्याय ने लोक शब्द की व्यापकता को इन शब्दों के द्वारा उद्‌घाटित किया है, "लोक क्या है? यह जो गाँवों और नगरों में, खेतों और कारखानों में, गिरि-कंदराओं और मैदानों में, नदियों के मुहानों से लेकर पर्वत शिखरों तक मधुमक्खी के छत्ते की तरह असंख्य जनता फैली है।"[9]

डॉ. सत्येन्द्र मानते हैं कि "लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना तथा अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है।"[10] इन्होंने अभिजात्य, शिक्षित, अहंकारी और विद्वान को लोक की श्रेणी में नहीं रखा। डॉ. श्रीराम शर्मा के विचार भी कुछ-कुछ ऐसे ही हैं "लोक उस विशेष समुदाय का वाचक है जो साज-सज्जा, सभ्यता, शिक्षा तथा परिष्कार आदि से दूर आदिम मनोवृत्तियों के अवशेषों से युक्त परिधि को अपने भीतर समाविष्ट करता है।"[11] डॉ. रामदरश मिश्र के विचार भी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। वे लिखते हैं "देश की गुलामी और समाज की जड़ता के विरुद्ध जो अनेक वैचारिक और भावात्मक आंदोलन उठे हैं, उनमें केवल पढ़े-लिखे लोग ही शामिल नहीं थे, अपढ़ किसान और मजदूर भी शामिल थे। शहर ही शामिल न था, गाँव भी शामिल था अर्थात् वह जन समुदाय भी शामिल था जिससे लोक बनता है।"[12]

लोक की उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि कुछ विद्वान आदिम, अनपढ़, गंवार, विकास से रहित, असभ्य, उपेक्षित मानव समूहों को

ही लोक कहते हैं तथा कुछ विद्वान सम्पूर्ण मानव समाज, जिसमें शिक्षित भी हों, अशिक्षित भी हों, सभ्य भी हों असभ्य भी हों, आदिम संस्कारित भी हों तथा नवीन विचारों के भी हों, को लोक कहते हैं। वस्तुतः लोक वह सम्पूर्ण मानव समाज है जिसके पास अपनी परंपरित सांस्कृतिक धरोहर है और जो सुख, दुख, हर्ष, स्वप्न, जिजीविषा, ललक, जिज्ञासा, ईर्ष्या, द्वेष आदि मानवीय विकारों से परिपूर्ण हैं। शिक्षित-अशिक्षित आदिम-नवीन, शिष्ट-अशिष्ट तो लोक की परिभाषा से बाहर की वस्तु है। इस सृष्टि में कोई भी दो प्राकृतिक वस्तुएँ एक जैसी नहीं मिल सकतीं, तो संभव है कि लोक में भी असमानता मिलेगी ही।

नाट्य -

नाट्य शब्द नाटक का तत्सम रूप है। इसकी उत्पत्ति 'नट' धातु से हुई जिसका अर्थ है - अभिनय। ''नाटक साहित्य की वह विधा है, जिसका परिचय रंगमंच पर होता है और रंगमंच युग विशेष की जनरुचि और तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था के आधार पर निर्मित होता है।''[13]

नाट्य के लिये रंगमंच की आवश्यकता पड़ती है। नाट्य में अभिनय करने वाले पात्रों को नट कहा जाता है। उत्तरी भारत में नट एक जाति भी है, जो विभिन्न प्रकार के जोखिम भरे कार्यों से अपनी उदर-पूर्ति करती है। रस्सी पर चलना, पचास फुट ऊपर बाँस पर चढ़कर पेट के बल लेटकर घूमना आदि करतब करती है। ''नाटक शब्द का अर्थ है नट लोगों की क्रिया। नट कहते हैं विद्या के प्रभाव से अपने या किसी वस्तु के स्वरूप के फेर कर देने वालों को व स्वयं दृष्टिरोचन के अर्थ फिरने को। नाटक में पात्रगण अपना स्वरूप परिवर्तन करके राजादिक स्वरूप धारण करते है व वेशविन्यास के पश्चात् रंगभूमि में स्वकीय कार्य साधन हेतु फिरते हैं।।[14]

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने नट लोगों की क्रिया (अभिनय) को नाटक की संज्ञा दी है। ''मानव समाज में मूलतः नाट्यकला की उत्पत्ति उसी दिन हुई जिस दिन किसी बालक ने खेल-खेल में किसी अन्य व्यक्ति की कल्पना की।''[15]

नाटक विधा वस्तुतः शिष्ट समाज की विधा है। इसका प्रादुर्भाव लोकनाट्य के बाद हुआ है।

लोकनाट्य -

लोक साहित्य में लोकनाट्य विधा एक अति महत्त्वपूर्ण विधा है। यह इस रूप में महत्त्वपूर्ण है कि इसमें अमूमन दस-बारह लोककलाकारों की एक खास मंडली लोक की रुचि, शैली और आवश्यकताओं अनुरूप लोक का मनोरंजन करती है।

लोकनाट्य लोक की दूसरी विधाओं की अपेक्षा अधिक सुनियोजित तथा अपने आप में संपूर्ण विभिन्न विधाओं का संयोजन होता है। इसमें गीत, संगीत, नृत्य, अभिनय आदि सब कुछ समाहित हो जाता है।

लोकनाट्य का इतिहास अति प्राचीन है। यह शास्त्रीय नाटक से भी पहले अपने स्वाभाविक रूप में प्रचलित था। यह भारत ही नहीं अपितु पूरे विश्व के मनोरंजन के क्षेत्र में लागू होती है। ''यह निस्संदेह रूप से मानना चाहिए कि भारतीय देशी भाषाओं के साहित्यिक नाटक प्रणयन से पूर्व कोई न कोई नाट्य-परंपरा प्रत्येक भाषा भाषी प्रांत में अवश्य रही है, जो संभवत साहित्यिक नाटक की उत्पत्ति का मूल कारण ना होते हुए भी जेष्ठ भगिनी के नाते उसकी परिचर्या अवश्य करती रही होगी। जननाटक और साहित्यिक नाटक का परस्पर संबंध हमारे देश में ही नहीं अन्य देशों में भी रहा है। अंग्रेजी के नाटक जब शैशवकाल में थे तो उन पर जननाटक प्रभाव रहे थे।''[16]

लोकनाट्य लोक द्वारा, लोक के लिये, लौकिक कथाओं में सृजित लोक वेशभूषा और लोकभाषा में रचित एक लोकविधा है, जिसका प्रसार सम्पूर्ण भारत में है। सम्पूर्ण भारत में लोकनाट्य अलग-अलग नामों से प्रचलित है।

लोकनाट्य का उद्‌भव लोक की अभिरुचि से हुआ है। लोक की जीवन शैली में उसके विश्वास, आस्था, मनोरंजनपूर्ण कथाएँ और श्रम इन सबकी अभिव्यक्ति लोकनाट्यों में होती है। ''लोक नाटक सामूहिक आवश्यकता और प्रेरणाओं के कारण निर्मित होने से लोक कथानकों, लोक विश्वासों और लोक तत्त्वों को समेटे चलता है और जीवन का प्रतिनिधित्व करता है।''[17] लोकनाट्य किसी भी देश की सामान्य जनता की अभिरुचि का प्रतिफलन है। यह लोक विनोदनार्थ है।

''किसी भी देश की सामान्य जनता अपने वातावरण तथा रुचि के अनुकूल विनोद का साधन स्वभावतः निकाल ही लेती है। इन साधनों में नाटक का स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। जिस प्रकार पठित समाज में 'काव्येषु नाटकम्' का। पठित समाज के सदृश अपठित तथा अर्द्ध-पठित समाज में भी प्रतिभाशाली व्यक्ति होते रहते हैं जो अपने समुदाय के अनुरूप जनकाव्य और जननाटक का सृजन करते रहते हैं। उनकी रचना द्वारा लक्ष-लक्ष ग्रामीण जनता दृश्य तथा श्रव्य काव्य का रसास्वादन करती है।''[18] जगदीश चंद्र माथुर ने भी लोकनाट्य को नाटक के समानांतर लोक के मनोरंजन की एक विधा माना है। संस्कृत नाटक मात्र कुछ पढ़े-लिखे लोगों के लिये अस्तित्व में आया था, परन्तु लोकनाट्य का दर्शक तो वृहद् लोक है। ''यद्यपि

भारतवर्ष में नाट्य का यह विविध रूप सिद्धांततः मान्य रहा तथापि संस्कृत नाटकों की परंपरा प्रायः उच्च वर्ग तथा राजकुल के लोगों का मनोरंजन करने में विशेष बलवती रही।''[19] डॉ. श्याम परमार ने लोकनाट्य को लोकधर्मी नाट्य कहा है तथा इसके पीछे उनका उद्देश्य यही है कि लोकनाट्य लोक का प्रतिनिधित्व करता है। लोकनाट्य की संरचना में लोक के तत्त्व निहित होते हैं तथा लोकनाट्य लोक के अधिक निकट होता है। ''लोकनाटकों की विशेषता उसके लोकधर्मी स्वरूप में निहित है। लोकजीवन से उसका अंग अंगी का नाता है। बाह्याडंबरों और नागरिक सुसंस्कृत चेष्टाओं के बिना लोक के मनोभावों और प्रतिक्रियाओं का स्वतंत्र विकास केवल लोकधर्मी नाट्य शैली में ही संभव है। लोकवार्ता का एक स्वतंत्र अंग होने के कारण लोकजीवन में इन नाटकों का अनोखा आकर्षण है।''[20]

लोकनाट्य का मंच किसी औपचारिकता के बिना सीधे सरल रूप में तैयार कर लिया जाता है।

विश्वभर में लोकनाट्य की एक जैसी विशेषता रही है। लोकनाट्य शिष्ट समाज द्वारा उपेक्षा का भी शिकार होता रहा है। उसके अलग कारण हैं। लोकनाट्य की कथा, गीत या संगीत सब कुछ स्वाभाविक होता है। लम्बे समय तक यह साहित्य में मुख्य धारा से भी अलग रखा गया। कंवल नयन कपूर का कथन दर्शनीय है, ''सुसंस्कृत, साहित्यिक मंच के नितांत विपरीत आंचलिक आवश्यकताओं के अनुरूप ये नाट्यशैलियाँ कथ्य प्रस्तुति और रंगशैली में उतनी ही सीधी-सादी होती हैं, जितना सीधा-सादा इनका ठेठ ग्रामीण दर्शक-श्रोता होता है। अपनी इसी सादगी के कारण उत्तर भारतीय क्षेत्र में प्रचलित लोकनाट्य विधा सांग (स्वाँग) को शिष्ट साहित्य की सीमा से बाहर रखा गया है। ऐसा सिर्फ हमारे यहाँ ही नहीं हुआ है, अपितु विश्व की सभी प्राचीन लोककथाओं को इस तरह की उपेक्षा सहन करनी पड़ी है।''[21]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर स्पष्टतः कहा जा सकता है कि लोकनाट्य सृजन की आदिम अवस्था का वर्तमान में प्रातिनिधिक रूप है। यह पूरी तरह लोक की संस्कृति, आचार-विचार और जीवन शैली को प्रतिबिंबित करता है। लोक में प्रचलित कथाएँ इसकी कथावस्तु बन जाती हैं और इसके कलाकार लोक की नब्ज के पारखी होते हैं। लोकनाट्य गीत, संगीत एवं नृत्य की त्रिवेणी बहाता हुआ अल्पाधिक बदलाव के साथ सदियों से भारतीय लोक में प्रतिष्ठित है। एक मंजा हुआ लोकनाट्यकार अपने दर्शकों को सामाजिक पारिवारिक मर्यादा की शिक्षा देता हुआ

समाज को सुन्दर बनाने में सहायक होता है। अधिकतर लोकनाट्य लोककथाओं पर आधारित होते हैं।

जब लोक अपने मनोरंजनार्थ दर्शकों से चारों ओर से घिरे खुले मंच पर न्यूनतम उपलब्ध संसाधनों की बिना पर गीत, संगीत, नृत्य आदि के तालमेल से किसी कथा का मंचन करता है तो वह लोकनाट्य कहलाता है।

लोकनाट्य : सांग -

कौरवी क्षेत्र में लोकनाट्य को सांग ही कहा जाता है। सांग लोकनाट्य का लोक प्रचलित नाम है। ''लोकनाट्य जिसमें नाच, संगीत और कवित्व की धारा प्रवाहित होती है (नकल, भगत, नौंटकी, तमाशा, माच, भवाई, भांड पथेर, जात्रा, विदेशिया, भंडौती, छाऊ, नृत्य, कीर्तनिया, यक्षगान आदि सांग के अन्य पर्यायवाची शब्द भारत के विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित है)।''[22]

संभवतः सांग के प्रेमी लोकनाट्य शब्द से भी अनजान है। सांग के परिचितों के लिये जितना विचित्र लोकनाट्य शब्द हो सकता है उतना ही 'स्वाँग' भी। विद्वानों ने सांग को स्वांग का तद्भव रूप माना है। परंतु कौरवी क्षेत्र में सांग शब्द ही अधिक प्रचलित शब्द है। सांग (स+अंग) का अर्थ - अंग सहित। अर्थात् आंगिक भाव-भंगिमाओं सहित किसी कथा को प्रदर्शित करना। दूसरे शब्दों में - अभिनय द्वारा गीत, संगीत, नृत्य और रागनियों के माध्यम से किसी कथा का मंचन करना 'सांग' कहलाता है।[23] सांग शब्द प्रसंगानुकूल कई अर्थों में प्रयुक्त होता है। जैसे 'सांग भरना' व 'सांग करना' और 'सांग रचना' आदि।

''सांग भरना' अर्थात् वेश धारण करना - ऐसा वेश धारण करना जिससे दूसरे का ध्यान अपनी और तुरंत आकृष्ट किया जा सके। कुछ ऐसा अनोखा अद्भुत और विचित्र वेश धारण करना या व्यवहार करना जो हमारे व्यक्तित्व को छुपाकर हमें राम, रावण आदि के रूप में बदल दे, साथ ही हमारे द्वारा राम या रावण की धीरता, वीरता आदि का कुछ आभास भी दर्शकों को दे सके। यह तो हुआ 'सांग भरना'। यदि इसी के साथ कुछ आकर्षक कथोपकथन का सम्मिश्रण करके किसी उपदेशप्रद कथानक को दर्शकों के सामने मूर्त्त रूप में उपस्थित कर दिया जाए तो वह 'सांग करना' कहलाता है। अभिनय और कथानक के इसी लिपिबद्ध रूप को कहते हैं - सांग''[24] 'सांग रचना' भी किसी विशिष्ट अर्थ में बनावटी व्यवहार के लिए प्रयुक्त होता है। 'सांग रचना' प्रशंसात्मक और नकारात्मक दोनों रूपों में प्रयोग होता है।

सांग में एक विशिष्ट वेश धारण कर किसी पात्र का अभिनय किया जाता है। सांग भारत के अन्य लोकनाट्यों के समान ही कौरवी क्षेत्र की लोकविधा है। क्योंकि

इसमें संगीत भी होता है इसलिये सांग को 'सांगीत' भी कहा जाता है। ''सांग नकल, नाच, तमाशा, नौटंकी का पूर्व रूप या पर्याय है। यह स्वाँग का तद्भव रूप है। इसका अर्थ है भेष भरना, रूप भरना या 'नकल' करना। हरियाणा में 'सांग भरना' एक मुहावरा भी है, जिसका अर्थ होता है रूप भरना या रूप बनाना। वास्तव में 'स्वांग' वह रूप बनाना कहलाता है जब प्रयत्न करने पर भी रूप यथातथ्य आरोप न हो सके और पात्र में विकृति आ जाए। सांग का जो रूप हमारे सामने दृष्टिगोचर है वह हूबहू स्वांग जैसा ही लगता है। इसलिए सांगीत शब्द भी व्यवहृत होता है।''[25]

सांग में लड़की का अभिनय भी लड़के ही करते हैं। सत्या गुप्त लिखती हैं, ''खड़ी बोली लोकजीवन में 'स्वाँग' जिसे सांग भी कहते हैं, जनता को बहुत प्रिय है। एक तरह से इसे 'ओपन एयर थिएटर' कहा जाना चाहिए। 'स्वाँग भरना' विचित्र वेशभूषा पहनकर नकल करना या अभिनय करना कहलाता है। 'स्वाँग भरना' हिंदी का मुहावरा भी है। लड़के ही लड़की का अभिनय करते व नाचते हैं।''[26]

कहा जा सकता है कि सांग कौरवी क्षेत्र की एक बहुत ही लोकप्रिय विधा रही है।

सांग का उद्भव और विकास -

पहले कहा जा चुका है कि लोकविधाओं का उद्भव मानव की उत्पत्ति के समय से ही प्रारंभ हो गया था। मनोरंजन मानव के लिए खान-पान, ओढ़ने-पहनने के समान ही आवश्यक है। इससे जहाँ एक ओर उसका श्रम से बचे हुए समय का सदुपयोग होता है, वहीं दूसरी ओर उसकी सृजना-शक्ति भी पुष्ट होती है और वह परस्पर प्रतिभा से चमत्कृत भी होता है।

रामचंद्र शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में 'साँग' शब्द प्रकरण 2 में 'अपभ्रंश काव्य' के अंतर्गत आया है। चौरासी सिद्धों में कण्हपा, जिनका समय संवत् 900 के बाद का है, के काव्य में डोमिनी का आह्वान है -

नगर बाहिरे डोंबी, तोहरि कुड़िया छई।
छोई जाइ सो बाह्य नाड़िया।।
आलो डोंबि! तोय सम करिब म साँग। निघिण कण्ह कपाली जोइ लाग।।
एह सो पदमा चौषट्टि पाखुड़ी। तहि चढ़ि नाचअ डोंबी बापुड़ी।।
हालो डोंबी! तो पुछमि सदभावे। अइससि जसि डोंबी काहरि नावे।।[27]

'अपभ्रंश काव्य' शीर्षक में ''वज्रयानियों की योग-तंत्र-साधनाओं में मद्य और स्त्रियों का विशेषतः डोमिनी, रज्जकी आदि का - अबाध सेवन एक आवश्यक अंग था।''[28]

उपर्युक्त काव्यांश में साँग एक नकारात्मक शब्द के रूप में आया है। परंतु ध्यान देने वाली बात यह भी है इन पंक्तियों से ध्वनित होता है कि डोमिनी का काम 'साँग' करना रहा है। कौरवी क्षेत्र में एक डोम जाति जिसे 'डूम' भी कहा जाता है, सांग की दृष्टि से एक अति महत्त्वपूर्ण जाति है। इस जाति का एक नाम मिरासी भी है। ''डोम जाति का व्यवसाय ही सांग करना है। इसी प्रकार भांड जाति का व्यवसाय काश्मीर आदि प्रदेशों में उसी प्रकार नाटक करना है, जिस प्रकार उत्तर भारत में रूप भरना नट का व्यवसाय है। जननाटक का यह भांड ही 'भाण' रूप में आया है।''[29] इस जाति में गायन की कला वंशानुगत मिलती है। आगे के अध्यायों में यह और स्पष्ट होगा।

मध्यकाल में कबीर आदि के समय भी सांग का प्रचलन था। और उस समय यह विधा अत्यधिक लोकप्रिय थी और लोक के अधिक निकट थी। लोक को इसमें आनंद आता था। कबीर जिन लोगों को संबोधित कर रहे थे, वे वही लोग थे जो सांग में रुचि लेते थे। लोग नीरस कथाओं में न जाकर सांग देखना पसंद किया करते थे। कबीर का एक कथन दर्शनीय है -

कथा होय तहँ स्रोता सोवैं, वक्ता मूंड पचाया रे।
होय जहाँ कहीं सांग तमाशा, तनिक न नींद सताया रे।।[30]

जहाँ कथा होती है, वहाँ सुनने वाले सो जाते हैं और वक्ता बोल-बोल कर पच जाता है। परंतु जहाँ स्वाँग और तमाशा होता है, वहाँ तनिक भी नींद नहीं आती। साफ मतलब है कि मध्यकाल में स्वाँग और तमाशा लोक में बेहद लोकप्रिय थे। संतों पर स्वाँग का और स्वाँग का संतों पर विशेष प्रभाव था। यदि संतों और सांगियों के संबोधनों पर दृष्टिपात करें तो यह बात और स्पष्ट हो जाती है। कबीर का 'कह कबीर सुनो भई साधो!', 'साधौ! देखो जग बौराना' आदि संबोधन ओर सांगियों का 'हे सज्जनो!' या 'प्रेमी सज्जनो!' से वार्ता की शुरूआत किया जाना कहीं-कहीं तालमेल बिठाते नज़र आते हैं। कहना न होगा कि संतों और सांगियों का श्रोता या अभिप्रेत एक ही था। सांगियों का कुछ अंश संतों में महसूस किया जा सकता है।

कबीर के बाद मलिक मुहम्मद जायसी ने भी 'पद्मावत' में एक स्थान पर 'स्वाँग' शब्द का प्रयोग किया है। यहाँ 'स्वाँग' शब्द रूप बदलने या नकल करने के रूप में आया है। 'बादशाह-दूती खंड' में अलाउद्दीन ने एक स्वाँग भरने वाली वेश्या को आमंत्रित कर कहा -

पातुरि एक हुति जोगि स्वाँगी। साह अखीर हुत ओहि माँगी।
जोगिन भेस वियोगिन कीन्हा। सींगी सबद मूल तत लीन्हा।

पदमिनी पहँ पठई करि जोगिनी। बेगि आनु करि विरह वियोगिनी।[31]

उपर्युक्त पंक्तियों में 'स्वाँग' शब्द सांग शब्द की प्राचीनता के साथ-साथ यह भी दिखाता है कि उस समय समाज में नकल करने वाले या रूप बदलने वाले भी जरूर रहे होंगे।

मध्यकाल में ही लोकनाट्य का एक रूप 'भगतबाज़' का भी रहा है। ये 'भगतबाज' ईश्वर से जुड़ी कथाओं को लोकनाट्य के रूप में गाकर सुनाते थे। डॉ. सोमनाथ गुप्त ने उनका वर्णन किया है। वे लिखते हैं, ''यह भी सूचना स्पष्ट रूप से मिलती ही है कि 'भगतबाज़' अपनी कला को एक स्थान से दूसरे स्थान पर दिखाते फिरते थे। यह रूप भी वर्तमान चलती-फिरती नाटक अथवा स्वाँग मंडलियों जैसा ही रहा होगा।''[32]

यह सूचना डॉ. सोमनाथ गुप्त को औरंगजेब के समकालीन मौलाना ग़नीमत की मसनवी 'नैरंगे-इश्क' में मिलती है। इस मसनवी की रचना 1685 ई. में हुई थी। मौलाना ने इन 'भगतबाज़ों' के समाज में प्रभाव का उल्लेख किया है। मौलाना ग़नीमत की लिखत है -

बशहरे मशब रसीदा तुरफ़े जाम आ,
शरर परवाना हा बर गरदे शम आ।
मुक़ल्ला पेशये वा तर्ज़ो अन्दाज,
मुशाविद सीरताँ बा नग्मो-साज।
ब इल्म रक्स ओ तक़लीद ओस्तादाँ,
मुराद ख़ातिर इशरते न जादाँ।
हमः खुश बहेजगाँ नग्मा परदाज़,
बहरफ़ इस्तलाहेमा 'भगतबाज'।
बफ़न्ने ख़विश्तन उस्ताद हर यक,
गहे मर्दो गहे ज़न गहे तिफ़लक।
गहे सन्नासियाने यूँ परीशाँ
गहे इस्लामियाँने ग्रहले ईयाँ।
गहे दर गुरवतो गाहे वशंगी,
गहे कश्मीरी वो गाहे फिरंगी।
गहे हिन्दू ज़नान ख़तना हमदोश,

मुसलमाँ ज़ाद हा रा ग़ारते होश।
हे दहकाँ ज़न व गहे पीर दहकाँ,
गहे गिब्र पृत्तरिश ना मुसलमाँ।
क़ज़्लवाशना गहे अमरो ख़रीदार,
गुलामी गहे चू तूती चरब गुफ्तार।
गहे रंगे-ज़ने नौ ज़ाहद बर ओ,
बदस्ते दाया गरियाँ ज़ादये मो।
गहे दीवाना व गहे परी बूद,
कलामशरा शुनीदन बावरी बूद।
जहर क़ौमी कि ख्वाही जलया साज़िन्द,
बहर रंगे कि ख्वाही इश्वा वाजिन्द।[33]

(आज शहर में अजब क़िस्म के लोग आए हैं जो एक तरज़ो अन्दाज़ (विशेष ढंग से) के साथ नक़लें करते हैं और नग़मोसाज (संगीत) के साथ शोबदे (आश्चर्यजनक खेल) दिखाते हैं। नाच और नक़ल में ये उस्ताद हैं, खुश-आवाज़ (मीठे स्वर वाले) हैं। हमारी इस्तलाह (भाषा) में इनको 'भगत-बाज' कहते हैं। कभी मर्द, कभी औरत और कभी बच्चे की नक़ल करते हैं, कभी परेशान बाल-संन्यासी बन जाते हैं, कभी मुसलमान, कभी कश्मीरी का भेस बनाते हैं और कभी फिरंगी (अंगरेज) बन जाते हैं। कभी दहक़ानी (फूहड़) औरत और मर्द की नक़ल करते हैं। कभी दाढ़ी मुँड़ाकर गिब्र की सूरत में नज़र आते हैं। कभी मुगलों की शक़ल बना लेते हैं, कभी गुलाम बन जाते हैं। कभी जच्चा का हुलिया बना लेते हैं जिसका बच्चा दाया की गोद में रोता होता है। कभी देव बन जाते हैं कभी परी। ग़रज़ हर कौम का ज़लवा दिखाते हैं और हर तरह के इश्वा ज़माने से काम लेते हैं।)

मौलाना ग़नीमत ने इन नाट्य-मंडलियों के कर्तब से रीझ कर उन पर यह टिप्पणी की है जो उस समय की सबसे प्रामाणिक टिप्पणी मानी जा सकती है। आगे चलकर एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण सांगी बाजे भगत भी हुए जिनके सांगों में धार्मिकता के पुट को देखते हुए समाज ने उन्हें 'भगत' की उपाधि दे दी थी। यानि लोकनाट्यकारों को 'भगत' कहने का संस्कार बचा हुआ था। और बाद में भी धार्मिक रागनियों और समाज सुधार की लोकगीतों का 'भजन' कहने का ही प्रचलन चलता रहा। बहुत बाद महाशय दयाचंद मायना का लोकनाट्य 'नेताजी सुभाष' जब प्रकाशित हुआ तो उसमें सभी रागनियों के ऊपर 'भजन' ही लिखा हुआ था।

मध्यकाल में ही ये लोकनाट्य विधाएँ संपूर्ण भारत में विभिन्न नामों से प्रचलित हो रही थीं। भाषा, भौगोलिक स्थिति और लोकरुचि के कारण इनमें थोड़े-बहुत परिवर्तन अवश्य थे। यथा अलग-अलग नाम थे। परंतु प्रस्तुतीकरण, मंच और लोक से संबद्धता आदि में वे लगभग समान थे। महेन्द्र भानावत जी स्वाँग व अन्य प्रचलित लोकनाट्यों के विषय में कहते हैं कि स्वाँग ही भारत के अनेक भागों में विभिन्न नामों से प्रचलित हुआ। असल में भारत के तमाम लोकनाट्यों के विषय में स्वाँग एक सर्वग्राह्य नाम है। क्योंकि यह नाम अपने अर्थ और व्युत्पत्ति के मामले में सटीक बैठता है। ''स्वाँग का एक नाट्य रूप उत्तर मध्यकाल में उत्तर तथा मध्य भारत में ख्याल के नाम से भी विकसित हुआ और उसी ने पंजाब में 'ख्याल', राजस्थान में 'तुर्रा कलगी', मालवे में 'नाच' और ब्रज क्षेत्र में 'भगत' और हरियाणा और मेरठ में 'सांग' नाम से प्रसिद्धि प्राप्त थी।''[34]

सांग की प्राचीनता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि डॉ. दशरथ ओझा जैसे विद्वान इसकी उत्पत्ति नाटक से पहले मानते हैं, ''हिन्दी भाषा में स्वाँग से प्राचीनतर नाटक नहीं हैं। हिंदी नाटक की उत्पत्ति और विकास का विवरण स्वांग परंपरा के अनुसंधान के बिना अपूर्ण ही माना जाएगा।''[35] ऐसा नहीं था कि सांग की प्रतिस्पर्धा किसी अन्य विधाओं से नहीं थी। सांग के साथ-साथ कौरवी क्षेत्र में मनोरंजन की और भी विधाएँ मौजूद थीं। वेश्याओं के मुजरे और नक्कालों का भी पर्याप्त समय तक समाज में हस्तक्षेप रहा। बड़े घरानों के लोग विभिन्न उत्सवों पर वेश्याओं को बुलाकर मुजरा करवाया करते थे। नक्काल भी 'नकल' कर मनोरंजन किया करते थे। नक्कालों को भी विवाह आदि अवसरों में बुलाया जाता था। ये नक्काल बड़े हाजिर जवाब होते थे तथा अपने मेजबान की नकल उतारने में भी नहीं हिचकिचाते थे। ''स्वाँग का टकराव उत्पत्ति काल में ही उन वेश्याओं और नक्कालों से था, जिन्हें कभी सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हुई। उन्हीं के साथ टकराव के कारण स्वाँग समाज में भी अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा आरंभ में ही खो बैठे।''[36] परंतु जैसे-जैसे सांगों का प्रचलन बढ़ता गया और उसकी विषय-वस्तु में सामाजिक-पारिवारिक बातें आती चली गईं, वैसे-वैसे वेश्याओं के मुजरे और नक्कालों का काम क्षीण पड़ता चला गया। 'नक्काल' सांगों में 'नकली' या 'विदूषक' के रूप में स्थानांतरित होते चले गए। वैसे भी वेश्याओं को हर कोई नहीं बुला सकता था। वे केवल अमीरों के घरों तक सीमित थीं। सांग का फलक भी मुजरों से व्यापक था। बाद में लोग सांगियों को विवाह आदि अवसरों पर भी बुलाने लग गए थे।

कौरवी लोकनाट्य 'सांग' के अंग -

मनोरंजन और सतत् ज्ञान पिपासा लोक के व्यक्तित्व का अपरिहार्य हिस्सा रही है। सभ्यता के प्रथम चरण से वर्तमान समय तक मनोरंजन और ज्ञान में पर्याप्त अंतर आया है परन्तु इसका यह मतलब बिल्कुल भी नहीं है कि प्रारंभिक अवस्था में मनुष्य मनोरंजन से रहित था।

कौरवी क्षेत्र में लोकनाट्य के रूप में सांग एक समुचित, सुनियोजित एवं महत्त्वपूर्ण विधा रही है। यह एक सामूहिक कार्य है, जिसमें दस-बारह लोक कलाकार विभिन्न भूमिकाओं में सक्रिय रहते हैं। गायन, संगीत एवं नृत्य सांग के मुख्य अंग हैं। इसके साथ ही सांग में प्रयुक्त शब्दावली तथा उसके अंगों का परिचय निम्न प्रकार है -

बेड़ेबंद -

बेड़ेबंद सांग का मुखिया होता है। बेड़ेबंद के नाम से सांग की पहचान होती है। बाजेभगत, पं. लखमीचंद, पं. माँगेराम, धनपत सिंह निदाना, चंद्रलाल बादी, महाशय दयाचंद मायना अपने समय के मशहूर बेड़ेबंद रहे। सांग की टोली को 'बेड़ा' कहा जाता है और इस बेड़े के कर्ता-धर्ता को 'बेड़ेबंद' कहा जाता है।

सांग (लोकनाट्य) में बेड़ेबंद की भूमिका सबसे अहम् होती हैं। वही सांग में मुख्य पात्र की भूमिका निभाता है। बेड़ेबंद मुख्यतः पुरुष की भूमिका का ही अभिनय करता है।

बेड़ेबंद सांग की शुरूआत में मंगलाचरण में अपने ईश्वर की आराधना करता है तथा साथ ही साथ अपने गुरु का स्मरण भी करता है। सांग की सफलता तथा तमाम वाद्ययंत्रों को शुरूर में लाने के लिए मंगलाचरण सबसे जरूरी है।

सांग की टोली एक-एक कर आकर खुले मंच पर बैठना शुरू कर देती है। सबसे पहले सजिंदे आना शुरू करते हैं तथा वे अपने-अपने वाद्ययंत्रों को दुरुस्त करने लगते हैं। फिर धीरे-धीरे जनाने व अन्य पात्र आते हैं। मंच पर अंत में किसी एक सदस्य के पीछे-पीछे चलता हुआ बेड़ेबंद आता है। दर्शकों और श्रोताओं के मन में बेड़ेबंद के प्रति खास श्रद्धा झलकती है। उसके गले में सीटी होती है, जिससे वे सांग को बीच-बीच में नियंत्रित एवं संचालित करते हैं तथा ऊँची आवाज़ में सीटी बजाकर दर्शकों का ध्यान भी सांग की कथा में एकाग्र करते हैं। उसकी आवाज़ धीरे-धीरे गंभीर होती है तथा सांग-मंडली के सभी सदस्य उसके अनुदेशों का पालन करते हैं।

बेड़ेबंद आमतौर पर सफेद धोती तथा कुर्ता पहनता है। वह ठेठ लोक की वेशभूषा में होता है। सर पर पगड़ी होती है। मौसम के अनुसार वह एक जैकेट भी पहनता है, जिस पर अनेक पदक टंगे हुए होते हैं। ये पदक अक्सर चाँदी के होते हैं। ये पदक उन्हें गाँवों के लोगों द्वारा इनाम स्वरूप दिये हुए होते हैं। कई सांगी तो रिवॉल्वर भी गले में टाँग लिया करते थे। इन पदकों और रिवॉल्वर से सांगी का रौब स्वतः जम जाता था। बेड़ेबंद को 'सांगी' भी कहा जाता है। सांगी सामान्यतः साफा, तुर्रेदार कुल्ले का साफा, कुर्ती अचकन धोती आदि पहनते थे। जिनका सीना तमगों आदि से सजा रहता था।[37]

बेड़ेबंद सांग में सूत्रधार की भूमिका में होता है। वह सांग में दर्शकों को कथा से परिचित कराता है तथा बीच-बीच में उपस्थित होकर 'वार्ता' के माध्यम से रागनियों के बीच में आए प्रसंगों को जोड़ता है। आमतौर पर वह अपनी बात 'सज्जनो! या प्रेमी सज्जनो या प्यारे सज्जनो!' कहकर शुरू करता है। बेड़ेबंद बहुत ही व्यवहार-कुशल तथा जनता की नब्ज़ का पारखी होता है। वह माहौल देखकर तदनुरूप निर्णय लेता है। सांग की समाप्ति की घोषणा भी वह 'बोलो नगर खेड़े की जय!' बोलकर करता है।

बड़ा रकाना -

लोकनाट्य में एक मुख्य पात्र होता है, जो मुख्य कथा से संबद्ध होता है। उसका अभिनय आमतौर पर बेड़ेबंद या बेड़े का मुखिया करता है। मुख्य पात्र की पत्नी की भूमिका भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण होती है। इसलिए बेड़े में सबसे सुंदर स्त्री के नयन-नक्श वाले पुरुष को मुख्य जनाने का अभिनय करने के लिए चुना जाता है। यह पात्र स्त्री वेश में स्त्रियोचित भाव भंगिमाओं में पारंगत होता है। यदि लोकनाट्य की कथा राजा-रानी से संबंधित है तो यह आभूषण युक्त वेशभूषा पहनता है। यह मुख्य नायिका की भूमिका निभाता है। कौरवी लोकनाट्य में मुख्य नायिका की भूमिका निभाने वाले पुरुष अभिनेता को ही 'बड़ा रकाना' कहा जाता है। पारिश्रमिक के मामले में भी बड़ा रकाना को बेड़बंद के बाद दूसरे स्थान पर रखा जाता है।

विदूषक -

लोकनाट्य (सांग) गीत-संगीत, नृत्य, अभिनय, कहानी, प्रयत्न और उद्बोधन का एक मिला-जुला प्रयास है।

विदूषक लोकनाट्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग होता है। इसे नकली, नकलची,

हँसोड़ आदि नामों से भी पुकारा जाता है। नकल उतारने के कारण शायद इसका नाम 'नकली' या 'नकलची' पड़ा होगा। इसे 'मखौलिया' भी कहा जाता है। इसका मुख्य काम लोगों को हँसाना ही होता है।

लोकनाट्य का मुख्य काम लोक का मनोरंजन ही होता है। इस दृष्टि से विदूषक की भूमिका सांग के मुख्य पात्र, दूसरी भूमिका मुख्य पात्र की पत्नी की जिसे 'बड़ा रकाना' भी कहते हैं। उसके तुरंत बाद विदूषक की भूमिका होती है।

विदूषक लोकनाट्य में मंजा हुआ कलाकार होता है। वह हाजिर जवाब होता है। लोकनाट्य के मंचन में चल रही कथा में वह चुपके से आन खड़ा होता है। कोई ऐसा शब्द, वाक्यांश या गुद्गुदाने वाली बात कह देता है कि दर्शक हँस-हँस कर लोट-पोट हो जाता है। वह खुद नहीं हँसता। वह खुद धीर-गंभीर रहता है।

मंचित हो रहे लोकनाट्य में कथा का प्रसंग कई बार इतना गंभीर चल रहा होता है कि दर्शक सांगी के साथ भावनात्मक रूप से बह रहे होते हैं। यथा - 'पिंगला-भरथरी' सांग में भरथरी पिंगला के कहने से विक्रम को जल्लादों के हाथों सौंप रहा है या 'नल दमयन्ती' सांग में तीतर नल की धोती लेकर उड़ जाते हैं या 'सत्यवादी हरिश्चन्द्र' सांग के अंत में हरिश्चन्द्र मदनावत की गर्दन काटने के लिए तलवार लहराता है तो ऐसे अवसरों पर दर्शक करुण रस में गोते लगा रहे होते हैं। तो विदूषक अचानक आ धमकता है और अपनी चुहल वाणी से दर्शकों को उस करुण रस के सागर से उबार लाता है। उसके पास अन्य पात्रों से हटकर प्रतिभा होती है। उसके लिए सांग में बाकायदा अवसर सुनियोजित किये जाते हैं।

विदूषक सांग की जान होता है। वह विशुद्ध रूप से लोगों का मनोरंजन करने के लिए होता है। वह लोकनाट्य में अनेक छोटे-बड़े पात्रों का अभिनय भी कर लेता है जैसे कभी पुलिस बन जाना या कभी जल्लाद की भूमिका निभा देना या कभी गुप्तचर की भूमिका निभा देना। किसी सांग की सफलता में उसका भी योगदान महत्त्वपूर्ण होता है।

अक्सर लोकनाट्य के कार्यक्रम गाँव में कई-कई दिन तक हुआ करते हैं। एक लोकनाट्यकार पाँच-दस या अधिक दिनों तक सांग का मंचन करते हैं। उदाहरणार्थ गऊशाला या स्कूल के कमरों का निर्माण करने के लिए कई-कई दिनों तक सांगों का आयोजन किया जाता है। विदूषक पहले या दूसरे दिन से ही अपने हाव-भावों से उस क्षेत्र विशेष में इतना लोकप्रिय हो जाता है कि लोग उसकी उपस्थिति से ही रोमांचित होने लगते हैं। जैसे ही वह कोई संवाद बोलने के लिए खड़ा होता है तो

उसके बोलने से पहले ही लोगों का 'हास' स्थायी भाव 'हास्य रस' में बदलने लगता है। उसका चेहरा-मोहरा लोगों के मन-मस्तिष्क पर छा जाता है। अक्सर सांग की समाप्ति पर दर्शकों में चर्चा का विषय 'नकली' ही रहता है। लोग मुक्त कंठ से कहते हैं 'नकली-नकली-ए-है।'[38]

कई बार तो कोई कोई विदूषक सांगों में इतना लोकप्रिय हो जाता है कि लोग उसी को देखने-सुनने के लिए सांग देखने आते हैं। गाँव में अक्सर सांग कई दिन तक होते हैं। विदूषक पहले और दूसरे दिन ही अपनी प्रतिभा से लोगों का मन मोह लेता है। सांग के मंचन के दौरान लोगों की उत्सुकता बनी रहती है कि कब विदूषक उठे और उन्हें गुदगुदाए। विदूषक कई बार द्विअर्थक शब्दों के माध्यम से भी दर्शकों का मनोरंजन करते हैं। कई बार वह मर्यादा की सीमा को भी लांघ जाता है। उस समय उसका लक्ष्य दर्शकों का उस प्रकार का एक वर्ग-विशेष रहता है।

साज -

सांग में बजाये जाने वाले वाद्ययंत्रों को साज कहते हैं और उनको बजाने वाले कलाकारों को साजिंदे कहा जाता है। साज का सांग में विशेष सम्मान होता है। उसी अनुरूप साजिंदों को भी विशेष आदर दिया जाता है। साजिंदों को आमतौर पर 'उस्ताद' कहा जाता है। उस्ताद का एक अर्थ 'गुरु या शिक्षक' भी होता है। यानि वाद्ययंत्र वादक का स्थान सांग में गुरु जितना ही महत्त्वपूर्ण होता है। साज का लोकगायकी में अभिन्न महत्त्व होता है। सांग में साज रागनी के समय में तो अनिवार्य रूप से बजता ही है। वार्ता में भी ढोलक की थाप आदि का विशेष महत्त्व होता है। ढोलक, हारमोनियम, नगारा, कलारनेट, सारंगी वर्तमान समय में सांग के पक्के साज के अंतर्गत आते हैं। सांग की शुरूआती दौर में झाँझ, मंजीरे, करताल, अजगोले, बाँसुरी आदि का उपयोग भी सांग में होता था।[39]

साज व साजिंदों का काम सांग शुरू होने से पहले और सांग समाप्त हो जाने तक अनवरत चलता रहता है।

वेशभूषा -

सांग में पात्रों की वेशभूषा बेशक सामान्य होती है और लोक के अधिक निकट होती है। जैसे-जैसे समाज में पहनावा बदलता है। उसी अनुरूप सांगियों की वेशभूषा बदलती जाती है। सांग में बेड़ेबंद (मुखिया) की वेशभूषा अन्य पात्रों की अपेक्षा अधिक प्रभावी होती है। वर्तमान समय में बेड़ेबंद लम्बा कुर्ता तथा धोती पहनता है।

सर पर तुर्रेदार साफा (पगड़ी) बाँधता है। उसके हाथ में घड़ी भी उसकी भूमिका को और अधिक गंभीरता प्रदान करती है। उसके गले में एक सीटी सांग को नियंत्रित करने में तथा लोगों का ध्यान आकर्षित करने में विशेष भूमिका निभाती है। बेड़ेबंद की जैकट में अनेक तगमें लगे होते हैं। अधिकतर बेड़ेबंदों की उंगलियाँ अक्सर अंगूठियों से भरी रहती हैं। सांग के शुभारंभ के समय बेड़ेबंद के सर पर पगड़ी होती है। मंगलाचरण आदि या देवी-स्तुति के बाद वह पगड़ी को उतारकर भी रख लेता है तथा पात्र में रम जाता है। स्वांगादि के पात्रों की वेशभूषा कभी-कभी बहुत कीमती हुआ करती थी। पुरुष चुड़ीदार पाजामा, अचकन और रागनी के समय पहने जाने वाले कमखाब के जोड़े पहनते थे। यह राजसी पोशाक का काम करती थी। पोशाक पत्रीघरों के घरों से किराये पर भी मिलती थी। यह मेकअप करने में भी विशेषज्ञ होते थे।[40]

सांग के शुरूआती दिनों में जनानों के लिए घाघरा और आंगी का प्रचलन था। नकली आभूषणों के द्वारा भी जनानों को सुंदर रूप दिया जाता था। परंतु वर्तमान समय में चमक-दमक रंगों वाले सूट-सलवार का उपयोग किया जाता है। जनाना पात्र पैरों में घुंघरू भी पहनते हैं। विशेष रूप से जब देवी की स्तुति की जाती है और सांग के मंच के चारों कोनों पर जनाने नाचते हैं तो उस समय उनके पैरों में घुंघरू अवश्य होते हैं।

सांग में मुख्य पात्र की भूमिका में बेड़ेबंद होता है तथा मुख्यपात्र के साथ उसकी पत्नी या रानी की भूमिका निभाने वाले पात्र को 'बड़ा रकाना' कहते हैं। उसकी वेशभूषा भी अन्य जनानों से अलग हटकर होती है क्योंकि सांग के अधिकांश भाग में उसे मुख्य रूप से स्त्री भूमिका में रहना है।

बाकी सभी पात्रों व साजिंदों की वेशभूषा सामान्य रहती है। कभी-कभी एक ही पात्र जब दो या अधिक भूमिकाएँ करता है। तो वह दूसरी वेशभूषा भी पहन लेता है। विदूषक की वेशभूषा कभी-कभी हास्यापद होती है।

वार्ता -

लोकनाट्य संगीत, नृत्य, गायन, नाटकीयता और कथा का मिला-जुला रूप होता है। रागनी के माध्यम से किसी कथा को मंच पर अभिनय द्वारा प्रस्तुत करना सांग कहलाता है। कथा में रागनी अनिवार्य रूप से होती है। इन रागनियों के मध्य बेड़ेबंद दर्शकों और श्रोताओं को वार्ता के माध्यम से कथा से जोड़ता है। इस वार्ता के समय बेड़ेबंद सूत्रधार के रूप में होता है। वह रागनी के सूत्र वार्ता के माध्यम से जोड़ता है। वार्ता गद्य में होती है। कभी-कभी वार्ता नाट्य वार्ता का भी

रूप ले लेती है और तुकांत हो जाती है। बेड़ेबंद आमतौर पर 'सज्जनों' शब्द से संबोधित करता हुआ 'वार्ता' की शुरूआत करता है। एक गद्यमय वार्ता दर्शनीय है-

वार्ता

'सज्जनों! एक समय की बात है कि स्यालकोट में राजा गजेसिंह राज करते थे। उनके दो बेटे थे। बड़े बेटे का नाम था भूपसिंह और छोटे का फूलसिंह। बड़े बेटे भूपसिंह का विवाह भी हो गया था और राजतिलक भी। छोटा लड़का फूल सिंह अभी पढ़ ही रहा था। राजा गजेसिंह की मृत्यु हो गई थी। उसी नगर में कुंदन सेठ फूलसिंह का दोस्त भी हीरे मोतियों का व्यापार करता था। फूलसिंह शादी के योग्य जवान हो गया था। कुंदन सेठ की सेठानी ने उसे शादी करने की सलाह दी तो वह इनकार करता रहा। एक बार दोनों मित्र जंगल में शिकार खेलने के लिए गये हुए थे तो मौका पाकर सेठानी फूलसिंह की भाभी के पास गई और उसे कहने लगी कि भगवान की दया से तुम्हारे सब बातों की मौज है। फूलसिंह की शादी और हो जाए तो सब कमी पूरी हो जाए। इस बात को सेठानी किस प्रकार कहती है।[41]

लोकनाट्यकार चन्द्रलाल बाड़ी 'पद्यमय वार्ता' के लिए जाने जाते हैं। उनकी वार्ताएँ तुकांत होती थीं। उनके 'कमला-मदन' लोकनाट्य से एक वार्ता दर्शनीय है -

नाटक वार्ता

साधु : शिशन साहब मैं आपके साथ चलूंगा।
और इस मुलजिम से मरते समय मिलूंगा।।
शिशन : अच्छा चलिये साधु जी चलिये जरूर चलिये।
आपको इस पापी से मिलना है तो जरूर मिलिये।।
साधु : अच्छा लो दरबार आ गया।
मुलजिम के मरने का भी करार आ गया।।
शिशन : लगाओ फाँसी मुल्जिम के जल्दी लगाओ।
साधु : नहीं-नहीं ऐसा जुल्म इसके सर पर न ढाओ।।
शिशन : क्योंकि ये प्रेमजान के मारने वाला हैं
साधु : ये दस्तखत निगाह से देखिये।[42]

चमोला -

चमोला एक लोकछन्द है जो अक्सर सांग के प्रारंभ में सांगी कथा से परिचित कराने के लिए गाता है। इसका एक दूसरी जगह प्रयोग उस समय किया जाता है जब सांगी किसी दानी की प्रशस्ति गाता है। सांग के समय एक व्यक्ति कॉपी और पैन लेकर दर्शकों के बीच घूमता रहता है। कोई भी दर्शक सांग के किसी भी कलाकार की रागनी या नृत्य पर प्रसन्न होकर दान-स्वरूप कुछ देना चाहे तो वह उस कॉपी में लिखवा देता है। जब कई दानियों की लिखत हो जाती है तो वह व्यक्ति बेड़े में जाता है और बेड़ेबंद के पास खड़ा होकर एक-एक व्यक्ति का नाम बताता रहता है और बेड़ेबंद उसकी प्रशस्ति में चमोला सुनाता है। यह चमोला कुछ इस प्रकार से होता है।

मलिकपुर नगर सुख से बसो कथा बचो दिन रात।
(दानी के पिता का नाम) दानी वीर भगवान।
जिनके सुपुत्र सौ रुपये से पार्टी से करा सभा म्हं दान।
नगर म्हं आनंद करियो जी।

इस प्रकार दान करने वाला एक व्यक्ति होता है पर बेड़बंद सभी छत्तीस जातियों और पूरे नगर का मंगल मनाता है। हर दानी की प्रशस्ति में वह ऐसे ही करता है।

रागनी -

रागनी सांग का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। रागनी शब्द तत्सम 'रागनी' का ही लोक रूप है। नाटक या हिन्दी फिल्म में जो स्थान गद्य और पद्य का होता है, वही सांग में पद्य और गद्य का होता है। सांग में पूरी कथा पद्यात्मक (रागनीमय) होती है। और गद्य केवल वार्ता के आदि में होता है। लोकसाहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान शंकरलाल यादव लिखते हैं, ''रागनी एक लोकगीत है, जो कुछ पंक्तियों में समाप्त हो जाता है।''[43]

परन्तु रागनी की संरचना लोकगीत से भिन्न है। इसलिए कौरवी लोकसाहित्य में लोकगीत और रागनी अलग-अलग विधाएँ है। रागनी को लोकगीत कहने का प्रचलन नहीं है। श्री रामनारायण अग्रवाल ने सांग में रागनी का महत्त्व बताते हुए लिखा है, "सांगीत में रागनी शब्द उस गीत के लिए आता है, जिसकी धुन मूलतः तो मुख्यतः किसी जनपद की मिट्टी से उपजती है। परंतु बाद में गायक मंच पर

अपने कंठ की गमक से अपने शब्दों में मंचीय रूप देकर प्रस्तुत करते हैं।"[44] रागनी के स्वरूप की चर्चा करते हुए प्रो. राजेन्द्र गौतम लिखते हैं, "रागनी एक गीत रचना है। यह संदर्भ विनिर्मुक्त रूप में स्वतः पूर्ण भी हो सकती है और किसी प्रबंधाख्यान की भावपूर्ण प्रस्तुति का माध्यम भी।"[45]

संदर्भ विनिर्मुक्त रूप में यह 'फुटकर' कही जाती है। डॉ. पूर्णचंद शर्मा ने 'रागनी को सांगों का सर्वाधिक मनमोहक और लोकप्रिय छंद कहा है।''[46]

रागनी छंद की अपेक्षा ''एक काव्य रूप है। इसमें ताटंक, सार, चौपाई आदि अनेक छंदों का प्रयोग तो है पर स्वयं में या पर स्वयं में यह कोई छंद नहीं है।"[47]

रागनी टेक, कली, अंतरा, तोड़, छाप आदि से मिलकर बनती है। 'टेक' को स्थायी भी कहा जाता है। 'टेक' में एक या एकाधिक चरण होते हैं। और टेक के अंतिम चरण का मिलान कली के अंतिम चरण से होता है। रागनी में मुख्यतः चार कलियाँ होती हैं, परन्तु चार से अधिक कलियों का प्रचलन भी है। कहा जाता है कि मुशीराम मंडली ने 52 कलियों की रागनी भी बनाई थी। कली में 'अंतरे' होते हैं, जिन्हें शास्त्रीय भाषा में 'चरण' कहा जाता है। एक कली दो, तीन, चार या छह अंतरे (चरण) की भी हो जाती है। छह अंतरे वाली कली को 'छकलिया' रागनी भी कहते हैं तथा चार अंतरे वाली कली की रागनी को 'चौकलिया' रागनी कहलाती है। 'चौकलिया' रागनी का अधिक प्रचलन है। 'तोड़' कली का अंतिम अंतरा होता है जिसकी पदमैत्री 'टेक' के अंतिम चरण से की जाती है। कवि अंतिम कली में किसी भी चरण में अपना नाम जोड़ता है। जिसे 'छाप' कहा जाता है। कभी-कभी वह अंतिम कली में अपने नाम की छाप के साथ-साथ श्रद्धास्वरूप अपने गुरु का नाम भी जोड़ देता है। छाप लगाने का यह सिलसिला कवि शंकरदास से नियमित रूप से शुरू हो गया था। इसका सबसे बड़ा लाभ यह रहता है कि छाप से रागनी के रचनाकार का पता लग जाता है। कई बार अनेक लोग छाप काटकर रागनी गाते हुए भी पाए गये हैं। रागनी किसी की और छाप किसी और की। ऐसे छाप काटकर रागनी गाने वालों को लोगों को 'छापकटैया' कहा जाता है।

सांग में वर्तमान प्रचलित रागनी के लक्षण हमें शंकरदास में दिखाई देते हैं। हालांकि उसके बाद भी रागनी की संरचना में व्यापक फेरबदल हुए हैं। शंकरदास में 'चौकलिया' रागनी के सभी उपयुक्त संरचनागत तत्त्व मिलते हैं। शंकरदास से पहले सांग मुख्य रूप से चोमोला, कड़ा, दोहा, काफिया आदि में ही होते रहे। कुछ लोग रागनी का जन्मदाता पं. लखमीचंद[48] को मानते हैं जो अनुचित है।

दोचश्मी रागनी - दोचश्मी रागनी को 'युगल रागनी' या 'शामिल' या 'ऊपरातली' की रागनी भी कहा जाता है। दोचश्मी रागनी का मतलब है एक रागनी में दो या दो से अधिक पात्रों का नाटकीय अंदाज में गायन। लोकनाट्य में जब एक ही गीत (रागनी) में दो या दो से अधिक पात्र काव्यमय संवाद करते हैं। तो उसे दोचश्मी रागनी कहते हैं।

यह संवाद कई रूपों में हो सकता है, यथा टेक की दोनों चरण दो अलग-अलग पात्र गायेंगे। कई बार टेक के दोनों चरण एक पात्र द्वारा गा दिये जाते हैं। रागनी की चार कलियों में पहली व तीसरी कली एक पात्र की हो जाती है तथा दूसरी और चौथी किसी दूसरे पात्र की हो जाती है। जैसे एक दोचश्मी रागनी दर्शनीय है -

तारावती : या तेरी राणी सै पिया खत्म होया रोहतास।
हरिश्चंद्र : कर के चुकाये बिना फूंकण द्यूं ना लाश।।..टेक

1. हरिश्चंद्र : तनै घड़ा ठुवाया ना बैर समझ लिया बरणा पै।
मेरी दया करी ना कहर समझ लिया बरणा पै।
गैर समझ लिया बरणा पै तू हूर पकड़गी थी पास।।

2. तारावती : दुखियारी की अर्जी पिया मंजूर करो।
पिया पत्नी नै मतन्या दिल तै दूर करो।
मेरी गल्ती माफ कसूर करो म्हारा होग्या सत्यानास।।

3. हरिश्चंद्र : माणस का के जोर बिपत जिनै हर दे दे।
छोड़ूं नहीं मसूल जेब तै जर दे दे।
मुर्दघाट का कर दे दे, ना चाली जा बदमाश।।

4. तारावती : मेरी पेश चली ना दुख दिया अणजाणी नै।
कोण सुणै इस बेवारिश की बाणी नै।
मिले दिखाई दें राणी नै धरती और आकाश।।

5. हरिश्चंद्र : देईचन्द कदे काम करै ना खामी का।
कर छोड़ूं तै बट्टा हो बदनामी का।
जो भला ना चाह्वै स्वामी का वो दुश्मन होता दास।।[49]

रागनी में कली में अन्तरा-दर-अंतरा पात्र बदलते हैं। उदाहरणार्थ यदि किसी कली में छह अंतरे हैं, तो पहला, तीसरा, पाँचवाँ अंतरा एक पात्र गायेगा तथा दूसरा, चौथा तथा छटा अंतरा दूसरा पात्र गायेगा। उदाहरणार्थ -

हरिश्चंद्र : लाल खा लिया लाला का सुण, या के सोची डायण तनै।
तारावती : मनै किसके छोरे खाये सै, बुरी कहण की बाण तनै। .. टेक

1. हरिश्चंद्र : सारे कै रुक्का पड़रया तू डायण कसूती पक ली।
तारावती : दीन धर्म नै जाणूं सूं मेरी आंख शर्म तै झुक ली।
हरिश्चंद्र : जब तै सुणी सै डायण तेरी मेरी रंज म्हं काया फुंक ली।
तारावती : और किसे के नै क्यूं खां थी मैं अपणा खाकै छक ली।
हरिश्चंद्र : बाळक खा लिया दया ना आई या के करी कसाण तनै।
तारावती : सिर करड़ाई का चक्र चढ़र्या ईब तक नहीं पिछाण तनै।।

2. हरिश्चंद्र : हो होशियार मरण खातर इब तेरा सिर काटूं मैं।
तारावती : मेरा लाल मर्या डायण कुव्हाई किस तरिया दिल डाटूं मैं।
हरिश्चंद्र : मनै मालिक का हुक्म बजाणा क्युकर उल्टा हाटूं मैं।
तारावती : खड़ी सामनै मन की कर ले नहीं ज्यान नै नाटूं मैं।
हरिश्चंद्र : क्याहें जोगा ना छोड्या मेरी करी धर्म की हाण तनै।
तारावती : तेरै लाल मरे की गमी नहीं के इब तक कोन्या जाण तनै।।

3. हरिश्चंद्र : धर्म की हाणी हो ज्यागी जै ना मारी तलवार तेरै।
तारावती : मैं भी सत पै डटी हुई सूं मेरै ना झूठा दोष धरै।
हरिश्चंद्र : सन्दक लाश पड़ी गोड्यां म्हं किसै कै ना बात जरै।
तारावती : बिना खोट तकसीर पिया क्यूं ब्याही पै जुल्म करै।
हरिश्चंद्र : किसे बात का ख्याल कर्या ना हूर घटा दी काण तनै।
तारावती : मैं रही धर्म पै डटी फेर भी लिया तेगा ताण तनै।।

4 हरिश्चंद्र : क्युकर हो एतबार तेरा तेरै लाश पड़ी गोड्यां म्हं।
तारावती : तनै जो करना सो कर ले पिया तू क्यूं चालै ओड्यां म्हं।
हरिश्चंद्र : मनै लोग कहै थे सतवादी कितै का ना छोड्यां म्हं।
तारावती : मनैं साफ-साफ सच बात कही के फायदा पोड्यां म्हं।
हरिश्चंद्र : देईचन्द कहै जाण पटी ना कद सिक्खे बालक खाण तनै।
तारावती : तनै मेरी झूठी लागै आवै देसराज समझाण तनै।।[50]

फुटकर रागनी -

हरियाणवी लोकनाट्यकार लोकनाट्य के साथ-साथ अक्सर अनेक स्वतंत्र रागणियों की भी सर्जना करता है। ये रागणियाँ अपने आप में पूर्ण और लोकनाट्य से भिन्न होती है। कवि के पास अनेक विषय होते हैं, यथा - कन्या भ्रूण-हत्या, देश-प्रेम, दहेज, नशा, सांप्रदायिकता, पर्यावरण और जाति-वर्ण भेद की समस्या आदि। जब कवि लोकनाट्य से इतर कोई एक विषय पर किसी रागनी की रचना करता है तो वह 'फुटकर' रागनी कही जाती है। फुटकर का अर्थ है - जो किसी विशिष्ट मद या वर्ग में न हो और इसी कारण उन सबसे अलग रहकर अपना अलग वर्ग बनाता हो। जो युग्म में न हो, जिसका जोड़ या जोड़ा न हो। अयुग्म या अकेला।

'फुटकर' रागनी की यह विशेषता है कि इसमें कवि का दर्शन स्पष्ट रूप से उभरकर आ जाता है। लोकनाट्य या सांग में कवि कथा से जुड़ा होता है। इसलिए उसे कथा के मद्देनज़र ही कथा के विभिन्न विशिष्ट अंशों पर रागनी का निर्माण करना पड़ता है। इसलिए उसे अपनी स्वतन्त्र बात कहने का अवसर कम रहता है। हालाँकि व्यवहार कुशल सांगी अपने मन की बात कथा में कहने के विकल्प भी ढूँढ़ लेते हैं। परंतु फुटकर रागनियों में वह पूरी तरह से आज़ाद रहता है। फुटकर रागनी का विषय तो उसके विवेक पर ही निर्भर करता है। अनेक कवि ऐसे हुए हैं जिन्होंने लोकनाट्य लिखे ही नहीं उन्होंने फुटकर रागनियाँ ही लिखीं। वर्तमान समय में फुटकर रागनियाँ ही अधिक लिखी जा रही है।

सांग व किस्से में क्या अंतर होता है?

वैसे तो सांग व किस्से में सिद्धांततः कोई अंतर नहीं होता। एक कथा को गीत-रागनियों के माध्यम से कह देना ही सांग या किस्सा कहलाता है। दोनों में कथा, रागनी, वार्ता, संगीत, गीत, नृत्य, मंच आदि सब कुछ जरूरी होता है। सांग को किस्सा तथा किस्से को सांग भी कह दिया जाता है। परन्तु व्यवहारतः इनमें थोड़ा अंतर है।

सांग किस्से की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय विधा है। सांग में अनेक पात्र अलग-अलग अभिनय करते हैं। सांग पक्के साज-बाज पर किया जाता है। सांग का मंच आमतौर पर खुले में या किसी चौराहे पर बना लिया जाता है। चार तख्त या बुग्गियाँ जोड़कर उस पर बड़ा-सा दरा बिछाकर मंच तैयार कर लिया जाता है। नाचने गाने का मनोरंजन करने के लिए स्त्री वेष में कुछ पुरुष कलाकार अनिवार्य रूप रहते हैं। विदूषक अपना काम करता है। पक्के साज में हारमोनियम, ढोलक, क्लारनेट,

नगाड़ा, सारंगी आदि वाद्ययंत्र होते है। बाजे भगत, लखमीचंद, माँगेराम, धनपत सिंह, चंद्रलाल बादी आदि ने सांग ही किये। सांग में दर्शकों की संख्या भी अधिक होती है। प्रचार भी सांग का अधिक होता है।

इसके विपरीत किस्सा प्रस्तुतीकरण थोड़ा भिन्न होता है। किस्सा प्रस्तुतीकरण बहुत कम पात्र अभिनय करते हैं। इसका मंच तीन और से खुला होता है। यह किसी दीवार के साथ सटाकर कोई तख्त बिछाकर या नीचे ही दरा बिछाकर मंचित कर दिया जाता है। किस्से में सांग की अपेक्षा रागनियों की संख्या कम होती है। किस्सों में अधिकतर समाज सुधार की भावना प्रबल होती है जबकि सांगों का उद्देश्य मनोरंजन प्रधान रहता है। पृथ्वीसिंह बेधड़क, महाशय दयाचंद मायना, महाशय छज्जूलाल सिलाण, गुणपाल कासंडा, धर्मपाल भमलोठिया आदि के लोकनाट्यों को किस्सा भी कहा जा सकता है। किस्से के लोक में 'कथा' कहने का भी प्रचलन है। इनकी प्रसिद्धि सांगियों की अपेक्षा सीमित रह जाती है।

मंच -

लोकनाट्य का मंच पूरी तरह से अनौपचारिक होता है। इसके लिए किसी भी तरह की साज-सज्जा या विशेष उपकरणों की आवश्यकता नहीं पड़ती। लोकनाट्य का मंच खुले आसमान के नीचे चार तख्त डाल कर तैयार किया लिया जाता है। यदि चार तख्त नहीं मिलते हैं तो फिर किसी ऊँचे टीले को ही मंच बना लिया जाता है। तख्तों की अनुपलब्धता में चार बुग्गियों के पिछले हिस्सों को जोड़कर मंच तैयार कर लिया जाता है। एक तरह से इसे 'ओपन एयर थिएटर' कहा जाना चाहिए।[51] एक सामान्य-सा दरा या पल्ली उसके ऊपर बिछा ली जाती है। मंच के चारों ओर दर्शक बैठते हैं। एक ओर औरतें बैठ जाती हैं। यह व्यवस्था स्वतः हो जाती है। मंच के लिए खुला स्थान या चौराहा देखा जाता है। ताकि दर्शकों को बैठने में कोई समस्या न आए। दर्शक मंच के चारों ओर नीचे जमीन पर बैठते हैं।

प्रारंभिक दौर में सांगी बिना माईक के ही सांग किया करते थे। गायकों की ऊँची आवाज़ उनकी श्रेष्ठता का मानदंड होती थी। ऊँची आवाज़ के साथ स्वर, लय, ताल का संगम सांगी के मूल्यांकन का पैमाना होता था। बाद में सांगी माईक का भी उपयोग करने लगे। मंच के ऊपर शामियाना का भी प्रयोग करने लगे। चन्द्रलाल बादी और राय धनपत सिंह निदाना जैसे सांगियों ने सांग को पूरी तरह से व्यावसायिक रूप दिया। इन्होंने मंच पर विशेष ध्यान दिया। इनकी प्रसिद्धि के कारण इनके सांग लोगों ने टिकट लेकर भी देखे।

मंच पर गोल दायरे में साजिंदे बैठ जाते हैं। सबके मुँह अंदर की ओर होते हैं। समयानुसार पात्र खड़े होकर अपना अभिनय करते हैं। मंच पर हुक्का अनिवार्यतः होता है। मंच के एक ओर हवा की दिशा देखकर आग सुलगा ली जाती है। जब तक सांग चलता है वह आग बुझती नहीं है। एक सदस्य बीच-बीच में हुक्का भरता रहता है।

कहा जा सकता है कि लोकनाट्य का मंच लोक से ही एकत्रित की गई वस्तुओं से तैयार कर लिया जाता है। इसलिए किसी विशेष साजोसामान की आवश्यकता नहीं पड़ती।

सांग में आए धन का बँटवारा -

सांग मुख्यतः मनोरंजन के साथ-साथ व्यवसाय का भी एक जरिया रहा। पूरे कौरवी क्षेत्र में सांग के बीच में लोगों द्वारा रुपये देने का प्रचलन है। यह सब दानियों के चमोला में बताया ही जा चुका है। सांग के अंत तक जितना भी रुपया एकत्रित होता था, उसे हिस्सों में या ढेरी में बाँट दिया जाता था। इसका एक फार्मूला होता था और वह फार्मूला सदियों से आज तक यूं का यूं चला हुआ है। उसमें थोड़ा बहुत फेरबदल (नाममात्र का) हुआ है। उसका फार्मूला कुछ इस प्रकार है -

कुल एकत्रित धन को ढेरियों में बाँट दिया जाता है।

सांग बेड़े में कुल सदस्यों को ढेरी मान लिया जाता है।

कुल कमाई में से दो हिस्से बेड़ेबंद के।

कुल कमाई में से डेढ़ हिस्सा बड़ा रकाना के।

तथा जितने भी बाकी बच गये उनको एक-एक हिस्सा।

जैसे यदि सांग बेड़े में बेड़ेबंद और बड़ा रकाना को मिलाकर 12 लोग हैं तो कुल कमाई के साढ़े तेरह हिस्से हो जाएंगे। जिनमें से दो हिस्से बड़ेबंद को चले जायेंगे, डेढ़ हिस्सा बड़ा रकाना और एक-एक हिस्सा दसों सदस्य ले लेंगे।

वर्तमान समय में एक सुप्रसिद्ध सांगी श्री सूरज बेदी ने बताया कि आज से तीस पैंतीस साल पहले इस हिस्से में रसोइया को भी आधा हिस्सा के तौर पर शामिल किया करते थे परन्तु अब उसका भी एक पूरा हिस्सा हो गया है। सांग में कुछ युवक सीखने के लिए आते थे। उन्हें कुछ नहीं मिलता था परन्तु जैसे-जैसे वे सीखते चले जाते थे और बाँदी आदि की भूमिका निभाने लग जाते थे तो उन्हें आधे हिस्से का पात्र मान लिया जाता था और जैसे-जैसे वे परिपक्वता के साथ बड़ी भूमिकाएँ निभाने लग जाते थे तो उनका भी एक हिस्सा (ढेरी) होने लग जाता था।

भरत वाक्य - सांग के अंत में सांगी अपने सांग को एक बहुत ही कलात्मक एवं काव्यमय रूप में संपन्न करता है। जिसे 'जय बोलना' भी कहा जाता है। लोग 'जय बुल गई' कहकर परस्पर सांग की समाप्ति की सूचना दिया करते हैं। लोकनाट्यकार एक दोहा बोलते हैं या 'बोलो नगर खेड़े की जय' कहा करते हैं और सभी दर्शक ऊँची आवाज़ में जय बोलकर उसकी आवाज़ में अपनी आवाज़ मिलाते हैं। दयाचंद गोपाल के 'सरवर-नीर' लोकनाट्य का भरत वाक्य दर्शनीय है -

तुलसीदास गरीब को माँगा मिलै ना चून।
जब दया फिरै भगवान की मिलै हलवा दोनूं जून।
बोलो श्री गऊ माता की जय।[52]

सांग के अंत में 'नगर खेड़े की जय' जरूर बोली जाती है। इस जय का सीधा संबंध होता है क्षेत्र विशेष के लोगों की सुख समृद्धि की कामना। कौरवी क्षेत्र में हर गाँव में एक खेड़ा होता है, जिसे विभिन्न अवसरों पर लोग 'ग्राम देवता' के रूप में पूजते हैं। यह ग्राम देवता उस गाँव का एक प्रकार से संरक्षक होता है। यह लोक-विश्वास है।

छापकटैया -

साहित्य की सभी विधाओं में रचना उसके सर्जक के नाम से जानी जाती है। सर्जक का उसकी रचना पर अधिकार होता है, चाहे वह कविता, कहानी, उपन्यास, लोकनाट्य या रागनी कुछ भी हो। साहित्यकार की रचना उसकी पुत्रवत् होती है। रचनाकार से रचना का अभिन्न संबंध होता है।

रागनियों की अंतिम कली में उसका सर्जक किसी भी अंतरे में अपना नाम जोड़ता है। अंतिम कली में रागणी रचयिता द्वारा जोड़ा गया अपना नाम उस रागनी का स्वामित्व या छाप होती है। अंतिम कली में आये कवि के नाम से रचना के स्वामित्व का पता चलता है। तुक-लय के अनुसार कवि अंतिम कली के किसी भी अंतरे में अपना नाम जोड़ देता है।

'छापकटैया' शब्द दो शब्दों (छाप+कटैया) के मेल से बना है। 'छाप' का मतलब सर्जक का नाम और 'कटैया' का मतलब काटने वाला। रागनी और लोक कला के क्षेत्र में 'छापकटैया' का अर्थ हुआ कि किसी की रागनी से उसके सर्जक का नाम काटकर अपना नाम या किसी अन्य का नाम लगा देना। उसे छापकटैया कहा जाता है।

किसी की रागनी की छाप काटना और उसे किसी दूसरे की छाप से प्रचलित करना कला के क्षेत्र में घोर निंदनीय कर्म है। कानून की दृष्टि में यह अपराध की श्रेणी में आता है। छापकटैया के लिए बौद्धिक सम्पदा अधिकार कानून (Intellectual Property Right Act) के अन्तर्गत सजा का प्रावधान भी है। प्रायः सभी कवियों ने छापकटैया की निंदा की है। यह एक असमाजिक कुकृत्य है।

'छापकटैया' जहाँ एक ओर रागनी के मूल कवि को उसकी रागनी के मालिकाना हक से वंचित करने का घोर कुकृत्य करते हैं, वहीं वे रागनियों के विषय में समाज में भ्रांतियाँ भी फैलाते हैं। कवियों के छापकटैया के विषय में कुछ विचार निम्नलिखित हैं -

श्री चंद्रलाल बादी -

औरों को मिटाने वाले आप ही मिटेंगे
औरों को घटाने वाले आप ही घटेंगे।
चन्द्रलाल सच्चे चेले गुरु मंगल को रटेंगे।
छाप के काटणिये नुगरे आप ही कटेंगे।
जो धर्म पै डटेंगे वो ना हिलाये हिलेंगे।।[53]

महाशय छज्जूलाल सिलाना -

भड़वे भौकैं घड़वे पै कवियाँ की काटै छाप।
दुनिया तै गाळी खावै भूंडा पड़ै श्राप।
सबतै मोटा पाप छाप का खुदा करै ना माफ।
ज्यादा दंड भुगतणे होंगे सहज कटै ना पाप।
वै छज्जूलाल जगत मैं इज्जत पाया ना करते रै।[54]

राय धनपत सिंह निंदाना -

काट-छाँट कै कोय और का गाना गाता है।
दूसरे की छाप काट जो अपनी छाप लगाता है।
सारी दुनिया थुक्कै उसनै वो कहीं नहीं मान पाता है।
बेइज्जती हो सभी जगह न्यूं धनपत सिंह बताता है।
जिसका मान-सम्मान गया बता और उस पै के रह्या।।[55]

महाशय दयाचंद मायना का विरोध -

सोना परखण के लिए कसौटी घरां मिलै सर्राफां पै।
बेटा करदे जुल्म पाप का कलंक लगै माँ बापां पै।
दयाचंद की छापां पै हरामखोर बैठणा चाह्वैं थे।[56]

पारसी थिएटर और सांग -

पारसी थिएटर को यदि पढ़े-लिखे समाज का सांग कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसका मंचन, नाट्य, प्रस्तुतीकरण, सुनियोजना, विषयवस्तु और उद्देश्य काफी कुछ सांग से मिलते-जुलते हैं। पारसी थिएटर का विस्तार यदि पूरे भारत में था तो लोकनाट्य भी विभिन्न नामों से पूरे भारत में प्रचलित थे। यह कौरवी क्षेत्र में 'सांग' के नाम से प्रचलित था। रणबीर सिंह ने अपनी पुस्तक 'पारसी थिएटर' में लिखा है, "गाँव में आम जनता के मनोरंजन के लिए रामलीला, रासलीला, दशावतार बगैरह जो लोकनाट्य था और जिसका कथानक धार्मिक था वही थिएटर था।"[57] रणबीर सिंह ने हिन्दुस्तानी थिएटर का पहला नाटककार नवाब वाजिद अली शाह को मानते हुए लिखा है कि "यह बात जानना बेहद जरूरी है कि पारसी थिएटर के शुरू होने से पहले हिन्दुस्तानी जुबाँ में कैसा नाटक था। हिन्दुस्तानी जुबाँ का सबसे पहला नाटक है 'राधा कन्हैया का किस्सा' जिसे लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह ने 1843 ई. में लिखा। ठीक उसी वक्त भावे मराठी ने 'सीता स्वयम्बर' मराठी का पहला नाटक लिखा।"[58] वाजिद अली शाह ने नाटक के दोहों का खूब उपयोग किया, यथा -

मैं विरहन संजोग संग न कोई साथ।
नारी छूवत वेद के, फफूला हो गए हाथ।[59]

इन नाटकों में, पारसी थिएटर में तथा लोकनाट्यों में पद्य का गुण विशेष रूप से मिलता है। पद्य के कारण इसकी और सांगों की समानता बैठती है।

पारसी थिएटर का मुख्य उद्देश्य तो व्यावसायिक ही होता था। इसके साथ साथ इसकी विषयवस्तु सामाजिक होती थी। सांगों की विषयवस्तु भी सामाजिक होती थी और वह इसमें कला तथा व्यावसायिकता का मिला-जुला रूप होता था। "पारसी थिएटर के नाटक समाज चेतना और राष्ट्रीय भावना से भरपूर होते थे। समाज की उन तमाम बुराइयों, शराब-खोरी, दहेज, जात-पाँत, ऊँच-नीच, पश्चिमी सभ्यता का बुरा असर इन सब बातों पर नाटक लिखे और इन समस्याओं को समाज के सामने

पेश किया। आज भी संवाद जीवंत हैं, जानदार हैं और समाज की सच्चाई को उजागर करते हैं।"[60]

पारसी थिएटर के शीर्षक होते थे - 'राधा-कृष्ण', 'बिल्वामंगल', 'महाभारत', 'किन्नर कुमारी', 'हरिश्चन्द्र' आदि। ठीक इन्हीं शीर्षकों जैसे सांग भी रचे गए। नारायण प्रसाद बेताव (1872-1945) औरंगाबाद, बुलंदशहर उत्तर प्रदेश के ख्यातिनाम लेखक माने जाते हैं। इन्होंने पारसी थिएटर के लिए अनेक नाटकों का सृजन किया। इनकी भाषा के संबंध में कहा गया है, "अवाम अपने रोजमर्रा की जिंदगी में" उर्दू के कई अल्फाज काम में लाते थे। ठीक वैसे ही जैसे अंग्रेजी के अल्फ़ाज आज आमतौर पर बोले जाते हैं। थिएटर हकीकत से दूर नहीं रह सकता। इसलिए यह जरूरी है कि थिएटर की भाषा/जुबाँ वो हो जो आसानी से दर्शकों की समझ आ सकें। इसलिए कई नाटकों में भगवान भी उर्दू बोलते हैं। जैसे विनायक तालिब की रामायण में सीता राम से कहती है, "तुम मुझको क्या मिले हो कि मेरा खुदा मिला।"[61] भाषा के बारे में ठीक यही कथन सांगों के बारे में भी कहा जा सकता है। सांगियों ने भी लोक प्रचलन में आए अनेक भाषाओं का प्रयोग किया है। पं. दीपचंद, पृथ्वीसिंह बेधड़क व महाशय दयाचंद मायना ने खूब अंग्रेजी और उर्दू शब्दावली का प्रयोग किया। उद्देश्य यही था कि नाटक या सांग का संदेश अधिकाधिक लोक तक पहुँच जाए। पहले पृथ्वीसिंह बेधड़क और उसके बाद महाशय दयाचंद मायना में जाति और वर्ण के प्रति विरोध की जो कटु आलोचना आई, उसकी पृष्ठभूमि भी पारसी थिएटर में दिखाई देती है। 1937[62] में पारसी थिएटर के अंतिम दौरे में नारायण प्रसाद बेताब फिल्मों में संवाद और गीत लिखने लगे थे। उन द्वारा लिखित फिल्म 'नूरेवतन' का एक गीत दर्शनीय है -

> किसी को अछूत कहना यह फक़त है दिल की तंगी।
> न जनम से है ब्राह्मण न जनम से कोई भंगी।
> हरिजन से यूँ है बचते कि छुआ तो डस ही लेगा।
> वह जो काम की है रस्सी उसे कहते है भुजंगी।
> जो करे सलाम मेहतर तो सलाम से भी नफरत
> लगे खुद सलाम करने वह जो बन गया फिरंगी।[63]

राधेश्याम कथावाचक (1890-1963) यद्यपि बरेली से थे तथापि उन्होंने 'वीर अभिमन्यु', 'श्रवणकुमार', 'भक्त प्रह्लाद', 'उषाअनिरुद्ध', 'रुक्मिणी मंगल', 'द्रोपदी स्वयंवर', 'भारत माता', 'बालकृष्ण', 'परिवर्तन', 'मशरीकी हूर', 'ईश्वर भक्ति', 'वाल्मीकि', 'सती पार्वती' आदि लोकनाट्य लिखे।

ध्यातव्य है कि कौरवी लोकनाट्यों के शीर्षक भी बाद में कुछ इसी प्रकार बने।

कौरवी लोकनाट्य की विशेषताएँ -

1. प्रारंभिक दौर में कौरवी लोकनाट्य अधिकतर पहले से प्रचलित लोककथाओं पर आधारित होते हैं। यथा - सत्यवादी हरिश्चंद्र, नल-दमयंती, प्रह्लाद भगत, विराट भूप, पूर्णमल, हीर-रांझा, सत्यवान-सावित्री आदि।
2. कौरवी लोकनाट्य संगीत, नृत्य और गायन की सम्मिलित विधा है। रागनी लोकनाट्य का गायन काव्य रूप है।
3. कौरवी लोकनाट्य का क्षेत्रीय नाम 'सांग' है। और लोकनाट्यकार को 'सांगी' करते हैं।
4. कौरवी लोकनाट्य कौरवी क्षेत्र यानि पश्चिमी उत्तर प्रदेश और हरियाणा की साझी विरासत है।
5. कौरवी लोकनाट्य के लिए किसी औपचारिक मंच की आवश्यकता नहीं पड़ती है। यह किसी खुले स्थान में चार-छह लकड़ी के तख्त डालकर या बुग्गियों को जोड़ कर तैयार कर लिया जाता है। उनके लिए सुलभ दरी बिछाकर साजिंदे या कलाकार बैठ जाते हैं। इसमें दर्शक चारों ओर बैठते हैं। तथा लोकनाट्य के कलाकार खुले मंच के चारों कोनों में घूमते हुए अभिनय करते हैं।
6. कौरवी लोकनाट्य पद्यमय होते हैं। पद्य रागनी रूप में होता है। रागनियों के माध्यम से कोई कथा कही जाती है। रगनी चौकलिया, छकलिया होती है। रागनी के बीच के संकेतों को वार्ता के माध्यम से कहा जाता है। 'वार्ता' गद्य में होती है।
7. लोकनाट्य के मुखिया हो बेड़ेबंद कहा जाता है। बेड़ेबंद ही किसी लोकनाट्य की कथा में मुख्य पात्र की भूमिका निभाता है। उसके साथ मुख्य पात्रा का अभिनय करते वाले स्त्रीवेश धारी पुरुष को 'बड़ा रकाना' कहते हैं।
8. लोकनाट्य में स्त्री की भूमिका भी पुरुष ही स्त्रीवेश धारण करके निभाते हैं।
9. शुरुआती दौर के सांगी सामान्य लोकप्रचलित वेशभूषा में ही सांकेतिक रूप में अभिनय किया करते थे परंतु बाद के सांगी वेशभूषा आदि पर ध्यान देने लग गए। यथा राजा का अभिनय करने के लिए राजसी वस्त्रों का उपयोग होते लगा।

10. कौरवी लोकनाट्य मनोरंजन की एक संपूर्ण विधा होने के साथ-साथ सांगियों के व्यवसाय का भी माध्यम रही।

11. कौरवी लोकनाट्य में साजिंदों को विशेष सम्मान प्राप्त है। बाकी के सभी कलाकार उन्हें 'उस्ताद' कहकर संबोधित करते हैं। साजिंदों के अतिरिक्त बेड़े (सांग मंडली) में जितने भी कलाकार होते हैं वे बेड़ेबंद के शिष्य के रूप में माने जाते हैं।

12. सांग परंपरा मौखिक रूप में गुरु-शिष्य परंपरा है। गुरु से शिष्य रागनी कंठस्थ करते हैं। इसलिए यह परंपरा चलती रहती है। सांगों को लिखित रूप देना बहुत देर से प्रारंभ हुआ।

13. सांग में प्रयुक्त साज को 'पक्का साज' कहते हैं। हारमोनियम, ढोलक, क्लारनेट, नगाड़ा, सारंगी, बेंजू आदि वाद्ययंत्र अनिवार्य रूप से होते हैं। कई बार तो हारमोनियम दो भी हो जाती हैं। हारमोनियम वादक को 'पेटीमास्टर' भी कहा जाता है। इनके अतिरिक्त खंजड़ी, झांझ, अलगोजा आदि वाद्ययंत्र भी सांग में उपयोग कर लिए जाते हैं।

14. सांग में कोई दृश्य परिवर्तन नहीं होता है। मंच पर ही वेशभूषा बदल ली जाती है। और बेड़ेबद 'वार्ता' के माध्यम से 'सूत्रधार' के रूप में दृश्य-परिवर्तन की सूचना अपने दर्शकों को देता है।

15. सांग में लोगों के मनोरंजन के लिए एक विदूषक अनिवार्य रूप से होता है।

16. लोकनाट्य की भाषा पूरी तरह से लोक-केन्द्रित होती है। पूरा लोकनाट्य लोकभाषा में होता है।

17. लोकनाट्यों की कथा में युगानुरूप परिवर्तन होता आया है। आज़ादी के आंदोलन के दौरान तथा बाद के लोकनाट्यकारों ने स्वतन्त्रता सेनानियों और सुप्रसिद्ध महापुरुषों के जीवन को लेकर भी लोकनाट्य लिखे हैं।

18. लोकनाट्य में रागनियों की पारंपरिक तर्ज चौकलिया, बहरेतबील, राधेश्याम, सोरठ, झूलना, लावनी, दौड़, कड़ा, चौपाई आदि पर रागनियों का सृजन होता था। बाद में कुछ सांगी फिल्मी गीतों की तर्ज पर भी रागनी लिखने लग गए।

19. लोकनाट्य के विषय सामाजिक विषयों के अनुरूप होते हैं। जैसे 'पिंगला-भरथरी' लोकनाट्य में एक स्त्री के जार-कर्म से घर को तबाह होते हुए दिखाया गया है। 'नल-दमयंती' लोकनाट्य में जुए के दुष्परिणामों को दिखाया गया। 'रूप-बसंत' लोकनाट्य में एक सौतेली माँ के हृदय-विदारक जुल्म को

दिखाया गया है। 'चापसिंह-सोमवती' लोकनाट्य में स्त्री-पुरुष की नैतिकता की परीक्षा को दिखाया गया है। 'नेताजी सुभाष' लोकनाट्य में भारत की आज़ादी के आंदोलन में सुभाष चंद्र बोस की शिद्दत को दर्शाया गया है। 'वीर हकीकत राय' में धर्म के लिए प्राण न्योछावर करने की भावना का दिग्दर्शन है। 'सत्यवान सावित्री' में पति के प्रति एकनिष्ठ रहने वाली स्त्री की विजय दिखाई गई है।

20. कौरवी लोकनाट्य के क्षेत्र में तीन प्रकार के लोकनाट्यकार पाए जाते हैं। एक वे, जो स्वयं लोकनाट्य रचते थे और उन्हें मंचित भी करते थे। इस श्रेणी में बाजे भगत, पं. लखमीचंद, पं. माँगेराम, बलवंत सिंह 'बुल्ली', महाशय दयाचंद मायना, चंद्रलाल बादी, पीरू, राय धनपत सिंह निंदाना आदि आते हैं। दूसरे वे, जो केवल लोकनाट्य की रचना करते थे। उन्होंने कभी मंचन नहीं किया। ऐसे लोकनाट्यकारों में चौ. जगतसिंह आल्हाण, जगदीशचंद्र वत्स, मुंशीराम जांडली, पं. माईराम, मानसिंह जोगी आदि आते हैं। तीसरे वे सांगी, जिन्होंने कभी सांगों का सृजन नहीं किया। उन्होंने केवल दूसरों के बनाए हुए सांगों का ही मंचन किया। अनेक मौलिक लोकनाट्यकारों के शिष्य इस परंपरा में आते हैं। जयनारायण, तुलाराम, श्योनाथ त्यागी, होशियारे-प्यारे, महावीर व्यास ऐसे ही सांगी हुए। इसी क्रम में इनकी लोकप्रियता का भी क्रम बनता चला गया। सबसे अधिक लोकप्रिय वे लोकनाट्यकार हुए हैं जिन्होंने स्वयं लोकनाट्यों की रचना की और मंचन भी किया।

21. लोकनाट्य एक समूहिक कार्य है। जिसमें बंड़ेबद, जनाने, बड़ा रकाना, साजिंदे, विदूषक आदि सम्मिलित रूप से भाग लेते हैं। सबका अपना-अपना महत्त्व है।

22. सांग मंडली का प्रत्येक सदस्य अभिनय में कुशल होता है। आवश्यकतानुसार कोई भी सदस्य कोई भी भूमिका निभा लेता है।

23. पिंगल शास्त्र की दृष्टि से रागनियों और छंदों में मात्रा और वर्ण आदि की संख्या को बहुत ही सतही रूप में लिया जाता है। अधिकतर सांगी अनपढ़ या अल्पशिक्षित रहे। पिंगल का उनको किताबी ज्ञान कम ही रहा।

24. सांग-प्रदर्शन से हुई आय का बँटवारा एक निर्धारित सूत्र के अनुसार होता है।

25. सांग कला का मुख्य उद्देश्य बहुजन सुखाय होता था। सार्वजनिक उपयोग की इमारतें बनवाने के लिए लोकप्रिय सांगियों को बुलाकर सांग के माध्यम से चंदा इकट्ठा किया जाता था। कौरवी क्षेत्र में विद्यालय, चौपाल, धर्मशाला,

गौशाला आदि के निर्माण के समय सांगियों को बुलाया जाता था। दान एकत्र करने की इन सांगियों के पास एक अलग ही कला होती थी। किसी गरीब की लड़की की शादी के समय भी सांगियों को बुलवा लिया जाता था।

निष्कर्ष -

लोकनाट्य लोक की नैसर्गिक प्रतिभा का कला रूप है। लोक ने अपने मनोरंजन के लिए इस विधा को अपने आदिम रूप में गढ़ा और यह परिमार्जित रूप लेती गई। वैज्ञानिक उन्नति और तकनीक के आविष्कार के साथ-साथ इसका रूप भी परिवर्तित होता गया। जो स्वाभाविक भी था। यह विधा लोक द्वारा लोक के लिए लौकिक कलाओं पर ही आधारित होती है। लोकनाट्य पूरे भारत में विभिन्न नामों से प्रचलित है। लोकनाट्य में हम अपने पूर्वजों की जीवन शैली से भी परिचित होते हैं तथा उनके मनोरंजन के पारंपरिक साधनों से तो परिचय होता ही है। कौरवी लोकनाट्य के लिए लौकिक शब्द 'सांग' है। सांग स्वांग का तद्भव रूप है। बेड़ेबंद, बड़ा रकाना, विदूषक साज-बाज, वार्ता, रागनी, कथा आदि से मिलकर सांग का निर्माण होता है। पूर्व में सांग पौराणिक कथाओं पर आधारित होते थे परन्तु बाद में आवश्यकतानुसार इसकी विषयवस्तु तथा शैली में बदलाव आता चला गया। इसका मंच खुले आकाश के नीचे चारों ओर दर्शकों से घिरा होता है। पुरुष ही स्त्री की भूमिका निभाते हैं। सांगों का कौरवी क्षेत्र में सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक रूप से बड़ा महत्त्व रहा है। सार्वजनिक उपयोग की इमारतों के निर्माण में चंदा आदि एकत्रित करने के लिए सांगियों की मदद ली जाती थी। अनेक लोकनाट्य मनोरंजन के साथ-साथ पारिवारिक शिक्षा का भी काम करते थे।

संदर्भ -

1. राजपाल हिन्दी शब्दकोश, डॉ. हरदेव बाहरी, पृष्ठ 727
2. संक्षिप्त हिन्दी अंग्रेजी कोश, भोलानाथ तिवारी एवं महेन्द्र चतुर्वेदी, पृष्ठ 271
3. महाभाष्य, महर्षि व्यास, पृष्ठ 1/84
4. जनपद (पत्रिका) वर्ष 1 अंक 1, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 65
5. सम्मेलन पत्रिका (लोकसंस्कृति अंक), डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, पृष्ठ 67
6. भारतीय लोक साहित्य, डॉ. श्याम परमार, पृष्ठ 9-10,
7. वही, पृष्ठ 11

8. डॉ. गढ़वाली लोक साहित्य : एक सांस्कृतिक अध्ययन, गोविंद चातक, पृष्ठ 07
9. सापेक्ष (पत्रिका) अगस्त-सितम्बर 1986, रामनारायण उपाध्याय, पृष्ठ 61
10. लोक साहित्य विज्ञान, डॉ. सत्येन्द्र, पृष्ठ 3,
11. लोक साहित्य सिद्धांत और प्रयोग, डॉ. श्रीराम शर्मा, पृष्ठ 4,
12. समकालीन साहित्य चिंतन, डॉ. रामदरश मिश्र एवं महीप सिंह, पृष्ठ 38,
13. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ. अमरनाथ, पृष्ठ 315
14. भारतेन्दु समग्र, संपादक हेमंत शर्मा, पृष्ठ 556
15. Drama could spring from the play of a child who imagines for the time being, that he is some one else.

    - *Donald Clive Stuart, Prof. of Dramatic Art, Princeton UniversityThe Development of Dramatic Art, 1928 by Page 1.*
16. The Cambridge History of English Literature, Volume 5, p. 23, University Press, 1910
17. भारतीय नाट्य साहित्य, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ 84
18. हिंदी नाटक : उद्भव और विकास, डॉ. दशरथ ओझा, पृष्ठ 35
19. लोकरंग, डॉ. महेन्द्र भानावत, अनुसंधान विभाग, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर, राजस्थान, जगदीशचंद्र माथुर, लोकनाट्य : परंपरा और परिवेश (आलेख), पृष्ठ 359
20. लोकधर्मी नाट्य परंपरा, डॉ. श्याम परमार, पृष्ठ 7
21. हरियाणा का नाट्य साहित्य, (हिंदी साहित्य को हरियाणा का योगदान शशि भूषण सिंहल) कँवलनयन कपूर, पृष्ठ 328
22. हरियाणवी-हिन्दी कोश, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, डॉ. जयनारायण कौशिक, पृष्ठ 898
23. छापकटैया, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, पृष्ठ 5
24. सांग रतनसैन राजा का (भूमिका), पं. स्थाणुदत्त शर्मा, पृष्ठ 1
25. लोकरंग, डॉ. महेन्द्र भानावत, अनुसंधान विभाग, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर, राजस्थान, शंकर लाल यादव, 'सांग' (आलेख), पृष्ठ 335
26. खड़ी बोली का लोकसाहित्य, सत्या गुप्त, पृष्ठ 303

27. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 14
28. वही, पृष्ठ 13
29. हिंदी नाटक : उद्भव और विकास, डॉ. दशरथ ओझा, पृष्ठ 37
30. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 10
31. जायसी ग्रंथावली, रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 312
32. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, श्री सोमनाथ गुप्त, पृष्ठ 18
33. वही, पृष्ठ 16-17
34. लोकनाट्य : परंपरा और प्रवृत्तियाँ, महेन्द्र भानावत, पृष्ठ 23
35. हिंदी नाटक : उद्भव और विकास, डॉ. दशरथ ओझा, पृष्ठ 37
36. हरियाणा का लोक साहित्य, राजा राम शास्त्री, पृष्ठ 142
37. लोकनाट्य कथा कोश, डॉ. जयनारायण कौशिक, पृष्ठ 54
38. लोककवि एवं संगीताचार्य पं. रामकिशन व्यास : ग्रंथावली, डॉ. जयभगवान व्यास, पृष्ठ 30
39. खड़ी बोली का लोकसाहित्य, सत्या गुप्त, पृष्ठ 312
40. वही, पृष्ठ 310
41. पं. लखमीचंद ग्रंथावली, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, पृष्ठ 94
42. सांग-सम्राट चंद्रलाल बादी ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, पृष्ठ 307
43. हरियाणा प्रदेश का लोकसाहित्य, डॉ. शंकरलाल यादव, पृष्ठ 270
44. सांगीत : एक लोकनाट्य परंपरा, रागमनारायण अग्रवाल, पृष्ठ 224
45. पुनर्लेखन शोध-पत्रिका, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, सं. प्रो. सुधीश पचौरी एवं प्रो रमेश गौतम, डॉ. राजेन्द्र गौतम, हरियाणी काव्यरूप 'रागनी' का उद्भव और विकास, पृष्ठ 28
46. पं. लखमीचंद ग्रंथावली, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, पृष्ठ 90
47. पुनर्लेखन शोध-पत्रिका, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, सं. प्रो. सुधीश पचौरी एवं प्रो रमेश गौतम, डॉ. राजेन्द्र गौतम, हरियाणी काव्यरूप 'रागनी' का उद्भव और विकास, पृष्ठ 28
48. हरियाना प्रदेश का लोकसाहित्य, डॉ. शंकरलाल यादव, पृष्ठ 404

49. देईचंद ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, पृष्ठ 63
50. वही, पृष्ठ 65
51. खड़ी बोली का लोकसाहित्य, सत्या गुप्त, पृष्ठ 303
52. गोपाल रचनावली, डॉ. प्रेमचंद पातंजलि, पृष्ठ 96
53. सांग-सम्राट चंद्रलाल बादी ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, पृष्ठ 483
54. महाशय छज्जूलाल सिलाना ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, पृष्ठ 106
55. राय धनपत सिंह निंदाना ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, पृष्ठ 585
56. महाशय दयाचंद मायना ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, पृष्ठ 92
57. पारसी थिएटर, रणवीर सिंह, सेतु प्रकाशन प्रा.लि., 305, प्रियदर्शिनी अपार्टमेंट, पटपड़गंज, दिल्ली - 110092, पृष्ठ 21
58. वही, पृष्ठ 29
59. वही, पृष्ठ 30
60. वही, पृष्ठ 38
61. वही, पृष्ठ 72
62. वही, पृष्ठ 80
63. वही, पृष्ठ 81

तीसरा अध्याय

आविर्भाव युग

(प्रारंभ से सन् 1800 ई. तक)

प्रस्तावना -

कौरवी लोकनाट्य जिसे 'सांग' कहा जाता है, का इतिहास अत्यधिक प्राचीन है। वस्तुतः 'सांग' लोक की स्वाभाविक मनोरंजन वृत्ति का प्रतिफलन है। दीर्घकाल में इसमें स्वाभाविक बदलाव होते चले गए। बदलाव व्यक्ति के जीवन का एक अपरिहार्य स्वभाव है। जैसे-जैसे वैज्ञानिक आविष्कार हुए वैसे-वैसे सभ्यता का रूप बदलता चला गया। वैज्ञानिक आविष्कार लोक के जीवन में आमूलचूल परिवर्तन कर देते हैं। 'सांग' का जो रूप आज हमारे सामने है, वह शनैः-शनैः इस रूप तक पहुँचा है। कुछ सौ वर्ष पहले वह दूसरे रूप में था। था सांग ही।

दसवीं शताब्दी में रामचंद्र शुक्ल द्वारा डोमिनियों द्वारा सांग के प्रचलन की सूचना हिन्दी साहित्य के इतिहास में कण्हपा की वाणी के हवाले से दी गई है।[1] यह इस रूप में प्रामाणिक मानी जा सकती है कि कौरवी क्षेत्र में वर्तमान समय में भी डोम जाति जिसे 'मिरासी' या 'डूम' भी कहा जाता है। वह सांग कला में निष्णात है और इस जाति से अनेक सांगी हुए जिन्होंने लोकविधा सांग का परचम लहराया है। हालांकि आगे हम देखेंगे कि सांग पर किसी एक जाति का आधिपत्य नहीं रहा। सभी जातियों के लोक कलाकारों ने सांग विधा को अपनी कला से नई ऊँचाइयाँ दीं।

दसवीं शताब्दी से सांग की यह धारा अविरल रूप से कौरवी क्षेत्र में बह रही है, जिसने लोक का लगातार मनोरंजन किया है। मध्यकाल में कबीर काव्य[2] में भी इसके संकेत मिलते हैं तथा जायसी की पद्मावत में भी अलाउद्दीन द्वारा सांग भरने वाली वेश्या[3] के रूप में स्वाँग की उपस्थिति नज़र आती है। हालांकि वह रूप बदलने के रूप में है, परन्तु सांग में भी लोक कलाकार सांग की कथा के पात्रों का ही रूप

भरते हैं। मध्यकाल में हरियाणा के नूह जिले के सादुल्ला ने 'अभिमन्यु वध' जैसे लोकनाट्य का सृजन किया और वह मेवात क्षेत्र में अपार लोकप्रिय हुआ।

इस युग में सबसे अधिक लोकप्रिय लोकनाट्यकार किशनलाल भाट हुए, जिन्होंने ना केवल सांगों की रचना की, मनोरंजन की धारा में भी बदलाव किया। उन्होंने वेश्याओं के 'मुजरों' और नक्कालों की 'नकल' का विकल्प दिया और यह विकल्प समाज में आगे चलकर उन पर इतना अधिक भारी पड़ा कि धीरे-धीरे वे विलुप्त होते चले गये। और एक समय पर सांग का ही परचम पूरे कौरवी क्षेत्र में लहराया। कुछ प्रारंभिक लोकनाट्यकारों का परिचय इस प्रकार है -

सादुल्ला -

सादुल्ला मध्यकाल में एक बड़े लोकनाट्यकार हुए। जिनके वंशज लगातार लोकनाट्यकार कर्म का निर्वहन करते रहे। सादुल्ला जी की "ग्याहरवीं पीढ़ी में हजरत चौबीसा नामक एक वृद्ध ने तीन शताब्दियों की संचित निधि सवा मन के लगभग हस्तलिखित ग्रंथों को सन् 1947 के दंगे के समय एक कुएँ में फैंक दिया।"[4] डॉ. दशरथ ओझा जी उनके बारे में बताते हैं, "सादुल्ला नामक लोक कवि ने अनेक लोकगीतों और लोकनाटकों की रचना की थी। उनके लोकगीत और लोकनाटकों की परंपरा उत्तरोत्तर विकसित होती गई। आज के दिन भी इन लोकनाटकों का इतना प्रचार है कि सांग मंडलियाँ, दिल्ली जैसी नगरी में एक-एक नाटक खेल कर पाँच-पाँच सहस्र रुपये तक अर्जित कर लेती है और सहस्राधिक व्यक्ति खुले मैदान में रात-रात भर इन नाटकों का अभिनय देखते रहते हैं।[5]

सादुल्ला का जन्म "जिला गुड़गाँव में नूह तहसील के आकहेड़ा नामक ग्राम में हुआ था।"[6] लोककवि सादुल्ला की मेवाती बोली की महाभारत इतनी लोकप्रिय बन गई कि ''सभी पर्वों तथा उत्सवों पर इसका गायन गाय-भैंस चराने वाले ग्वाले कानों पर हाथ रखकर बड़ी तान और लय से गाते हैं। इस महाभारत में पूर्ण नाटकीयता का समावेश है।''[7]

लोकनाट्यों के प्रारंभिक काल में महाभारत के कथांश लेकर लोकनाट्य रचने का रिवाज रहा है। क्योंकि महाभारत के कथांश लोक में प्रिय थे। कथा से लोक परिचित था ही। बस लोकनाट्यकार को तत्कालीन प्रचलित लोकनाट्य शैली के अनुरूप उसे पद्यमय बनाकर प्रस्तुत करना होता था। महाभारत में 'अभिमन्यु वध' की कथा अत्यधिक मार्मिक है। इस वध से युद्ध के तमाम आदर्श एवं नियम तार-तार होते नज़र आते हैं। कवि सादुल्ला ने 'अभिमन्यु वध' लोकनाट्य की रचना की थी।

चक्रव्यूह में जब अभिमन्यु सात महारथियों द्वारा घेर लिये जाते हैं तो दुर्योधन व्यंग्य करता है -

बोल रे लहूड़ा बोल। लोहे काकी लोड़ ली।
दूंगों तोकू मुँह माँगों। माँग-माँग-माँग।।
यो बदत कहे। मंह इच्छा पूरी करूँगी तोरी।
धर्म ते कहूं मैं। इच्छा करूँगी पूरी।।
माँग-माँग लहूड़ा। माँग-माँग-माँग।।[8]

दुर्योधन की ऐसी उदारता को देखकर अभिमन्यु बोला -

चाचा तू घणो ही दानी बणै है तो।
दे दे मोकुं वह पड़ी तरवार।।
चाचा तू सच्चो चाचा बणे है तो।
दे दे मोकूं म्हारी वह पड़ी तरवार।[9]

दुशासन अभिमन्यु को तलवार देने के लिये तैयार हो जाता है तो तुरंत ही दुर्योधन उसको रोकते हुए कहता है -

दुशासन का करै। नाश ह्वै जायगो।
बनो बनायो कारज। सगलो पडार जायगो।
मतना तलवार को - या के हाथ सौंपियो।
नाश ह्वै जायगो। बर्बाद ह्वै जायगो।[10]

उनकी काव्यकला का एक और नमूना और दर्शनीय है -

पल म्हं कूप तालाब सुखा दे।
पल म्हं कर दे जल म्हं थल।
पल म्हं भीख मंगादे बंदे।
जिसके संग हो लस्कर दल।।
पल भर म्हं वह शाह बणादे।
पल म्हं नासे सारे धन।
पल म्हं दल का एक बणादे।
पल म्हं परिवारों का दल।
सादुल्ला काहे का डर है।
करता लाये घड़ी ना पल।।[11]

सादुल्ला के लोकनाट्यों में नाटकीयता और भाषा की सहजता देखते ही बनती है। पहले नूह गुड़गाँव की तहसील थी परंतु वर्तमान में हरियाणा का एक जिला है। नूह की सीमाएँ राजस्थान से लगती हैं। इसलिये वहाँ की ओकारांत भाषा का नूह की भाषा पर भी प्रभाव है। सादुल्ला की संवाद शैली में नितांत स्वाभाविकता झलकती है।

पं. सदासुख राम -

पं. सदासुख राम लोकनाट्य के साथ-साथ संस्कृत के भी प्रकांड विद्वान थे। ये सोलहवीं शताब्दी में हुए। वे उत्तर प्रदेश से थे। आपने चार ताल के स्वांग की रचना की है। इन सांगों के नाम है - चन्द्रहास, राजा अज, सव्यसाची और सती अंजना। "कहा जाता है एक बार राजा अकबर ने इन्हें दिल्ली आमंत्रित किया था और स्वांग देखकर पुरस्कार प्रदान किया।"[12]

अम्बाराम -

पं. अम्बाराम भी सोलहवीं शताब्दी में हुए। ये पश्चिमी उत्तर प्रदेश से थे। इन्होंने केवल एक स्वांग की रचना की है। स्वांग का नाम है 'राजा हरिश्चन्द्र'। सांग के प्रारंभ में इनकी देवी की स्तुति देखी जा सकती है।

दोहा	सब दिन शारद सुमरिये सिद्ध होय सब काज।
विघ्न हरण मंगल करण राखन जन की लाज।।

चौबोला	राखन तुम लाज चढ़ी हंस भवानी।
दीजै वरदान बुद्धि विद्या वानी।।
आवै सुरताल जो जन धावै।
हो मानस भरपूर शरण शीश नवावै।।[13]

अंबाराम में हमें बाद के सांगों की देवी की स्तुति के दर्शन होते हैं। सांग के प्रारंभ में सांग की सफलता के लिए देवी की स्तुति आज तक अपरिहार्य बनी हुई है।

वंशीधर शुक्ल -

वंशीधर शुक्ल का समय 1600 ई. के आसपास का बताया जाता है। ये पश्चिमी उत्तर प्रदेश से ही संबद्ध थे। इनको पिंगल का ज्ञान था और संस्कृत के ज्ञाता थे। इनका एकमात्र सांग है - 'पद्मावत-रतनसैन'। पद्मावत की कथा कौरवी क्षेत्र

में एक लोकप्रिय कथा रही है। इनका सर्जन दर्शनीय है -

दोहा : सरस्वती को सुमर के गुरु को शीश नवाय।
वंशीधर आधीन पर - दुर्ग होत सहाय।।

चोबोला : आया हूँ शरण मैं तो ज्वाला तेरी।
हुजिये सहाय लाज रखिये मेरी।।
कंठ में विराजो मेरे अब ही ज्वाला।।
दर्शन बिन तेरे उठ रही स्वाला।।

चोबोला : आया बनजारा एक सिंहलद्वीप।
लाया सौगात रतन मोती सीप।
ब्राह्मण एक नाही सग सुआ लाया।
पंडित कविराज वेद शास्त्र मुख से गाया।[14]

वंशीधर शुक्ल ने विद्या की देवी सरस्वती के साथ-साथ गुरु को भी शीश नवाया है। यह गुरु-शिष्य परंपरा के समर्पण और विश्वास का आत्मिक संबंध है। सांग परंपरा में गुरु-शिष्य परंपरा का विशेष महत्त्व है। बीसवीं सदी तक यह सांग परंपरा मौखिक रूप में ही चली आ रही है। मौखिक रूप में सुदीर्घ चलने का मतलब ही यह है कि शिष्य अपने गुरु के संरक्षण में रहकर गीतों को कंठस्थ कर लेते थे। पुनः वे अपने शिष्यों को याद करा देते थे। यह परंपरा बिल्कुल कबीर पंथ की तरह शिष्य-दर-शिष्य इसी प्रकार चलती रहती थी।

पं. बेहूसिंह -

पं. बेहूसिंह का जन्म सहारनपुर जनपद के देवबंद नगर में हुआ था। इनका जन्म 18 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ था।[15] उन्होंने अपने जीवन काल में 40 के आसपास सांग लिखे। ये सहारनपुर के आस-पास बहुत अधिक लोकप्रिय सांगी के तौर पर उभरे थे। डॉ. नवीन चंद्र लोहनी ने उन्हें देवबंद के सांग साहित्य का वेदव्यास की संज्ञा दी है।[16]

पं. बेहूसिंह के वंशज भी सांग परंपरा से जुड़े रहे। इनके पुत्र धूमसिंह ने अपने पिता के सांगों का मंचन किया तथा स्वयं भी कई मौलिक सांगों का सृजन किया। उसके बाद धूमसिंह के पुत्र ज्योतिप्रसाद ने भी सांग के मंचन में बड़ी भूमिका निभाई। 'बेहूसिंह के चौबोलो' की अलग विशेषता थी। इनकी तर्ज औरों से अलग थी। "यद्यपि पं. बेहूसिंह निरक्षर थे पर बहुत ही अद्भुत स्मरण शक्ति के व्यक्ति थे। .

.... आज से पहले सांग निम्न कोटि की कविता थी। जो वासनापूर्ण और अश्लील हुआ करती थी। आपने उसमें परिवर्तन किया और दार्शनिकता का पुट दिया। आपकी भाषा बोलचाल की सरल भाषा थी। आप उसमें उर्दू और फारसी का प्रयोग करते थे।"[17]

आपने लगभग एक दर्जन सांगों का सृजन किया। आपके सांगों के नाम हैं - 'लवकुश, 'भर्तृहरि, 'राजा विक्रम की कहानी, 'चन्द्रभान', 'बैताल पच्चीसी की 11वीं कहानी', 'पूरनमल', 'नवलदे', 'सोरठ का सांग', 'चन्द्रकला', 'रूपकला', 'मदनसिंह' और 'स्याहपोश' ।"[18]

सांगों के नामों को देखकर लगता है कि ये सांग लौकिक कथाओं पर रचित हैं। सांग से पहले उनकी भेंट दर्शनीय है -

दोहा : विघ्न हरन मंगल करन, गिरजा पुत्र गणेस।
अरधंगी गिरजा सहित रच्छा करो महेस।

चौबोला : रच्छा करो महेस आज एक ग़म का लिखूँ फसाना।
चन्द्रकला पै प्रेमसैन दिल से हुआ दिवाना।
उस शमा रूप पर हुआ एकदम दिल उसका परवाना।
उसके इसक में उसने जाकर कुले विराना छाना।"[19]

बेहूसिंह ने 'लवकुश' लोकनाट्य में 'बारहमासा' की रचना भी की है।

उस्ताद मूलराज -

उस्ताद मुलराज भी बेहूसिंह के समकालीन थे तथा उन्हीं के क्षेत्र देवबंद के थे। "इन्होंने लगभग 20 सांग लिखे, जिनका मंचन इनके शिष्यों एवं सहयोगियों ने किया। इनके 'शहजादा बहदर' पद्मावत नामक सांगों ने सर्वाधिक लोकप्रियता अर्जित की।"[20]

किशनलाल भाट -

आविर्भाव काल में सबसे महत्त्वपूर्ण लोकनाट्यकार के रूप में किशनलाल भाट का नाम आता है। लोकसाहित्य के अनेक विद्वान और स्वयं लोकनाट्यकार उन्हें वर्तमान कौरवी लोकनाट्य का जन्मदाता मानते हैं। हरियाणवी लोकसाहित्य के मूर्धन्य विद्वान राजाराम शास्त्री लिखते हैं, "आज से सवा दो सौ वर्ष पूर्व भाट के घर में उत्पन्न किशनलाल नाम के व्यक्ति ने इसका (सांग) आरंभ किया और देखते ही देखते हरियाणा भर में प्रसिद्ध हो गया।"[21]

राजाराम शास्त्री की 'हरियाणा लोकमंच की लोककहानियाँ' पुस्तक सन् 1958 में प्रकाशित हुई थी। 1958 से सवा दो सौ वर्ष का समय 1733 ई. के आसपास पड़ता है। यानि किशनलाल भाट का सृजन और कला प्रदर्शन का समय 1740-50 ई. के आसपास का रहा। राजाराम शास्त्री जी आगे लिखते हैं, "हरियाणा प्रदेश में किशनलाल भाट ने जिस लोकमंच की स्थापना की वह सतत् ज्ञानरंजन करता आ रहा है। इसके उदय के पश्चात् मुजरा और नकल धीरे-धीरे इस प्रदेश में कम होते गये, जिसका कारण थी लोगों की मानसिक स्थिति की अनुकूलता।"[22]

किशनलाल भाट को लोककला एवं लोकरंजन के क्षेत्र में युग प्रवर्त्तक कहा जा सकता है। किशनलाल से पूर्व इसी तरह से मनोरंजन के लिए वेश्याओं के मुजरे और नक्कालों की नकलें ही थीं। वेश्याओं के मुजरे सामाजिक दृष्टि से व्यभिचारपूर्ण और अनैतिकता का वातावरण उपस्थित करता था और हाजिर जवाब 'नक्काल' अपने मेजबान को भी शर्मसार कर देता था। ऐसे वातावरण में किशनलाल भाट लोकप्रिय कथाओं पर आधारित लोकमंच की विधा लेकर उपस्थित हुए तो लोगों ने उन्हें सर आँखों पर बिठा लिया।

कौरवी क्षेत्र के एक सुप्रसिद्ध सांगी पं. माँगेराम ने भी इनकी लोकनाट्य के प्रति प्रतिबद्धता का मूल्यांकन पहले सांगी के रूप में किया है। उन्होंने सांग के इतिहास को लेकर एक रागनी का सर्जन किया है। यह रागनी उन्होंने 1960-67 के बीच रची होगी, क्योंकि 1967 में उनका देहांत हो गया। रागनी की टेक है -

हरियाणे की कहानी सुण ल्यो दो सौ साल की।
कई किस्म की हवा चाली नए चाल की।[23]

इस रागनी में उन्होंने हरियाणा में सांग के वर्तमान रूप के प्रारंभ और उसमें हुए भाषा और शैलीगत बदलावों का वर्णन किया है। रागनी की पहली कली दर्शनीय है-

एक ढोलकिया एक सारंगिया अड़े रहैं थे।
एक जनाना एक मर्दाना दो खड़े रहैं थे।
पन्द्रह सोलह कुंगर जुड़कै खड़े रहैं थे।
गली और गितवाड़्यां के म्हं बड़े रहैं थे।
सबतै पहलम या चतराई किशनलाल की।[24]

पं. माँगेराम अपनी कला का प्रथम पुरुष किशनलाल को मानते हैं।

किशनलाल का महत्त्व इस रूप में भी है कि उनका काम सदियों से चली आई

मुजरा और नकल की आदत में सांग को शुमार करना था। हालांकि उनके बाद भी मुजरा और नकल को कौरवी क्षेत्र से अवसान में दो सौ वर्ष लग गये परंतु इस बीच सांग और इनके बीच खूब संघर्ष चला और अंततः सांग की विजय हुई। "हरियाणा में लोकमंच की दृढ़ता और धीरे-धीरे मुजरों और नकलों की समाप्ति के कारण सामान्य जनता को पिछली दोनों कलाओं (मुजरे और नकल) की मृत्यु पर खेद होना तो दूर किसी को उसका आभास भी न हुआ।"[25]

और एक समय ऐसा आया कि सांग ने उनका पूरी तरह से उनका स्थान ले लिया। अब लोग विवाह, जन्मदिन या सार्वजनिक उपक्रम के कार्यों में सांगियों को बुलाया करते थे।

किशनलाल भाट का जन्म उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले में खेड़ी गाँव में हुआ था।[26] इन्होंने अपने जीवन में अनेक लोकनाट्यों की रचना की। एक अंग्रेज विद्वान सर रिचर्ड कार्नेक टेंपल ने कौरवी क्षेत्र के लोकनाट्यों की दिशा में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने 'द लिजेंड ऑफ पंजाब' नाम से तीन वॉल्यूम में लोकनाट्य की धरोहर को प्रामाणिक रूप में संजोया है। तीसरे वाल्यूम में उन्होंने किशनलाल भाट के निम्न छह लोकनाट्यों का संकलन किया है - 'पिरथीराज और मलकान', 'हरिचंद', 'सरवर और नीर', 'राजा ध्रुव', 'सीसपाल और प्रद्युम्न' तथा 'सीसपाल और किशन'।

किशनलाट भाट ने भावी लोकनाट्यों की विषयवस्तु भी तय कर दी। उनके बाद आने वाले अनेक लोकनाट्यकारों ने इन्हीं कथाओं पर आधारित लोकनाट्यों का सृजन किया। 'हरिश्चन्द्र' की कथा को लेकर तो अधिकांश लोकनाट्यकारों ने लोकनाट्यों का सृजन किया। जब रोहताश को साँप डस लेता है और वह उसे लेकर श्मशान में आती है तो श्मशान का कर वसूलने वाला हरिश्चन्द्र ही था। वह उससे पाँच टके माँगता है। रानी तारा उसकी मिन्नत करती है कि यह मेरा-मेरा बेटा नहीं था आपका भी था। ऐसी मार्मिक घटना का वर्णन दर्शनीय है -

पाँच टके परबत हुए, कौड़ी नहीं पास।
बेटा तेरा मर गया, सुन मेरी अरदास।
येह तो अरदास सुनो, कंथा मेरे।
कैसी अनरीत हुई दिल में तेरे।
पाँच टका, बोल, आप किस से लेता?
मुझ को बेटे को क्यूं ना फूँकन देता?[27]

इनका 'पिरथीराज और मलकान' लोकनाट्य वीर रस से परिपूर्ण है। पारस और मलकान की लड़ाई में पारस की वीरता का दृश्य अद्‌भुत है -

पारस ने धावा किया : ''देख हमारे हाथ!
आगे से नहीं जान दूँ, और दिन से करूँ रात।''
मारे तलवार इक पारस बढ़के।
ढाल पे संभाल लिए आगे बढ़के।
जब तो मुख मोड़ दिया उस का, बीरा।
भूला गीया होश, नहीं धारे धीरा।[28]

'सरवर और नीर' लोकनाट्य में राजा अंब अपनी दानवीरता के कारण अपना सब राजपाट एक जोगी को सौंप देता है तथा स्वयं अपनी पत्नी अमली और दोनों बच्चों सरवर और नीर को लेकर जंगल में निकल जाता है। वहाँ उसके पास जीवन में जो घटित होता है, वह बड़ा दर्दनाक है। पत्नी अमली को एक सौदागर उठाकर ले जाता है। दोनों पुत्र उससे बिछुड़ जाते हैं। वह भी नदी में बह जाता है। संयोग से सांग के अंत में सब मिलते हैं। राजा जब जोगी को सब सौंप देता तो उस समय का वर्णन है -

राजा रानी चल पड़े, लिया गोद में नीर।
सरवर राजा ने लिया, टुक इक बाँधी धीर।
राज पाट तियाग दिया, माया तियागी :
सत की शमशेर लिए रानी भागी!
उस बन को छोड़ और बन में आए :
जो कुछ था कंद-मूल बन में खाए।[29]

निष्कर्ष -

कहा जा सकता है कि इस काल में सांग से पूर्व मनोरंजन की तमाम विधाएँ यथा मुजरा, नकल, बहरूपिया, रूप बदलना आदि सांग के रूप में ढलते चले गये। मध्यकाल में सादुल्ला की ठेठ लौकिक शब्दावली में ओकारांत शब्दों का स्वाभाविक रूप से आना यह दर्शाता है कि इन लोकनाट्यकारों ने लोकप्रचलित शब्दावली में काव्य रचना की है। इन लोकनाट्यकारों ने लोकनाट्य से पहले मंगलाचरण रूप में देवी की वंदना तथा अपने गुरु का स्मरण भी किया है। आविर्भाव काल में लोकनाट्य पूरी तरह से पद्यात्मक रहा। यहाँ रागनी का स्वरूप निर्धारित नहीं हुआ है। पूरी लोकनाट्य रचना दोहों और चोबोला में है। जहाँ अंबाराम, वंशीधर शुक्ल ने चार

पंक्तियों का चोबोला लिखा है, वहीं सादुल्ला ने भी अधिकतर चार पंक्तियों का ही चोबोला लिखा। इस काल में सर्वाधिक लोकप्रिय लोकनाट्यकार किशनलाल भाट ने छह पंक्तियों का चोबोला शुरू किया और वही आगे के कवियों में भी स्थापित हो गया। उसके बाद बंसीलाल ने भी कमोबेश छह अंतरों के चोबोले का ही प्रयोग किया। इन लोकनाट्यों की विषयवस्तु लोक में पहले से प्रचलित कथाओं पर आधारित है। अधिकतर महाभारत के कथांशों पर लोकनाट्यों की रचना हुई है। यथा 'अभिमन्यु वध', 'सीसपाल प्रद्युम्न', 'सीसपाल किशन' आदि। अन्य लौकिक कथाओं पर भी सांग निर्मित्ति हुई है। यथा 'रत्नसेन-पद्मावती', 'शहजादा बहदर', 'पिरथीराज मलकान', 'चंद्रहास' आदि। इस समय सांग को वह प्रतिष्ठा नहीं मिली थी जैसी बाद में मिली। सांग का यह शुरूआती दौर था। इस समय सांग का कोई एक निश्चित मंच नहीं बना था, अपितु कलाकार या सांगी गलियों में घूम-घूम कर कथा का गायन करते थे। केवल एक ढोलक और एक सारंगी आदि साजों से गायन किया जाता था। दर्शकों की संख्या भी पन्द्रह सोलह के आसपास रहती थी। इस समय सांग में केवल एक जनाना तथा एक मर्दाना होता था। एक ढोलकिया तथा एक सारंगी वादक। ये चार पुरुष ही लोकनाट्य का प्रदर्शन किया करते थे। मुजरा तथा नकल की बनिस्पत सांग को वरीयता इसलिये मिलने लगी कि इसकी कथा का गायन धार्मिकता से परिपूर्ण होता था तथा आबाल-वृद्ध एक साथ इसे निस्संकोच देख-सुन सकते थे। किशनलाल ने लोकनाट्य की पूरी कथा के उपरांत ही रचयिता के तौर पर कविता में ही अपना नाम जोड़ा है। इस काल में लोकनाट्य विशुद्ध रूप से मनोरंजनार्थ लिखे गए।

संदर्भ -

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 14

   नगर बाहिरे डोंबी, तोहरि कुड़िया छई।
   छोई जाइ सो बाह्य नाड़िया।।
   आलो डोंबि! तोय सम करिब म साँग। निघिण कण्ह कपाली जोइ लाग।।
   एह सो पदमा चौषट्टि पाखुड़ी। तहि चढ़ि नाचअ डोंबी बापुड़ी।।
   हालो डोंबी! तो पुछमि सदभावे। अइससि जसि डोंबी काहरि नावे।।

2. कबीर वचनावली, अयोध्या सिंह हरिऔध, पृष्ठ 216

कथा होय तहँ स्रोता सोवैं, वक्ता मूंड पचाया रे।
होय जहाँ कहीं सांग तमाशा, तनिक न नींद सताया रे।।

3. जायसी ग्रंथावली, रामचंद्र शुक्ल, पृष्ठ 312
पातुरि एक हुति जोगि स्वाँगी। साह अखीर हुत ओहि माँगी।।
जोगिन भेस वियोगिन कीन्हा। सींगी सबद मूल तत लीन्हा।।
पदमिनी पहँ पठई करि जोगिनी। बेगि आनु करि विरह वियोगिनी।।
4. हिन्दी लोकनाट्य का शैली शिल्प (भारतीय नाट्य साहित्य, सं. डॉ. नगेन्द्र), डॉ. दशरथ ओझा, पृष्ठ 83
5. वही, पृष्ठ 83-84
6. संभावना, लोकसाहित्य विशेषांक, हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, अंक 15-16, जून 1993, डॉ. रामसिंह रावत, हरियाणा का लोकनाट्य - सांग, पृष्ठ 170
7. वही, पृष्ठ 170
8. वही, पृष्ठ 170
9. वही, पृष्ठ 170
10. वही, पृष्ठ 171
11. हरियाणवी लोकनाट्यकार एवं साँगी (जीवन परिचय), डॉ. अनिल गोयल 'सवेरा', पृष्ठ 56
12. कौरवी : लोक कला संस्कृति, डॉ. सुरेन्द्र कौशिक, पृष्ठ 48
13. वही, पृष्ठ 48
14. वही, पृष्ठ 48
15. लोकनाट्य सांग : कल और आज, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, पृष्ठ 33
16. कौरवी लोकसाहित्य, डॉ. नवीन चंद्र लोहनी, पृष्ठ 120
17. खड़ी बोली का हिन्दी साहित्य, सत्या गुप्त, पृष्ठ 316
18. वही, पृष्ठ 317
19. वही, पृष्ठ 318
20. लोकनाट्य सांग : कल और आज, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, पृष्ठ 34

21. हरियाणा लोकमंच की कहानियाँ, राजाराम शास्त्री, पृष्ठ 'घ' भूमिका
22. वही, पृष्ठ 'घ' भूमिका
23. पंडित माँगेराम ग्रंथावली, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, पृष्ठ 116
24. वही, पृष्ठ 116
25. हरियाणा लोकमंच की कहानियाँ, राजाराम शास्त्री, पृष्ठ 'ङ' भूमिका
26. संभावना, लोकसाहित्य विशेषांक, हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, अंक 15-16, जून 1993, डॉ. रामसिंह रावत, हरियाणा का लोकनाट्य - सांग, पृष्ठ 171
27. द लिजेण्ड ऑफ पंजाब, भाग 3, आर.सी. टेंपल, पृष्ठ 84
28. वही, पृष्ठ 43
29. वही, पृष्ठ 103

चौथा अध्याय

बंसीलाल युग

(सन् 1800 ई. - 1850 ई. तक)

प्रस्तावना -

किशनलाल भाट के बाद लोकनाट्याकाश में सबसे महत्त्वपूर्ण नाम बंसीलाल का आता है। किशनलाल के समय की यह उपलब्धि रही कि इस समय अनेक लोकनाट्यकारों ने इस विधा को समृद्ध किया। किशनलाल भाट भले ही मेरठ से थे, परंतु उनके लोकनाट्यों की धूम हरियाणा तक खूब मची। यह समय मुजरा और लोकनाट्य के बीच एक बड़ी विभाजक रेखा खींचने का था, जिसमें लोकनाट्यकार कामयाब भी हुए। लोकनाट्यकारों ने लोक की अध्यात्मिक रुचि के अनुरूप पौराणिक और धार्मिक विषयों पर लोकनाट्यों की रचना की।

बंसीलाल -

बंसीलाल एक प्रतिभा संपन्न लोकनाट्यकार थे। इन्होंने अनेक लोकनाट्यकार थे। इन्होंने अनेक लोकनाट्यों की रचना की। अंग्रेजी विद्वान कैप्टन आर.सी. टेंपल ने 1893 ई. में 'द लिजेंड्स ऑफ पंजाब' पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने बंसीलाल के तीन लोकनाट्य संकलित किए। वे हैं - 'गुरु गुग्गा', 'राजा गोपीचंद' और 'राजा नल'। आर.सी. टेंपल ने बंसीलाल के विषय में लिखा है, "गुरु गुग्गा की कथा जैसा कि हर वर्ष अंबाला जिला के जगाधरी में होली के त्यौहार पर खेली जाती है। इस काव्य का वर्णन करना बहुत कठिन है। स्थानीय भाषा में इसे स्वांग या छंदबद्ध नाटक कहा जाता है और वास्तव में यह देसी लोगों द्वारा खेला जाता है। हालांकि इसमें तीसरे व्यक्ति द्वारा कथात्मक अंश प्रस्तुत किये गए है जो कहानी को समझाता है। दूसरी ओर पात्रों को लगातार वास्तविक नाटक की तरह बिना किसी परिचय के बोलने के लिए कहा जाता है। व्यवहार में पात्र अलग-अलग व्यक्तियों को सौंपे जाते हैं, और

ये अपने वक्तव्य के अंश के रूप में अपने भाग की कथा और व्याख्यात्मक बातें बोलते हैं।"[1]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि होली के त्यौहार पर जगाधरी में हर वर्ष सांगों का आयोजन होता था। गुग्गा का सांग अवश्य किया जाता था। पात्रों के बीच एक तीसरा व्यक्ति (बेड़ेबंद) वार्ता के माध्यम से सांग की कथा को स्पष्ट करता था। सांग के अन्य पात्र पद्यात्मक रूप से गाते थे। 'गुरु गुग्गा' बंसीलाल द्वारा लिखित है और बंसीलाल जगाधरी के आसपास के थे।

बंसीलाल द्वारा रचित गुरु गुग्गा लोकनाट्य का मंगलाचरण दर्शनीय है -

शारदा माता तू बड़ी धरते तेरा ध्यान।
किरपा अपनी कीजिए करो छंद का ज्ञान।
करो छंद का ज्ञान, मात मेरी मन इच्छा वर पाऊँ।
तू है माता बुद्ध की दाता चरणों शीश निवाऊँ।
करो बुद्ध परगास आनके निस दिन तुझे मनाऊँ।
कर हिरदे में बास, सांग गूगे का छंद बणाऊँ।
अरी शाकंभरी माई! तेरी है जोत सवाई।
कहता बंसीलाल आणके करो सहाई।[2]

ध्यातव्य है कि बंसीलाल ने लोकनाट्य के प्रारंभ में देवी की वंदना को एक प्रकार से स्थायी रूप दे दिया जो बाद में लोकनाट्यकारों में हल्के-फुल्के परिवर्तन के साथ इसी प्रकार इसी रूप में देखा जा सकता है। बाद में लोकनाट्यकार (चंद्रलाल बादी) कुछ इस प्रकार मंगलाचरण करते हैं -

आ री भवानी बास कर मेरे घट के परदे खोल।
रसना पर बासा करो माई शुद्ध शब्द मुख बोल।[3]

कैप्टन आर.सी. टेंपल द्वारा लिखी पुस्तक में बंसीलाल के संकलित तीनों लोकनाट्यों की विषयवस्तु लोक में पहले से प्रचलित लोककथाओं पर आधारित है। इसके द्वारा रचित लोकनाट्य लोक में इतने सुप्रसिद्ध हुए थे कि बाद के लोकनाट्यकारों ने इन पर खूब लोकनाट्य रचे। गोपीचंद और राजा नल की कथा तो अत्यधिक लोकप्रिय हुई। बंसीलाल ने लोकनाट्य की विषयवस्तु को तय करने में पर्याप्त हस्तक्षेप किया। गुरु गुग्गा लोकनाट्य के प्रारंभ में बंसीलाल ने अपने गुरु का संकेत भी किया है -

शारदा शीश नवाय के धरूं गणपत का ध्यान।
सांग संपूर्ण कर दिया करो मेरा कल्याण।
करो मेरा कल्याण मात मैं मन इच्छा भर पाया।
जिस दिन मैंने शरण ली है भूले छंद बताया।
सात दीप नवखंड बीच म्हं नहीं पाई तेरी माया।
कहता बंसीलाल मात, गूगे का स्वांग बनाया।[4]

उपर्युक्त काव्यांश से अनुमान लगाया जा सकता है कि इनके गुरु का नाम गनपत था। हालांकि इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता है कि गणपत गणपति का भी लोकरूप हो सकता है। परंतु बाद के सांगों में भी सरस्वती के साथ गणपति (गणेश) को स्मरण करने का चलन बहुत कम है और अपने गुरु का स्मरण आम प्रचलन में है। यह कहा जा सकता है कि इनके गुरु का नाम गणपत ही रहा होगा। हरियाणा लोकसाहित्य के मूर्धन्य विद्वान रघुवीर सिंह मथाना ने भी इसी बात की पुष्टि की है। हालांकि गणपत का कोई लिखित लोकनाट्य नहीं मिलता, परंतु लोकनाट्यकारों के गुरुओं के विषय में यह भी सच है कि यह जरूरी नहीं है कि वे स्वयं भी लोकनाट्यकार ही हों। लोकनाट्यकार आमतौर पर अपनी कला की संपूर्णता के लिए अपने समय के किसी भी सुप्रसिद्ध या सात्विक प्रवृत्ति वाले व्यक्ति को अपना गुरु बना लेते थे।

लछमन गीर -

लछमन गीर को लक्षमण गिरि भी कहते हैं। गिरि का लोकरूप गीर है। और लक्ष्मण का लछमन। इनकी प्रामाणिक जीवनी व साहित्य उपलब्ध नहीं हो सका है।

लछमन गीर कौरवी क्षेत्र के सुप्रसिद्ध लोकनाट्यकार सेढू के गुरु थे। डॉ. विक्रमसिंह का कहना है, “संवत् 1892 (सन् 1835 ई.) को सेढू सिंह का देहांत हुआ, तब उनकी आयु 90 वर्ष की थी। अतः उनका जन्म सन् 1745 ई. ठहरता है। लक्ष्मण गिरि उनसे एक पीढ़ी पहले थे। अतः पीढ़ियों के 20 बर्ष के अंतराल को मानते हुए और ज्ञान के अस्फुट बोलों को उसी उम्र से मानकर यदि परिपक्वता की अवस्था में 10 वर्ष और जोड़ लें तो निश्चित रूप से ई. 1755 में लक्ष्मण गिरि काव्य सृजन के लिए प्रसिद्ध हो गए होंगे। 5 वर्ष के अनुमानित समय का लाभ 25 वर्ष की पहली ब्रह्मचर्य आश्रम की साधना को अर्पित करते हुए कहा जा सकता है कि कौरवी का पहला जनकवि 1750 ई. में विद्यमान था।”[5] गिरि हापुड़ के चौराखी मंदिर में निवास करते थे।

लछमन गीर की शिष्य प्रणाली में अनेक लोकनाट्यकार हुए जिन्होंने कौरवी लोकनाट्य के शुरुआती दौर में इसे खूब समृद्ध किया। इस प्रणाली में लोकनाट्य की अजस्र धारा प्रवाहित हुई जो आज तक इसे पुष्पित पल्लवित कर रही है। सेढ़ू सिंह के शिष्यों में लछमन सिंह (मऊ खास), फूलसिंह (नंगला), घासीराम (भटीपुरा), मीरदाद (हापुड़), विष्णुदास आदि हुए। जिनका आगे के अध्यायों में परिचय दिया जाएगा। खचेड़ूदास व सगुवासिंह ने भी लोकनाट्य को पर्याप्त प्रसिद्धि दिलाई। ये भी इसी प्रणाली में आते हैं। जिठोली के शंकरदास इस प्रणाली के सशक्त लोकनाट्यकार साबित होते हैं।

इन्द्र शर्मा 'वारिज' ने इनको पूर्व शंकरयुग प्रवर्तक माना है।[6] (लोकनाट्य सांग, खंड 42) ये भजन गाते थे। इनके भजनों में आध्यात्मिकता और ईश्वर स्तुति होती थी। इनका साहित्य अब अनुपलब्ध है।

सेढ़ू सिंह -

सेढ़ू सिंह कौरवी लोकनाट्य में एक मील का पत्थर साबित हुए। इनकी कविताई ने बाद के लोकनाट्यकारों और कवियों के लिए पथ-प्रदर्शक का काम किया। इनका जन्म सन् 1745 ई. में हुआ।[7] सेढ़ू सिंह लोककवि तत्कालीन क्षेत्रीय जनता में अत्यधिक प्रचलित थे। क्षेत्रीय जनता सेढ़ू सिंह को अपने युग का एकमात्र जनकवि घोषित करती है, जिसने लगभग 65 वर्षों तक नीति, धर्म, आदर्श की शिक्षा क्षेत्रीय जनता को दी। ये लछमनी गीर के शिष्य थे। उनके शिष्य फूल सिंह नंगला ने अपने गुरु का परिचय कुछ यूं दिया है-

सजन म्हं सेढ़ू सिंह कहे हैं, हनन म्हं हापुड़ बीच रहे है।
चनन म्हं तेरे चरण गहे है, पत्तन म्हं करता फूल।।[8]

लोकनाट्यकार चंद्रलाल बादी भी सेढ़ू की ही प्रणाली से थे। वे भी अपनी कविताई से उनका स्मरण करते हैं।

सेढ़ू के चेले लक्ष्मण, लक्ष्मण के शिश गोपाल हुए।
गोपाल के शंकरदास फिर।[9]

इस प्रकार सेढ़ू सिंह का नाम कौरवी लोकनाट्य में अति श्रद्धा से लिया जाता है। यद्यपि सेढ़ू सिंह के अधिकांश लोकनाट्य अब अप्राप्य हैं तथापि उनके शिष्यों की कविताई में आया उनका श्रद्धापूर्वक स्मरण उनकी महत्ता को सिद्ध करता है।

मीरदाद -

मीरदाद का जन्म पिता वलीदाद तथा माता कलसुमन के घर हापुड़ उत्तर प्रदेश में हुआ था। इनके गुरु सेढूसिंह थे। अपने गुरु के बारे में ये लिखते हैं

सेवा से सेढू हापुड़ म्हं बहुत बड़ा उस्ताद किया।
लख चौरासी जून जिया मैं सुरपुर आबाद किया।
मीरदाद को कवि बनाया ससुरों को बरबाद किया।
अपने एक बंद के संग और दूजा हमनाद किया।
रोज कयामत परलो आखिर करता है संहार तू ही।[10]

मीरदाद मुस्लिम थे परंतु सभी धर्मों का सम्मान करते थे। वे मनुष्य की मनुष्य के रूप में पहचान मानते थे। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी में वे एक ईश्वर को देखते थे -

नवातात म्हं व्यापक तू है पशु पक्षी हैवानों म्हं।
कबरों म्हं भी तेरा नाम है, जंगल और चिवानों म्हं।
सात द्वीप नौ खंड जिलों म्हं तहसीलों के थानों म्हं।
मुसलमान और हिन्दू तू है सबके दीन ईमानों म्हं।
मंदिर मस्जिद गिरजाघर म्हं त्रिलोकी सरदार तू ही।[11]

इनके गुरु सेढू मुसलमान तगा थे और हापुड़ के ही रहने वाले थे। अपने गुरु का परिचय उन्होंने इस प्रकार दिया है -

सेढू का घरियाना ढूंढ़ो मेरी बात को रखना याद।
मुसलमान दस्यान तगा है पूरे ऋषियों की औलाद।
अपने आप बरजना दिल को नहीं किसी से बैर विवाद।
हापुड़ के अंदर रहता है दौड़ कर जोड़ कहे मीरदाद।
झूठी बात नहीं एक तिल भर नहीं भ्रम का इसमें जात।[12]

मीरदाद ख्यालों में उनके अपने समय की झलक मिलती है। लोगों का चरित्र उनकी कविताई में साकार हुआ है -

जग से दान आलोप हुआ अब मतमतांतर सब हारे।
व्याधी बदी और गिलानी शोक बली आ ललकारे।
कलियुग म्हं सेवक बहुत हुए है धरती पै फिरते लारे।
हली पाप के बोझ से धरती अंबर से टूटे तारे।
दुराचारी और अधरमी मां बाप की हत्या करे।

नहीं वेद शास्त्र जानते जो ब्राह्मण के घर जन्म धरे।
हुए अघोरी और दिलद्दरी धरम को बेचने लगे।
मेल गैरों से करें बैरी बने असली सगे।
द्विज संस्कार नहीं करते और नींव पाप की धरते।
न्यूं ही क्षत्री रण से डरते और घड़ा पाप का भरते।
वैश्य करे पालन नहीं, मुसलमान लें ब्याज।
आँखों म्हं से घट गई, हया शर्म बड़ों की लाज।
बढ़ गया झूठ और बेईमानी रब का हुकम छिपाया है।
इस कलियुग का जन्म बनाके मन अपना समझाया है।[13]

कवि मीरदाद ने भारतीयों की फूट और बैर का यथार्थ चित्रण अपनी कविताई में किया है। ख्याल सवाल जवाब में मीरदाद जी ने आध्यात्मिक और दार्शनिक प्रश्नों को उठाया है। कवि ने विरोधाभासी चीजों पर चिंतन किया है -

अगर कहो वह समदर्शी है फिर क्यों दीने जुल्म गुजार।
एक को कर दिया छतारधारी एक को लियो फिरै कहार।
अगर कहो भक्ति का घर है तो रिश्वत का ख्वाहिशगार।
अगर जरूरत रोग की थी तो फिर क्यों रची दबाई जी।[14]

कवि ने एक ख्याल 'ख्याल मीरदाद के मरने के वक्त का' भी लिखा है और इस ख्याल में वे अपने सगे संबंधियों को ताकीद करते हैं कि उनके मरने के बाद क्या कुछ करना। यहाँ भी कवि की धार्मिक उदारता काबिलेगौर है। वे लिखते हैं -

कर जोड़े की मेरी मीनती इतना कहन बजा देना।
राड़ भीड़ का काम नहीं सब मन अपना समझा लेना।
हिन्दू मुस्लिम सब मुड़ मिलके जनाजे को उठवा लेना।
जहाँ कबर और चिता होयना वहां मुझे गड़वा देना।
घोर अंधेरा दीख रहा मेरे आगे कुआँ पीछे खाई।
जो कोई मेरा चेला लावे पगड़ी भी चढ़वा देना।
फैय्याज बेटा मेरा सगा है इसे हक्क दो दिलवाई।[15]

मीरदाद के ख्याल आधुनिक लोकनाट्यों का पूर्व रूप हैं। इनके ख्याल तत्कालीन व्यवस्था को झकझोरते हैं। इनके ख्यालों में रागनी का प्रारंभिक रूप दिखाई देता है। एक ख्याल की चौथी कली में अपना परिचय उन्होंने इस प्रकार दिया है

गुरु सेढू हो गए दूर तक नामी।
उनकी कविताई म्हं नहीं पाई है खामी।
मघा सिंह ले समझ पेड़ मेरा बड़ है।
मैं मुसलमान हूं तगा ब्राह्मण जड़ है।
मैंने भज भूत भूतनी झोंक दिए भट्ठी म्हं।
हापुड़ कै अंदर रहूं भिंडा पट्टी म्हं।
शागिर्द मेरी कविताई को गाते हैं।
दंगल म्हं मंगल मूल मजा पाते हैं।
सौ लाठी तेरी मीरदार का एक सोटा है।[16]

सेढू के शिष्यों में मीरदाद एक उत्तम कोटि के कवि हुए हैं।

पं. रेवानंद -

पं. रेवानंद का जन्म गाँव थानाभवन जिला शामली उत्तर प्रदेश में हुआ था। लोकनाट्यकार ने अपना परिचय यूं दिया है -

मेरी सुन बिनती, तेरी करता हूँ कर जोड़।
हंस बाहनी शारदा, मेरी निभावो ओड़।
मेरी निभावो ओड़ ज्ञान गुन की दाता।
औगन तकसीर माफ करियो माता।
मुझ अर्जी बंदे की करो पूरन आसा।
मैं बरदा बेमोल तेरे दर्शन दासा।
मुझ आजिज बंदे की करो पूरन बानी।
मैं राजा कारक की कहूं बिपत कहानी।
ब्राह्मण हूँ जात नाम कहते रेवा।
थाने भवन बीच करूं तुमरी सेवा।[17]

इनका एक लोकनाट्य मिलता है - सांगीत राजा कारक का। यह लोकनाट्य मुख्यतः दोहा, चौपाई और मुकताल में रचित है। इसमें रागनी रूप में दो बार शब्द आया है परन्तु वह रागनी के वर्तमान रूप जैसा नहीं है। वह रागनी एक टेक व एक कली की है।

लोकनाट्य का यह रूप शंकरदास से पहले का है। प्रकाशित गुच्छा बाद का हो सकता है। राजा कारक लोकनाट्य को पं. रेवानंद ने बहुत ही मार्मिक ढंग से

लिखा है। इसमें एक बाल विधवा की असहायावस्था कदम-कदम करुण रस से सराबोर करती है।

जल्लाबाद राज्य का राजा केसरी सिंह खुशहालीपूर्वक राज कर रहा था। उसकी बेटी सांवलदे विवाह योग्य हो जाती है। पत्नी के कहने से वह ब्राह्मण को उसके योग्य वर ढूँढ़ने के लिए भेज देता है। वह दिल्ली के राजा धर्मपाल के लड़के कारक को उसके योग्य पाता है। ब्राह्मण की मध्यस्थता में विवाह संपन्न हो जाता है। जब बारात जाने लगती है तो केसरी सिंह प्रार्थना करके कारक को कुछ दिन के लिए रोक लेता है। कारक व सांवलदे जब विदा होकर जंगल से गुजर रहे थे तो कारक ने देखा कि एक चील एक साँप को अपनी चोंच में दबाकर ले जा रही है तो कारक चील पर बाण चला देता है। चील के मुख से साँप छूटकर एक पेड़ पर टंग जाता है। उसी पेड़ पर कारक का बाण था। पत्नी साँवलदे के लाख मना करने पर वह अपना बाण लेने उसी पेड़ पर चढ़ जाता है तो साँप उसे डस लेता है। पति की यह हालत देखकर साँवलदे के होश हवास खो जाते हैं। वह कहती है -

कि बिधना न्यो ही बिचारी, विपता करता ने डारी।
लीली कर लूं पीट-पीट के काया सारी।[18]

इसके बाद कारक व साँवलदे का बारमासा शैली में लंबा संवाद चलता है। साँवलदे मासानुसार अपनी पीड़ा जताती है तथा कारक उसका समाधान बताता है और धैर्य, संयम, नैतिक जीवन जीने की सलाह देता है। साढ़ के महीने में साँवलदे का विरह दर्शनीय है -

साढ़ मास मत बिछड़ियो देत कोकला हूक।
मुझ बिरहन की देह म्हं उठे ब्रह (विरह) की हूक।
विरह की हूक उठे काम सतावे।
तुम बिन तो सेज पीया नाहीं भावे।
काली घटा देख कूक कोयल मारे।
वे दामनी की दमक मारे सीस उतारे।[19]

बारहमासा समाप्ति पर कारक उसे सुझाता है -

मन को तुम मार तन को बस म्हं कीजो।
इस जोबन को फूँक जोग मारग लीजो।
रखियो ईमान धर्म अपना रानी।
इस विपता की काट देगी आदम बानी।[20]

बारह वर्ष की साँवलदे सोचती है कि उसे तो कोई पुत्र भी नहीं है, जिसके सहारे वह भावी जीवन बिता लेगी। वह अपनी बांदी के साथ पति की लाश को लेकर अपने पिता के पास जाती है तो वे उसे घर में घुसने नहीं देते। उसके बाद वह अपनी ससुराल जाती है तो धर्मपाल (ससुर) भी उसे अपशकुन मानकर भगा देता है। वह अपने पति की लाश लेकर जंगल में आ जाती है तथा धनवंतरी को दिखाती है तो धनवंतरी दवाई द्वारा उसे निरोग कर देता है। इस प्रकार यह एक सुखांत लोकनाट्य है।

इस लोकनाट्य में एक बारह वर्ष की लड़की के ऊपर दुखों का पहाड़ टूटता है परंतु धैर्य के साथ वह उनका सामना करती है। पूरा लोकनाट्य 136 दोहा चौपाई में है।

निष्कर्ष -

इस काल में लाला सुल्लामल, विष्णुदास, गोपाल सिंह, बख्शीदास, भगीरथ आदि लोकनाट्यकारों ने भी अपनी लोकनाट्य कला का लोहा मनवाया। इस काल में रागनी पूर्ण रूप से स्थापित नहीं हुई थी परंतु अपनी संरचनात्मक उपस्थिति उसने दर्ज कर दी थी। बंसीलाल ने एक भी रागनी की रचना नहीं की। परन्तु भावी रागनी और समाज संरचना का मार्ग प्रशस्त किया। 'होली' एक प्रकार से वर्तमान सांग संरचना का पूर्व रूप ही है। इस काल के अधिकांश लोकनाट्यकार 'होली' लिखते थे। तत्कालीन विद्वान आर.सी. टेंपल लोक साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान थे। उन्होंने लोकनाट्य का जो प्रलेखीकरण किया वह अद्भुत और कौरवी लोकनाट्य का इतिहास लेखन का एक अद्भुत दस्तावेज बन गया है। उस काल में उनकी शिद्दत ने अनेक लोककवियों को ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त करवाया। ध्यातव्य है कि बंसीलाल का लोकनाट्य 'गुरु गुग्गा' जगाधरी में होली के अवसर पर ही खेला जाता था। उत्सव होली का लोकविधा होली से इस प्रकार अटूट संबंध बन जाता है। बंसीलाल के लोकनाट्य मेरा-हापुड़ के लोक कवियों की होली के अधिक नजदीक है।

यह भी आश्चर्यजनक है कि बंसीलाल के लोकनाट्यों ने ब्रिटिश अध्येता को आकर्षित किया था और उन्होंने इनके तीन लोकनाट्यों का प्रलेखीकरण किया। अन्यथा ये मौखिक परंपरा में ही विलुप्त हो जाते। स्वयं बंसीलाल के बाद भी अनेक लोकनाट्यकार लोक साहित्य अध्येताओं की अरुचि व शिद्दत की अनुपस्थिति में विलुप्त हो गए।

संदर्भ -

1. हरियाणवी सांग : एक परिशीलन, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, सेक्टर 14, पंचकूला, प्रथम संस्करण 2021, पृष्ठ 130
2. वही, पृष्ठ 130
3. सांग सम्राट चंद्रलाल बादी ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पी-16, सेक्टर-14, पंचकूला-134113 (हरियाणा), प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ 15
4. हरियाणवी सांग : एक परिशीलन, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, सेक्टर 14, पंचकूला, प्रथम संस्करण 2021, पृष्ठ 131
5. कौरवी लोक साहित्य, डॉ. नवीन चंद्र लोहनी, भावना प्रकाशन, 109-ए, पटपड़गंज, नई दिल्ली - 110091, द्वितीय संस्करण 2016, पृष्ठ 64
6. वही, पृष्ठ 63
7. वही, पृष्ठ 64
8. लोकनाट्य सांग : कल और आज, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, पृष्ठ 30
9. सांग सम्राट चंद्रलाल बादी ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पी-16, सेक्टर-14, पंचकूला-134113 (हरियाणा), प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ 6
10. मीरदाद के ख्याल, चौ. मीरदाद हापुड़, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ, तीसरा संस्करण 1985, पृष्ठ 2
11. वही, पृष्ठ 1
12. वही, पृष्ठ 3
13. ख्याल-पकड़, चौ. मीरदाद हापुड़, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ, तीसरा संस्करण 1985, पृष्ठ 6
14. मीरदाद के ख्याल, चौ. मीरदाद हापुड़, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ, तीसरा संस्करण 1985, पृष्ठ 12-13
15. वही, पृष्ठ 19
16. वही, पृष्ठ 20
17. सांगीत राजा कारक, पं. रेवानंद, पृष्ठ 1
18. वही, पृष्ठ 10
19. वही, पृष्ठ 15
20. वही, पृष्ठ 18

पाँचवाँ अध्याय

शंकरदास युग

(सन् 1851 ई. - 1912 ई.)

प्रस्तावना -

कौरवी लोकनाट्य उत्तरोत्तर लोकप्रियता हासिल करता चला गया। शंकरदास युग में आकर लोकनाट्य ने सभी लोकविधाओं में अपनी एक अलग पहचान बना ली। लोक में भी यह उसके मनोरंजन की प्रतिनिधि विधा स्थापित हो गई। अनेक प्रणालियाँ चल निकलीं। लछमन गिर की प्रणाली में अनेक लोकनाट्यकार हुए और आगे शंकरदास की एक नई प्रणाली चल निकली जिसमें आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ सांगी हुए।

शंकरदास युग का महत्त्व इस रूप में भी है कि इस युग में सांग का संरचनागत ढाँचा पूरी तरह बदल गया। जहाँ पहले चौमोलों, मुकतालों और दोहों में लोकनाट्य रचना होती थी, वहीं इस युग तक आते-आते एक नई लोकप्रिय विधा रागनी का उसमें समावेश हो गया। जिस 'रागनी' की शुरूआत शंकरदास ने की थी, वह आगे चलकर लोकनाट्य की सबसे लोकप्रिय विधा बनी। हालांकि शंकरदास युग में हमें चौकलिया और चार अंतरों की ही रागनी दिखाई देती है और उसके बाद रागनी के उत्तरोत्तर विकास में उसके कई रूप होते चले जाते हैं। छकलिया, एक बोल, डेढ़ बोल, दो बोल, ढाई बोल, छोटी तर्ज, तीन अंतरे, चार अंतरे, लंबी दौड़ की रागनियों का सृजन होने लगा। परन्तु रागिनी का प्रारंभ शंकरदास से हुआ।

ध्यातव्य है कि यह समय प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का है और इसका केन्द्र मेरठ भी कौरवी क्षेत्र में ही पड़ता है। महराजा रणजीत सिंह (1780-1839) की मृत्यु के बाद 1845 में प्रथम सिख युद्ध हुआ। (1848-49) के द्वितीय सिख युद्ध के फलस्वरूप पंजाब पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।[1] बाद में अवध पर भी अंग्रेजों

का अधिकार हो गया। इस युग की सबसे बड़ी राजनीतिक घटना के तौर पर 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम को देखा जा सकता है। जिसने लोक के हर क्षेत्र को झिंझोड़ कर रख दिया।

शंकरदास -

शंकरदास का जन्म सन् 1833[2] में मेरठ-गढ़गंगा मार्ग पर स्थित मुरलीपुर के निकट जिठौली ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम कल्याण सिंह था।

ख्यालीदत्त के पुत्र हुए कल्याण सिंह जी महाराज,
जिनके गृह शंकर हुये, हरिजन संत समाज।[3]

इनकी माता का नाम दान कौर था।[4] इनके गुरु गोपालचंद (सिसौली) थे। इन्होंने अपना परिचय कुछ यूं दिया है -

मेरठ से दिशा पूरब को गढ़ गंगा की सर्ड़क रहती है जारी।
काली नदी पुल लोहे का है सुठि जासों कोशेक है गाँव अगारी।
मूरलीपुर के पास जिठौली सो राजपूत बसैं पांडौं कुल भारी।
जिसमें कवि शंकर बास करै पछिया नै है ठोठ अनारी।[5]

इनकी रचनाओं में प्रमुख हैं - 'ब्रह्मज्ञान प्रकाश', 'आयुर्वेद भाषा सार', 'महाभारत भाषा भीष्म पर्व', 'सलोचन सती', 'मुक्ति प्रकाश' (चौथा भाग), 'लंका चढ़ाई के भजन', 'असली होली' 'राजा मोरध्वज व जैमनु अश्वमेध की', 'बुद्धि प्रकाश', 'धर्म सनातन', 'भजन जैमना अश्वमेध', 'नाशिकेत', 'सिया स्वयंवर', 'ज्ञानदीप प्रकाश' (दूसरा भाग), 'भजन कृष्ण जन्म के', 'रुक्मणी मंगल', 'भजन शब्द वेदांत' (चार भागों में)। इनके साथ-साथ कुछ मौखिक रूप में भी इनकी रागनियाँ मिलती हैं।

इस समय भारतीय समाज अपनी मार मर रहा था। कवि शंकरदास (1833-1912) के समय का समाज रूढ़िगत और भाग्यवादी था। ''आर्थिक विपन्नता यद्यपि उस समय उतनी नहीं थी, परन्तु रूढ़ियों और परंपराओं के कृत्रिम पालन करने में ही वह दलित होता जा रहा था। पंडितों और ओझाओं ने अमीर-गरीब सबको अपनी मुट्ठी में कर रखा था। उनके मुहूर्त्त और शकुन के बिना कोई व्यक्ति कुछ कार्य ही नहीं कर सकता था।''[6]

ऐसी सामाजिक स्थिति में जकड़े हुए समाज को कोई भी गुलाम बना सकता था। सामाजिक और राजनीतिक रूप से चारों ओर अराजकता का माहौल था। 1857

की स्वतंत्रता की पहली क्रान्ति के बाद अग्रेजों का दमन-चक्र और भी बढ़ गया था। कवि शंकरदास ने उस समय के पाखंडियों, ठगों और मठधारियों का पर्दाफाश किया है -

माया ठगियों ने विस्तारी, बस रहे ग्राम-ग्राम मठधारी।
बस में किये सब नर-नारी, शंकर सोच करे नित भारी।
धर्म हारे कर्म वियोग है, सब अपने करत भले जी।[7]

कवि शंकरदास ने भूत-प्रेत, बलि का खुलकर खंडन किया है।

सब भूले लोग भ्रम में, बकरे मुर्गे सैनक देते।
मुए हुए से परचे लेते, बिन विद्या मूर्ख नहीं चेते।
क्या कीजै तदबीर, सुन सुन चुप हुए शरम से।
सब भूले लोग भरम में।[8]

इनकी निम्न दो रागनियाँ तो लोक में बेतहाशा प्रसिद्ध हुई -

1. धन, जोबन और काया रै नगर की।
   कोय मत करो है मरोड़।[9]

2. सब पढ़ी पढ़ाई धूल है।
   जो पढ़कर अमल किया ना।[10]

सन् 1875 में स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपनी पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' के साथ ही आर्य समाज का गठन किया। वैसे तो आर्य समाज एक हिन्दू सुधार आन्दोलन था, परन्तु उस समय सनातनी परंपराओं को मानने वालों को यह सुधार आन्दोलन अच्छा नहीं लग रहा था। फलतः उन्होंने इसका खुलकर विरोध किया। ठगों और पाखंडियों का विरोध करते हुए भी शंकरदास आर्य समाजियों के विरुद्ध डटकर खड़े हो गये। उन्हें लग रहा था कि आर्य समाज सनातन धर्म को नष्ट-भ्रष्ट कर देगा। ये उन्हें 'ऊत' की संज्ञा देने से भी नहीं हिचकिचाये -

मचा बड़ा शोर दुनिया में, धर्म की हो रही हानि।
बंद किये तीर्थ और पूजन, ऊतों को क्या लगी सूझन।
समाजी हो गये हठधर्मी, छाई दुनिया में बेशर्मी।[11]

शंकरदास के लोकनाट्यों में खास बात यह रही है कि इन्होंने रागनी के वर्तमान रूप की नींव रखी। इन्होंने अधिकतर चौकलिया रागनियों में पूरे लोकनाट्य की रचना की। चौथी कली में इन्होंने अपना नाम किसी ना किसी अंतरे में जोड़ दिया है। चौथी कली में अपना नाम जोड़ना 'छाप' कहा जाता है।

शंकरदास युग से पहले कवि या लोकनाट्यकार लोकनाट्य के अंत में किसी पद्य में अपना नाम जोड़ते थे। किशनलाल भाट और बंसीलाल की रचनाओं में हम देख चुके हैं। हालांकि इस काल में भी कुछ ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने दोहों और चौबोला में लोकनाट्य की रचना की है।

महात्मा गंगादास -

महात्मा गंगादास का नाम लोकनाट्य के क्षेत्र में विशेष सम्मान से लिया जाता है। इनका "जन्म दिल्ली-मुरादाबाद राजमार्ग पर स्थित बाबूगढ़ छावनी के निकट गाँव रसूलपुर (वर्तमान जिला गाजियाबाद) में सन् 1823 ई. की बसंत पंचमी को हुआ था। इनके पिता चौधरी सुखीराम मुण्डेर गौत्र के जाट और एक बड़े जमींदार थे। संत गंगादास की माता का नाम दाखा था जो बल्लभगढ़ के निकट दयालपुर की रहने वाली थी।"[12] इनके गुरु का नाम विष्णुदास था जो उदासी संप्रदाय से थे। इनका पहले गंगाबख्श नाम था। दीक्षा लेने के बाद गुरु ने इन्हें गंगादास नाम दे दिया गया। ऐसा माना जाता है कि इन्होंने ही 18 जून, 1858 को झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का दाह संस्कार किया था।[13]

इन्होंने अनेक लोकनाट्यों की रचना की थी जिनमें से प्रमुख है - 'पूरण भक्त', 'ध्रुव भक्त', 'कृष्ण जन्म', 'श्रवण कुमार', 'नल पुराण', 'रामकथा', 'सुदामा चरित', 'नागलीला', 'महाभारत पदावली', 'बलि के पद', 'रुक्मणी मंगल', 'प्रहलाद भक्त', 'चंद्रवती नसिकेत', 'पार्वती मंगल', 'भ्रमर गीत मंजरी' आदि। इसके अतिरिक्त भी उनका काफी साहित्य है। गंगादास की खासियत यह थी कि उन्होंने अपने समय की अनेक सच्चाइयाँ यथार्थ रूप में लिखी हैं। ब्रिटिश शासन की कुव्यवस्था का विरोध करते हुए उन्होंने लिखा -

चोरों की इस वक्त पर बरत रहे तप तेज।
भूप दंड देते नहीं भई पाप की मेज।
भई पाप की मेज कचैड़ी लोभी जानो।
नीति तज गई देस पाप भय सवै समानो।
गंगादास कहै मुख काले रिश्वतखोरों के।
हाकिम लोभी करै बरी दावे चोरों के।।[14]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि गंगाराम ने तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्रण किया है।

गंगादास के लोकनाट्य उस रूप में व्यवस्थित नहीं है जिस रूप में उनके समकालीन कवि शंकरदास के थे। उनमें कहीं-कहीं कथा का अभाव-सा भी प्रतीत होता है। इन्होंने अनेक भक्तिपरक फुटकर भजन भी लिखे। जिस कारण लोग इनको भक्त या संत भी कहते हैं। इनका प्रबोधन का पद दर्शनीय है -

सनम तेरे दरशन की प्यास।
राजपाट धन माल ना चाहिए, ना सुख भोग विलास।
जो पिया मिलें यही वर माँगू, बसो हमारे पास।
तुम व्यापक परिछिन्न जगत म्हं करते सर्व निवास।
मैं जड़ क्यूं रह गई बताओ, जहां सदा परकास।
जल तरंग दो होत कभी ना, एक रूप है खास।
माटी बिन घट के ना जैसे, उत्पत्ति और नास।
दरशन दीजो अब सुध लीजो, लगी पदम पद आस।
गढ़ गंगा पर बैठ बनाए, यह पद गंगादास।[15]

शंकरदास की तरह इनकी भी शिष्य प्रणाली में अनेक लोकनाट्यकार हुए।

इन्होंने छापकटैयों की भी निंदा अपनी रचनाओं में की है। इससे इस बात का पता लगता है कि इस समय भी साहित्यिक चोरी का डर कवियों को था। वे लिखते हैं -

कवि जनों के छंद चुराकर। गावैं अपना नाम लगाकर।
मांगे भिक्षा देश में जाकर। इस झूठी उस्ताजी से।
सठ करते फिरैं अंघाई।[16]

इनका देहांत सन् 1913 में हो गया।

हीरादास उदासी -

हीरादास उदासी के जीवन काल का कुछ पता नहीं चलता है परंतु उसका एक लोकनाट्य 'सांग रतनसैन राजा का' हरियाणा साहित्य अकादमी से वर्ष 1975 में प्रकाशित हुआ। इसके संपादक पं. स्थाणुदत्त शर्मा हैं।[17] उन्होंने इस सांग में कवि के विषय में आई कुछ टिप्पणियों के आधार पर उनके जीवन के बारे में कुछ संकेत निकाले हैं, यथा ''अतःसाक्ष्यों से स्पष्ट है कि इस ग्रंथ का लेखक हीरादास था। लेखक उदासी संप्रदाय का साधु है। 'भानीदास उस्ताद बेग मेरी करो सहाई' ग्रंथ के अंत साक्ष्यों को छोड़कर लेख के विषय में अन्य जानकारी नहीं मिलती।''[18] इस सांग

की भेंट में इसके रचनाकाल का अवश्य पता लग जाता है -

माता मनसा मनो के, कर कारज नित रोज।
लेत हुक्म उस्ताद का, देख्या मास असौज।
मौज में लगे अस्तुति गावन।
संबत उन्नीसै इकीसवां जुमेरात त्रयोदसी जामन।
रतनसैन चातौड़ बीच नित बैठे न्याव चकावन।
जिसका सांग करै मुख बरनन हीरालाल बरामन।।[19]

इस भेंट में कई बातों का पता चलता है कि इसका मंचन संवत् 1921 की शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी तिथि और वीरवार को हुआ। अपने गुरु की आज्ञा से हुआ तथा हीरालाल का वर्ण ब्राह्मण था। संवत् 1921 की कालगणना ईश्वी सन् में करे तो 1866 ई. बैठती है। यदि मंचन सन् 1866 में हो रहा है तो इसकी सृजन जरूर पाँच-सात साल पहले हुआ होगा। इसमें सबसे पहली भेंट में किसी मोतीराम के मरने की बात है।[20] लाडवा में चौदस का मेला भरने का भी जिक्र है। यह सांग जरूर लाडवा में चौदस के मेले में मंचित हुआ होगा। क्योंकि मेलों में सांग-मंचन की परंपरा अभी तक विद्यमान है।

इस सांग में रतनसैन और पद्मावती की लौकिक कहानी को सुनियोजित क्रमानुसार रचा गया है। पूरे सांग के दो भाग किये गये हैं - 'सांग रतनसैन राजा का' तथा 'सांग भूरे बादल का'। पूरे सांग को 23 शीर्षकों में बाँटा गया है। अंतिम भाग है, 'रतनसैन पद्मावत पुनर्मिलन'। शिल्प की दृष्टि से इस सांग को देखें तो यह दोहा चौबोला और बारामास में रचित है। कहीं भी चौकलिया रागनी नहीं मिलती। अरबी, फारसी और पंजाबी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। राजा रतनसैन के दीवान अभैराम का युद्ध के समय रौद्र रूप दर्शनीय है -

तेग तमंचे बरछियाँ सभ के हाथ कुमान।
गौरी-स्या के जंग है बड़े मुगल बलवान।
राव जी सुनो बचन ये मेरा।
पाँच सात दस बीस कदम तुम, तुम करो अपना डेरा।
मेखजीन दारू गोला है तुमरे पास भतेरा।
लिखा जौन विधि नै नहिं हटने का कर दो जाग सबेरा।।[21]

'सांग रतनसैन राजा का' में वार्ता नहीं है। जो पुस्तक प्रकाशित हुई है उसमें संपादक ने अपनी ओर से कथा से संबद्धता दिखाने के लिये डाल दी। इस समय

वार्ता का चलन नहीं था।

हीरादास के इस सांग की रंगत, शैली, शब्दावली, प्रवाह और विषयवस्तु को देखते हुए निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उन्होंने जरूर और भी लोकनाट्यों की रचना जरूर की होगी परंतु अब वे काल के गाल में समा गए हैं।

ताऊ सांगी -

ताऊ सांगी कौरवी क्षेत्र में अंबाला से संबद्ध हैं। कौरवी क्षेत्र में कोई भी व्यक्ति अपने पिता से बड़े किसी भी व्यक्ति के लिये 'ताऊ' शब्द का प्रयोग कर लेता है। भाषा विभाग, हरियाणा, चंडीगढ़ द्वारा रचयिता 'ताऊ सांगी' के नाम से 1978 में एक सांग 'रुक्मिणी विवाह' प्रकाशित हुआ, जिसका संपादन साधुराम शारदा ने किया है। ओ.प्र. भारद्वाज, निदेशक, भाषा विभाग, हरियाणा इसके आमुख में लिखते हैं, 'प्रणेता के नाम 'ताऊ सांगी' से यह सांग किसी अज्ञात लेखक की रचना प्रतीत होती है। इसके लिपिक के संबंध में भी विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो पाई है। तथापि भाषा और शैली की दृष्टि से इसे प्रकाशन योग्य समझा गया है। यह ठीक है कि प्रत्येक सांगीकार की भाषा एक सामान्य स्तर की हुआ करती है ताकि वह दूर-दूर तक जनसामान्य को आह्लादित कर सके तथापि उसकी रचना में प्रदेश विशेष की शब्दावली का प्रयोग बरक्स हो ही जाया करता है।''[22] निदेशक ने आगे जानकारी दी है, ''इन तथ्यों से ग्रंथ का लेखक अंबाला के आस पास का निवासी रहा प्रतीत होता है।''[23] यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह नाम लोकनाट्यकार का मूल नाम नहीं है। हाँ, अपनी सांग प्रदर्शन कला के समय वह 'ताऊ' जैसे सम्मानित संबोधन से प्रसिद्ध हो गया होगा। इस सांग के संपादक साधुराम शारदा ने भूमिका में लिखा है, ''रुक्मिणी विवाह' लगभग एक शताब्दी प्राचीन हरियाणवी सांग है। लेखक ने कृष्ण और रुक्मिणी विवाह की पौराणिक कथा को लेकर प्रस्तुत सांग तैयार किया है। जो हस्तलिखित पांडुलिपि इस विभाग में प्राप्त हुई है वह 'पिल्ले के' लिपिकार द्वारा तैयार की गयी है। हस्तलिखित के आवरण पृष्ठ पर अंकित नोट के अनुसार जो लिपिकार से भिन्न किसी और का हाथ है, इस सांगीत का लेखक ताऊ सांगी है।''[24]

रुक्मिणी विवाह कुतूहल, जिज्ञासा, प्रेम और अपमान का जीता-जागता उदाहरण। इसलिये यह सांग बहुत अधिक पसंद किया जाता है। कौरवी लोकनाट्य में रुक्मिणी विवाह को लेकर पहली बार ताऊ सांगी द्वारा ही लिखा गया। बाद में तो अनेक लोकनाट्यकारों ने यह सांग लिखा। ताऊ सांगी द्वारा यह सांग सात खंडों

में विभक्त किया गया है - 'देवर्षि नारद का वरदान, 'शिशुपाल को टीका भेजना', 'रुक्मिणी का इन्कार', 'रुक्मिणी द्वारा कृष्ण को आमंत्रित करना', 'देवी पूजन', 'कृष्ण शिशुपाल युद्ध' और 'रुक्मिणी विवाह' आदि। इस प्रकार कथा का संयोजन कवि की सूझ-बूझ का परिचायक है। लोकनाट्यकार ने श्रीमद्भागवत् में वर्णित कथा से कहानी को लेते हुए रंगमंचीय आज़ादी भी ले ली है। इसकी भाषा को लेकर साध ुराम शारदा जी लिखते हैं, ''सांग की भाषा ब्रज प्रभावित हरियाणवी है। कहीं कहीं खड़ी बोली का पुट भी है। इसमें हिन्दी स को ष में एवं ऐ को विसर्ग में का पुट भी है। ब के स्थान पर व का प्रयोग यथा वेटी, वृजनाथ, विरज (ब्रज) वावल (बाबुल) अर् के स्थान पर रि, ऐ के स्थान पर विसर्ग येः (यह), है (हः) ऐसा, अःसा, ख के स्थान पर ष् का प्रयोग षातर (खातर) लाषों (लाखों) देखन (देषन) इससे (इस्से) ब के स्थान पर भ का प्रयोग सब (सभ) भताए (बताए) भतावे (बतावे) 'औ' के स्थान पर 'ओ' का प्रयोग जैसे गौर (गोर) और (ओर) कौर (कोन)''[25]

पूरा लोकनाट्य दोहा, मुखताल, दौर, कड़ा, बारामासा में रचित है। परन्तु इस सांग की एक विशेषता यह भी है कि इसमें रागनी का प्रारंभिक रूप देखने को भी मिलता है। रागनी उस समय की है जब सबके मना करने पर भी रुक्मिणी का भाई रुक्मण उसका विवाह चंदेरी के राजा शिशुपाल से करना चाहता है। शिशुपाल अपने मित्र जरासंध को लेकर रुक्मिणी को ब्याहने आ जाता है और रुक्मिणी कृष्ण के पास संदेश भेज देती है। कृष्ण आ जाते हैं और उसका शिशुपाल के साथ युद्ध होता है। इस अवसर पर प्रारंभिक रागनी का रूप दर्शनीय है -

अरे रहने का सीस नि सेहरा।।
जरासिंध क्या जाने दिया काल ने घेरा।।
सन्मुख हो सिसुपाल सुरमे जोर देषना तेरा।।
अरे रहने का सीस नि सेहरा।।
कोन बात मन में तक के करा कुन्दनपुर फेरा।।
चतर चांदना कहाँ गया हः हिरदे धरा अंधेरा।।
अरे रहने का सीस नि सेहरा।।
जो सूरा वध आगे आवो क्यों करते हो देरा।।
मूढ़ मति मूरष क्या माने मनः किया वोह तेरा।।
अरे रहने का सीस नि सेहरा।।
जो भागे ना जाने पावे जाल चोतर्फि गेरा।

रोको जरासिंध सिसपाला सन्मुषहः रथ मेरा।।
अरे रहने का सीस नि सेहरा।।[26]

उपर्युक्त रागनी में चार कली हैं। निश्चित ही यह रागनी व पूरा लोकनाट्य शंकरदास की रचना-प्रक्रिया के पूर्व पड़ाव का है। इसमें चौथी कली में कवि ने अपनी 'छाप' नहीं लगाई है। रागनी की चौथी कली में कवि की छाप का आना रागनी का अगला पड़ाव है। इस सांग में सत्रह रागनियाँ आई है। कौरवी लोकनाट्य में इतिहास, शिल्प, भाषा और कथा-सुनियोजना की दृष्टि से यह सांग बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इस सांग के सुगठन को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि इस लोकनाट्यकार ने निश्चित रूप से और भी काव्य-रचना की होंगी परन्तु प्रलेखीकरण के अभाव में वह संपदा विलुप्त हो गई।

गुणी सुखी राम -

गुणी सुखीराम का जन्म सन् 1857 में पं. लेखराम के घर हरियाणा में जिला महेन्द्रगढ़ के गाँव स्याणा में हुआ। दस-बारह वर्ष की आयु में ही ये ग्वाले बन गये थे। इनकी पत्नी का नाम धापा देवी था। इन्होंने 'रुक्मणी मंगल', 'नरसी का भात', 'कृष्ण सुदामा', 'ऋषि दुर्वासा', 'द्रौपदी चीरहरण', 'लक्ष्मण मूर्च्छा', 'कृष्ण की आरसी', 'राजा उग्रसेन', 'पूर्णमल', 'सीता स्वयंवर' और 'कृष्णलीला' आदि लोकनाट्यों की रचना की।[27] इन रचनाओं के साथ-साथ उन्होंने शताधिक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं, जिनमें सामाजिक समस्याओं पर और भक्तिपरक रागनियाँ है। 'नरसी का भात' लोकनाट्य में इनकी वंदना देखी जा सकती है।

दोहा : ब्रह्मा विष्णु महेश औ गौरी पुत्र गणेश।
सुखी राम कह भगवती, रक्षा करो हमेश।

दोहा : विघ्न हरण मंगल करण, होती बुद्धि प्रकाश।
नाम लेत गण देव का, होत विघ्न का नाश।[28]

इनकी अधिकतर रचनाएँ दोहा और रागनी में है। रागनी में कलियों की संख्या कोई निश्चित नहीं है। हर रागनी की अंतिम कली में कवि ने अपने नाम की छाप लगाई है। 'नरसी का भात' लोकनाट्य में एक भक्त की ईश्वर के प्रति अटूट श्रद्धा और ईश्वर द्वारा अपने भक्त की सहायता करने की कहानी है। 'ऋषि दुर्वासा' लोकनाट्य दुर्वासा का तप भंग और इन्द्र की कुटिलता दिखाई गई है।

गुणी सुखीराम की भाषा में अनेक लोक-मिश्रित शब्दावली का मिश्रण है।

संस्कृत, पंजाबी, मारवाड़ी, फारसी शब्द बहुतायत मात्रा में आये हैं। एक वृत्यनुप्रास और अन्यानुप्रास का उदाहरण द्रष्टव्य है -

भेरवी, कुसल्ला, कुल, कज्जली, क्रशणक्ती।
उमा, रमा, श्यामा, कामा, निज नाम रूप।[29]

गुणी सुखीराम में रागनी का जो प्रयोग मिलता है, वह कवि शंकरदास से कहीं आधुनिक रूप में मिलता है। शंकरदास रागनी को परिचित करने वाले थे और गुणी सुखीराम उसका बेतहाशा उपयोग करने वाले थे। मात्र 48 वर्ष की आयु में सन् 1905 में इनका देहांत हो गया।[30]

अलीबख्श -

ख्याल, नौटंकी, रासलीला, करियाला और पंजाब का नकल का उद्भव और विकास एक समय गति पकड़ रहा था। 'ख्याल' राजस्थान में 'नौटंकी' और 'रासलीला' कौरवी की बगल में ब्रज क्षेत्र में 'करियाला' हिमाचल प्रदेश में सहोदराओं की तरह एक साथ पल बढ़ रही थी और ये इस रूप में पल बढ़ रही थी कि इनका परस्पर एक दूसरे के क्षेत्रों में आना-जाना भी हो रहा था। इसे इस रूप में समझा जा सकता है कि अलीबख्श का जन्म तो राजस्थान के अलवर जिला के मुंडावर गाँव में हुआ परंतु उनका ख्यालों का प्रदर्शन का क्षेत्र रहा सांग का क्षेत्र रिवाड़ी, गुड़गाँव, दिल्ली आदि।

अलीबख्श का जन्म संवत् 1911 (सन् 1854) में मुंडावर के जागीरदार परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम रूड़े खाँ था। ये मुंडावर (जिला अलवर) के जागीरदार थे।[31] इनके साथ घटी एक मार्मिक घटना ने इन्हें लोकनाट्यकार बना दिया। ये दस वर्ष की आयु में मुंडावर से 5 किलोमीटर दूर पेहल गाँव में ख्याल देखने चले गये और नवाबी के रौब में आकर मंच पर जाकर बैठ गये। ''उस मंच की परंपरा के अनुसार तख्त या स्टेज पर कलाकारों के अतिरिक्त कोई पंडित ही बैठ सकता था। जारी ख्याल के दौरान अलीबख्श को तख्त या मंच से उतार दिया गया। कहते हैं कि तमाशा के मालिक ने व्यंग में कहा कि यदि गाने बजाने का इतना शौक है तो अपनी कही कहो, अर्थात् स्वनिर्मित राग रागनियाँ और ख्याल गाओ तथा नाट्य-रूप में प्रदर्शित करो।''[32] यह बात उनको चुभ गई। उन्होंने संत गरीबदास को अपना गुरु बनाया और उनसे आशीर्वाद लेकर कुछ समय बाद नाट्यदल का गठन किया और ख्याल रचना शुरू कर दी। ''ख्याल को एक ताल, त्रिताल, झूमरा, आड़ा और

चौताल आदि तालों में गाया जाता है।"[33] अलीबख्श आशुकवि थे। वे मौके के अनुसार कविता बना देते थे। उनकी गायकी से अत्यधिक प्रेरित होकर लाला उमराव लाल ने अलीबख्श के जीवन काल में ही 1895 में ख्याल की नाट्य-मंडलियों के लिए एक स्थाई धर्मशाला का भी निर्माण करवाया था। अलीबख्श ने अपना ख्यालमय परिचय कुछ इस प्रकार दिया है -

"अलीबख्श का गाँव मुंडावर कथ गोपाल करे न्यौछावर।
सब राजों में है टीकावत मन्दर किया उजाला।
राजपूत हूँ टीकावत मेरा अलीबख्श है नाम।
नगर मुंडावर सुबस बसिया है मेरा निज धाम।"[34]

इन्होंने अपने जीवन काल में अनेक ख्यालों की रचना की। परन्तु प्रलेखीकरण के अभाव में अधिकांश विलुप्त हो गये। उनके पाँच लोकनाट्य लोक अध्येताओं द्वारा संकलित कर लिये गये - 'श्रीकृष्णलीला आरंभ', 'राजा नल का भिषा(बिखा)' 'राजानल का बगदाव', 'निहालदे' और 'अथ फसाना अजायब' आदि। अलीबख्श के ख्याल संगीत की दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

अलीबख्श सांप्रदायिक सौहार्द के लोकनाट्यकार हैं। "उनके ख्यालों को हिन्दू मुसलमान समान रूप से देखते थे, सुनते थे और उन्हें मान देते थे।"[35]
एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

हिन्दू तुरक को एक हिसाब, राह बताई दोनों अजायब।
हिन्दू तूरक एक सो तुझे, साहब सब घट एक ही सूझे।।[36]

अलीबख्श जी जहाँ घंटेश्वर महादेव की उपासना करते हैं वहीं सैयद साहब को भी शीश नवाते हैं। वे लोक के विशुद्ध जागरूक कवि है। संभवतः वे सांप्रदायिक कुटिलता को खुली आँखों महसूस कर रहे थे। उनके कुछ महत्त्वपूर्ण काव्यांश दर्शनीय है -

दोहा : उठा सोवता जाग राग मैं गाकर तुम्हें सुनाऊँ।
घन्टेश्वर घट में बसो सो शिवशंकर शीश नवाऊँ।।
हिन्दू के हर भगत मुसलमानों के पीर मनाऊँ।
अलीबख्श दोनों दीनों के दंगल में गुण गाऊँ।।[37]

मांझ : सैयद बड़े जमाल हैं और सैयद महमूद।
हाजिर भक्ति में सदा तो दस्तबांध मौजूद।।

दस्त बांध मौजूद पीर मेरे बाकै बारह हजारी।
घन्टेश्वर घट में बसो घटा दो चित से चिंता सारी।।[38]

व्यक्ति के विश्वास के धरातल पर ईश्वर और अल्लाह में कोई फर्क ही नहीं है। जो ईश्वर हिन्दू के मन में जीवन की ठाड़ पैदा करता है, वही अल्लाह मुस्लिम के दिल को भर देता है। भारत में दोनों है। संवेदनशील कवि दोनों के तत्त्व को पकड़ लेता है और अंधा व्यक्ति ईश्वर और अल्लाह के बनाए मनुष्य को मौत के घाट उतारने पर उतावला।

अलीबख्श ने भी काव्य रचना दोहा, ठुमरी, सेधू, मांझ और रागनी में की है। यहाँ दोहा चार चरणों (बोलों) का हो गया है। मांझ और सेधू वर्तमान दोहे के समान दो चरणों का है। इन्होंने रागनी का प्रयोग बिल्कुल ताऊ सांगी के समान बीच-बीच में किया है। इनकी रागनी का कोई निश्चित मानदंड नहीं है। कहीं तो यह पद जैसी लगती है तो कहीं केवल दो कलियों की है। इन रागनियों में खास बात यह है कि इन्होंने अंतिम कली में छाप के तौर पर अपना नाम जोड़ दिया है। छाप को लेकर निष्कर्ष इस रूप में निकलता है कि जहाँ ताऊ सांगी की रागनियों में कवि की छाप है ही नहीं वहीं अलीबख्श की अधिकांश रागनियों में कवि की छाप है और शंकरदास में तो रागनी की अंतिम कली में कवि के नाम की छाप अनिवार्य रूप से आने लगी।

भोला मिश्र -

भोला मिश्र का जन्म कुरुक्षेत्र जिला में हुआ था। उनके विषय में डॉ. अनिल गोयल सवेरा लिखते हैं, ''भोला मिश्र का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे पाँचवें दशक में माना जा सकता है, क्योंकि उनकी सांग शैली में लिखी गई रचना 'धनुषयज्ञ' का समय सन् 1870 माना गया है। इसमें सांग शैली के 154 संवाद हैं। इस रचना की भाषा बंगारू मिश्रित कौरवी बोली है। इस रचना में दोहा, सोरठा, कड़ा और ठुमरी छंदों का प्रयोग है।''[39]

इस पांडुलिपि में इसका रचना काल संवत् 1916 लिखा हुआ है। सन् के हिसाब से यह 1859 ई. हुई। 'धनुषयज्ञ' की प्रारंभिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

श्री गणेशाय नमः
अथ सांगीत धनुषयज्ञ का लिख्यने।
।। सदा।। अस्तुती देवी की।
जगत जननी भवानी तू। वेद ब्रह्मा नै मानी तू।।
अमरपुर की निशानी तू। सिद्ध है वाकवानी तू।।

दोहा : जै जननी ज्वालामुखी जग कारण जग मूल।
नवां सांग परघट करूँ जो तुम हो अनुकूल।
संवत् 1916 में एक नवां सांग विस्तारा है।
ज्वाला देवी जगदंबे के चरणों का लिया सहारा है।
सोरठा रूम रूम में बसते जिसके कोट कोट ब्रह्मंड।
शिव सनकादि ध्यान धर हारे जिसकी जोत अखंड।
शिव सनकादि पार नहीं पावै जिसकी जोत अपारा है।
भोला पै मेहर करो जननी जगदंबे दास तुम्हारा है।।[40]

और इसके बाद सांग शुरू हो जाता है।

बग्गा सिंह -

बग्गा सिंह कुरुक्षेत्र के लाडवा के निवासी थे। लोकनाट्य परंपरा में इनका भी प्रशंसनीय योगदान है। "उन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सन् 1897 के लगभग एक सांग की रचना की, जिसका नाम था 'रामकथा'। वे चाहते तो 'रामकथा' को अन्य शैली में भी लिख सकते थे, परन्तु उन दिनों का सांग का प्रचलन जोरों पर था। सभी धार्मिक और पौराणिक विषयों को सांग शैली में रचकर सांगियों द्वारा मंचित करवाया जाता था। इस प्रकार सांगी को भी खूब वाह-वाही मिलती थी और लेखक की भी पहचान बन जाती थी। उस समय सांग शैली में लोकनाट्य लेखन करने वालों को खूब प्रसिद्धि मिली थी। उनके द्वारा सांग विधा में लिखी गई 'रामकथा' प्रश्न-उत्तर शैली में थी। उनका उपनाम 'सफेद केहरी' था। वे लाडवा के टीका निहाल सिंह के पास रहते थे।"[41]

शंकरलाल शुक्ल -

हरियाणा के कुरुक्षेत्र में थानेसर सांग की दृष्टि से बेहद उर्वरक स्थान था। इस क्षेत्र में अनेक सांगियों ने अपनी सांग कला का लेखन किया। अनेक ने मंचन कर ख्याति अर्जित की। शंकरलाल शुक्ल थानेसर के थे और एक बड़े लोकनाट्यकार थे। 1870 से 1885 के बीच उन्होंने अनेक लोकनाट्यों की रचना की। उनके लोकनाट्यों के नाम इस प्रकार है - 'पद्मनी', 'राजा मोरध्वज', 'भूराबादल', 'भक्त प्रह्लाद', और 'भक्तमाल' आदि।[42]

पं. दीपचंद -

इस युग के एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कवि हुए - दीपचंद। दीपचंद सोनीपत जिले के सेहरी खांडा गाँव के थे। इनका जन्म 1861 में हुआ था। उनके प्रसिद्ध सांग हैं - 'सोरठ', 'हीर', 'ज्यानी चोर', 'नौटंकी', 'हरिश्चन्द्र', 'गोपीचंद।'[43]

इन्होंने चौबोला, काफिया के साथ-साथ सैंकड़ों रागनियों की रचना की। शंकरदास ने जिस रागनी को प्रतिस्थापित किया था, पं दीपचंद ने उसमें और कलात्मक रंग भरे। उसे और अधिक लोकोपयोगी बनाया। उनकी रागनी का एक ठेठ सोनीपती रंग दर्शनीय है-

मनै धरती कै मार डिगरगी वा।
छूछक की लड़की रै।
तन पै बिपता झेल्या करता।
तरी भैसां नै मेल्या करता।
जिसतै मैं खेल्या करता।
काणा लेग्या वा गींड रबड़ की रै।
लोट्या करती भैंस लेट मैं।
रहूँ था उस हीरा की ढेठ मैं।
आज मेरे उट्ठया दरद पेट मैं।
वा फाकी दे दिये नूण हरड़ की रै।[44]

पं. दीपंचद शंकरदास के शिष्य छज्जूराम के शिष्य थे। दीपचंद ने बाकायदा तख्त पर सांग करने की शुरूआत की। दीपचंद की सांग मंचन की मौलिकता और नये प्रयोगों को देखते हुये पं. माँगेराम ने 'हरियाणे की कहाणी सुणल्यो दो साल की' में दूसरी कली में लिखा है -

एक सौ सत्तर साल बाद फेर दीपचंद होग्या।
साजिंदे तो बणा दिए और घोड़े का नाच बंद होग्या।
नीच्चै काला दामण ऊपर लाल कंद होग्या।
चमोला तो भूल गए यू न्यारा छंद होग्या।
तीन काफिए गाए याह बणी रंगत छल की।[45]

हालांकि ऐसा नहीं है कि किशन लाल के बाद एक सौ सत्तर साल में पं. दीपचंद ही हुए हों। पं. दीपचंद रागनी तथा लोकनाट्य सांग के एक सौ सत्तर साल के संघर्ष का उस समय तक का सुखद परिणाम थे। इस बीच अनेक कलाकारों ने

सांग और रागनी को मांजा और लोकानुकूल बनाया। पं. माँगेराम ने बदलावों का संकेत स्वयं किया है।

1914-18 प्रथम विश्वयुद्ध के समय अंग्रेजों को भारतीय सैनिकों की सख्त जरूरत थी। यद्यपि इससे पहले 1857 का विद्रोह हो चुका था तथापि पं. दीपचंद ने हरियाणा के नवयुवकों को रागनी के माध्यम से अंग्रेजी सेना में भर्ती होने के लिए प्रचार किया। उसकी इस अवसर की रागनी बहुत अधिक प्रसिद्ध हुई -

भरती होल्यो रै थारे बाहर खड़े रंगरूट।
इत राखो मध्यम बाणा, अर मिलता फट्या पुराणा।
इत मिलेंगे फुलबूट, भरती हो ल्यो रै।[46]

इसके लिए अंग्रेजी सरकार ने उन्हें राय बहादुर की उपाधि भी दी थी।[47] इनका सबसे अधिक पसंद किया जाने वाला सांग है - सोरठ। 'सोरठ' सांग में 'तसवी बनजारा कुएँ पर पानी भरती सोरठ सुन्दरी को पहली बार देखकर ही उसकी रूप-माधुरी पर मोहित हो जाता है। उसकी वाणी अनायास फूट पड़ती है -

टुक सा नीर पिला दे, अर घाल मेरे लोट्टे मै।
अरे तू भले घरां की दीखै, तनै जनम लिया टोट्टे मै।
तू मेरी साथ होले नै, दामण मढ़वा यूं गोट्टे मै।[48]

सांग 'चंद्रकिरण' में नायिका के सौंदर्य और उसके प्रभाव को दर्शाते हुए उन्होंने गाया है -

ऐसी सुथरी श्यान की खड़ी कौण मंडेरे पै।
मेरा मुश्किल सध्या शरीर, एक लेरह्या तेरी तस्वीर।

x x x

तनै अकल मार दी जवान की, जोबन चढ़्या तेरे पै।
कहै दीपचंद कहूँ मन की, मनै कुछ लोड़ नहीं सै धन की।
ना चाहना तेरे मकान की, तू सै बाल पटेरे की।[49]

नायिका को 'बाल पटेरे' की कहना एक नया उपमान है। कलयुग संबंधी उनकी एक रागनी भी अत्यधिक प्रसिद्ध हुई-

पहली सी बात री ना, कलजुग का सपना झूठा सै।
दमयंती नै आया सुपना, जणुं म्हारा धन जुए में लूटा सै।
उत्तर तै चले गये दक्षण, जणुं सब दाणे कर लिये भक्षण।

मंदोदरी नै दिखे लक्षण, जणुं म्हारा साझा लंका तै उठा सै।
जब अर्जुन का सुत आया, आ भारत में युद्ध मचाया।
रानी उत्तरा नै सुपना आया जणुं किला चकाबू का टूटा सै।
पद यो दीपचंद नै गाया, नर भक्ति बिन सूनी काया।
जिस दिन तै कलजुग आया, जप, तप, धर्म छूटा सै।[50]

पं. दीपचंद शंकरदास युग में शंकरदास के बाद एक सशक्त सांगी बनकर उभरे। शंकरदास ने जहाँ लोकनाट्य सृजन में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया, वहीं पं. दीपचंद मंच के खिलाड़ी थे। उनके लोकनाट्यों में श्रृंगार, वीर और भक्ति रस की अधिकता है। दीपचंद ने अपने समय में सांग का अभिनव प्रयोग किया। दीपचंद के शिष्यों में खिम्मा, हरदेवा, कुतबी और भरतू हुए जिन्होंने आगे चलकर सांग परिवार में सुखद वृद्धि की।

हरदेवा स्वामी -

दीपचंद के शिष्यों में सबसे अधिक प्रतिभाशाली शिष्य हरदेवा स्वामी हुए। इनका जन्म जिला सोनीपत के गाँव गोरड़ में पिता बुजनदास व माता नानो के घर 1881 ई. में हुआ। ये बैरागी जाति के थे। मात्र 45 वर्ष की उम्र में पेट में दर्द से 1926 में इनका देहान्त हो गया। हरदेवा दीपचंद के सांगों में विदूषक की भूमिका निभाते थे। कुछ समय इन्होंने बड़े रकाने का भी अभिनय किया।

1920 में पं. दीपचंद के देहांत के बाद इन्होंने अपना बेड़ा बाँध लिया। इन्होंने 'हीर रांझा', 'ज्यानी चोर', 'चन्द्रकिरण', 'सरणदे', 'गोपीचंद' आदि सांगों की रचना की।[51]

हरदेवा स्वामी अपने समय के ख्यातिप्राप्त सांगी हुए। इनके दो शिष्य हुए - बाजे भगत और चतरू। बाद में ये दोनों ही बड़े सांगी के रूप में उभरे। जो जोड़ी कभी दीपचंद और हरदेवा की जमती थी, वही बाद में हरदेवा और उनके शिष्य चतरू की जमा करती थी। इनका शिष्य चतरू तो बड़े रकाने के अभिनय में इतने फबते थे कि दर्शक उसके ऊपर आशिक हो जाते थे।

हरदेवा स्वामी का सबसे प्रसिद्ध सांग था - हीर रांझा। 'हीर रांझा' एक प्रेम कहानी है और लोक में पहले से प्रचलित है। 'हीर रांझा' सांग में जब हीर सादिक पूजने जाती है तो उस ठिकाने की तरफ निहारती है, जहाँ उसका रांझा रहता था। वह प्रेमाकुल होकर रो देती है और अपनी अभिलाषा पूर्ति के लिए सादिक की मिन्नत

करती है -

जित मेरे रांझे की खाट बिछै थी, वै बांस ढसकग्ये ढारे के।
इसे जवान किते नहीं मिले, जिसे तखत हजारे के।
तेरी जोत जलाऊं सादिक, तू दर्श करादे प्यारे के।[52]

एक नायिका जो अपने प्रेमी से सच्चा प्रेम करती है, उसकी अनुपस्थिति में उससे जुड़ी तमाम वस्तुएँ उसकी विरह-वेदना को बढ़ा देती हैं।

हरदेवा का 'चंद्रकिरण' और 'ज्यानी चोर' सांग भी खासे प्रसिद्ध हुए थे। ''वे (हरदेवा) सांग कला को निखारने के लिए और परिवर्तन करना आवश्यक समझते थे। उन्होंने अपनी सांग कला प्रदर्शन में, सबसे पहला परिवर्तन किया, स्त्री पात्रों की वेशभूषा। उनके गुरु (दीपचंद) ने परंपरा को तोड़ते हुए धारू की अंगिया का प्रचलन किया था किन्तु यह प्रचलन उनके जीवन काल तक ही रहा। उसके पश्चात् लुप्त हो गया। हरदेवा द्वारा किया गया परिवर्तन सलवार और कुरता आज भी प्रचलन में है। यह पहरावा शिष्ट समाज में भी लोकप्रिय है। वर्तमान सांगी अपनी मंडली के स्त्री पात्रों को यही पहरावा डलवाते हैं।''[53]

योगेश्वर बालकराम 'रंगत' -

योगेश्वर बालकराम का जन्म सन् 1850 के आसपास जिला करनाल के गाँव शेखपुरा अलावला में हुआ। ''इन्होंने 'पूरणमल भगत', 'गोपीचंद', 'शीलादे', 'कुंजड़ी' एवं 'रामायण' आदि सांगों की रचना की।''[54]

योगेश्वर बालकराम रंगत की अधिकतर रचनाएँ चौबोला, ख्याल, सवैया, दोहा और कवित्त में रचित हैं।

योगेश्वर बालकराम के सांगों में नाथ पंथी सिद्ध साधुओं का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। गोपीचंद की माता मैनावती अपने पुत्र को अमर करवाने के लिए उसे योग का महत्त्व बताती है। उसकी दृष्टि में योग मोक्ष का मार्ग है। योग का आनंद राजा के भोग से कहीं बढ़कर है। यही बात वह अपने पुत्र गोपीचंद को इस प्रकार समझाती है -

बेटा देख नज़र तू रहम की चाख अमीरस नीर।
पियो पिया प्रेम का खाक रमा गमगीर।।

चौबोला

खाक रमा गमगीर धीर, धारो तो भगवा धारो।

भागो तो भाग बुरे कर्मों से, मारो तो ममता मारो।
गाओ तो निरंजन को गाओ, तारो तो तेज हरुख तारो।
माँगों तो माँग शरण सतगुरु की, मारो तो ममता मारो।[55]

इनका 'पूरणमल' सांग भी बेहद लोकप्रिय हुआ। इस सांग में पूरण के चले जाने के बाद जब राजा को सच्चाई का पता चलता है तो वह दहाड़ मार-मार कर रोता है। एक चोबोला दर्शनीय है -

सिर धरती में मार राव, ऐसा बेधड़क पुकार रहा।
सब आलम, सिर, तन पीट-पीट, रो रो के कूका मार रहा।
कर रुदन पखेरू रोते हैं, कुवां धरती, चमन गुँजार रहा।
कहे 'बालकराम' वियोग की बातें सकल, भूप उच्चार रहा।[56]

योगेश्वर बालकराम ने 'कुंजड़ी' आदि मौलिक सांग की भी रचना की है। सन् 1920 के आस पास इनका देहान्त हो गया।

अहमद बख्श थानेसरी -

अहमद बख्श थानेसरी थानेसर (कुरुक्षेत्र) नगर के भादर अखाड़े के एक सुप्रसिद्ध लोकनाट्यकार थे। ''कवि अहमद बख्श थानेसरी जाति से कंचन था। उसके एकमात्र संतान एक लड़की ईदन थी। कंचन नाचने बजाने वाली एक जाति है। इनका जन्म का अनुमान 1850 के आस-पास लगाया जाता है।''[57] यह अनुमान इसलिए सटीक बैठता है कि उस समय लोकनाट्यों की शैली इसी प्रकार की होती थी जैसी कि थानेसरी जी की है। इनके लोकनाट्य मुकताल में है। इन्होंने "रामायण, जयमल फत्ता, गुगा चौहान, सोरठ पद्मनी चंद्रकिरण, नवलदे और कृष्ण लीला आदि अनेक सांग लिखे हैं। ये सब सांग अप्रकाशित है। कइयों की तो पाण्डुलिपियाँ भी नहीं मिल रही हैं।''[58]

अहमद बख्श थानेसरी के लोकनाट्य 'रामायण' का बालकृष्ण मुज़्तर ने संपादन किया है जो कौरवी लोकनाट्य की अद्भुत धरोहर है। बालकृष्ण मुज़्तर का कहना है कि "वह गौरवर्ण मझोले कद का हँसमुख व्यक्ति था। सफेद धोती, सफेद कुर्ता, काला जूता और सिर पर जरी की टोपी पहनता था। उसका हिन्दी, उर्दू और ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान अपूर्व था। यह ज्ञात नहीं कि वह किस लिपि में सांग लिखता था। उसमें सांग के अनुसार भाषा और शैली में परिवर्तन करने की बेजोड़ क्षमता थी। मुसलमान होते हुए भी हिन्दू धर्मशास्त्रों की गहरी जानकारी और हिन्दू देवी देवताओं

में ऐसी अॅट निष्ठा और श्रद्धा कवि अहमदबख्श की उदारता प्रकट करती है।"[59]

इन्होंने 'रामायण' लोकनाट्य का विभाजन कांडों में किया है। छह कांडों में विभक्त 'रामायण' लोकनाट्य एक वृहद लोकनाट्य है। इसमें 1673 चम्बोले हैं। पूरा 'रामायण' लोकनाट्य दोहा, चम्बोला और मुकताल में है। 'रामायण' लोकनाट्य में रामकथा क्रमिक रूप में आई है। रामायण के प्रथम कांड आदिकाण्ड की भेंट दर्शनीय है-

नमो गणेश नमो शारदा नमो हंसवाहिनी देव।
नमो रामचंद्र जी नमो सिया नमो शक्ति नमो शैव।
नमो लक्ष्मण जी हनुमत के जत को।
नमो भरत नमो शत्रुघ्न जी नमो माई कौशल्या पत को।
नमो शेष भुजंग नमो पुरजन नमो महिश्वर नमो सूर्य रथ को।[60]

इनके गुरु का नाम भादर सिंह था। इससे संबद्ध मुकताल देखी जा सकती है -

लीला कथ गाता करो मिल देव सहाता।
भादर सिंह का शिष्य मोक्ष 'अहमद' प्रभु चाहता।[61]

अहमद बख्श थानेसरी का 'रामायण' लोकनाट्य ही वर्तमान उपलब्ध है। बाकी सब विलुप्त हो गए।

ध्यातव्य है कि इनके लोकनाट्य पौराणिक और लौकिक कथाओं पर आधारित हैं। अहमद बख्श थानेसरी उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों के एक बड़े लोकनाट्यकार थे। इनको शंकरदास की पूर्व की पीढ़ी का लोकनाट्यकार इस रूप में मान सकते हैं कि इन्होंने संपूर्ण लोकनाट्यों की रचना दोहा, चम्बोला और मुकताल में की है। वहाँ चार कलियों की रागनी का अभाव है। लोकनाट्य के शिल्प की दृष्टि से यह कवि शंकरदास से पहले का पड़ता है। शंकरदास के बाद ही लोकनाट्यों में रागनी का प्रचलन बढ़ा।

चौ. घीसाराम भटीपुर -

चौधरी घीसाराम भटीपुर का जन्म गाँव भटीपुर, जिला मेरठ में सन् 1843[62] में हुआ था। इनके गुरु का नाम सेढूसिंह था। इन्होंने अपने गुरु का स्मरण 'राजा गोपीचंद' लोकनाट्य में कुछ इस प्रकार किया है -

सेढूसिंह उस्ताद हमारे हापुड़ में जिनका स्थान।

उनका नाम लिए से हमको हुआ शायरी का कुछ ज्ञान।
घीसा कहे भटीपुर बासी, मुझमें नाय ज्ञान सुघड़ाई।[63]

इनके लोकनाट्य हैं - 'राजा गोपीचंद', 'राजा कारक सांवलदे', 'कंवर निहालदे बाग', 'इन्दरगढ़', 'निहाल्दे परवाना', 'कंवर निहालदे सती', 'राजा मोरध्वज', 'लंका चढ़ाई', 'लक्ष्मण मूर्च्छा', 'भीष्म पर्व', 'चकामऊ', 'सलोचना सती', 'कृष्ण लीला', 'राम बनोवास', 'नवल्दे बासक', 'तारा शमशेर', 'ढोला बाग'। इन्होंने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखी जो इनकी पुस्तक 'ज्ञान पकड़ खोल' (सवाल जवाब) में संकलित हैं।

चौ. घीसाराम भटीपुर के लोकनाट्य 'होली' के रूप में प्रसिद्ध थे। चौ. घीसाराम की अधिकतर रागनियाँ चार कलियों की हैं। एक तरह से यह रागनी का प्रारम्भिक रूप है, जो हमें शंकरदास व गंगादास में भी दिखाई देता है। ये होली (रागनी) के बीच में गाह्या का भी उपयोग करते हैं। कहीं-कहीं ख्याल का भी उपयोग करते हैं। इनकी गाह्या कुछ-कुछ वार्ता जैसी होती है। परन्तु यह पद्यात्मक ही होती है। 'कंवर निहालदे सती' से एक गाह्या दर्शनीय है -

सो इतनी, सुन ऊदा बोली रोयके, सुनलो राजकंवार।
वे नार सती होती नहीं, जिनके जिवें बलम भरतार।
सो हो के सुहागन, मत त्यारी करे बैरन जलन की।। हरे।।[64]

जो स्त्रियाँ अपने नैतिक कर्त्तव्य से विमुख होकर परिवार समाज के अनुशासन के विरुद्ध आचरण करती हैं, उनसे कुल, परिवार व समाज को नुकसान होता है। उनसे उनका कुल भी कलंकित होता है। कवि ने इसी आशय का हवाला 'कंवर निहालदे बाग' लोकनाट्य में किया है। यह दर्शनीय है -

ओछे कुल की जो तिरिया हैं
जो ओछे कुल की नार, खिंडावे बार, करे है जार लगे इतरावन
इन बातों से घट जाय हमारा छत्रापन।
जो लाज शर्म दे तार, फिरें है ख्वार, उन्हें धिक्कार।
कहावें सांपन, वे पिछले जन्म की ठेठ वेश्या पापन।
घीसा कहै भटीपुर वासी, तू तो हर भज ले अलसेटी।[65]

कंवर निहालदे की माता उसको स्त्रियों के आचरण के बारे में बताती है।

चौ. घीसाराम का मन श्रृंगार रस में भी खूब रमा है। मघ की बेटी जब बाग

में झूलने के लिए जाती है तो वह उस समय उनकी सुंदरता का इन शब्दों में वर्णन करते है।

मोहनी मार घुटी आँखों म्हं।
आँखों म्हं मोहनी घुटी, जुलफ सी घुटी घटा सी उठी,
सुरमा सारे से, बिजली सी टूटी लगी पलक मारे से।
कानों के बाले पड़े, लाल नग जड़े सुघड़ के घड़े
अकल धारे से, तारे से खिलने लगे धजके मारे से।
दखनी चीर जरी का दामन घूमत चले हिलोरा लेय।
कुरती जरद बरन जाली का गोरे तन पै शोभा देय।
माथे बिंदी हीरे जड़वां जैसे चन्द्र किरण निकसाई।[66]

चौ. घीसाराम भटीपुर के लोकनाट्यों में वार्ता के अभाव में कथा के पात्रों से जुड़ना मुश्किल-सा लगता है। इनका देहांत सन् 1910[67] में हुआ।

शीशराम -

शीशराम का जन्म 1860 ई. में गाँव सूप जिला बागपत, उत्तर प्रदेश में हुआ था।[68] इन्होंने ख्याल नाम से काव्य रचना की। ख्याल लोकनाट्य का ही रूप है। इन्होंने अनेक ख्याल काव्य लिखे थे। किन्तु वर्तमान में इनके द्वारा प्रणीत एक ही पुस्तक प्राप्त होती हैं, जिसे इस महान कवि की प्रतिनिधि कृति कहा जा सकता है। इस पुस्तक में कवि ने ईश्वर मिलन के प्रति जो अभिलाषा व्यक्त की है, वह दर्शनीय है। शीशराम ने ईश्वर को निर्गुण निराकार माना है तथा ईश्वर प्राप्ति के लिए किए जाने वाले पूजा-पाठ, जप-तप इत्यादि को व्यर्थ माना है। साथ ही आचरण की पवित्रता पर भी बल दिया है। शीशराम ने काव्य में धर्म, दर्शन, भक्ति, समाज-नीति और सामाजिक विकृतियों पर दृष्टिपात कराया है। इनकी पुस्तक का नाम है - 'शीशराम के ख्याल'।[69] सन् 1930 ई. में इनका निधन हो गया।[70]

चौ. फूलसिंह नंगला -

चौ. फूलसिंह नगला का पूरा नाम फूलसिंह तोमर था। ये सेढूसिंह के शिष्य थे। इनका जन्म 1859 में हुआ था। 'राजा हरिश्चन्द्र' सांगीत में कवि फूलसिंह नंगला ने अपने जन्म के विषय में कुछ इस प्रकार लिखा है -

हाथ जोड़ कै राजा बोले आतुर वचन सुनाये जी।
दूजे का मत जाँचो ऐसे जितने हम अजमाये जी।

संवत् 1916 गेहूँ के दाने खाये जी।
सतरह के वैशाख मास म्हं भजन बनाये जी।
वृश्चिक राशि सोम वंश म्हं क्षत्री के घर जाये जी।
तुल ले पुत्तर धन राशि ने, कथ के गाये जी।[71]

संवत् 1916 सन् 1859 बैठता है जब कवि फूलसिंह नंगला ने पहली बार गेहूँ (अन्न) खाया था। उन्होंने एक अंतः साक्ष्य में अपनी जन्म की पहेली को इतनी आसानी से सुलझा दिया। फूलसिंह नंगला के लोकनाट्यों में सर्वत्र स्वाभाविक प्रवाह देखने को मिलता है।

इनके पिता का नाम रामबकस सिंह तथा माता का नाम रायकौर थे। रायकौर अलीगढ़ के गाँव चंदोक की बड़गूजर गौत्र की थीं। फूलसिंह नंगला ने अनेक लोकनाट्यों की रचना की - 'सती सलोचना', 'नरसी का भात', 'सरवर नीर', 'रामबनोवास', 'कृष्ण जन्म', 'सुदामा', 'निहालदे नर सुलतान', 'हरिश्चन्द्र', 'मोरध्वज', 'गोपीचंद', 'लंका चढ़ाई' आदि। इनका देहांत सन् 1925 में हुआ। इनके गुरु का नाम चौ. सेढू सिंह था। इनके प्रकाशित लोकनाट्यों में अपने गुरु के प्रति इनकी श्रद्धा भावना स्पष्ट रूप से झलकती है। ये लगभग हर रागनी की अंतिम कली में अपने गुरु का नाम श्रद्धास्वरूप लेते हैं। उदाहरण द्रष्टव्य है -

सेढू ध्यान धरे चरणन म्हं, बास करो संतन के मन म्हं।
फूलसिंह तो खड़ा भवन म्हं, ले रहा मद की प्याली।
अब दरश दीजो काली, सुध ले धौलागढ़ वाली।[72]

चौ. फूलसिंह नंगला ने दोहा, चौपाई, ख्याल और भजन (रागनी) और कुंडलिया में काव्य रचना की है। उनके लोकनाट्य 'राजा हरिश्चन्द्र' से एक कुंडलिया दर्शनीय है -

माली को जब देखे ऋषि भरे किलकार।
एक झपट ऐसी करी माली दीना मार।
माली दीना मार देख लो कजा नहीं टलती टाली।
एक वृक्ष के नीच सोया नींद आय गई मतवाली।
पति अपने को देख धरन पै रोवत जब मालन चाली।
जाय राव से अर्ज मार दिया मेरा माली।[73]

राजा हरिश्चन्द्र लोकनाट्य में जब विश्वामित्र साठ भार सोना की बात करता है तो हरिश्चन्द्र, मदनावत व रोहताश तीनों को काशी के बाजार में जाकर बिकते

हैं। कालिया भंगी जब हरिश्चन्द्र की बोली लगाता है तो एक पांडे उसकी जाति पर कटाक्ष करता हुआ कहता है कि हरिया (हरिश्चन्द्र) को खरीदना किसी भंगी के वश का काम नहीं है। तो कालिया ने जवाब देता है -

भंगी मेरी जात है, कहन तुम्हारा साँच।
ऐसे ऐसे बेच दे, ले सकता हूँ पाँच।
ले सकता हूँ पाँच आपकी बोली साफ लगी तन म्हं।
भंगी हूँ राजों के घर का मेरे कमी नहीं धन म्हं।
अनतोल सोरण बहुत कमाया हमने जो पालकपन म्हं।
जितने चाहिए और मंगा ले कैसे गरभाया मन म्हं।[74]

इसी सांग से एक सूक्ति-दोहा दर्शनीय है -

भूमि छुटन भाई मरन और कुलवंती नार।
पुत्र बिछोवा होता है, दुख दारुण से चार।[75]

यानी एक व्यक्ति के जीवन में उसकी मातृभूमि का छूट जाना, भाई का मर जाना, कुलवंती पत्नी और पुत्र से बिछुड़ना ये चार चीजें सबसे दुखदायी होती हैं। इस सांग में जब रोहताश को साँप डस लेता है, तब मदनावत की करुण-पुकार दर्शनीय है -

कैसे मन समझाय लूँ, नहीं आवै संतोष।
इकलौती का एक ही, फेर फटी ना कोख।
फेर फटी ना कोख री मालन प्यार किस पै कीजिये।
इस बिपत म्हं खून अपना अपने हाथों पीजिये।
मुझको भी ले ठाय दाता ये अरज सुन लीजिये।
पुत्र का तो दुख दुश्मन को मतना दीजिये।[76]

चौ. फूलसिंह नंगला का यह सांग पर्याप्त मार्मिक और नाटकीय तत्त्व से परिपूर्ण है।

मटरू लाल अत्तार -

मटरू लाल अत्तार का जन्म मेरठ शहर में शौराब दरवाजा और शाहघासा बाजार में हुआ। इन्होंने अपना परिचय अपने लोकनाट्य 'जस्सराज बच्छराज का हाल' के अंत में कुछ इस प्रकार दिया है -

अलराकिम और खाकसार है फिदवी मटरूलाल अत्तार।।

मेरठ शहर शौराब दरवाजा और शाहघासा का बाजार।।
सम्वत उन्नीस सौ सत्तावन तिथि छट और महीना क्वार।।
तीस सितम्बर सन उन्नीस सौ एक शम्बे को करी तइयार।।
बड़ी मसक्कत और महनत से मैंने इसको किया तइयार।।
जिसे जरूरत हो लेने की भेजे दाम हमारे नाम।।
बिना इजाजत जो कोई मेरी इसको छापे या छपवाय।।
नाहक उसको मिलै बुराई और कुछ मिलै भलाई नाय।।[77]

उपर्युक्त काव्यांश के अनुसार इन्होंने 'जस्सराज बच्छराज का हाल' लोकनाट्य की रचना 30 सितंबर सन् 1900 में लिखकर संपन्न किया।

मटरू लाल अत्तार आल्हा शैली में लोकनाट्य लिखने में सिद्धहस्त हैं। इनके लोकनाटयों के नाम हैं - 'राजा परमाल का ब्याह यानि मौहबे का असली हाल', 'जस्सराज बच्छराज का हाल यानि ऊदल की पैदाइश', 'आल्हा की सगाई यानि हिंगलाज की लड़ाई', 'सिरसे की पहली लड़ाई यानि पंच फैसला', 'मांडो को लड़ाई यानि बाप का बदला लेना', 'आल्हा का ब्याह यानि नैनागढ़ की लड़ाई', 'मलखान का ब्याह यानी कांसों की लड़ाई', 'मनोकामना तीरथ की लड़ाई यानि मलखान की बहादुरी', 'ब्रह्मा की सगाई यानि गंगाघाट की लड़ाई', 'ऊदल का ब्याह यानि मौहरमगढ़ की लड़ाई', 'धांदू का ब्याह यानि धौलागढ़ की लड़ाई', 'ब्रह्मा का ब्याह यानि दिल्ली की लड़ाई', 'बांदों की लड़ाई यानि सुरजा हरण', 'पथरीगढ़ की लड़ाई यानि मछला हरण', 'बलख बुखारे की लड़ाई यानि इन्दल हरण', 'सम्भल की लड़ाई यानि फुलवा हरण', 'चन्द्रावल की चौथी यानि भौरीगढ़ की लड़ाई', 'बौना चोर का ब्याह यानि रतनगढ़ की लड़ाई', 'जादूगढ़ की लड़ाईं यानि सियानन्द की लड़ाई', 'संगलदीप की लड़ाई यानि इन्दल की तीसरा ब्याह', 'भयंकर राय का ब्याह यानि समन्दर पार की लड़ाई', 'जागन का ब्याह यानि उड़न विहार की लड़ाई', 'शंकरगढ़ की लड़ाई यानि नौले का ब्याह', 'आल्हा निकासी यानि बनाफलों का दिसौटा', 'गांजर की लड़ाई', 'लाखन का गौना यानि बूंदी की लड़ाई', 'सिरसे की आखिरी लड़ाई यानि मलखान संग्राम', 'आल्हा मनौआ यानि नंदी बेतवा की लड़ाई', 'ढेवा का ब्याह यानि इन्दरगढ़ की लड़ाई', 'भुजरियों की लड़ाई यानि कीरत सागर', 'बहोरन लाल का ब्याह यानि दिल्ली की लड़ाई', आल्हा रामायण (आठों काण्ड) आदि।

इनके लोकनाट्य वीर रस पूर्ण हैं। अधिकतर लोकनाट्यों के नामों ही लड़ाइयों का जिक्र है।

निष्कर्ष -

इनके साथ कुछ छुट-पुट लोकनाट्यकार भी हुए जिन्होंने लोकनाट्य विधा को अपनी सामर्थ्यानुसार समृद्ध किया। कृष्णगोपाल, गोवर्धन दास सारस्वत, समाईनाथ, चुन्नीलाल, नेतराम, उज्ज्वल सिंह, लाला देवत राम, गुलशन हज्जी, कृष्ण गोस्वामी, कविरत्न बक्शीदास व झंडूदास (आशिक फकीर चंपादे) और रामलाल खटीक का नाम मुख्य रूप से लिया जा सकता है। शंकरदास युग लोकनाट्य की दृष्टि से एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण युग रहा।

पहली बात तो यह है कि इस युग में लोक में लोकनाट्य को लेकर कुतूहल जाग रहा था। दूसरे, लोकनाट्य में निरंतर बदलाव हो रहे थे और यह धीरे-धीरे अपना स्थायी स्वरूप धारण कर रहा था। 'मुजरे' और 'नकल' की अपेक्षा लोकनाट्य सांग सबके लिये था तथा सांग की कथाएँ सब जगह लोकप्रिय थीं। रागनी अपने रूप में ढल रही थी। हीरालाल उदासी रचित 'सांग रतनसैन राजा का' में कई जगह रागनी अपने वर्तमान रूप में आई थी। उसी प्रकार ताऊ सांगी के सांग रुक्मिणी विवाह में भी चौकलिया रागनी के दर्शन होते हैं। शंकरदास तो एक तरह से आधुनिक सांग के प्रस्तोता ही बनकर उभरे। उन्होंने अनेक लोकनाट्यों की रचना की तथा रागनी के स्वरूप को स्थिर किया। शंकरदास में तात्कालिक परिस्थितियों के प्रति कवि दृष्टिकोण भी दिखाई देता है। युगबोध की दृष्टि से कवि शंकरदास का साहित्य खरा उतरता है। चाहे वह अपने समय के पाखंडियों की पोल खोलना हो या आर्य समाज के गठन के प्रति अपने उन्मुक्त विरोधी भावों का प्रदर्शन करना हो। भविष्य में शंकरदास के शिष्यों ने लोकनाट्य के क्षेत्र को पूरी तरह से संभाल लिया था। आगे चलकर सांग सम्राट चंद्रलाल बादी, पं. लखमीचंद, पं. माँगेराम, धनपत सिंह निंदाना आदि उन्हीं की प्रणाली में हुए। शंकरदास एक प्रणाली के शीर्ष लोकनाट्यकार साबित हुए। इस युग में इन लोकनाट्यकारों ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा और अलवर तक लोकनाट्य धारा की धूम मचा दी। अलीबख्श ने रिवाड़ी क्षेत्र का मोर्चा संभाला और रागनी को टेक, कली, छाप की दृष्टि से स्थिरता प्रदान की। इस काल में भी अधिकतर दोहा, चौबोला, मुकताल आदि में अधिकतर लोकनाट्य रचना हुई। इस समय तक सांग में 'वार्ता' का अभाव है।

'वार्ता' सांग के प्रस्तुतीकरण पर निर्भर करती है। अभी तक सांगी गलियों में घूम-घूम कर लोकनाट्य का गायन करते थे। शंकरदास युग के बाद जब मंच बनना प्रारंभ हुआ तब सांग प्रस्तुतीकरण में स्थायित्व आया। खैर, उसका विश्लेषण आगामी अध्यायों में किया जायेगा।

शंकरदास युग को प्राचीन लोकनाट्य परंपरा और अर्वाचीन लोकनाट्य परंपरा का संगम युग भी कहा जा सकता है। इस काल में रागनी का रूप, सांग की विषय-वस्तु, सांग का प्रस्तुतीकरण, लोगों की लोकनाट्य के प्रति रुचि, लोकनाट्य की पूरे कौरवी प्रदेश में मंडलियों की भरमार सब लोकनाट्य के सुखद भविष्य की ओर संकेत कर रहे थे।

शंकरदास ने अपने से पहले के तथा अपने समकालीन कुछ कवियों और लोकनाट्यकारों का परिचय एक रागनी में दिया है। ये कवि हैं - सेढ़ू (हापुड़), लछमन (मौ खास), हसनू (खतौली), किशनलाल (खेड़ी), सुल्लामल, ममदा, रामबक्स, टेकचंद, लछमन सिंह हलवाई, बब्बू सिंह, सोनदास (बढ़ले), फूलसिंह (नंगला), गंगादास (रसूलपुर), शिब्बा सहाय (खंदलाबली), प्रकाशा (सिकेड़ा), लज्जाराम, रामरतन (कस्तला), गोपाल (सिसौली) आदि।[66] यह रागनी दर्शनीय है -

अब नाम सुनो कवियों के जो जन हरि नाम को गाते।

1. छंद : हापुड़ में सेढ़ू हुवा भगत हितकारी,
मौ खास में लछमन कवि हुआ शुभकारी,
खतौली में हसनू हुवा भगती कथी सारी।
खेड़ी में हुवा किशनलाल सांग खिलारी।

चौ. : एक पंडित किकोपुर वाला, जो राम नाम मतवाला।
सदा जपी हरि की माला, शुभ कर्म किये गुण आला।

उठत : सुल्ला सादा कवि, ममदा के नबी, जानते सभी।
कलु में भाषा छन्द बनाते।।

2. छंद : रामबक्स टेकचन्द बना सुखदाई।
हुये मेरठ में कवि लछमन सिंह हलवाई।
जिनका चेला किदार नन्द है भाई।
है भगत शिरोमणि सुन्दर कोमलताई।

चौ. : बब्बूसिंह ने मित्रता कीनी, हरि भगती तब से चीनी।
लख ले बात जो झीनी। सब गुनियों को आधीनी।।

उठत : बदले में सोनदास, नाम प्रकाश, मुक्ति की आस।
लख ध्यान हरि का लाते।।

3. छंद ला. : नगले में कवि है फूलसिंह अब ज्ञानी,
उनकी महिमा नहीं जानी आज बखानी,
उनकी कविता आज सभी मुल्कों ने जानी।
हुआ पतंग का प्रकाश रहा ना छानी।

चौ. : गंगादास रसूलपुर बासी, करी कविता खोज प्रकाशी।
अब जाय बसे वे काशी, तज रक्त जाल जम फांसी।

उठत : खंदराबली में शिब्बा सहाय, लिया पद पाय, ध्यान नित लाय।
सभी कवियों में ज्ञान सुनाते।।

4. छन्द : एक गाँव सिकेड़े बीच भक्त प्रकाशा।
थे घासीराम परवीन स्वर्ग में बासा।
है लज्जाराम की राम मिलन की आसा।
राम साथ इमृत ने मेटे जम त्रासा।

चौपाई : रामरतन कस्तले प्यारे, हुये डूंगर नैथने वारे।
गोपाल हैं सतगुरु म्हारे, शुभ गाँव सिसौली सारे।

उठत : शंकर मूरख निपट, चरनों से लिपट, मेरठ के निकट।
जिठौली में वकसर दास कहाते।।[78]

शंकरदास जी के समकालीन सुप्रसिद्ध कवियों-लोकनाट्यकारों का यह रागनी अद्‌भुत दस्तावेज है। इसी तरह की रागनी आगे के कवियों ने भी लिखी हैं, जो इतिहास-लेखन की दृष्टि से पर्याप्त महत्त्व की हैं।

शंकरदास के समय विभिन्न लोककवियों में शास्त्रार्थ और खोल-बंद का रिवाज़ भी चला था। हरियाणा में शंकरदास के समकालीन कई लोकनाट्यकारों से उनके काव्यमय वाद-विवाद का भी संकेत मिलता है। खोल-बंद एक तरह से काव्यात्मक प्रश्नोत्तर प्रतियोगिता होती थी। इसका स्वरूप कुछ-कुछ पहेली जैसा होता था। एक कवि प्रश्न रूप में एक रागनी की रचना करता था तो दूसरे कवियों को उसका उत्तर देते हुए रागनी रचनी पड़ती थी। यही हार-जीत का पैमाना होता था।

संदर्भ -

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृष्ठ 62
2. कवि शंकर दास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डॉ. जयकिशन सब्बरवाल, पृष्ठ 37
3. वही, पृष्ठ 38
4. वही, पृष्ठ 38
5. महाभारत भाषा - भीष्मपर्व, स्वामी शंकरदास साकिन, गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास अध्यक्ष 'लक्ष्मीवेंकटेश्वर' छापेखाना, मुंबई, संवत 1978 शके 1843 (सन् 1921), पृष्ठ 308
6. कवि शंकर दास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डॉ. जयकिशन सब्बरवाल, पृष्ठ 7
7. बुद्धि प्रकाश, शंकरदास, पृष्ठ 87
8. वही, पृष्ठ 36
9. कवि शंकर दास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, डॉ. जयकिशन सब्बरवाल, पृष्ठ 73
10. वही, पृष्ठ 72-73
11. जैमनाश्वमेध, शंकरदास, प्रकाशक ठाकुर प्रेमसिंह जिठौली, डाकखाना मऊ खास, जिला मेरठ, पृष्ठ 14
12. महात्मा गंगादास और उनका काव्य, डॉ. जगन्नाथ शर्मा 'हंस', पृष्ठ
13. वही, पृष्ठ 293
14. वही, पृष्ठ
15. वही, पृष्ठ
16. वही, पृष्ठ 311
17. सांग रतनसैन राजा का, हीरादास उदासी, पृष्ठ 9
18. स्थाणुदत्त शर्मा (भूमिका), हीरादास उदासी, सांग रतनसैन राजा का, पृष्ठ 7
19. सांग रतनसैन राजा का, हीरादास उदासी, पृष्ठ 2
20. वही, पृष्ठ 1
21. वही, पृष्ठ 110-111
22. रुक्मिणी विवाह, ताऊ सांगी, ओ.प्र. भारद्वाज, पृष्ठ I-II
23. रुक्मिणी विवाह, ताऊ सांगी, ओ.प्र. भारद्वाज, पृष्ठ II
24. रुक्मिणी विवाह, ताऊ सांगी, साधुराम शारदा (भूमिका), पृष्ठ III
25. रुक्मिणी विवाह, ताऊ सांगी, साधुराम शारदा (भूमिका), पृष्ठ V
26. रुक्मिणी विवाह, ताऊ सांगी, साधुराम शारदा (भूमिका), पृष्ठ 73

27. गुणी सुखीराम रचनावली, बलबीर 'मुनी जी', पृष्ठ 33
28. वही, पृष्ठ 153
29. वही, पृष्ठ 47
30. वही, पृष्ठ 33
31. ख्याल अलीबख्श, रेवती रमण शर्मा, पृष्ठ 11
32. वही, पृष्ठ 13
33. वही, पृष्ठ 20
34. वही, पृष्ठ 11-12
35. वही, पृष्ठ 23
36. वही, पृष्ठ 23
37. वही, पृष्ठ 24
38. वही, पृष्ठ 24
39. हरियाणवी लोकनाट्यकार एवं साँगी, डॉ. अनिल गोयल 'सवेरा', पृष्ठ 57
40. धनुषयज्ञ (पांडुलिपि), भोला मिश्र, पृष्ठ 1
41. हरियाणवी लोकनाट्यकार एवं साँगी, डॉ. अनिल गोयल 'सवेरा', पृष्ठ 57
42. वही, पृष्ठ 58
43. पुनर्लेखन शोध-पत्रिका, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, सं. प्रो. सुधीश पचौरी एवं प्रो. रमेश गौतम), डॉ. राजेन्द्र गौतम, हरियाणी काव्यरूप 'रागनी' का उद्‌भव और विकास, पृष्ठ 40
44. वही, पृष्ठ 40
45. पंडित माँगेराम ग्रंथावली, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, पृष्ठ 104
46. लोकनाट्य सांग : कल और आज, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, पृष्ठ 91
47. हरियाणवी लोकनाट्यकार एवं साँगी, डॉ. अनिल गोयल 'सवेरा', पृष्ठ 25
48. वही, पृष्ठ 90-91
49. लोकनाट्य सांग : कल और आज, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, पृष्ठ 87
50. हरियाणवी लोकनाट्यकार एवं साँगी, डॉ. अनिल गोयल 'सवेरा', पृष्ठ 24
51. लोकनाट्य सांग : कल और आज, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, पृष्ठ 99
52. वही, पृष्ठ 99
53. हरियाणवी लोकनाट्यकार एवं साँगी, डॉ. अनिल गोयल 'सवेरा', पृष्ठ 26
54. लोकनाट्य सांग : कल और आज, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, पृष्ठ 75-76
55. लोकनाट्य सांग : कल और आज, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, पृष्ठ 77

56. हरियाणवी लोकनाट्यकार एवं साँगी, डॉ. अनिल गोयल 'सवेरा', पृष्ठ 18
57. अहमद बख्श थानेसरी-कृत रामायण, बालकृष्ण मुज़्तर, भूमिका, पृष्ठ XI
58. वही, भूमिका, पृष्ठ VII
59. वही, भूमिका, पृष्ठ XI
60. वही, भूमिका, पृष्ठ 3
61. वही, भूमिका, पृष्ठ 3
62. कौरवी लोक साहित्य, डॉ. नवीन चंद्र लोहनी, भावना प्रकाशन, 109-ए, पटपड़गंज, नई दिल्ली - 110091, द्वितीय संस्करण 2023, पृष्ठ 66
63. राजा गोपीचंद, चौधरी घीसाराम भटीपुर, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, निकट आर्यसमाज स्वामीपाड़ा, मेरठ, संशोधित संस्करण, सन् 2000, पृष्ठ 2-3
64. कंवर निहाल्दे बाग, चौधरी घीसाराम भटीपुर, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, निकट आर्यसमाज स्वामीपाड़ा, मेरठ, संशोधित संस्करण, सन् 2002, पृष्ठ 10
65. वही पृष्ठ 6
66. वही पृष्ठ 7
67. कौरवी लोक साहित्य, डॉ. नवीन चंद्र लोहनी, भावना प्रकाशन, 109-ए, पटपड़गंज, नई दिल्ली - 110091, द्वितीय संस्करण 2023, पृष्ठ 66
68. वही, पृष्ठ 67
69. वही, पृष्ठ 67
70. वही, पृष्ठ 67
71. राजा हरिश्चंद्र, फूलसिंह नंगला, भगवत बुक डिपो, भगवत प्रेस, पुरानी तहसील, मेरठ - 2, पृष्ठ 48-49
72. वही, पृष्ठ 1
73. वही, पृष्ठ 5
74. वही, पृष्ठ 20
75. वही, पृष्ठ 32
76. वही, पृष्ठ 34
77. जस्सराज बच्छराज का हाल, मटरूलाल अत्तार, अग्रवाल बुक डिपो (रजि.), 460, खारी बावली, दिल्ली - 6, पृष्ठ 32
78. श्री सनातन धर्म ब्रह्मज्ञान प्रकाश, श्री स्वामी शंकरदास जी, अग्रवाल बुक डिपो (रजि.), पृष्ठ 199

छठा अध्याय

बाजे भगत युग

(सन् 1912 ई. - 1930 ई.)

प्रस्तावना -

कौरवी लोकनाट्य की उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध निश्चित रूप से लोकनाट्य कला के उत्थान, प्रयोग, परिवर्तन और मनोरंजन की दिशा तय करने में एक महत्त्वपूर्ण समय था। लोकनाट्य के स्वरूप, शैली और लोक की रुचि में हो रहे त्वरित एवं आचंभिक परिवर्तन ने लोकनाट्य में आमूलचूल परिवर्तन किये। शंकरदास ने रागणी का स्वरूप - टेक, कली, छाप, अंतरा आदि में स्थिर कर दिया। अलीबख्श ने मंच को स्थिरता प्रदान की। हीरादास उदासी और ताऊ सांगी ने लोकनाट्यों को मेलों आदि में लोकप्रिय बनाया। रामलाल खटीक ने लोकनाट्य के क्षेत्र में अपार प्रसिद्धि प्राप्त की। दीपचंद ने लोकनाट्य को आधुनिक सांग का रूप दिया। इस प्रकार बाजे भगत के समय तक आते-आते सांग लोक के मन-मस्तिष्क पर छा गया था।

बाजे भगत -

बाजे भगत एक ख्याति प्राप्त सांगी हुए। इनका जन्म 16 जुलाई 1898 को सोनीपत के सिसाणा गाँव में पिता बदलूराम तथा माता बदामो देवी के घर हुआ। लम्बे-चौड़े डील-डौल के धनी बाजे भगत अपने समय के प्रसिद्ध सांगी हरदेवा स्वामी के शिष्य बने। इन्हें बचपन से ही रामलीला आदि देखने का शौक था। अपने गुरु के सांग में इन्होंने स्त्री पात्र की भूमिका खूब निभाई। लगभग दस वर्ष गुरु के ही बेड़े में रहकर इन्होंने अपना स्वतंत्र बेड़ा बाँध लिया। और उसके बाद जो इनकी प्रसिद्धि हुई, वह कल्पनातीत है। इनके सांग रात को हुआ करते थे और सुबह चार

बजे तक चला करते थे। प्रातः चार बजे के करीब तो नगाड़ों का घोर, बाजे का बोल और मोर का शोर तीन चीज सुण्या करती।''[1]

इनकी विनम्रता की पराकाष्ठा एक घटना में दिखाई देती है। ''दिसम्बर उन्नीस सौ चौंतीस में महरौली (दिल्ली) में भगत जी और पं. लख्मीचंद का मुकाबला हुआ। अंग्रेज उपायुक्त ने भगत जी के लिए पुरस्कार की घोषणा कर दी मगर भगत जी ने मैडल पं. जी (लखमीचंद) को दिलवाया व बाद में खुद स्वीकार किया और लखमीचंद के हृदय में भी भगत जी बस गए।''[2] यद्यपि लखमीचंद बाजे भगत से तीन साल छोटे थे। उन्होंने इसलिए उन्हें पहले पुरस्कार दिलवाया कि कहीं उनके मन को ठेस न लग जाए। बाजे भगत सांग से होने वाली आय को अपने बेड़े के प्रत्येक सदस्य को नियमानुसार बाँटा करते थे। बाजे भगत बहुत ही उदार हृदय एवं प्रभावी सांगी रहे हैं। इनकी विद्वत्ता और प्रसिद्धि को देखते हुए ईर्ष्यावश इनकी हत्या कर दी गई। ये कला के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा की ईर्ष्या का शिकार हुए। इन्हें अस्पताल ले जाया गया। वहाँ पुलिस और डॉक्टरों ने इनसे हमला करने वाले का नाम पूछा तो इन्होंने बताने से मना कर दिया। जबकि इन्हें पता था कि इस साजिश को कौन रचने वाला है। उन्होंने खुद हमलावार को भगाया था। रामफल चहल के शब्दों में, ''उन्होंने लोकनाट्य परंपरा की न केवल नींव मजबूत की, अपितु इसका पोषण एवं श्रीवर्द्धन भी किया और आने वाली पीढ़ियों के लिए लोकसाहित्य का अथाह भंडार भी छोड़ा है।''[3] मात्र 38 वर्ष की आयु में उन्होंने सांग विधा को अप्रतिम ऊंचाइयाँ दीं। इन्होंने अपनी अल्पायु में 16 सांगों की रचना की। इनके द्वारा रचित सांगों के नाम हैं - 'सत्यवादी हरिश्चन्द्र', 'नल दमयंती', 'शकुन्तला दुष्यंत', 'कृष्ण जन्म', 'आदि पर्व महाभारत', 'पूर्णमल', 'गोपीचंद', 'पद्मावत', 'सरवर नीर', 'ज्यानी चोर', 'अजीत सिंह-राजबाला', 'चन्द्र किरण', 'हीरामल जमाल', 'रघुबीर धर्मकौर', 'सतवंती' और 'रूप बसंत'। बाजे भगत जहाँ सांग के मंचन के कुशल अभिनेता थे, वहीं उनकी रागनी की बनावट, बुनावट और शब्द-प्रवाह भी श्रेष्ठ था। कला ने उनके व्यवहार को अत्यधिक विनम्र भी बना दिया था। बाजे भगत के सांग के प्रारंभ में मंगलारण दर्शनीय है -

दोहा : प्रथम सभा में समरते विष्णु विधी शिव शेष।
निधि सुतापति दास सुत मेरे हृदय बसो हमेश।

दोहा : हे ईश्वर सबके धनी तेरा सारे कै प्रकाश।
श्री हरदेवा सतगुरु मिले मैं चरणों का दास।।

इसके बाद वे एक सवैया भी गाते थे -

हे ईश्वर सबके जगदीश्वर प्रभु एक अंश से जगत रचाया।
जड़ पेड़ फूल फल डाल रचे प्रभु माली बनकै बाग लगाया।
शेष महेश गनेश शारदा तेरा भेद नहीं नारद नै भी पाया।
नेति नेति वेद पुकारै ना जाणी ईश्वर थारी माया।।[4]

इसके बाद वे भेंट स्वरूप एक रागनी का गायन करते थे और उसके बाद 'वार्ता' आदि से सांग की शुरुआत करते थे।

इस काल में रागनी पूरी तरह प्रतिष्ठित हो गई थी। गाँवों में किसी भी खुली जगह पर तख्तों को जोड़कर एक सांग बेड़ा अपना सांग का प्रदर्शन करता था। सांग के बेड़े में दस-बारह लोग होते थे। साजिंदे, नकली, जनाने, सेवादार आदि सब अपनी-अपनी भूमिका निभाते थे।

बाजे भगत मार्मिक प्रसंगों के सर्जक हैं। 'राजा हरिश्चन्द्र' सांग में जब रानी मदनावत के पास रहते हुए रोहताश फूल तोड़ने बाग में जाता है और उसे साँप डस लेता है तो रानी मदनावत उसकी लाश फूँकने के लिए मरघट में आती है। मरघट का कर वसूल करने वाला हरिश्चन्द्र बिना कर के लाश फूँकने से मना कर देता है। उसकी पत्नी उससे लाख मिन्नतें करती है, परन्तु वह मानता नहीं है। बड़ा विचित्र दृश्य है कि राजा को पता है कि सामने उसके पुत्र की लाश पड़ी है। पत्नी उसे चिता में जलाने की विनती कर रही है परन्तु मृत पुत्र का पिता अपनी पत्नी से सवा रुपया कर लेने के लिए अड़ा है। पुत्र की अपेक्षा मरघट का कर महत्त्वपूर्ण हो गया। पत्नी मारे विक्षोभ में भरकर कहती है -

चाहे मेरे सिर नै काट लिए मैं खड़ी जोड़ कै हाथ पिया।
क्यों माथे म्हं की फूट गई बेटे कै मारै लात पिया।
इसी सोचै तेरा होइयो भला, तेरी बातां का मानगी गिला।
तेरा फेर्यां पै पकड़्या पल्ला, जड़ै बैठी थी पंचायत पिया।
आज मौके ऊपर आँख्य बदलग्या इसी मर्द की जात पिया।।[5]

सांग का यह दृश्य ऐसा है कि लोगों की आँखों में आँसू ला देता है। सच्ची बात यह थी कि रोहताश हरिश्चन्द्र का भी पुत्र था। पिता के नाते उसका भी कुछ कर्त्तव्य बनता था, परन्तु अपने मालिक कालिया भंगी के प्रति वह किसी भी प्रकार का धोखा नहीं कर सकता था। लाश फूँकने का सवा रुपया निर्धारित था।

'राजा हरिश्चन्द्र की कथा पर सांग रचना तथा सांग देखना और सुनना प्रारंभ से ही लोक की रुचि का कारण रहा है।

'नल दमयंती' सांग में जुए के दुष्परिणामों पर प्रकाश डाला गया है। नल और दमयंती दोनों की अप्रतिम जोड़ी है। परन्तु नल जुए का आदी है। वह जुए में अपने भाई पुष्कर से अपना तमाम राज-पाट व दौलत हार जाता है और उसे, दमयंती तथा पुत्र इन्द्रसेन व पुत्री इन्द्रसेना को दर-दर की खाक छाननी पड़ती है। दमयंती उसे समझाती है -

> तेरे भले की कहरी सूं कुछ मेरी बात म्हं फीक नहीं
> धर्मी और सतवादी का जुआ खेलणा ठीक नहीं।।

तीसरी कली

> तेरे दुष्कर्मां की जाण पिया पटग्यी प्रजा सारी नै।
> कोय धोरै भी ना बैठण देता चोर जार जुवारी नै।
> जुए के जालिम इसत्हारी नै, माँगी मिलती भीख नहीं।।[6]

बाजे भगत ने चोर, जार और जुआरी को एक ठहराया है। इस प्रकार की उक्तियाँ लोक में एक नैतिकता का वातावरण बनाती हैं। 'रूप बसंत' सांग में विमाता के जार-कर्म को दिखाया गया है। 'हीरामल जमाल' सांग में भी पुरुष के जार-कर्म को ही दिखाया गया है। 'सरवर नीर' एक ऐसा सांग है जिसमें अपने वचन के लिए राजा अपना राज-पाट सब त्याग देता है।

बाजे भगत के सांग विविध आयामी और शिक्षाप्रद हैं। उनके जीवन काल में ही उनकी इतनी अधिक प्रसिद्धि हो गई थी कि लोग उन्हें 'भगत' के नाम से पुकारने लगे थे। उनके सांगों में अश्लीलता नाम की चीज नहीं थी। वे स्वयं कहते थे -

> कह बाजे राम गुरु धोरै, ये सीखी बात बनाणी।
> चाहे बाब्बू बेटी, बाहण सुणो इसी रागनी गाणी।[7]

बाजे भगत नाई जाति से थे। उनका सितारा बुलंद था। व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा के चलते उनकी हत्या कर दी गई, परन्तु लोक में उनकी छवि निर्मित हो चुकी थी, जो एक आदर्श सांगी की थी। जिसके सांगों को पिता, पुत्री और बहन एक साथ बैठकर देख सकते थे। जिनसे दुर्व्यसनों को त्यागने की शिक्षा मिलती थी। नैतिकता जिनके सांगों का मुख्य अंग थी। कर्त्तव्य-निष्ठा और ईमानदारी का पाठ जिनके सांगों की महती सीख थी। आज तक बाजे भगत का नाम बड़े आदर से लिया जाता है।

चौ. नत्थूदास मीरांपुर -

चौ. नत्थूदास मीरांपुर का जन्म गाँव मीरांपुर जिला मुजफ्फरनगर में हुआ था। इनकी हस्तलिखित प्रति 'सांग छबीली भटीयारी का' मिली है, जो स्वयं इन्हीं द्वारा लिखित है। इस सांग के अंतिम पृष्ठ पर इन्होंने लिखा है -"इस किताब की इजाजत हमेसा के लिए छापने की सुफी सरफु दिन को दी गई, अब कोई स्कस यामे खुद बगैर इनकी इजाजत तहरीरी के नहीं छाप सकता। बालकम खुद 19-10-15।"[8]

इनके गुरु का नाम था ननुवांदास। इसका संकेत इन्होंने 'छबीली भठियारी' सांग में दिया है -

ननुवांदास रामगुन गाये, चलकर रंगमहल म्हं आये।
नत्थूदास ने छंद बनाये, सबको शीश निवायके।
वर दे रही गंगे माता।[9]

सांग 'छबीली भटियारी का' का रचनाकाल 19 अक्तूबर सन् 1915[10] का है। इस आधार पर उनका काल शंकरदास युग पड़ता है।

इन्होंने छह लोकनाट्यों की रचना की - 'छबीली भठियारी', 'नरसी का भात', 'भजन निदने का भात', 'सौदागर बच्चा प्रेमवती', 'आशिक फकीर चंपादे' और 'जानी चोर महकदे' आदि।

इन्होंने अपने गाँव के नाम का उल्लेख भी एक रागनी की चौथी कली में किया है -

राजघरों की राजदुलारी बैठी रहूं निरास।
मीरांपुर के रहने वाले, कहते नत्थूदास।[11]

इनका 'छबीली भटियारी' सांग में एक दांपत्य जीवन में एक भठियारी का हस्तक्षेप दिखाया गया है। अकबर बादशाह का शहजादा रमन एक भटियारी के संपर्क में आता है तो बादशाह उसका विवाह चौंडेरा के सुलतान की शहजादी से करवा देता है। विवाह के उपरांत भी शहजादा भटियारी के पास आना-जाना जारी रखता है। अंत में बहुत ही सूझ-बूझ के साथ शहजादी अपने पति को उसके चंगुल से छुड़ा कर लाती है। और उनका घर बसता है। बाद में वह पश्चात्ताप भी करता है-

मेरी नार महलों म्हं तड़फी, खाया शीरा छोड़ी बरफी।
त्याग दिये मैं मोहर अशर्फी, झुकी कौड़ियों के खेल पै।
सब कुल की कांण डबोई।[12]

उसके बाद वह छबीली भटियारी को सजा भी देता है। नत्थूदास ने कुछ सुक्त पद्य भी लिखे हैं -

राजा, जोगी, अगन, जल इनकी उलटी रीत।
मुलाकात सबसे करे थोड़ी पालें प्रीत।
थोड़ी पाले प्रीत इनका मतलब समझे कोई।
तोते बरनी आँख पलट जाँ करते पलख बिछोई।
तेरी जान नहीं बचने की खड़ी खड़ी क्यों रोई।
आम कहाँ से खावै तिरिया, पहले कीकर बोई।[13]

भटियारी को जल्लादों के हवाले कर दिया जाता है तो वह उनसे माफी माँगती है और समय का कुंडलिया लोक की आदर्श सीख के रूप में आता है। वह कहती है -

सख्त सजा हटती नहीं, लाख करो तदबीर।
चुगलखोर और जार का, बिगड़े बड़ा अखीर।
बिगड़े बड़ा अखीर, अंत म्हं होती इनकी हारी।
जान तुम्हारी ना बचने की, चलने की कर त्यारी।
जल्लादों मत देर लगाओ, कल कल कर दो न्यारी।
जो तुम इसको जीती छोड़ो तुमे सजा हो भारी।[14]

जार-जारिणी चाहे हिन्दू हो या मुसलमान उसको सजा मिलती ही है। यह लोकनाट्यकारों का महती संदेश था।

इनका 'सौदागर बच्चा प्रेमवती' भी स्त्री-पुरुष संबंध की नैतिकता का ही सांग है।

नत्थूदास मीरांपुर ने दोहा, चौबोला, मुकताल आदि में काव्य-रचना ही अधिक की है। वे रागनी का भी प्रयोग करते हैं, परंतु कम मात्रा में। उर्दू के शब्दों की भरमार भी उनके काव्य में मिलती है।

खचेड़ू खाँ -

खचेड़ू खाँ गाँव जानी, जिला मेरठ, उत्तर प्रदेश निवासी थे। ये तेली जाति से थे। इन्होंने 'जानी चोर महकदे' लोकनाट्य में अपना परिचय कुछ यूं दिया है -

उम्दा घड़ दूं छन पछेली, जुगनी बाजूबंद खपेली।
कहे खचेड़ू तेली, सबका हो ताबेदार।[15]

चौधरी शंकरसिंह इनके गुरु थे। इन्होंने अनेक रागनियों में चौथी कली में उनका नाम बड़े सम्मान के साथ उद्धृत किया है, यथा -

शंकर कुछ कर चल दुनिया म्हं, भलाई यहां रह जावेगी।
इस नादान खचेड़ू को नित खुदी सतावेगी।[16]

x *x* *x*

मेरे पैरों म्हं हो पायल, बाजा सुन आशिक हो मायल।
शंकर छंद सुने हो कायल, खचेड़ू खास रहे है जानी।[17]

इनका 'जानी जोर महकदे' लोकनाट्य एक विशेष लोकनाट्य है। हालांकि यह लोकनाट्य और लोकनाट्यकारों ने भी लिखा है। परंतु खचेड़ू खाँ द्वारा रचित इस लोकनाट्य में हास्य व्यंग्य और सहज भाषा द्वारा यह सुंदर बन पड़ा है। नर सुल्तान व जानी चोर भात भरने जाते हैं। आबू दरिया के किनारे स्नान करने लगते हैं तो उन्हें महकदे की तख्ती मिलती है जिसमें उसने अदली खाँ की कैद से छुटकारा दिलाने के लिए गुहार लगाई थी। जानी चोर उसे छुड़ाने के लिए जाता है तथा चकमा देकर धमन सुनार, कोतवाल व अदली खाँ से महकदे को छुड़ाकर लाता है। इनका यह लोकनाट्य बेहद रोचक, जिज्ञासावर्द्धक और वीर रस से परिपूर्ण है। जब धमन सुनार की चुनौती को स्वीकार करता हुआ जानी उसका ही जमाई बनकर उसका सारा सोना लूट लेता है तो अदली खाँ को और चिंता होती है -

ये निकला अंजाम धमन का, बन गया खास जंवाई।
चोर है सीने जोर बात कुछ नहीं समझ म्हं आई।
पकड़ो कोई रजपूत उस छल बल धोखे सै भाई।
मुँह माँगा दूं दरब मेरे जो करदे मन की चाही।[18]

अब कोतवाल जानी चोर को पकड़ने का बीड़ा उठाता है तो जानी उसके ही चक्रव्यूह में उसे ही फँसा देता है। स्त्री वेश में जानी की कथनी द्रष्टव्य है-

सत पर सती सूरता रन म्हं, अपनी जान खपा दे छन म्हं।
सती पूजन बस गया मन म्हं, शंकर कहै पुकार जी।[19]

खचेड़ू खाँ ने और भी अनेक लोकनाट्यों की सृजना जरूर की होगी जो काल के गाल में समा गए। इन लोकनाट्यों का संरक्षण नहीं हो पाया। रागनी का उपयोग तो इन्होंने किया ही है। इसके साथ-साथ दोहा, कड़ा मुखताल, हाथरस, लावनी आदि में भी काव्य रचना की है।

सरूप चंद -

सरूप चंद का जन्म गाँव दिसौर खेड़ी, जिला रोहतक में सन् 1890 को हुआ। इन्होंने कुछ समय तक फौज में भी नौकरी की। परंतु 1919 में इन्होंने फौज से नौकरी छोड़कर अपना सांग बेड़ा बना लिया। अपने ही गाँव दिसौर खेड़ी निवासी गंगाराम से गुरुमंत्र लेकर ये सांग के क्षेत्र में उतरे। इन्होंने 'सरणदे', 'हरिश्चन्द्र', 'पद्मावत', 'हीर रांझा', 'गोपीचंद', 'महाभारत', 'उत्तानपाद', 'ज्यानी चोर' एवं 'जमाल- गबरू' जैसे प्रसिद्ध सांगों की रचना की।[20]

इन्होंने 1931 तक सांग किये। इनकी शिष्य परंपरा में कोई समर्थ सांगी नहीं हुआ, जो इनकी परंपरा को आगे चलायमान रख पाता। इन्होंने सांगों के माध्यम से उस समय प्रचलित कुप्रथाओं पर भी व्यंग्य किया है। इनकी कुछ पंक्तियाँ दर्शनीय है -

सजनो नेम धर्म तप क्रिया घटगी।
न्यों काळां पै काळ पड़ैं।
ब्रह्मज्ञानी कहते थे अगत गती की।
मुश्किल सै अब जती सती की।
कंवारी नै चाहना हुई पति की।
विषय भोग में नीत बिगड़गी।
सजनो खुद आपस में जाळ पड़ैं।
जोहड़ में मंदर रच दिया भारी।
जिसमें जाते हैं नर-नारी
जड़ै ठहरैं थे ब्रह्मचारी।
उड़ै इब खास पुजारी सुलफा पीवैं।
मुँह तै टप-टप राळ पडै।[21]

सरूप चंद के सांगों में सामाजिक शिक्षा भी मिलती है। एक कली दर्शनीय है -

पक्षी के लिए समंदर घटै ना, विद्या घटे ना लाख पढ़ाये।
अग्नि में सोने की आन घटै ना, भान घटै ना बादल छाए।
तिमिर में लाल का तेज घटै ना, रैन घटै ना दीप जलाए।
दान दिये नहीं द्रव्य घटै, ना मान घटै उपकार कमाए।[22]

सरूप चंद वैसे तो अपनी रचनाओं में श्रृंगार रस को प्रधानता देते थे, लेकिन उन्होंने शांत और वीररस को भी अपने काव्य में स्थान दिया।"[23]

चतरू सांगी -

चतरू सांगी बाजे भगत के गुरु भाई थे। उनका जन्म सन् 1900 में जिला रोहतक में गढ़ी साँपला में लुहार जाति में हुआ था। इनके पिता का नाम अमीलाल और माता का नाम जसवंती उर्फ जुगनी था। इन्हें बचपन से ही गाने-बजाने का शौक था। बचपन से ही इनके पिता इन्हें हरदेवा स्वामी के पास छोड़ आए और उसके बाद वे सांग विधा में पूरी तरह रम गये। चतरू अपनी किशोर अवस्था में अत्यधिक सुंदर थे और स्त्रियों के वस्त्रों में कमसिन सुकुमार लगते थे। इसलिए हरेदवा के सांग में लोग उनको ही देखने आते थे। हरदेवा को भी इससे ईर्ष्या होने लगी थी। जिसके कारण उन्होंने हरदेवा का बेड़ा छोड़कर अपना अलग बेड़ा बना लिया और सांग-सृजन में लग गए। अनेक लोग चतरू के साथ अपनी लड़कियों की शादी करने के लिए तैयार हो जाते। इनकी पत्नी रामदेई एक बहुत ही सुशील महिला थीं। इनकी प्रसिद्धि के कारण इनके घर पर लोगों का जमावड़ा लगा रहता था, जिनके खाने-पीने का प्रबंधन इनकी पत्नी ही करती थीं।

चतरू सांगी ने अपने जीवनकाल में ग्यारह सांग लिखे - 'गोपीचंद', 'भरथरी', 'अनिरुद्ध-उखां', 'सरवर नीर', 'रूप बसंत', 'रघबीर धर्मकौर', 'ज्यानी चोर', 'पूर्णमल', 'रूपसेन-मैनाकौर', 'हीरामल जमाल', 'रागनी चन्द्रामल', 'चन्द्रकिरण मदनसैन' आदि। इसके साथ-साथ उन्होंने बीस उपदेशक भजन भी लिखे।[24]

चतरू सांगी जितने अच्छे गायक और अभिनेता थे उतने ही अच्छे मार्मिक प्रसंगों के रचयिता भी थे। वे विनम्रता और सद्भाव को गायन की सबसे पहली शर्त मानते थे। एक रागनी की चौथी कली इस संदर्भ में दर्शनीय है -

गावण का घर दूर बताया बड़े बडूयां तै न्यूं ए सुणा।
कोए सांगी कोए भजनी बण कै ढोलक ठा रह्या जणा-जणा।
जाट ब्राह्मण बणिया गावै और के मतलब कहूँ घणा।
इस पहरे म्हं आ कै नै यो माणस-माणस कवि बणा।
कहै चतरू उसका के गाणा जिसके बोलण म्हं तासीर नहीं।[25]

कवि अहंकार रहित कला को सच्ची कला मानते हैं। 'रूपसैन-मैनाकोर', 'रघबीर धर्मकौर' आदि उनके मौलिक सांग है। इनका 'रूप बसंत' का सांग बहुत मार्मिक सांग है। रूप और बसंत को उनकी सौतेली माँ के अत्याचार से पिता द्वारा दिसौटा दे दिया जाता है। जंगल में बसंत को साँप डस लेता है तो रूप को पिता तथा विमाता की क्रूरता पर विक्षोभ होता है और वहाँ करुण रस की धार बह निकलती है -

बालेपन म्हं दिया दिसौटा पिता हमारा डर्‌या नहीं।
पाथर की नाव म्हं चढ़कै कोए आदमी तिर्‌या नहीं।
कहै चतरसिंह भक्ति कान्हीं नै सपने म्हं भी फिर्‌या नहीं।
अपनी उमर संभाले पाछै कोय काम पाप का कर्‌या नहीं।
फिर भी क्यूं इसे दुख दिखलाए के पाड़ राम तेरे बूंट लिये।[26]

'के पाड़ राम तेरे बूंट लिये' में रूप ईश्वर से भी प्रश्न करता है कि हमें किस दोष का दंड मिल रहा है।

चतरू सांगी ने सांग विधा को ऊँचाइयों पर चढ़ाया तथा वे अति लोकप्रिय सांगी के रूप में उभरे।

बाजे भगत युग में सोहनलाल कुंडल, मानसिंह जोगी, सूरजभान वर्मा, दीनानाथ लुहार उर्फ दिन्ना, नत्थाराम आदि लोकनाट्यकार भी हुए जिन्होंने इस समय की लोकनाट्य परंपरा को समृद्ध किया।

निष्कर्ष -

बाजे भगत एक विनम्र सांगी थे। सांग में जो संरचनात्मक बदलाव शंकरदास युग में हो रहे थे, उनका पूर्ण बदला रूप हमें इस काल में देखने को मिलता है। इस काल में दोहा, चौबोला आदि गौण होते चले गये तथा सांग पूरी तरह से 'रागनी' और 'वार्ता' में बदल गया। रागनी इस युग में पूरी तरह से स्थापित हो गई।

रागनी स्थापित ही नहीं हुई थी बल्कि अंग्रेज अधिकारियों का ध्यान भी इसकी बढ़ती लोकप्रियता की ओर गया था। उन्होंने सांगों की प्रतियोगिताएँ करवानी शुरू कर दी थीं। इस समय अनेक सांगी लोकनाट्य के मैदान में आग गये थे। अपने मंचन के साथ वे दूसरे सांगियों पर भी नज़र रखते थे। कहीं-कहीं सांगियों में परस्पर ईर्ष्या की भावना भी दिखाई देती है। यह युग सांग-प्रतिस्पर्धा का युग था। अपने समय के सबसे प्रसिद्ध सांगी बाजे भगत की हत्या इसका प्रमाण है। चतरू की लोकप्रियता उसके गुरु हरदेवा से अधिक हो गई तो सरूप चंद ने ईर्ष्यावश उसे अपने बेड़े से भगा दिया। अलग होकर चतरू ने एक अलग बेड़ा बाँध लिया तथा वह अपने गुरु से अधिक प्रसिद्ध हुआ।

इस समय के सांगों में 'जानी चोर' सांग बहुत अधिक पसंद किया जाता था। जहाँ पर यह सांग साहस, बहरूपियापन तथा नायक की हैरतअंगेज चतुराई का प्रदर्शन करता है वहीं हिन्दू-मुस्लिम मसले को भी छूता है। जानी चोर हिन्दू होने के

नाते अदली खां की कैद से हिन्दू राजा की राजकुमारी महकदे को छुड़ाकर लाता है। इस सांग की कथा धीर-गंभीर, हास्य, रोमांच और कर्त्तव्यपरायणता का गुंफन है। इसलिये लोक में यह कथा अधिक प्रसिद्ध हुई। इसके साथ ही 'गोपीचंद' सांग एक नाथ संप्रदाय से जुड़ी धार्मिक कथा पर आधारित सांग है तथा गोपीचंद सांग में गोपीचंद की माता स्वयं अपने पुत्र को योग लेने के लिये प्रेरित करती है। वह राजपाट छोड़कर गुरु गोरखनाथ की पंगत में चला जाता है। 'पूरणमल' सांग की कथा अनमेल विवाह जनित कामकुंठा का जीता-जागता उदाहरण है। पूरणमल की मौसी अपने पति की काम अक्षमता के कारण अपने सौतेले पुत्र से ही जार-कर्म करना चाहती है। जब सफल नहीं हो पाती तो वह उस पर ही आरोप लगाकर घर से निकलवा देती है। 'हीरामल जमाल' भी इस काल का एक लोकप्रिय लोकनाट्य है। इसे लोकनाट्य में हीरामल पत्नी के होते हुए जमाल से इश्क लड़ाता है। पुरुष के जार-कर्म पर आधारित इस सांग में उसके दुष्परिणामों को दर्शाया गया है।

इस समय सांग का रोमांच कौरवी क्षेत्र में छा गया था। लोगों के पास सांग के अतिरिक्त और कोई मनोरंजन का साधन नहीं था। लोग दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह कोस पैदल सांग देखने पहुँच जाते थे। सांगी का लोक में विशेष प्रभाव था। चतरू इस काल में महत्त्वपूर्ण सांगी हुए जिनकी सुन्दरता, अभिनय और गायन का जादू चला था। उन्हें कई बार चाँदी के सिक्कों में लोगों ने तोला था।

संदर्भ -

1. बाजे भगत रचनवली, डॉ. रामफल चहल, पृष्ठ 9
2. वही, पृष्ठ 8
3. वही, पृष्ठ 12
4. वही, पृष्ठ 13
5. वही, पृष्ठ 32
6. वही, पृष्ठ 46
7. वही, पृष्ठ 10
8. छबीली भटियारी (हस्तलिखित पांडुलिपि), चौ. नत्थूदास मीरांपुर, अंतिम पृष्ठ

9. छबीली भटियारी, चौ. नत्थूदास मीरांपुर, भगवत बुक डिपो, डिप्टी गंज, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 9
10. छबीली भटियारी (हस्तलिखित पांडुलिपि), चौ. नत्थूदास मीरांपुर, अंतिम पृष्ठ
11. छबीली भटियारी, चौ. नत्थूदास मीरांपुर, भगवत बुक डिपो, डिप्टी गंज, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 28
12. वही, पृष्ठ 30
13. वही, पृष्ठ 38
14. वही, पृष्ठ 39
15. खचेड़ू खाँ, हस्तलिखित पांडुलिपि
17. वही
18. वही
19. वही
20. लोकनाट्य सांग : कल और आज, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, पृष्ठ 104
21. वही, पृष्ठ 104
22. वही, पृष्ठ 106
23. हरियाणवी लोकनाट्यकार एवं साँगी, डॉ. अनिल गोयल 'सवेरा', पृष्ठ 26
24. चतरू सांगी, डॉ. रामफल चहल, पृष्ठ 5
25. वही, पृष्ठ 146
26. वही, पृष्ठ 149

सातवाँ अध्याय

पं. लखमीचंद युग

(सन् 1931 ई. - 1945 ई.)

प्रस्तावना -

बाजे भगत की हत्या हो गई। यह कृत्य सांग के क्षेत्र में गलाकाट प्रतिस्पर्धा का ही दुष्परिणाम था। लोगों के पास मनोरंजन का साधन मात्र सांग थे। सांग केवल प्रदर्शनकारी विधा नहीं रह गई थी। अब यह पूर्णतः एक ठोस व्यावसायिक विधा बन गई थी। इसमें ग्लैमर आ गया था। नवीन कहानियों पर लोकनाट्य नए वाद्ययंत्रों पर जोर दे रहे थे। लोकनाट्य मंडली अब कंपनी के रूप में दिखाई देने लगी थी जिसमें बेड़ेबंद (मुखिया), अभिनेता, विदूषक, जनाने, सांजिदे और सेवादार सभी होते थे। ये कई-कई महीनों के बाद अपने घर जाते थे। एक-एक लोकनाट्यकार के पास पंद्रह-पंद्रह बीस-बीस लोकनाट्य होते थे। यानी जितने भी लोकनाट्य उतने ही दिन किसी एक स्थान विशेष पर रुककर सांग करने का माद्दा। कई बार दर्शकों की माँग पर एक ही सांग दोबारा अगले दिन भी करना पड़ता था। सांग की चकाचौंध में बाजे स्वयं को 'भगत' कहलवा गए थे। उनके जीवन काल में ही लोग उन्हें भगत कहने लगे थे। उनकी प्रसिद्धि एक अद्वितीय सांगी के रूप में होने लगी थी कि वे ईर्ष्या के शिकार हो गए और मार डाले गए।

बाजे भगत के बाद पं. लखमीचंद का उभार लोकनाट्य को चार चाँद लगा रहा था। उन्हें उनकी जाति का अतिरिक्त लाभ मिला। इनके पास एक से एक साजिंदे थे नर्तक थे और उन्हें सलाह देने वाले टीकाराम शास्त्री जैसे पढ़े-लिखे लोग थे। सांग के इतिहास में यदि किसी सुनियोजित सांगी का नाम लिया जाएगा तो वे पं. लखमीचंद थे। वे अनपढ़ थे परंतु रागनी सृजन के मामले में अद्‌भुत प्रतिभाशाली थे। बौद्धिक संपदा के रूप में टीकाराम शास्त्री[1] और पंडित रघुवर शास्त्री

हमेशा उनकी मंडली में स्थायी रूप से रहते थे। इस काल में कुछ लोकनाट्यकारों का विवरण निम्न प्रकार है -

पं. लखमीचंद -

पं. लखमीचंद का नाम कौरवी क्षेत्र में विशेष सम्मान के साथ लिया जाता है। उनका जन्म सन् 1901 में गाँव जाँटी कलाँ, जिला सोनीपत, हरियाणा में एक मध्यम वर्गीय गौड़ ब्राह्मण परिवार में हुआ।[2] उनके पिता पंडित उमदीराम एक साधारण से किसान थे। जो अपनी थोड़ी-सी भूमि पर कृषि करके समस्त परिवार का भरण-पोषण करते थे।[3]

पं. लखमीचंद बचपन से ही सांग विधा की ओर आकर्षित हो गए थे। उन्होंने पं. दीपचंद के सांग देखे। ग्वालों के संग घूम-घूम कर वे गुनगुनाया करते थे। इनके गुरु का नाम मानसिंह था[4] उन्होंने अनेक रागनियों में अपने गुरु का नाम ससम्मान लिया है -

घर आए का आदर करणा मान बड़ाई हो सै।
जती सती के मन के अंदर खुद चतराई हो सै।
गुरु मानसिंह कहै झूठे रंग की कम रूसनाई हो सै।
याद कवि कै छंद धारण की घड़त सफाई हो सै।
कहै लखमीचंद सच्चे प्यारां के हरदम गुण गाता मैं।[5]

इन्होंने 19 सांगों की रचना की- 'नौटंकी', 'ज्यानी चोर', 'शाही लकड़हारा', 'हूर मेनका', 'रघुबीर धर्मकौर', 'राजा भोज सरणदे', 'चंद्रकिरण', 'हीर-रांझा', 'चापसिंह', 'चीर पर्व', 'विराट पर्व', 'नल दमयंती', 'पूर्णमल', 'सत्यवान सावित्री', 'राजा हरिश्चंद्र', 'सेठ ताराचंद', 'पद्मावत', 'भूप पुरंजन' और 'मीराबाई' आदि।[6] इसके साथ-साथ इन्होंने शताधिक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं।

पं. लखमीचंद के सांगों में वेद पुराण, स्मृतियों को लौकिक रूप मिला है। प्रारंभिक समय में वे श्रृंगारपरक रागनियों की रचना किया करते थे। उनकी रागनी की बनावट उत्कृष्ट कोटि की थी। बाद में एक टीकाराम शास्त्री उनके संपर्क में आए। उन्होंने उनकी दिशा को ही परिवर्तित कर दिया। इस परिवर्तन में लौकिक से वैदिक हो गए। इनके लोकनाट्यों में तमाम प्रकार की सामाजिक विडंबनाएँ उसी रूप में आई हैं, जिस रूप में वे पहले प्रचलित थीं। वे यथास्थितिवादी लोककवि के रूप में उभरते हैं। बल्कि जाति और वर्ण की भावनाओं को कौरवी क्षेत्र में लोकनाट्य

के माध्यम से उन्होंने और गहरा किया। स्त्रियों के प्रति भी पं. लखमीचंद परंपरावादी ही रहे। 'नौटंकी' इनका प्रतिनिधि सांग है जो पूरी तरह से काल्पनिक लौकिक कथा पर आधारित है। इस लोकनाट्य में 66 रागनियाँ है।[7] इस लोकनाट्य को पं. लखमीचंद ने हरियाणा उत्तर प्रदेश में खूब मंचित किया। राजा गजेसिंह के दो बेटे थे। भूपसिंह व फूलसिंह। भूपसिंह का विवाह हो चुका था। भाभी व फूलसिंह में शादी को लेकर तकरार होती है। भाभी कहती है -

लक्ष्मी रूप बीर का घर म्हं घर भरवाणा चाहिए।
याहे कसर सै फूलसिंह का ब्याह करवाणा चाहिए।[8]

उसके बाद भाभी के रूखे व्यवहार के कारण फूलसिंह घर छोड़कर चला जाता है और अंत में नौटंकी को ब्याहकर ही लाता है।

लोकनाट्य व रागनी को सबसे अधिक लोकप्रिय बनाने का श्रेय लखमीचंद को दिया जा सकता है। हालाँकि सांग बाजे भगत के समय पूरी तरह प्रतिष्ठित और लोकप्रिय हो चुका था। पं. दीपचंद ने और बाद में चतरू सांगी ने अभूतपूर्व लोकप्रियता हासिल की थी। वे लोक के कलाकार बनकर उभरे थे। इन्होंने उसका और अधिक परिष्कार व विस्तार किया। लखमीचंद ने जिन दिनों सांग शुरू किए, उन दिनों श्रृंगार रस से परिपूर्ण सांगों का प्रचलन था। उन्होंने युगानुरूप चलना उचित समझा और श्रृंगार रस के सांगों के मंचन से जनप्रिय हो गए। परंतु उनकी मंजिल तो अध्यात्म थी।[9] पं लखमीचंद में यह बड़ा बदलाव था। इसी कारण उन्होंने लोकप्रियता के चरम को छुआ।

पं. लखमीचंद वर्ण और जाति को मानने वाले लोकनाट्यकार हैं। उनके सांगों में उनका यह पूर्वाग्रह यत्र-तत्र मिल ही जाता है। यथा वे लिखते हैं -

शूद्र सेवा कर्या करै थे, बनिया खेती क्यारी।
क्षत्री सबकी रक्षा करै थे, ब्राह्मण वेदाचारी।
कह लखमीचंद फंड चालगे, अक्कल न्यारी-न्यारी।
धर्म सनातन भूल गए फिरै दुनिया मारी।[10]

नवजागरण के दौरान शिथिल होते जाति-वर्ण के बंधनों को वे फंड चालना मानते थे।

यह भी हैरानी की बात है कि पं लखमीचंद का जीवनकाल अनेक आंदोलनों का समय रहा। उनका जीवनकाल भारत में तेज होते स्वतंत्रता-संग्राम का समय था।

परंतु यह पूरा आंदोलन उनसे अछूता है। वे पूरी तरह से वैदिक संस्कृति की लौकिक प्रतिस्थापना में ही लगे रहे। डॉ. पूर्णचंद शर्मा ने लिखा है कि "पं. लखमीचंद वैदिक संस्कृति के अधिष्ठाता हैं। उनके काव्य में सत्य, धर्म, दया, दान, गुरुभक्ति, आदि संस्कृति के शाश्वत मूल्यों की गूंज पदे-पदे सुनाई पड़ती है। वैसे तो उनके सभी सांगों में अवसरानुकूल यत्र-तत्र धर्म की प्रतिष्ठापना हुई है, किंतु कुछ सांगों की कथावस्तु का तो आधार ही धर्मग्रंथ है।"[11]

पं. लखमीचंद वेद के कवि हैं लोक के नहीं। उनमें लोक कहीं नहीं झलकता। लोक को देखने का उनका चश्मा वर्ण और जाति के जरिए ही काम करता है। पं. लखमीचंद में कहीं भी खेत खलिहान, गरीब-अमीर खाई की चिंता, भगतसिंह की फाँसी, भारत छोड़ो आंदोलन की आँच नहीं आती। ऐसे समय में उनके सांगों की विषयवस्तु अपने पाठकों को भी यथास्थितिवादी ही बनाती है। पं. लखमीचंद को उसके बाद सबसे अधिक प्रचार-प्रसार मिला, जिस कारण उनको कविसूर्य तक स्थापित कर दिया। जबकि उनके लोकनाट्यों में हरियाणा की सांस्कृतिक पहचानें गायब हैं।

पं. लखमीचंद की प्रसिद्धि का एक कारण यह भी था कि उनके बाद उनके शिष्यों ने अबाध रूप से उनके लोकनाट्यों का मंचन जारी रखा। लखमीचंद की विद्वत्ता के कारण उनकी इस कला को सीखने वालों की बड़ी संख्या है। उनके शिष्य पं. माँगेराम, माईचंद, माईराम, पं. सुल्तान सिंह, रतिराम और पंडित चंदनलाल आदि प्रमुख हैं।

हालांकि पं. माँगेराम ने उनके सांगों का कभी मंचन नहीं किया। परंतु वे पं. लखमीचंद का नाम बहुत ही सम्मान से लेते रहे। पं. माँगेराम की लोकप्रियता से उनके गुरु पं. लखमीचंद स्वयमेव बड़े होते चले गए।

पं. लखमीचंद लोकनाट्य के क्षेत्र में एक ब्रांड की तरह स्थापित हो गए। अनेक कवियों की रागनियाँ भी उनके नाम से छाप काटकर गाई गईं। पं. माईराम, पं. सुल्तान सिंह रोहदिया और दयाचंद मायना की अनेक रागनियाँ पं. लखमीचंद के नाम से गाई जाती हैं। लक्ष्मीनारायण शर्मा वत्स के संपादन में 'श्री शुकदेव स्वरूप पं. लखमीचंद सांगी का रत्नकोष' नाम से एक पुस्तक आई है, जिसमें उन्होंने सैंकड़ों रागनियाँ बाकायदा उनके शिष्यों के हवाले से प्रामाणिकता के साथ यह कहकर निकाल दीं कि ये रागनियाँ पं. लखमीचंद की हैं ही नहीं।

बहरहाल पं. लखमीचंद कौरवी क्षेत्र के एक बहुत ही लोकप्रिय लोकनाट्यकार

रहे। इनसे रागनी विधा धन्य हुई। विद्वानों की श्रेणी में रखे जाने वाले पंडित लखमीचंद जी का देहावसान 17 अक्तूबर 1945 को हुआ।[12]

डॉ. शंकरलाल यादव ठीक लिखते हैं, "वह मानवी कवि नहीं वरन् दैवी कवि जान पड़ता है। उनकी कृतियों के क्षरा कभी हम वात्यल्य में, कभी शृंगार में, कभी करुणा में और कभी अद्‌भुत रस में डूबा पाते हैं।"[13]

लाला घनश्याम दास

लाला घनश्याम दास का कारोबार मेरठ में था। इनका हलवाई का काम था। जिसका जिक्र उन्होंने सांगीत पूर्णमल में किया है। वे लिखते हैं -

औघड़ पहुँचा जाए कुवे पै महते की चतुराई।
पूर्णमल को कह तोबां होनी नै दिया दिखाई।
दाँतों से तांबे को पकड़ा पूर्णमल नै भाई।
सुनो सत्य की कथा कहे कवि घनश्याम दास हलवाई।[14]

इनके गुरु का नाम सुल्हड़ सिंह था, जो सेढू सिंह की परंपरा से आते थे। कवि घनश्याम दास ने अपनी प्रणाली का कुछ यूं वर्णन किया है -

मैं विनय करूँ कर जोड़ सुनो तुम ज्ञान बताने वाले।
सेढू सिंह पूरे गुरु ज्ञानी, हुए ये आदि गुरु महारानी।
कोई हुआ न उनकी सानी, रंगत नई चलाने वाले।
मैं विनय करूँ कर जोड़ सुनो तुम ज्ञान बताने वाले।
दूजे टेकचंद मरदाने, तीजी पुस्त हुलास बखाने।
चौथे लछमन सिंह को जाने, गुरु सुल्हड़ सिंह को ज्ञान सिखाने वाले।
मैं विनय करूँ कर जोड़ सुनो तुम ज्ञान बताने वाले।
उनके शिष्य गुणी बलदाई, घनश्याम दास हलवाई।
अब मोहन की करो सहाई, अजी शत्रु को भगाने वाले।
मैं विनय करूँ कर जोड़, सुनो तुम ज्ञान बताने वाले।[15]

इसके अनुसार इस प्रणाली का क्रम कुछ इस प्रकार बैठता है - सेढू सिंह-टेकचंद-हुलास-लछमन सिंह-सुल्हड़ सिंह और घनश्याम दास।

लाला घनश्याम दास के पूर्वजों की निकासी हरियाणा के रोहतक जिला से थी। इनके पिता का नाम कृपाराम था। ये चार भाई थे। इन्होंने स्वयं लिखा है -

उत्पत्ति अपनी कहूँ सुनो सकल धर ध्यान।

बास म्हारे बड़ों का, था रोहतक दरम्यान।
था रोहतक दरम्यान वहाँ से हम मेरठ म्हं आए।
अग्रवाल और बंसल गोती छज्जा तीतर कहलाए।
पिता थे कृपाराम जी, चार थे हम सब भैया।
बड़े थे राम जस शंभू।
तीजा मैं घनश्याम चौथे म्हं तोताराम।
पैड़ामल के बाजार में करते हलवाई का काम।[16]

उपर्युक्त पंक्तियों में जिस प्रकार घनश्याम जी ने अपने परिवार, स्थान, भाइयों, पिता का परिचय दिया है, ऐसा बहुत कम लोकनाट्यकारों ने किया। इस अंतःसाक्ष्य से कवि का व्यक्तिगत परिचय जानने में अध्येताओं को पर्याप्त मदद मिल जाती है। उन्होंने इस लोकनाट्य के सृजन-काल का भी उल्लेख किया है -

सुदी फागन की दोयज, सांग संपूरण कीना।
कन्हैया कहे कबारी, उन्नीस सैसठ था सम्वत्।
बिछुआ सिंह न्यों कहै फकीर देते सुख सम्पत।[17]

उन्नीस सैसठ को उन्नीस सौ साठ पढ़ा जा सकता है तो यह सन् उन्नीस सौ तीन हुआ और यदि उन्नीस सै छियासठ पढ़ाया जाए तो उन्नीस सौ नौ हुआ। वैसे इसकी उन्नीस सौ साठ की संभावना अधिक बनती है क्योंकि कौरवी में 'सौ' को 'सै' कहने का प्रचलन भी है, यथा चार सै, पाँच सै आदि। अर्थात् यह लोकनाट्य सन् उन्नीस सौ तीन में लिखा गया। पूर्णमल की कथा पर अनेक लोकनाट्यकारों ने लोकनाट्यों की सृजना की है। परंतु इस लोकनाट्य में कथा का प्रवाह जिस रूप में आया है, वह अद्वितीय है। इस लोकनाट्य में कथा भी भिन्न रूप में आई है। कथा में पात्रों के नाम भी भिन्न हैं। यथा पूर्णमल के पिता का नाम सिंहवटी आया है और माता का नाम भागदेय आया है। जबकि अधिकांश लोकनाट्यकारों ने शंखपति व इच्छरादे बताया है। कथा में भी पर्याप्त अंतर मिलता है।

लाला घनश्याम के अनुसार सिंहवती राजा के बाग में एक दिन गोरखनाथ आते हैं। राजा उससे पुत्र की कामना करता है तो गोरखनाथ उसे एक फल देते हैं, जिसे वह अपनी पत्नी भागदेय को दे देता है। उसे गर्भ ठहर जाता है तो छोटी रानी को ईर्ष्या होती है तथा जब बच्चा पैदा होता है तो वह एक काठ का बच्चा उसकी गोद में सुला देती है तथा बच्चे को एक पिंजरे में डालकर बांदी द्वारा नदी में बहा देती है। कुछ दूरी पर एक ब्राह्मण उस बच्चे को नदी से निकाल देता है तथा

लालन-पालन करता है। जब वह बालक (पूर्णमल) बारह साल का हो गया तो एक दिन उसकी गेंद महल में जा गिरी। वह उसे लेने के लिए महल में आया तो उसी बांदी ने पहचान लिया। बात खुल गई। राजा ने उसे सीने से लगा दिया। सारा भेद खुल गया। अब पूर्णमल की मौसी का जार-संस्कार पूर्णमल की तरुणावस्था को देखकर हावी हो गया। वह बचकर भाग गया। वह अपने पति के आगे उस पर आरोप लगाती है। राजा सिंहवटी जल्लादों को आदेश देते हैं कि पूर्णमल के हाथ-पैर काटकर आँखें निकाल लाओ। इस अपंग अवस्था में उसे गोरखनाथ मिलते हैं तथा वे उसे पुनः स्वस्थ कर देते हैं। बाद में उन सबका पुनर्मिलन हो जाता है।

यह लोकनाट्य दोहा, चौपाई और मुकताल में लिखा गया लोकनाट्य है। कवि लाला घनश्याम पात्रों में गहरे पैठ गए हैं। जब रानी (मौसी) को पूर्णमल की तरुणाई दिखती है तो वह बांदी को कहती है -

दै हमको बतलाय चली ना जल्दी संग लिवाला।
मेरे बात रही ना बस की लगा बिरह का भाला।
नयन मिला दिल छला सनम नै ऐसा जादू डाला।
सौकन का तू कुंवर बतावे मेरा है घरवाला।[18]

हालाँकि बांदी उसे ऐसा करने से रोकती है। वह उसे कहती है -

करती है सिंगार समय ये कैसी खोटी आई।
बड़े शर्म की बात पुत्र को तेरी तबीयत चाई।
आज तलक ये कहीं हुई ना किसने तुझे भकाई।
इस कलयुग म्हं आग लगो पुत्र को तकती माई।[19]

वह बांदी भेजकर पूर्णमल को बुलाती है और उसके सामने जार-कर्म का घृणित प्रस्ताव रखती है, परंतु पूर्णमल दृढ़ता से मना कर देता है तो वह जल-भुन जाती है और बांदी के समक्ष अपनी भड़ास निकालती है -

दूं गरदन मरवाय इन्हों की ऐसी कसर निकालूं।
राजा जी के सामने इनका एक एक बाल उखालूं।
जिंदे की आँखें फड़ा के पैरों म्हं मल डालूं।
जो राजा इनकार करै मैं जहर मंगाके खा लूं।[20]

वह अपने पति राजा सिंहवटी को बुलाकर दासी मैना की गवाही दिलवाकर पूर्णमल को सजा दिलवाती है।

पूर्णमल की कथा अनेक कवियों के लिए आकर्षण का केन्द्र रही है। इसमें एक सौतेली माँ की क्रूरता की अति हुई है। इस लोकनाट्य के अतिरिक्त लाला घनश्याम दास ने और भी लोकनाट्य लिखे हैं - 'राजा नल-दमयंती', 'राजा हरिश्चंद्र', 'राजा कारक', 'राजा चत्तरमुकट' व 'रानी चंद्रकिरण' तथा 'रूप-बसंत' आदि।[21]

पं. महोर सिंह गौड़ -

पं. महोर सिंह गौड़ का जन्म 3 दिसम्बर 1869 को वर्तमान झज्जर जिला के गाँव साल्हावास में हुआ। इनके पिता का नाम पं. रतीराम गौड़ था।[22] गाँव में ही प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त कर ये उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए काशी नगरी चले गए थे। जहाँ पर उन्होंने वेद, शास्त्र, ज्योतिष व संगीत का गहन अध्ययन किया। इनके गुरु का नाम आचार्य श्री मुखराम था। उनकी वाणी में इसका उल्लेख मिलता है-

सूरजगढ़ म्हं काया सेठ हुए लालचंद बलदेव दास।
इनकी छतरी म्हं मैंने पाँच वर्ष किया विद्याभ्यास।
मुखराम जी अध्यापक थे मैं पढ़ता था उनके पास।
उन दिनों सेठ ठाकरसी थे गुरु मुखराम थे प्रकाश।
इसी वंश म्हं जोखीराम जी प्रकट हुए थे महादानी।[23]

पं. महोर सिंह शंकरदास के समकालीन थे। कई बार इन दोनों का आमना-सामना भी हुआ। कवि शंकरदास ने स्वयं पं. महोर सिंह की प्रशंसा की थी। कवि शंकरदास (1833-1912) उस काल में एक ऐसे कवि थे जो कवि दंगल में अपना झंडा गाड़कर सभी कवियों को चुनौती देते थे। शंकरदास जी हरियाणा के बाघोत में शिवरात्रि के मेले में प्रतिवर्ष कवि दंगल स्थापित करते थे। पं. महोर सिंह ने इस पर स्वयं लिखा है-

शंकरदास यहाँ आया करते।
झंडा गाड़कर गाया करते।
गुणियों के थे संवाद, खुड़क्या करता नंगारा।[24]

एक बार पं. महोर सिंह ने कवि शंकरदास की चुनौती को स्वीकार भी किया और उन्हें अपनी प्रतिभा का परिचय भी दिया। पं. महोर सिंह ने 27 लोकनाट्यों की रचना की - 'नल-दमयंती स्वयंवर कथा', 'नल-दमयंती कथा', 'हरिश्चंद्र कथा', 'शिव-पार्वती विवाह कथा', 'राजा उत्तानपाद कथा', 'कृष्णजन्म कथा', 'लाखा भवन कथा', 'द्रोपदी स्वयंवर कथा', 'द्रोपदी चीरहरण कथा', 'विराट पर्व कीचक वध कथा',

'गौ हरण कथा', 'जयंत-जीमूत मल्ह कथा', 'गज और वल्लभ युद्ध कथा', 'सिंह-भीम युद्ध कथा', 'शांतिपर्व कथा', 'जंग चक्रव्यूह कथा', 'कर्णपर्व कथा', 'गदा पर्व कथा', 'अश्वमेध यज्ञ कथा', 'राजा नीलध्वज कथा', 'चंडी की कथा', 'हंसध्वज राजा की कथा', 'बभ्रुवाहन कथा', 'कथा राजा मोरध्वज', 'चंद्रहास कथा', 'कथा उषा अनिरुद्ध' आदि। इसके साथ-साथ उन्होंने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं।

10 दिसम्बर सन् 1953 को लगभग 84 वर्ष की आयु में इनका देहांत हुआ।[25] पं. महोर सिंह जीवन पर्यंत ब्राह्मणत्व के प्रति सजग रहे। 'वर्णस्य कर्त्तव्य परायणता' एवं धर्मनिष्ठ जीवनशैली उनके व्यक्तिव की एक प्रबल विशेषता है। पं. महोर सिंह प्राचीन भारतीय संस्कृति में अगाध श्रद्धा रखते थे। उनका कथन था कि ब्राह्मण का प्रमुख कार्य वेदाध्ययन, स्वाध्याय करना, पठन-पाठन करना है। इनमें से कम से कम एक कार्य अवश्य करते रहना चाहिए।[26]

पं. बस्तीराम उस समय के एक आर्यसमाजी व ब्राह्मण थे, जिनकी स्वामी दयानंद सरस्वती से भी मुलाकात हो चुकी थी। इन्होंने एक 'पाखंड खंडनी' पुस्तक में रागनियों के माध्यम से अंधविश्वास, पाखंड, मूर्तिपूजा, अदृश्य के नाम पर झांसों और स्वार्थ का खंडन किया था। यह पुस्तिका भावी भजनोपदेशकों के लिए एक मील का पत्थर साबित हुई थी। पं. महोर सिंह का इनसे भी शास्त्रार्थ हुआ था।

इनके लिए ज्ञान का मतलब था वेद शास्त्र और पुराणों में लिखी बातों का अक्षरशः जानकारी। यह हैरानी की बात है कि इनका जीवनकाल प्रथम स्वतंत्रता संग्राम और आज़ादी के लगभग छह साल बाद तक का रहा है। अपनी कविताई में ये इस समय चल रहे विभिन्न स्वतंत्रता आंदोलनों से कट कर रहे। इन्हीं के जीवनकाल में आर्य समाज का गठन व प्रचार-प्रसार हुआ। अनेक भजनोपदेशकों ने उसका प्रचार और प्रसार किया, परंतु इनमें कहीं भी उस प्रकार की प्रगतिशीलता दिखाई नहीं देती। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों के विरुद्ध अनेक आंदोलन हुए जिनका समाज पर गहरा असर पड़ रहा था। परंतु पं. लखमीचंद की तरह ये उस प्रभाव से चुप्पी साधे हुए थे। इनका मन बनी बनाई कथाओं पर रागनी बनाकर पांडित्य प्रदर्शन पर रहा। इनके लोकनाट्यों के शीर्षकों से लगता है कि ये यथास्थितिवादी, वर्णवादी, जातिवादी ही रहे। 'हरिश्चंद्र कथा' में वरणा नदी पर मदनावत द्वारा अपने पति हरिश्चंद्र का घड़ा ना उठवाने का प्रसंग जातिवाद को गहराता है। वह इसलिए घड़ा नहीं उठवाती कि वह स्वयं तो रामलाल ब्राह्मण के घर नौकरानी थी और हरिश्चंद्र कालिया भंगी के घर नौकर था। यहाँ उनके दो धर्म थे- एक पति के प्रति कि वह

विपत्ति में पति की मदद करती और दूसरा जातिवाद के सामने अपने पति को भी निम्न जाति का होने को महत्त्व देती है। इस सांग ने कौरवी क्षेत्र में जातिवाद को पुख्ता किया है। भंगी जाति के प्रति घृणा का इससे बढ़कर कोई उदाहरण किसी सांग में नहीं मिलता है।

इन्होंने कुछ ऐसी पौराणिक कथाओं पर भी लोकनाट्य सृजित किए है, जिन पर इनके समय तक लोकनाट्य नहीं रचे गए थे। जैसे 'हंसध्वज राजा की कथा', 'गज और वल्लभ की युद्धकथा', 'सिंह-भीम युद्ध कथा', 'गदा पर्व कथा', 'चंडी की कथा' आदि कुछ ऐसे लोकनाट्य है जो संभवतः पहले पहल इनके द्वारा ही लिखे गए। इनकी रागनियाँ, वर्ण, मात्रा, यति, गति की दृष्टि से नियमबद्ध होती थीं। इन्होंने लिखा भी है -

वर्ण विवेक हुए बिन प्यारे पद गाते होती बड़ी भूल।
शुद्धाशुद्ध के भेद बिना, निर्बोधक छंद बनै फिजूल।
वर्णी कितने वर्ण वर्ग संज्ञा, किसने बांधी प्यारे।
स्वर संज्ञक अक्षर बतला कितने सारे।
गुमनामी और वृद्धिनामी अक्षर बतला न्यारे-न्यारे।
समान संज्ञक वर्ण सवर्णी कितने अक्षर उच्चारे।
वर्णों का बता कर्ता कौन है उपादान कारण निजमूल।[27]

'लाखा भवन कथा' में भी जब दुर्योधन और शकुनि पांडवों को जलाने के लिए लाक्षागृह बनाते हैं और रात में वे भोजन करके वहाँ सो जाते है तो दुर्योधन और शकुनि भंगी जाति को नीच जाति कहकर पुकारते हैं। भजन 5 की टेक दर्शनीय है

खुदा हो कै नीच कै द्वारै, सुगनी नै टेर लगाई।
आई शनै देकै बलिहारी, बोली वचन नीच की नारी।
मांझल राज झुकी अंधियारी।
म्हारै दरवाजै कौन पुकारै, हमनै तो पिछान नाईं।
सुनकै वचन दूर किया ओला, पच हारा पर दर नहीं खोला।
धमकाकर जब सुगनी बोला।
दुमकी क्यों नहीं पधारै, जरजोधन राव बुलाई।[28]

इतना ही नहीं भंगी की पत्नी स्वयं को नीच मानती हुई कहती है -

जाओ जाओ मामा जी मैं चलूं ना थारे संग।
है नीच जात म्हारी, अब कौन म्हारो काम।

जो हमको तंग करोगे तो हो जाओगे बदनाम।
जो संग तुम्हारे चालूं है नीची सुन ले म्हारी जात।
मेरे पति की जाति से गेरेगी पंचात।[29]

पं. महोर सिंह पूरी तरह जाति से अघाये लोकनाट्यकार थे, जिन्होंने अपने लोकनाट्यों के माध्यम से जाति को और गहरा बनाने का काम किया। इनके अधिकतर लोकनाट्य महाभारत की उपकथाओं पर आधारित हैं।

इनकी फुटकर रागनियों के विषय भी भक्ति, शिव स्तुति, ब्रह्मज्ञान के भजन, दंगली प्रश्नोत्तर के भजन आदि ही रहे। इन्होंने लोकनाट्य के क्षेत्र में कलात्मक योगदान दिया। इन्होंने काव्य रचना हरियाणवी ख्याल, जकदी झूलना, दादरा, कव्वाली, सोहनी, सांगीत जकड़ी, जंगम और दोहा चौपाई, दौड़ आदि में की। ये तत्कालीन सुप्रसिद्ध लोकनाट्यकारों के संपर्क में रहे और लोकनाट्य के क्षेत्र में पर्याप्त हस्तक्षेप किया। ऐसे और भी अनेक लोकनाट्यकार हुए हैं, जिन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों से पूर्णतः आँख मूँद ली थी। उनका उद्देश्य लोकनाट्य के माध्यम से केवल अपना रोजी-रोटी का व्यवसाय चलाना था। विशेषकर काशी से पढ़कर आने वालों ने वर्ण आश्रम और जाति को आदर्श मानकर उसे पुख्ता करने का काम किया। काशी में पिछड़े और निम्न जाति के विद्यार्थियों के लिए पढ़ने की कोई व्यवस्था नहीं थी।

पं. महोर सिंह ने शंकरदास द्वारा स्थापित चौकलिया रागनी को अपने लोकनाट्यों में पूरी तरह से स्थापित कर दिया था। उनकी रागनियों में छंद, तर्ज, लय आदि की दृष्टि से पर्याप्त विविधता मिलती है। पं. महोर सिंह का कलात्मकता के नाते महत्त्व है ना कि सामाजिकता के नाते।

कवि जमुवा मीर -

कवि जमुवा मीर का जन्म 20 अगस्त, सन् 1878[30] को श्री गुमानी मीर के घर गाँव सुनारियाँ, जिला रोहतक, हरियाणा में डूम जाति में हुआ। इनके पिता स्वयं गीत-संगीत में पर्याप्त रुचि रखते थे। वे सारंगी-वादक थे। उस समय के सुप्रसिद्ध लोक कवि शंकरदास श्री गुमानी मीर के पास आते-जाते रहते थे। इस कारण बालक जमुवा मीर को भी उनका गरिमापूर्ण सान्निध्य मिलता था। कवि जमुवा मीर ने अपने ही गाँव के श्री माँगेदयाल को अपनी गुरु बनाया।

इस महान कवि ने सांग विधा को अपनी कृतियों व अपने सक्षम शिष्यों से

फलीभूत कर दिनांक 25 अक्तूबर 1959 को संसार से विदा ली।[31]

कवि जमुआ मीर ने पर्याप्त साहित्य की रचना की थी। परंतु वह सब मौखिक ही रहा। उस समय किसी ने उसके प्रलेखीकरण की जरूरत नहीं समझी। फलतः उनका साहित्य उनके साथ चला गया। इनके लोकनाट्य हैं - 'हीरामल-जमाल', 'गोपीचंद', 'हरिश्चंद्र', 'प्रदोष व्रत' आदि। इससे लगता है कि उन्होंने और सांगों की रचना भी की होगी। नौ कलियों की एक रागनी 'संपूर्ण रामायण' के नाम से भी है। उन्होंने अवसरानुकूल अनेक फुटकर रागनियाँ भी सृजित की थीं।

कवि जमुवा मीर एक सामाजिक सौहार्द और समानता के पक्षधर कवि थे। उनकी रागनियों में परस्पर प्रेम, भ्रातृत्व, शालीनता व दरियादिली झलकती है। हिन्दू-मुस्लिम मिश्रित संस्कृति के कवि जमुवा मीर की प्रतिबद्धता मानव-मात्र के प्रेम में है। उनके काव्य में कहीं भी ईर्ष्या, द्वेष, घृणा या भय दिखाई नहीं देता है। वे अपनी बात को निर्भीकता से कहते हैं तथा लोक को सदाचार, नैतिकता और परस्पर सहयोग का पाठ पढ़ाते हैं।

उनकी रचनाओं को पढ़कर एक खास प्रकार की प्रौढ़ता का अहसास होता है। ये रचनाएँ इतनी परिपक्व हैं कि पाठक इन्हें पढ़ते हुए गहरे भाव बोध में उतरता चला जाता है। उसे रागनी की कलात्मकता, शब्द-प्रवाह की सहजता, बनावट और बुनावट की गंभीरता तथा महती कवि-कर्म का अहसास होने लगता है। कवि जहाँ एक ओर जीवमात्र से प्रेम का संदेश देते हैं, वहीं इस संसार की क्षण-भंगुरता के प्रति भी सचेत करते हैं। वे अपने श्रोताओं को काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह से भी सचेत करते हैं। कवि का दर्शन 'सादा जीवन उच्च विचार' वाला है। कवि जमुवा मीर में गजब की नेतृत्व क्षमता थी। वे कविता की ही तरह अपने शिष्यों को भी साधते थे। उन्हें व्यक्तिगत जीवन में अनुशासन का पाठ पढ़ाते हुए रचना-कर्म में मात्रा, लय, तुक, छंद, रस का अनुशासन के लिए भी निर्देश देते थे। अनेक अवसरों पर ज्ञान की लड़ाई में जब उनके शिष्य हल्के पड़ने लगते थे तो वे खुद मोर्चा संभालते थे और वे अपने शिष्यों का मजबूत मूलाधार बनकर उभरते थे। यही कारण है कि उनकी शिष्य परंपरा ने सांग विधा को व्यावसायिक रूप दिया। विनम्रता उनके सभी शिष्यों का एक अनिवार्य गुण होती थी।

भारत-पाक विभाजन ने भारत में लोक को धर्म के नाम पर जो दंश दिए, उससे मानवता थर्रा उठी थी। 1947 में भारत से मुस्लिम और पाकिस्तान से गैर-मुस्लिमों का व्यापक स्तर पर पलायन हुआ। यह पलायन मात्र पलायन नहीं था। इसमें

लूट-खसोट, मारकाट, धार्मिक उन्माद और अनैतिकताओं की तमाम सीमाओं का उल्लंघन था। धर्म के नाम पर यह हिंसा भारत के इतिहास में अद्वितीय थी।

जमुवा मीर मनुष्यता की इस सांप्रदायिक गिरावट से इतने आहत हुए थे कि वे लोगों को समझाते थे कि ईश्वर-अल्लाह में कोई फर्क नहीं है। सभी मनुष्य उस ईश्वर-अल्लाह की संतान हैं। केवल उनके नाम अलग-अलग दे दिए गए हैं। हिन्दू उसे 'ईश्वर' कहता है और मुसलमान 'अल्लाह'। दूसरे धर्मों के लोगों ने भी उसे अलग-अलग नाम दिए हुए हैं, परंतु है वह एक और वह एक समान ही सभी धर्मों के लोगों के लिए है। उस समय की जमुवा मीर की रागनी सांप्रदायिक सौहार्द का जीता-जागता उदाहरण है। उन्होंने धर्म के नाम पर फैले वैमनस्य को पाटने का काम किया। रागनी की टेक दर्शनीय है -

जग का कर्ता एक देख क्यूं लड़ते पंडित काजी।
वही अलख अल्लाह है, झूठी करते झगड़ेबाजी।।[32]

पंडित और काजी के चक्कर में भारत-पाक बना। ये धर्म के नियामक पद हैं जो धर्म का संचालन करते हैं। इन्हीं के कारण लाखों लोग कट मरे। कवि जमुवा मीर कहते हैं कि इस संसार का कर्ता एक परम शक्ति है। कवि जमुवा मीर धर्म के नाम पर इस लड़ाई को 'झूठी झगड़ेबाजी' करार देते हैं, जिसमें अनेक लोग असमय मारे जाते हैं। 'अलख' और 'अल्लाह' में कोई अंतर नहीं है। जिस प्रकार कुछ लोगों की 'अलख' में श्रद्धा है उसी प्रकार कुछ लोगों की 'अल्लाह' में है। जमुवा मीर जी की यह रागनी तर्क का एक ऐसा अनूठा उदाहरण है कि उन पर रीझा जा सकता है -

वही कर्ता वही करीम है, विष्णु वही बिस्मिल्ला है।
वही राम वही रहीम है, वही ओम वही अल्लाह है।।[33]

ईश्वर एक है। सभी मनुष्य उस ईश्वर की सर्जना हैं।

कवि जमुवा मीर ने 'हीरामल जमाल' सांग लिखा है। जिसकी अब मात्र नौ रागनियाँ ही उपलब्ध हो पाईं। यह सांग जार-कर्म जनित दुर्गति का जीता-जागता उदाहरण है। इस सांग में हीरामल की पत्नी होते हुए वह जमाल के साथ इश्क लड़ाता है, जो परिवार संस्था के लिए अत्यधिक घातक है। हीरामल के माता-पिता व पत्नी उसे दुष्कर्म से रोकते भी हैं, परंतु वह निर्लज्जता की तमाम सीमाएँ लांघता हुआ जमाल के पास जाना जारी रखता है। एक दिन वह कोतवाल द्वारा पकड़ लिया जाता

है। कोतवाल पाँच सौ रुपये की जमानत पर उसे छोड़ देने का उपाय बताता है। वह बारी-बारी से अपने पिता, माँ व पत्नी के पास जाता है। परंतु जार-कर्म परिवार में असहनीय एवं अमान्य होने के कारण वे उसकी जमानत नहीं देते। अंत में वह घबराकर अपनी पत्नी के पास जाकर अनुनय-विनय करता है। वह पत्नी को कहता है -

मनै छुटा प्यारी दे नकद पाँच सौ गिण कै।
ला लिया सब धोरै फेरा।
कोय जामण बणा ना मेरा।
परी के दोष कहूँ तेरा।
मेरे माँ-बाप नाटगे जण कै।[34]

हीरामल की पत्नी भी उसके जार-कर्म से दुखी थी। वह उससे कहती है कि वह जमानत भी जमाल से ही जाकर करवा ले। वह अपने पति को कहती है कि वह तो उसे पहले ही मना कर रही थी कि 'चोर' और 'जार' समय आने पर पकड़े जरूर जाते हैं -

बरजूं थी पिया कोन्या मान्या, ओ पहरा था चोर जार का।
परनारी पै पिया झुकैगा, भस्मासुर की तरह फुँकैगा।
इब कित-सी जा ल्हुकैगा, तू डाकू बणा सरकार का।।[35]

इस रागनी की अंतिम कली में कवि जमुवा मीर कहते हैं कि परनारी से हमेशा व्यक्ति को बचकर रहना चाहिए। तभी घर-गृहस्थी, समाज व देश सुरक्षित रह सकता है। गँवार से गँवार व्यक्ति को भी इतनी समझ अवश्य होती है -

दिल डाट्या जा तो डाटियो, मत काम कड़क की करियो।
इस परनारी से हटियो, कह जमुवा मीर मूढ़ गँवार का।।[36]

स्पष्ट है कि जार के साथ कोई भी अपना संबंध नहीं जोड़ना चाहता। सब उससे कन्नी काटने लगते हैं। 'हीरामल-जमाल' सांग का यही संदेश है।

अपनी एक फुटकर रागनी में जमुवा मीर जी ने झूठ, कपट, छल, बेईमानी का त्याग कर सबसे प्रेम करने का संदेश दिया है। यह जीवन कुछ ही समय का है। हर स्त्री-पुरुष को प्रेमपूर्वक जीवन बिताना चाहिए। कवि के शब्दों में -

कहे तुर्फचाल सबसे खोटी, तू सबके संग प्यार करो।
झूठ कपट छल बेईमानी का मत इसका एतबार करो।

ये दो दिन की जिंदगानी है, क्यूं आपस म्हं खार करो।
कह जमनादास तुम मत ज्यादा तकरार करो।।[37]

कवि जमुवा मीर सादगी और स्नेहयुक्त जीवन बिताने को 'परम परीक्षा' मानते हैं। मनुष्य रूप में जन्म लेकर हर व्यक्ति का इस परीक्षा में उत्तीर्ण होना अनिवार्य है। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए पाठ्यक्रम के रूप में कवि ने सुझाव दिए हैं, वे हैं - सच्चाई, सादगी, ईमानदारी, प्रेम, मेलजोल और शीलता।

कवि जमुवा मीर कौरवी लोकनाट्य के इतिहास में एक मील का पत्थर साबित होते हैं। उन्होंने जहाँ एक कवि के रूप में कविता के नए सामाजिक प्रतिमान गढ़े, वहीं एक गुरु के रूप में समर्थ शिष्यों की लंबी कतार खड़ी की। कविता में भाव और कला के अनुशासन की जो रीत उन्होंने चलाई, उनसे आगे उनके शिष्यों ने उस रीत पर चलकर अपना व अपने गुरु का खूब नाम रोशन किया। कवि जमुवा मीर ने अपने समय को संबोधित किया, जो एक कवि के लिए अपरिहार्य शर्त के रूप में होता है। उन्होंने मनुष्य की पहचान केवल मानवता के रूप में की। किसी धर्म या जाति के रूप में नहीं। वे इस बात के लिए हमेशा याद किए जाएंगे।

प्रेमलाल चौहान कवि जमुवा मीर की तीसरी पीढ़ी के सांगी थे। वे राय धनपत सिंह निंदाना के शिष्य बनवारी लाल ठेल के शिष्य थे। उन्होंने एक जगह लिखा है -

म्हारी सलाह म्हं एक सांगी बनवारी लाल करै सै।
धनपत सिंह जमुवा का चेला आंगलियों घाल करै सै।
झंडू मीर भी गाण म्हं न्यामी वो भी कमाल करै सै।
ज्ञान ध्यान की सभा बीच म्हं कोय बिरला ख्याल करै सै।
इन जमुवा के चेलों आगै कौण जीत जा पाळे।[38]

'इन जमुवा के चेलों आगै कौण जीत जा पाळे' पंक्ति जमुवा मीर की समग्र जीत की पंक्ति है। जमुवा मीर की शिष्य परंपरा की तीसरी पीढ़ी का यह स्वाभिमान जमुवा मीर की ताकत का अनुमान है। जमुवा मीर की शिष्य परंपरा में चौथी पीढ़ी भी सांग विधा में लीन है।

पं. शादीराम -

पं. शादीराम का जन्म 19 अक्टूबर 1881 को कैथल (हरियाणा) जनपद के सीवन में कार्तिक मास के कृष्णपक्ष की नौवीं को कौशाम गौत्रीय परिवार में हुआ।[39]

इनके पिता का नाम पंडित मनसाराम तथा मां का नाम कलावती था। राजकीय प्राथमिक पाठशाला सीवन से शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करने के लिए पिहोवा चले गए। उन दिनों पाठशाला में शिक्षा का माध्यम उर्दू होने के कारण कवि को हिन्दी, उर्दू व संस्कृत तीनों भाषाओं में प्रारंभिक ज्ञान था। कवि शादीराम स्वयं को विनम्रतापूर्वक अनपढ़ ही कहते थे - शादी कैसे पावे अंत ना कहीं पढ़े ना विद्या पाई।[40]

पं. शादीराम ने कैथल के नित्यानंद जी को अपना गुरु बनाया था। उनकी कविताई से इस बात की पुष्टि होती है -

शादीराम कह भजन हरि बिन झगड़ा झूठा महान।
गुरु म्हारे नित्यानंद थे, था कैथल अस्थान।[41]

x *x* *x*

कह शादी उस्ताद थे नित्यानंद जी।
जो गाने बजाने का रस्ता बतागे।[42]

पं. शादीराम ने तीन लोकनाट्यों की रचना की - 'राम गाथा', 'श्री कृष्ण लीला' तथा 'उषा चरित्र'। 'रामगाथा' लोकनाट्य 'बालकांड', 'अयोध्याकांड', 'अरण्यकांड', 'किष्किंधाकांड', 'सुंदरकांड', 'लंकाकांड' और 'उत्तरकांड' आदि सात कांडों में विभक्त है, जिसमें कवि ने पूरी रामकथा को समेटा है। यह लोकनाट्य राम के मिथिला में सीता स्वयंवर से लेकर राज्याभिषेक तथा रज्जक द्वारा अपनी पत्नी के त्यागने तक की कथा तक है। यह पूरा लोकनाट्य चौबोला और रागनियों में है। सारी रागनियाँ चार कलियों की हैं। पहले ही कांड में जब राम मिथिला में जाकर धनुष तोड़ देता है और लक्ष्मण और परशुराम का संवाद होता है तो परशुराम राम की ओर उन्मुख होकर कहता है -

अरे राम तू कहता है मैं भगवान का दास।
यही दास कै काम है स्वामी करत त्रास।
दास बन जनकपुरी म्हं आया क्यूं।
तो आन सभा दरस दिया तो शंकर धनुष उठाया क्यूं।
जो धनुष उठाकर देख लिया भुजबल से तोड़ बगाया क्यूं।
जो धनुष तोड़ बलवान बना अपने को दास बताया क्यूं।
सेवक प्रगटाई कपट मन जंग लड़ाई।
ऐसा शत्रु मेरा सहस्रबाहु की नाईं।[43]

इस लोकनाट्य में कवि शादीराम ने राम के जीवन से जुड़ी मुख्य-मुख्य घटनाओं का वर्णन किया है। जब राम दशरथ के आदेश पर बनवास चले जाते हैं तो दशरथ अपनी रानियों के समक्ष पश्चात्ताप करता है तो कवि शादीराम ने पर्याप्त भावुक चित्र खींचा है -

सुन रानी मनै किया एक तरुण उमर म्हं पाप।
इस वक्त याद आया मुझे लगा हुआ वो शाप।
भरोसा नहीं मेरी जिंदगानी का।
फिर झगड़ा कथन तमाम किया, वो श्रवण की हनन कहानी का।
अब वक्त आखिरी आ पहुँचा करयो विश्वास मेरी बानी का।
फिर राम राम रटते रटते पता लगा नहीं भंवर सलानी का।
पड़ी रह गई काया, बोल मुख से नहीं आया।
हो गया जुल्म कमाल राव सुरपुर को धाया।[44]

पं. शादीराम ने रामकथा के मुख्य प्रसंगों को इसमें लिया है। जब राम रावण का युद्ध होता है तो कवि ने वीर रसपूर्ण चमोला की रचना की। उदाहरणार्थ -

जंग राम रावण का हुआ काँप गए सब लोक।
देख बहादुर खुश हुए, डरन लगे डरपोक।
खून की नदी बहे विकराल जहाँ।
कर रहे अस्नान खेचर कबंध और भूत पिशाच बेताल जहाँ।
रही नाथ योगनी गा गाकर हाथों म्हं लिए कपाल जहाँ।
पग शीश हाथ उठा एक साथ उड़े गृद्ध काग चंडाल जहाँ।
जम्बु भी आते मांस खुश हो हो खाते।
कहते शादीराम दीन आपस म्हं ले जाते।[45]

पं. शादीराम ने 'श्रीकृष्ण लीला' लोकनाट्य की रचना सन् 1942 में की। इसकी रचना का सर्वप्रथम दोहा है-

गौरी गणपत सुमर गुरु चरणन धर माथ।
भगवत गुण वरणन करूँ कृपा करो वृजनाथ।
वैशाख दूज सुदी उनीसो सौ सै एक कम साल।
कृष्ण लीला वरणन करे शर्मा शादी लाल।[46]

संवत ऊनीसो सौ सै एक कम सन् 1942 बैठता है। पं. शादीलाल ने श्रीकृष्ण लीला लोकनाट्य में कृष्ण की बाल लीलाओं का ही अधिक वर्णन किया है। उसके बाद उन्होंने कंस के मारे जाने की कथानक इसका विस्तार किया है। कृष्ण का औरों के घर जाकर मक्खन खाना और ग्वालिनों द्वारा उसकी माता के आगे उसकी शिकायत करना और माता द्वारा कृष्ण को रस्सी से बाँध देने का बड़ा मनोहारी विश्लेषण पं. शादीराम जी ने किया है। ग्वालिनों की शिकायत दर्शनीय है -

चलो री यशोदा तुम्हें दिखला दूं तेरा सुत माखन खावत है री।
दही सब खाई मटकी फोरी ताली हाथ बजावत है री।
बरज रही मेरी एक ना मानी ऐसा कुटिल धमकावत है री।
झूठी नहीं एक बंद कर आई मुंदा हुआ अंदर गावत है री।
शादीराम कहै मेरे श्याम, स्वामी हमको भी पार लगावत है री।[47]

इनका लोकनाट्य 'उषा चरित्र' वस्तुतः उषा-अनिरुद्ध की कथा है जिसे बाद में भी अनेक सांगियों ने लोकनाट्यों में पिरोया है। यह लोकनाट्य उन्होंने सन् 1946 में सृजित किया था। इसका वर्णन भी इन्होंने इस लोकनाट्य के प्रारंभ में ही किया है -

कथा विवाह अनिरुद्ध की जो सुने कर विश्वास।
तप तैया चौथेया होते दोनों नाश।
सावन कृष्ण पंचमी दो हजार सन् एक।
शादीराम करता कथन कृष्णचंद्र रख टेक।[48]

हिरण्यकश्यपु के वंशजों में राजा बाणासुर हुए उसकी पुत्री का नाम उषा था। और कृष्ण के पौत्र का नाम अनिरुद्ध था। दोनों के वे परस्पर स्वप्न में दिखाई देते हैं। जब उषा की आँख खुली और उसने अपनी दासी चित्ररेखा को बताया तो चित्ररेखा ने अनेक चित्र बनाकर दिखाए। जब अनिरुद्ध का चित्र बना तो वह पहचान गई। चित्ररेखा द्वारका में पहुँच गई और खाट समेत सोते हुए अनिरुद्ध को उठाकर ले आई। इधर जब बाणासुर को पता चला कि उसकी पुत्री के महल में कोई पुरुष आया है तो वह उसे मारने के लिए तत्पर हो गया। जब द्वारका में अनिरुद्ध नहीं मिला तो वहाँ भी उसकी ढूँढ़ शुरू होती है। कृष्ण और बलराम बाणासुर के राज्य में आते हैं। पहले बाणासुर क्रोधित होता है परंतु बाद में उषा को अनिरुद्ध के साथ ब्याहने के लिए तत्पर हो जाता है।

यह लोकनाट्य बहुत ही रोचक ढंग से लिखा गया लोकनाट्य है। इसमें कवि शादीराम ने गजल का भी प्रयोग किया है -

रंज तो नहीं तेरे रंज का उस बाणासुर का गम नहीं।
जन्म यादव कुल में है, योधों म्हं योद्धे कम नहीं।
जोहरे बाजू म्हारे देख लेना गौर सै।
खूब तेजी से लड़ेंगे वो नहीं या हम नहीं।
बेखौफ हो उतरेंगे रण म्हं भाग कर जाना कहाँ।
गरमी जरा सी देखकर ढल जाएंगे शबनम नहीं।
शूरवीरों को पकड़ना खेल बच्चों का नहीं।
काल के आगे भी करते है कभी सर खम नहीं।
अनिरुद्ध कह वारिस म्हारे श्याम श्री बलराम है।
कह शादी उनको जीतना महादेव वे भी दम नहीं।[49]

इस प्रकार पं. शादीराम ने चोबोला, दोहा, रागनी के साथ-साथ गजल में भी अभिव्यक्ति दी है। उनकी भाषा उस समय का प्रतिनिधित्व करती भाषा है। इसमें तत्सम तद्भव शब्दों की भरमार के साथ प्रचलित उर्दू के शब्द भी बहुतायत मात्रा में उपलब्ध हैं। कुछ उर्दू के शब्द, यथा - फरयाद, शबनम, मुसाहिब, बेगिनत, दानिस्त, बगलगीर, महबूब, तर्फ, खवाईश, उल्फत, जाम, बिस्मिल, दाग, मुफस्सल, कम्बख्त, तमाशाई, अलबत्ता, काबिल, मुकद्दर, हया, दरम्यान आदि का कवि ने खूब प्रयोग किया है। यही भाषा लोक की भाषा थी। भाषा की दृष्टि से भी कवि पं. शादीराम बड़े लोकनाट्यकार थे।

सगुवा सिंह -

सगुवा सिंह का जन्म लगभग 1900 के आसपास गाँव सिकैड़ा थाना परीक्षतगढ़ तहसील मवाना, जिला मेरठ में हुआ। ये टानिया गोत्र के चमार जाति से थे। इनके गुरु का नाम हिम्मत राम था जो सिकैड़ा के ही थे और चमार जाति से ही थे। इनकी दो लड़कियाँ थी। इनका देहांत 1960 के आसपास लगभग 60-61 वर्ष की उम्र में हुआ। कवि सगुवा सिंह ने स्वयं ये अपना पता बताया है -

जिला मेरठ गाँव सिकैड़ा है तहसील मवाना।
छोटी नहर पास है सज्जनों परिक्षतगढ़ का थाना।

ज्ञानी गुणी माफ करो गलती मैं नहीं जानता गाया।
आनंदी आ मेरी सभा म्हं भूला छंद बताना।[50]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि की विनम्रता दर्शनीय है।

इनके लोकनाट्यों के नाम है - 'निदने का भात', 'फूला जाट नसीरन', 'देवर भाभी' दो भाग, 'सांगीत जगत मोहन', 'चंद्रकिरण मदनसैन', 'जादूगर सपेरा', 'रणवीर सिंह चंद्रा', 'धर्मपाल शांता कुमारी,' 'लीलो चमन' आदि।

लोकनाट्यकार सगुवा सिंह सेढू की प्रणाली से थे। सेढू, मीरदाद, हिम्मत राम और सगुवा सिंह। उनकी प्रणाली निम्न रूप से कवि की खुदबयानी है -

कर मीरदाद मुझे खौफ नहीं है हरके भाषे का।
कवि हिम्मतराम गवाही देगा ना शरमाणे का।
मेरा धड़ से शीश उतर जाओ नहीं धर्म डिगाणे का।
सगुवा सिंह को मात भवानी वर दे गाणे का।[51]

सगुवा सिंह ने मीरदाद जी का नाम अपनी कविताई में बहुत आदर के साथ लिया है। सगुवा सिंह सिकैड़ा के लोकनाट्यों की कथाएँ लौकिक कथाएँ थीं। उनमें संबंधों का पारस्परिक व्यवहार दिखाई देता है। वे समाज का यथार्थ चित्रण करते हैं। उनका 'फूला जाट नसीरन' एक बेहद लौकिक धरातलीय लोकनाट्य है जिसमें एक जार-जारिणी की करतूतों का पर्दाफाश हुआ है। बर्धमान नगर में अफजल पठान और उसकी पत्नी नसीरन रहते थे। उनका नौ-दस साल का लड़का था। वह गरीब था तथा काम धन्धे के लिए बाहर जाता था। नसीरन जारिणी थी। एक जार जाट फूला से उसका संबंध जुड़ गया। जैसे ही अफजल काम पर जाता वैसे ही फूला जाट आ जाता। उसका नौ-दस साल का लड़का देख रहा था। एक दिन वह अपने पिता से कहता है -

इस पापन नै पी राखी है बेशरमी की घूंटी।
निर्भय हो कै फूला जाट नै हमारी आबरू लूटी।
आज घरों रह देख लिए जो बात जानते झूठी।
बोलण जोगे हम ना छोड़े ऐसी किस्मत फूटी।
बेढब सगुवा सिंह सिकैड़ा अब छंद वाला होगा।[52]

अफजल नसीरन को मारता पीटता है और काम पर चला जाता है। नसीरन अपने पुत्र को मारकर इल्जाम अफजल को लगा देती है। और राजा के सामने उसकी

पोल पट्टी खुलती है और नसीरन और फूला जाट को फाँसी होती है।

यह लोकनाट्य घरों, बस्तियों, मोहल्लों में जार-कर्मियों के उत्पात का पर्दाफाश करता है।

'होली देवर भाभी' भी एक स्त्री के जार-कर्म की कथा है। मानपुर के राजा मानसिंह के दो पुत्र थे। बड़े का नाम सलेमान, छोटे का नाम था रणबीर सिंह। बड़े की शादी हो गई थी और पत्नी चंद्रा जारिणी चरित्र के कारण अपने देवर रणवीर सिंह पर डोरे डालती है परंतु रणबीर सिंह प्रण का पक्का नैतिक था। उसे घरबार खानदान की आबोहवा का आभास था। वह अपनी भाभी को कहता है -

अग्नि चाहे छोड़ दे गर्मी शेषनाग चाहे तजो पाताल।
रणवीर सिंह ना तजै धर्म को, भूख प्यास चाहे तज दे काल।[53]

उससे पहले वह भाभी चंद्रा को कहता है -

काल तजे ना भूख देख ले, अंबर म्हं ना होती प्यास।
आँसू के पानी को पी के किसकी भाबी मिटती प्यास।
घर की हवा उखड़जा चंद्रा, नहीं फेर दबेगी दाबी।[54]

जार-कर्म घर को उखाड़कर रहता है। जारकर्मी का उखाड़ा हुआ घर बड़ी मुश्किल से संभलता है। जार-कर्म के दुष्परिणामों को दिखाता हुआ यह लोकनाट्य भाई सुलेमान से रणवीर सिंह पर हमला करवाता है। मरा हुआ जानकर एक संदूक में बंद कर उसे नदी में फैंक दिया जाता है। परंतु धोबी धोबिन द्वारा बचा लिया जाता है। बाद में वही अपने भाई सुलेमान की शत्रुओं से रक्षा करता है। जब यवन राजा सुलेमान को बंदी बना लेता है तथा उसकी भाभी को अपनी बेगम बनाने के लिए ले जाता है तो वह उसके साथ युद्ध करता है और उसे मार डालता है। वीर रस का अद्भुत उदाहरण दर्शनीय है -

कसम खाय कै कहूँ आपसे।
है कसम खुदा की मुझे कहूँ मैं तुझे।
आग जब बुझे समझ ले प्यारे।
तेरा रक्त मांस सब तार हाड़ करूँ न्यारे।
मर्दों की मरदमी रले, तेग जब चले।
धरन भी हले युद्ध हो थारे।
भाग जा आगे सै जो अच्छे दिन प्यारे।
कट कट शीश पड़े, धरती म्हं हो जाए खून से गारे।[55]

इस लोकनाट्य में अंत में चंद्रा भाभी रणबीर सिंह से माफी माँगती है। 'जगत मोहन' लोकनाट्य में भी 'रूप-बसंत' सांग की तरह दो राजकुमारों का जारिणी मौसी के कारण दुर्गति दिखाई है। इस लोकनाट्य में एक रागनी बहुत ही मार्मिक है जो बिना माँ के बालकों के कष्टों पर लिखी गई है-

माँ बिन बालक आधा रहजा रहता बहुत निमाणा।
दूसरी मादर तरस करे ना दे आधा खाणा।
जिस बालक की माँ मरजा ओ बालक मर लिया जीता।
जिस बूढ़े की मर जा बुढ़िया उसका घणा फजीता।
जिस कुएँ का मण गिर जावै भला नीर बिन रह रीता।
इनको उन बिन नहीं सहारा कह भागवत गीता।
ऐ भगवान बता दे मुझको होगा कहाँ जाणा।[56]

इन्होंने 'लीलो-चमन' सांग सन् 1949 में आई फिल्म 'लाहौर' की कहानी पर आधारित है। यह सांग कौरवी क्षेत्र में पर्याप्त लोकप्रिय हुआ। राय धनपत सिंह निदाना का भी 'लीलो-चमन' प्रतिनिधि सांग था।

इनका 'जादूगर सपेरा' सांग पूरी तरह से जादुई, तिलस्मी और मनोरंजन से भरपूर सांग है। इस लोकनाट्य में चंद्रपाल व उसकी पत्नी फूलवती है जो रूम शहर में रहते हैं। बंगाल से एक जादूगर सपेरा आता है जादू करके फूलवती को ले जाता है। माँ के माध्यम से चंद्रपाल को सारा पता चलता है तथा बंगाल जाकर जादूगर सपेरा के अपने गुरु के द्वारा मरवाकर अपनी पत्नी को वापस लेकर जाता है। सगुवा सिंह कविताई में गहरे उतरे सांगी थे। उन्होंने कई जगह नए उपनामों का भी प्रयोग किया है, यथा -

गात कै म्हां छुरा लागा, होरी भारी चीस गोरी।
फूलमदे के कारण मेरा उतर जावै शीश गोरी।
चक्की के कलेश म्हं मैं धरके पीस दिया।[57]

x *x* *x*

तेरे इश्क की चोट लगी मेरी दुख रही पाँसू।
भीतर भीतर रोय रही मेरी बाहर गिरे ना आँसू।
भूरे भूरे हाथ ऊंगली मूंगफली सै अच्छी।
गोरा गोरा गात गोब न्यूं केला-सी कच्ची।
थोड़ी उमर वजन म्हं हल्की बुलबुल की बच्ची।

झाड़ पूंछ कै राखूं हरदम रेशम की लच्छी।
तेरी खिदमत म्हं करने को एक पठोरी फाँसू।[58]

सगुवा सिंह ने पारंपरिक कथाओं पर तो लोकनाट्यों का सृजन किया ही है, उसके साथ उनके अधिकतर लोकनाट्य उनकी स्वयं की बनाई कथाओं पर आधारित हैं। उनके लोकनाट्य दर्शकों को अपने आसपास की घटित हो रही घटनाएँ लगती हैं। वे मानवीय मूल्यों को अपने लोकनाट्यों की विषयवस्तु बनाते हैं। लोकनाट्य लेखन के साथ साथ वे उनकी शिद्दत से मंचन भी करते हैं। उनका मंचन भी उत्कृष्ट कोटि का था। वे अपने आपको सांगी कहलाना पंसद करते थे। उनकी भाषा का प्रवाह इतना स्वाभाविक था कि उनकी लोकप्रियता में उसका सबसे बड़ा हाथ था।

दयाचंद गोपाल -

इस काल के अति महत्त्वपूर्ण लोकनाट्यकार थे। इनका जन्म 2 जनवरी 1916[59] को ग्राम हरेवली, दिल्ली में हुआ। इनके पिता का नाम शेरसिंह व माता का नाम सुधा देवी था। ये जोगी जाति से थे।

इन्होंने 18 लोकनाट्यों की रचना की - 'पद्मावत', 'नौटंकी, 'सेठ ताराचंद', 'शाही लकड़हारा', 'शीला सती', 'मीराबाई', 'पूरणमल', 'विराटपर्व', 'राजा हरिश्चन्द्र', 'चंद्रकिरण', 'जानी चोर', 'सुल्तान निहालदे', 'चापसिंह', 'औरंगजेब चंचल बाई', 'चीरपर्व-सभापर्व, 'ध्रुव-उत्तानपाद, 'सरवर-नीर और 'नल दमयन्ती'।[60] जिनमें से 'पद्मावत', 'शीला सती', 'सेठ ताराचंद', 'सरवर-नीर' व 'मीरांबाई' आदि सांग ही प्राप्त हैं। शीला सती सांग बहुत कम कवियों ने लिखा है। इन्होंने तरेसठ फुटकर रागनियाँ भी लिखीं तथा समसामयिक विषयों पर दोहों की भी रचना की। दोहों की रचना में ये कबीर से प्रभावित हैं। इन्होंने सन् 1931 में सांग प्रारंभ किया तथा 1945 में अपने गुरुभाई लखमीचंद के देहांत के बाद सांग मंचन बंद कर दिया। उसके बाद इन्होंने सांग व फुटकर रागनी का रचना-कर्म जारी रखा। इनकी रचनाओं में समसामयिक सामाजिक चित्रण, नैतिक शिक्षा, भक्तिपरक रचनाएँ और गऊ सेवा आदि मिलती है। "गोपाल जी ने अपने समय के समाज को सूक्ष्मता से जाँचा परखा और उसकी दुर्बलताओं को उजागर करते हुए उन्हें दूर करने के लिए प्रेरित किया। कहीं पर नशीली वस्तुओं के दुष्परिणामों का विस्तृत वर्णन करते है। शिक्षा को व्यक्ति और समाज के लिए अनिवार्य माना है। स्वतंत्रता प्राप्ति के विकास के पूर्ण अवसरों का लाभ उठाने की प्रेरणा दी है।"[61]

एक फुटकर रागनी में इन्होंने अपना परिचय कुछ यूं दिया है -

पहले कुछ मंद नाम सै, दिल से आनंद नाम सै।
पाली दयाचंद नाम सै, गऊ चरावणिया।
याणे के मरे बाबल-माई, मनै मौसी की भैंस चराई।
समय आई जब गुरुजी मिलगे, सारे दुख देही के टलगे।
च्यार विरहनला खिलगे था मैं भेस भरावणिया।[62]

इनके गुरु का नाम मानसिंह था। इन्होंने अपने गुरु का परिचय इस प्रकार दिया है -

गुरु मानसिंह अर्ज सुणै कद मेरी
दयाचंद हरज्या सकल अंधेरी।
आजकाल जा बीर भतेरी।
अपणा ढंग मर्दाना करकै।
खुद ब्याहे की नाड़्य काट दे, दूजी ठोड ठिकाणा करकै।।[63]

इनका 'शीला-सती' सांग स्त्री-पुरुष के संबंध और स्त्री की एकनिष्ठता का अद्‌भुत सांग है। शीला राजा रिसालू के दीवान महतेशाह की पत्नी है। परंतु राजा रिसालू (रीशाल) उसके प्रति जार-दृष्टि रखता है। महतेशाह की अनुपस्थिति में राजा रिसालू उसके साथ चौपड़सार खेलता है तो शीला की बाँदी उसे गैर-पुरुष के साथ चौपड़सार खेलने से मना करती है -

तिरे घरां सेठ ना गैरां तै तू नज़र मिलाने वाली।
आए-गए माणस कै चौपड़सार खिलाने वाली।
आप करै ना नौकर कर दे तब सेवा होज्या सै।
मीठे बोल कै चणे चबा दिल तै मेवा होज्या सै।
गैर पुरुष का मुँह ना देखै पार खेवा हो ज्या सै।
बीर पराई मर्द ओपरा दुख देवा होज्या सै।
सोच लिऐ तू धोरै बठा कै नीर पिलाने वाली।।[64]

हालांकि शीला तो पहले ही अपने पति के प्रति एकनिष्ठ थी और राजा रिसालू उसके नैतिक आचरण से प्रभावित होता है तथा उसके साथ भाई-बहन का संबंध बनाता है। सांग के अंत में राजा रिसालू की अंगूठी वाली चली गई कुटिल चाल से शीला को आत्महत्या करनी पड़ती है और उसके पति महतेशाह भी प्राण त्याग देते हैं।

इन्होंने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं। इनकी फुटकर रागनियों में चेतना, स्वाभिमान ओर तर्क है। इन्होंने शिक्षा की महत्ता को बताया है -

अपनी रक्षा आप करो रहो और किसे के इंतजार म्हं।
बिन विद्या के पदमी कोन्या इस हरे-भरे संसार म्हं।।[65]

इस रागनी की चौथी कली में कवि ने गुलामी और आजादी के समयों की तुलना की है। यदि बचपन में शिक्षा प्राप्त नहीं की तो निकृष्ट कार्य करने के लिए तैयार रहना होगा। कानून की जानकारी के बिना पुलिस का एक सिपाही आकर पूरे गाँव को दहशत में डाल देता था। परंतु अब शिक्षा के कारण सबको कानून की बारिकियों का पता है। कवि ने कहा है-

बच्चेपन म्हं पढ़े नहीं क्योंकि कुली बनाए जाओ थे।
बिस्तर ऊपर खबर राज की कदी ठाठ लगाओ थे।
एक पुलिसिया आवै गाम म्हं भाजे बिना थ्याओ थे।
किमै ल्हुक ज्यां किमै डरते-डरते मुस्किल स्हामी आओ थे।
आज बोल सकै तै सभनै हक सै जनता के दरबार म्हं।।[66]

दयाचंद गोपाल कुछ-कुछ आर्य समाज के प्रभाव में थे और स्वयं को भजनोपदेशक कहलवाना पसंद करते थे। इन्होंने समसामयिक सामाजिक परिवेश का भी चित्रण किया है।

निहालचंद -

निहालचंद का जन्म 21 अक्तूबर 1881[67] को गाँव जांगल ठाकरान दिल्ली में एक गौड़ ब्राह्मण परिवार में हुआ। विद्यालय में हिन्दी-उर्दू की पढ़ाई करते-करते इनके मन में गीत-संगीत की ललक जाग गई। ये जसौर खेड़ी गाँव के उस समय के सुप्रसिद्ध सांगी सरूपचंद से मिले और उन्हें अपना गुरु बना लिया। पंडित लख्मीचंद से भी इनका बेहद आत्मीय लगाव रहा। ये पं. लख्मीचंद से कई वर्ष बड़े थे। पं. लख्मीचंद इनका पर्याप्त आदर करते थे। इन्होंने 'रामलीला', 'कृष्णलीला', 'महाभारत', 'राजा उत्तानपाद', 'राजा हरिश्चंद्र', 'नल-दमयंती', 'सत्यवान-सावित्री', 'राजा भोज शरणदे', 'भगत पूर्णमल', 'गोपीचंद', 'सरवर-नीर', 'चंद्रकिरण', 'ज्यानी चोर', 'जमाल गबरू', 'चापसिंह', 'दो जन्म की कथा' तथा 'वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप' आदि के साथ-साथ और भी कई सांग किया करते थे। परंतु इन्होंने 'विराटपर्व', 'गबरू जमाल' दो सांगों की रचना की। 'विराटपर्व' सांग में 71 तथा

'गबरू जमाल' में 15 रागनी हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने 22 फुटकर रागनियों का भी सृजन किया। 'विराटपर्व' सांग 'कीचक वध' की कथा को लेकर है तथा 'गबरू-जमाल' सांग हीरामल और जमाल की लौकिक कथा को लेकर लिखा गया सांग है। अनेक सांगियों ने इसी कथा को 'हीरामल जमाल' के नाम से भी सृजित किया है। यह एक प्रेमकथा है। इसमें पत्नी के होते हुए एक पुरुष के जार-कर्म के दुष्परिणाम दिखाए गए हैं।

इन्होंने 'राजा हरिश्चंद्र' की कथा की भी कुछ रागनियाँ लिखी हैं। इनके सृजन में मनुष्य के स्वभाव में आए नकारात्मक बदलावों के प्रति चिंता है। नैतिकता का समर्थन है। स्वतंत्रता आंदोलन में स्वतंत्रता एक व्यक्ति के लिए कितनी आवश्यक है, इस पर इन्होंने एक रागनी लिखी। रागनी की टेक और चौथी कली दर्शनीय है -

भाइयो हो ज्याओ सब त्यार, देश माँगता कुर्बानी।।
देश आज़ाद यो प्यारा होगा।
जमीं आसमां म्हारा होगा।
अपना ध्वज लहराया होगा।
सारा होगा निहाल संसार, चौथा हटज्या बेगानी।[68]

दिनांक 24 फरवरी 1995 को इनका देहांत हुआ।[69]

पं. नंदलाल मुनीमपुरिया -

पं नंदलाल भी सरूपसिंह के शिष्य थे। इनका जन्म 1885 के आसपास गाँव मुनीमपुर (जिला झज्जर, हरियाणा) में हुआ।[70] स्कूली शिक्षा से रहित होकर ही इन्होंने अपने गुरु सरूपसिंह से गायन विद्या सीखी। नंदलाल शुद्ध सात्विक व्यक्ति थे। शराब आदि से कोसों दूर रहने वाले। एक बार मित्रों द्वारा शराब सेवन का आग्रह करने पर इन्होंने तुरंत एक रागनी उन्हें गाकर सुनाई।

माफी द्यो चौधरियो दारू पिया ना करूँ।
सुल्फा गांजा भांग शराब।
पी कै बुद्धि करै खराब।
नहीं छोड़ती आब, इसा दुख लिया ना करूँ।[71]
x *x* *x*
दारू पी कै बदलै ख्याल।

उठै जां सौ-सौ मण की झाल।
न्यूं कहै ब्राह्मण नंदलाल, पात्थर का हिया ना करूँ।[72]

एक सामाजिक व संवेदनशील व्यक्ति पत्थर का हृदय करके ही शराब का सेवन करता है। इस प्रकार की रागनियाँ समाज में प्रत्यक्षतः कार्य करती है। इनकी रागनी किसी अन्य की छाप से गाकर पका दी गई। इस छाप काट कुकृत्य से आहत होकर इन्होंने एक रागनी की चौथी कली में लिखा-

छंद सीखैं और करै गुलामी।
फेर म्हारी काटैं छाप हरामी।
नंदलाल के छंद सै नामी, लखमीचंद केसी डोली कोन्या।[73]

पं नंदलाल ने छापकटैया को 'हरामी' की संज्ञा दी है। यह संज्ञा सटीक है। क्योंकि छाप काटकर गाना किसी की बनी बनाई खाना है। नंदलाल की जिस रागनी की छाप कटी, उसकी टेक व पहली कली है-

भाई की आब शिखर म्हं हो तै जला नहीं करते।
खरे आदमी मुँह पै कह दे टला नहीं करते।
इज्जत आब द्रव धन मिलता कर्मां के बाँटे तै।
गृहस्थ धर्म सफल होज्या सै अतिथि घर डाटे तै।
घरबारी कै श्राप चढ़ै सै मंगते के नाटे तै।
घर कुणबे की आब बिगड़ज्या आपस के पाटे तै।
औरां की जड़ काटे तै कदे फल्या नहीं करते।[74]

नंदलाल मुनीमपुरिया ने 'नरसी भगत', 'पूरणमल', 'नल-दमयंती', 'महाभारत' (वनपर्व), 'महाभारत' (गोहरण), 'मीरांबाई', 'राजा हरिश्चंद्र', 'शाही लकड़हारा' और 'सत्यवान सावित्री' सांगों की रचना की तथा लोक के समक्ष मंचित किया। इसके साथ ही इन्होंने अनेक फुटकर रागनियों की भी रचना की। इन्होंने अधिकतर पौराणिक या बनी बनाई कथाओं पर सांगों का सृजन किया। 'नल-दमयंती' सांग में उन्होंने जुए की लत के दुष्परिणामों को दर्शाया है। दमयंती नल को कहती है-

जुआ कोन्या खेल्या करते पिया खोटी कार बताई।
घरबारी की आब उतर ज्या, धन की हार बताई।
जुआ जोर जुलम का हो सै जितज्यां महल चौबारे।
जुएबाज शराबी नै कोय दे ना दाम उधारे।

बणी बणी कै सौ होज्यां कोए ना बिगड़ी के प्यारे।
कलियुग पुष्कर दोनूं से तेरा नाश करण नै आरे।
प्यारे सब स्वार्थ कै हो मतलब संसार बताई।[75]

इनके सांगों में वर्ण व्यवस्था का समर्थन, दान की महिमा, सत्यवादिता, नैतिकता आदि जीवन मूल्यों पर प्रकाश डाला गया है। 24 अक्तूबर सन् 1956 को इनका देहांत हो गया।[76]

पं. हरफूल सिंह गौड़ -

हरफूलसिंह गौड़ का जन्म सन् 1898 में गाँव गुभाता, जिला झज्जर हरियाणा में हुआ।[77] कक्षा चार तक स्कूली शिक्षा प्राप्त अपने पिता के साथ खेती के काम में लग गए। बीस वर्ष की आयु यानि 1918 में ये फौज में भर्ती हो गए। एक बार ये छुट्टी आए हुए थे। निकट के गाँव बादली में सरूपचंद की सांग-मंडली सांग कर रही थी। ये भी सांग देखने चले गए। ये सरूपचंद से इतने प्रभावित हुए कि फौज की नौकरी छोड़ दी और इनकी सांग मंडली में शामिल हो गए। चार वर्ष तक पं. सरूपचंद के सान्निध्य में रहे। यकायक सन् 1927 में पं. सरूपचंद का स्वर्गवास हो गया। गुरु के परलोकगमन के बाद पं. हरफूल ने अपना स्वतंत्र सांगी बेड़ा बना लिया और सांग करने लगे। इन्होंने 1927 से 1953 तक सांग किए। सन् 1923 के आसपास जब उनकी उम्र पचपन साल थी, पंडित जी ने सांग संसार से संन्यास ले लिया। इन्होंने अनेक सांगों की रचना की। 'अजीतसिंह राजबाला', 'कृष्णलीला', 'ज्यानी चोर', 'पूरणमल', 'महाभारत' (चीरपर्व) 'राजा नल', 'राजा हरिश्चंद्र', 'सत्यवान सावित्री', 'हीर रांझा' आदि। किस्सा अजीतसिंह राजबाला की दो रागनियां, कृष्णलीला की एक, पूरणमल की एक, महाभारत (चीरपर्व) की एक तथा किस्सा 'सत्यवान-सावित्री' की एक रागनी उपलब्ध है। 'अजीतसिंह राजबाला' एक अनोखी लौकिक प्रेमकथा है। अजीतसिंह अपने ससुर की माँग पर एक सेठ से बीस रुपये लेकर आता है। परंतु सेठ एक विचित्र शर्त रखता है कि जब वह कर्जा चुका न देगा तब तक उन्हें पति-पत्नी की अपेक्षा भाई-बहन की तरह रहना होगा। कली दर्शनीय है -

धन दौलत ले जाओ, जितना तुमको चाहता।
जब तक कर्जा ना दोगे, रहेगा बहाण का नाता।[78]

इस प्रकार के मार्मिक प्रसंग दर्शकों को भाव विह्वल कर देते हैं। इन्होंने अनेक दोचश्मी रागनियाँ भी लिखीं। 'पूर्णमल' सांग में जब नूनादे मौसी के षड्यंत्र के कारण

पूर्णमल को राजसी सुख त्यागकर जाना पड़ता है तो उसकी माँ इच्छरादे रोने लग जाती है तब वह अपनी माँ को समझाता है-

मतना रोवै माँ इच्छरा ना तेरे लाल निमत के म्हां।
तू अलख निरंजन का सुमरन कर धर ले ध्यान सूरत के म्हां।
धीरज धर्म कर्म साथी का दुख म्हं बेरा पट ज्या सै।
कंचन की हो परख आग म्हं कुछ ना इज्जत घट ज्या सै।
जती सती और शूरवीर का शीश धर्म पै कट ज्या सै।
धर्म अर्थ और काम मोक्ष तै या काया रंग पलट ज्या सै।[79]

इन्होंने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं। इनके सांग पूर्व से प्रचलित लोककथाओं पर ही आधारित हैं।

चौ. चंदन सिंह पीपलका -

चौ. चंदन सिंह पीपलका का जन्म गाँव पीपलका जिला गौतमबुद्ध नगर उत्तर प्रदेश में हुआ था। इन्होंने होली लोकनाट्यों की रचना की। इनकी एक खास विशेषता थी कि ये अपने लोकनाट्य के अंत में उसकी रचना तिथि अनिवार्य रूप से शामिल करते थे। यह तिथि लोकनाट्य की पूर्णता की तिथि होती थी। ये संवत् में तिथि लिखते थे। इनकी लोकनाट्यों की रचना काल कुछ इस प्रकार है - 'राजा हरिश्चन्द्र' (सन् 1909)[80], 'होली प्रथ-वियोग' (सन् 1919)[81], 'देवी चंचल कुमारी' (सन् 1932)[82], 'नल की औखा' (सन् 1935)[83], 'कंपलगढ़ की लड़ाई' (सन् 1933)[84] 'होली दमयंती हरण' (सन् 1937)[85], 'मारू का गौना' (सन् 1947)[86]। इनके अतिरिक्त इन्होंने कुछ लोकनाट्य और भी लिखे, यथा- 'नल का जन्म' (मंझा निकासी) 'नल का ब्याह' (भूमासुर दाने की लड़ाइ), 'दमयंती स्वयंवर' (इन्द्र नल संवाद), 'नल की दूसरी औखा' (पिंगलगढ़ गवन), 'किशनलाल का ब्याह' (संकलदीप की लड़ाइ), 'सरवर नीर राजा अंब', राजा मोरध्वज', 'रूप-बसंत' (दोनों भाग), 'अजीतसिंह-राजबाला', 'लंका चढ़ाई' आदि। प्राप्त लोकनाट्यों के आधार पर इनका सृजनकाल 1909-1947 तक दिखाई देता है। इनके गुरु का नाम था - भीमसैन। नल का जन्म (मंझा निकासी) लोकनाट्य के अंत में ये अपने गुरु का नाम बताते हुए लिखते हैं -

पहला भाग नल जन्म, निकासी मंझा सबको दरशाया।
भीमसैन है गुरु हमारे, जिनसे मैंने गुण पाया।
चंदन कहे भूल जहाँ पावो, उसे माफ करो सब भाई।[87]

चंदनसिंह पीपलका ने नल पुराण के दस अलग-अलग लोकनाट्यों की रचना की है। इनके दादा गुरु का नाम फूलसिंह था। राजा हरिश्चन्द्र लोकनाट्य के मंगलाचरण में इन्होंने लिखा है -

फूल कहे आओ जिभ्या पै, हो जाए काम फतह मेरा।
मारो मान आन दुश्मन का, भीमसैन कहे कर फेरा।
चंदन सिंह गूजर का गावे, मुझे दीजो बुद्ध भवानी।[88]

चंदनसिंह पीपलका अपने समय में सुविख्यात लोकनाट्यकार थे। इन्होंने दोहा, लावनी, ख्याल, लहर, झूलना, रागनी, आल्टा, गाह्या, चौक, ढोला आदि में काव्य रचना की है। इनके लोकनाट्यों में होली शब्द मुख्यतः रागनी के पर्याय के रूप में आया है। राजा हरिश्चन्द्र लोकनाट्य में जब रोहताश को बगीचे में साँप डस लेता है तो उसकी माता मदनावत पर दुखों का पहाड़ टूट पड़ता है। वह पछाड़ खाकर गिरती है। लेखक की संवेदनशीलता दर्शनीय है -

सुत की सुन रुदन मचाया।
गिर गया डोल कुएँ के अंदर, हाथों से नेजू छूटी।
खाय पछाड़ गिरी पनघट पर, मैं दुखिया हर ने लूटी।
क्या फिरी राम की माया, सारा राजपाट छुटवाया।[89]

पुत्र का मृत्यु को प्राप्त हो जाना के लिए हाथों में नेजू छुटवाने का रूपक अद्‌भुत रूपक है। उसके दुख की इंतेहा तब होती है जब उसका पति मूर्दा फूँकने के लिए उससे कर माँग लेता है। वह कहता है -

कर मुर्दघाट का देना।
क्या तुझको कुछ खबर नहीं थी सुन री तिरिया गैवानी।
यहाँ महसूल लगे मुरदों पर तैने अभी तक नहीं जानी।
जो मूर्दा फूँकन आते, कर कफ्फन यहाँ धर जाते।
जब पीछे दाग लगाते, हमको पाँच टके पकड़ायके।[90]

रानी मदनावत लाख मिन्नत करती है परंतु वह कर बिना मूर्दा फूँकने नहीं देता। यह सांग पर्याप्त मार्मिक सांग है।

होली सलोचना सती के अंत में कवि चंदन सिंह पीपलका का समापन देखा जा सकता है -

संवत् (1961) उन्नीस सौ इकसठ महीना माघ था।

तिथि सप्तमी थी कृष्णा पूरण चतुर ये भाग था।
दनकौर है सरनाम जिसके पास म्हं एक ग्राम था।
दो कोस उत्तर को बसै पीपलका जिसका नाम था।
जिसमें चंदन बसै अनाड़ी, जाने दई सठन काई जौ।[91]

निष्कर्ष -

पं. लखमीचंद का जीवनकाल मात्र पैंतालीस वर्ष रहा। इन्होंने लोकसाहित्य पर अध्ययन करने वाले प्रारंभिक शोधार्थियों, आलोचकों और समीक्षकों का सर्वाधिक ध्यान आकृष्ट किया। ये प्रारंभ में श्रृंगार प्रधान रचनाएँ लिखते तथा गाते थे और लोक के अधिक नजदीक थे। परन्तु इनकी कला का सर्वाधिक उपयोग टीकाराम शास्त्री जैसे लोगों ने किया। टीकाराम शास्त्री ने इनकी प्रतिभा से पुराण-शास्त्रों की मान्यताओं का हरियाणवीकरण करवाया। जिनमें वर्ण व्यवस्था का गुणगान, स्त्री की दोयम दर्जे की स्थिति, पुरातन पंथी, जाति व्यवस्था की प्रगाढ़ता और समसामयिक मुद्दों के प्रति उदासीनता एवं असंलग्नता को प्रश्रय मिला। जबकि लोकसाहित्यकार अपने समय में घटित घटनाओं को त्वरित रूप में अपनी सर्जना में लेकर आता है। वह उन घटनाओं से अप्रभावित नहीं रह सकता। पं. लखमीचंद की लोककला में अनेक अचरज़ों में यह अचरज़ भी शामिल है कि वे 1945 तक की देश में घटित हो रहे घटनाक्रम से अछूते कैसे रहे! जबकि उनके परदादागुरु शंकरदास में तत्कालीन परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया आ रही है। उन्होंने आर्यसमाज की शिद्दत पर खुलकर सवाल उठाए थे। इसी काल में जमुवामीर जी हिन्दू-मुस्लिम की एकता का माहौल बना रहे थे। पं. दीपचंद ने हरियाणा के युवाओं को फौज में भर्ती होने के लिए उकसाया था। दयाचंद गोपाल ने सामाजिक एकता पर जोर दिया था। निहालचंद देश को आज़ाद करवाने के लिए युवाओं में कुर्बानी का जोश भर रहे थे। नंदलाल मुनीमपुरिया जुआ आदि व्यसनों से सचेत कर रहे थे। पं. लखमीचंद का प्रतिनिधि 'नौटंकी' सांग, जिसे उन्होंने संभवतः सर्वाधिक मंचित किया था, पूरी तरह से समसामयिक असंलग्नता का सांग है। जिस समय भगतसिंह फाँसी टूट रहे हों और दूसरी ओर 'नौटंकी' सांग मंचित किया जा रहा हो, यह अपने आप में अचरज़पूर्ण है। परन्तु कलात्मकता की दृष्टि से पं. लखमीचंद बेजोड़ थे। वे सांग कला को समर्पित थे। उन्होंने सांग कला का मनोरंजनार्थ खूब उपयोग किया था। उनकी प्रसिद्धि दूर तक थी। उनके अंदर प्रतिस्पर्धा की भावना थी। वे अपने समकक्ष किसी को देख नहीं सकते थे। बाद के दिनों में वे शराब के व्यसनी भी हो गए थे और

सांग मंचन के समय शराब पी लिया करते थे। जिस कारण उनके दर्शकों में उनके प्रति कई खराब उक्तियाँ भी प्रचलित हो गई थीं।

संदर्भ -

1. हरियाणवी सांग : एक परिशीलन, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, हरियाणा, प्रथम संस्करण 2021, पृष्ठ 209
2. पंडित लखमीचंद ग्रंथावली, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, प्रथम संस्करण 1992, पृष्ठ 1
3. वही, पृष्ठ 1
4. वही, पृष्ठ 2
5. वही, पृष्ठ 38
6. वही, अनुक्रमणिका
7. वही, पृष्ठ 43
8. वही, पृष्ठ 1
9. हरियाणवी लोकनाट्यकार एवं सांगी (जीवन परिचय), डॉ. अनिल गोयल 'सवेरा', अर्चना प्रकाशन, 829, राजा गली, जगाधरी, जिला यमुनानगर, हरियाणा - 135003, प्रथम संस्करण 2006, पृष्ठ 31
10. पंडित लखमीचंद ग्रंथावली, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, प्रथम संस्करण 1992, पृष्ठ 626
11. लोकनाट्य सांग कल और आज, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, हिन्दी साहित्य निकेतन, 16, साहित्य विहार, बिजनौर, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ 118
12. हरियाणवी लोकनाट्यकार एवं सांगी (जीवन परिचय), डॉ. अनिल गोयल 'सवेरा', अर्चना प्रकाशन, 829, राजा गली, जगाधरी, जिला यमुनानगर, हरियाणा - 135003, प्रथम संस्करण 2006, पृष्ठ 31
13. हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, डॉक्टर शंकर लाल यादव, हिन्दुस्तानी ऐकेडमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1960, पृष्ठ 404
14. सांगीत पूरन मल (सम्पूर्ण), ला. घनश्यामदास मेरठ निवासी, बासदेव गोकलचंद

बुक डिपो, गुजरी बाजार, शहर मेरठ, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 1955, पृष्ठ 110

15. वही, पृष्ठ 133
16. वही, पृष्ठ 132
17. वही, पृष्ठ 132
18. वही, पृष्ठ 39-40
19. वही, पृष्ठ 42
20. वही, पृष्ठ 71
21. वही, (अंतिम पृष्ठ)
22. वाग्गेयकार पं. महोरसिंह गौड़ काव्यसंगीतमणि, सत्यवान शर्मा, हरियाणा साहित्य अकादमी, संस्करण 2022, पृष्ठ 21
23. वही, पृष्ठ 23
24. वही, पृष्ठ 30
25. वही, पृष्ठ 28
26. वही, पृष्ठ 39
27. वही, पृष्ठ 55
28. वही, पृष्ठ 323
29. वही, पृष्ठ 323
30. कवि जमुवा मीर रचनावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, पृष्ठ 24
31. वही, पृष्ठ 26
32. वही, पृष्ठ 69
33. वही, पृष्ठ 69-70
34. वही, पृष्ठ 37
35. वही, पृष्ठ 41
36. वही, पृष्ठ 42
37. वही, पृष्ठ 31
38. प्रेमलाल चौहान रचनावली, राजेन्द्र बड़गूजर, पृष्ठ 43
39. पंडित शादीराम ग्रंथावली, डॉ. दामोदर वासिष्ठ, श्री अंगीरा शोध संस्थान,

419/3, शांति नंगर, पटियाला चौंक, जींद, हरियाणा - 126102, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ 112

40. वही, पृष्ठ 12
41. वही, पृष्ठ 13
42. वही, पृष्ठ 180
43. वही, पृष्ठ 21
44. वही, पृष्ठ 44
45. वही, पृष्ठ 140
46. वही, पृष्ठ 149
47. वही, पृष्ठ 160
48. वही, पृष्ठ 171
49. वही, पृष्ठ 179
50. सांगीत जादूगर सपेरा, मशहूर सांगी सगुवासिंह सिकैड़ा निवासी, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ शहर, चौथा संस्करण, सन् 1967, पृष्ठ 25
51. सांगीत जगत-मोहन, मशहूर सांगी सगुवासिंह सिकैड़ा निवासी, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ शहर, प्रथम संस्करण, सन् 1955, पृष्ठ 7
52. फूला जाट नसीरन, चौधरी सगुवासिंह सिकैड़ा निवासी, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ शहर, बारहवाँ संस्करण, सन् 1962, पृष्ठ 11
53. होली देवर भाबी (रणवीर सिंह चंद्रा), मशहूर सांगी सगुवासिंह सिकैड़ा निवासी, जवाहर बुक डिपो, गुजरी बाजार, मेरठ शहर, प्रथम संस्करण, सन् 1956, पृष्ठ 4
54. वही, पृष्ठ 3
55. वही, पृष्ठ 20-21
56. सांगीत जगत-मोहन, मशहूर सांगी सगुवासिंह सिकैड़ा निवासी, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ शहर, प्रथम संस्करण, सन् 1955, पृष्ठ 10-11

57. वही, पृष्ठ 16
58. सांगीत जादूगर सपेरा, मशहूर सांगी सगुवासिंह सिकैड़ा निवासी, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ शहर, चौथा संस्करण, सन् 1967, पृष्ठ 8
59. गोपाल रचनावली, डॉ. प्रेमचंद पातंजलि, डॉ. प्रेमचंद पातंजलि, बी.डब्ल्यू. 97 डी, शालीमार बाग, दिल्ली 110052, पृष्ठ 1
60. वही, पृष्ठ (v)
61. वही, पृष्ठ 27
62. वही, पृष्ठ 114
63. वही, पृष्ठ 49
64. वही, पृष्ठ 60
65. वही, पृष्ठ 118
66. वही, पृष्ठ 118
67. पण्डित सरूपचंद की सांग-प्रणाली, डॉ. केशोराम शर्मा, निर्मल पब्लिकेशन शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2021, पृष्ठ 44
68. वही, पृष्ठ 69-70
69. वही, पृष्ठ 46
70. वही, पृष्ठ 73
71. वही, पृष्ठ 77
72. वही, पृष्ठ 77
73. वही, पृष्ठ 78
74. वही, पृष्ठ 85
75. वही, पृष्ठ 88
76. वही, पृष्ठ 85-86
77. वही, पृष्ठ 105
78. वही, पृष्ठ 113
79. वही, पृष्ठ 117
80. राजा हरिश्चंद्र, चौधरी चंदनसिंह पीपलका, जवाहर बुक डिपो, निकट आर्यसमाज,

स्वामीपाड़ा, मेरठ, संशोधित संस्करण सन् 2003, पृष्ठ 88

81. प्रथ-वियोग, चौधरी चंदनसिंह पीपलका, जवाहर बुक डिपो, निकट आर्यसमाज, स्वामीपाड़ा, मेरठ, संशोधित संस्करण सन् 1997, पृष्ठ 51
82. देवी चंचलकुमारी, चौधरी चंदनसिंह पीपलका, जवाहर बुक डिपो, गुजरी बाजार, मेरठ, संशोधित संस्करण सन् 1992, पृष्ठ 38
83. नल की औखा, चौधरी चंदनसिंह पीपलका, जवाहर बुक डिपो, निकट आर्यसमाज, स्वामीपाड़ा, मेरठ, संशोधित संस्करण सन् 2004, पृष्ठ 36
84. कम्पलगढ़ की लड़ाई, चौधरी चंदनसिंह पीपलका, जवाहर बुक डिपो, निकट आर्यसमाज, स्वामीपाड़ा, मेरठ, संशोधित संस्करण सन् 1987, पृष्ठ 44
85. होली दमयंती हरण, चौधरी चंदनसिंह पीपलका, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ, चौथी बार, सन् 1980, पृष्ठ 48
86. मारू का गौना, चौधरी चंदनसिंह पीपलका, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ, चौथी बार, सन् 1980, पृष्ठ 59
87. होली नल का जन्म (मंझा निकासी), चौधरी चंदनसिंह पीपलका, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ, चौथी बार, सन् 1980, पृष्ठ 48
88. राजा हरिश्चंद्र, चौधरी चंदनसिंह पीपलका, जवाहर बुक डिपो, निकट आर्यसमाज, स्वामीपाड़ा, मेरठ, संशोधित संस्करण सन् 2003, पृष्ठ 1
89. वही, पृष्ठ 30
90. वही, पृष्ठ 40
91. सती सलोचना, चौधरी चंदनसिंह पीपलका, जवाहर बुक डिपो, निकट आर्यसमाज, स्वामीपाड़ा, मेरठ, संशोधित संस्करण सन् 2003, पृष्ठ 50

आठवाँ अध्याय

पृथ्वीसिंह बेधड़क युग

(सन् 1946 ई. -1955 ई.)

प्रस्तावना -

पंडित लखमीचंद युग समाज में सांग के अपरिहार्य हस्तक्षेप का युग रहा। मनोरंजन के क्षेत्र में सांग ने धूम मचाई। परंतु इस काल के अधिकांश लोकनाट्यकार केवल मनोरंजन तक सीमित रहे या केवल बनी बनाई या पौराणिक कथाओं पर निर्भर रहे। देश-समाज में क्या हो रहा है, अंग्रेजों का अत्याचार कितना बढ़ गया है, जलियांवाला बाग हत्याकांड, बंगाल विभाजन, सविनय अवज्ञा आंदोलन, खिलाफत आंदोलन, भगतसिंह का फाँसी टूटना, गाँधी और अंबेडकर का उदय, यहाँ तक कि भारत छोड़ो आंदोलन की कोई हलचलें इन लोकनाट्यों की कला का अंग नहीं बन सकीं। जाति प्रथा, स्त्री शिक्षा, दहेज तथा अन्य सामाजिक बुराइयों की ओर से ये पूरी तरह मुख मोड़े रहे। हालाँकि पं. लखमीचंद ने एक पाठशाला का निर्माण करवाया परंतु उसमें दलित और वंचित तबके के विद्यार्थी भी शिक्षा ग्रहण करेंगे इसकी कोई व्यवस्था न की। पं. लखमीचंद के सांग वर्ण-व्यवस्था और जाति व्यवस्था का समर्थन करते हैं। स्त्री को वे उसी पारंपरिक भूमिका में देखना पसंद करते थे।

आर्य समाज का गठन 1875 में हुआ। इसने कर्मकांड, मूर्तिपूजा, अंधविश्वास और बाह्याडंबरों को सीधी चुनौती दी। कर्मकांडियों को इन्होंने 'पोप' की संज्ञा से नवाजकर उनका मजाक उड़ाया। आर्य समाज से लोगों की जो दृष्टि विकसित हुई, उसने समाज सुधार के साथ-साथ देश, धर्म, तर्क और मौलिक चिंतन को भी प्रभावित किया। प्रजापरिषद् और प्रजामंडलों में अनेक आर्यसमाजियों ने आर्यसमाज की शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार करना शुरू कर दिया। इन्होंने लोकनाट्यों की लोकप्रियता को महसूस किया। इन्हें प्रचार का सबसे बड़ा और सुलभ साधन 'रागनी' लगी।

भाषण की अपेक्षा रागनी अधिक संप्रेष्य और सर्वसुलभ हो सकती थी। एक व्यक्ति रागनी लिखता तथा अनेक लोग उसे गा सकते थे। इस विधा को अनेक आर्यसमाजी प्रचारियों ने अपनाया। क्योंकि वे रागनी के माध्यम से आर्य समाज के उपदेशों का प्रचार करते थे, इसलिए उन्हें 'भजनोपदेशक' या 'प्रचारी' कहा जाता था। ये रागनी को 'भजन' ही कहते थे।

ऐसे समय में पृथ्वीसिंह बेधड़क का अवतरण होता है। वे आर्य समाजी थे तथा देश के आज़ादी के आंदोलन से जुड़कर आर्य समाज की शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ समाज में बदलाव की महत्ता को शिद्दत से महसूस करते थे। इन्होंने लोकनाट्य का जितना विशाल भवन खड़ा किया। उतना संभवतः अब तक किसी भी लोकनाट्यकार ने न किया था। उन्होंने दकियानूसी जातिप्रथा पर कुठाराघात करना शुरू किया, कथनी और करनी के अंतर पर अंकुश लगाने का काम किया। स्त्रियों की शिक्षा पर जोर दिया। पृथ्वीसिंह बेधड़क का अवतरण कौरवी लोकनाट्य में समाज सम्पृक्तता की नई संभावनाएँ लेकर आया। इस युग के कुछ लोकनाट्यकारों का परिचय निम्न प्रकार है -

पृथ्वीसिंह बेधड़क -

पृथ्वीसिंह बेधड़क का जन्म सन् 1904 में बसंत पंचमी के दिन उत्तर प्रदेश में जिला मेरठ के शिकोहपुर गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम चौधरी कन्हैया सिंह था। ये जाट जाति से थे। उनके पिता साधारण किसान थे। आठ वर्ष की अल्पायु में ही उनकी माता का स्वर्गवास हो गया था। इन्हें बचपन में गाने-बजाने का शौक था। पृथ्वीसिंह बेधड़क कौरवी लोकनाट्य में एक ऐसी शख्सियत हुए हैं, जिन्होंने लोकनाट्य में विषयगत आमूलचूल परिवर्तन किया। उन्होंने समाज को केन्द्र में रखकर बिना डरे अपनी बात कही और जाति, वर्ण, अशिक्षा, सांप्रदायिकता, पाखंड, अतार्किकता और लोकनाट्य की प्रचलित शैली और विषयवस्तु के खिलाफ एक तरह से मोर्चा खोल दिया। इसी मोर्चे के कारण उनका नाम 'बेधड़क' पड़ गया। बेधड़क उपनाम उन्हें सर छोटूराम ने उनकी निडरता के कारण दिया था।[1] उन्होंने वजीदपुर के श्री लक्खी जी एवं गौहरनी गाँव के श्री कदम सिंह जी से बाजा बजाना सीखा और अकेले ही गाना शुरू कर दिया। इन्होंने हिन्दी, उर्दू, संस्कृत एवं अंग्रेजी का सामान्य ज्ञान प्राप्त किया। आर्य समाजी होने से उन्हें 'महाशय जी' के नाम से जानने लगे।

यद्यपि पं. लख्मीचंद और पृथ्वीसिंह बेधड़क दोनों समकालीन थे। उनके जन्म

में एक दो या तीन वर्ष का हेर-फेर था, तथापि उनकी कार्यशैली एवं चिंतन में पर्याप्त अंतर था। जहाँ पृथ्वीसिंह बेधड़क नव परिवर्तनवादी लोकनाट्यकार के रूप में उभरते है वहीं पं. लख्मीचंद पुरातनपंथी जाति और वर्णवादी। वे समाज में हो रहे परिवर्तनों को फंड चलाना मानते थे।[2] जबकि पृथ्वीसिंह बेधड़क मनुष्यमात्र की स्वतंत्रता और स्त्री के स्वाभिमान के रक्षक के रूप में उभरते हैं। कौरवी लोकनाट्य में पृथ्वीसिंह बेधड़क स्वच्छ, आज़ाद और देश धर्म और तर्क की बात कहने वालों में से थे, जिसका अनुकरण बाद में अनेक कवियों ने किया। पश्चिमी उत्तर प्रदेश और हरियाणा में एक समय पर आर्यसमाज का पर्याप्त प्रभाव रहा था। विशेषकर कृषक जातियों पर इसका प्रभाव रहा। आर्य समाज में सनातन धर्म में प्रचलित पाखंड के प्रति गहरी विरक्ति थी। वे इनका धोर विरोध करते थे। विशेष रूप जाट जाति से अनेक लोगों ने आर्य समाज की शिक्षाओं के आस्था जताई और इनमें से अनेक ने लोककवि के रूप में आर्य समाज की शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार लोकनाट्य तथा रागनियों के माध्यम से किया। इन आर्यसमाजी लोकनाट्यकारों का एक समूह सा होता था। बाद में प्रजामंडल व प्रजापरिषद् की गतिविधियाँ जब तेज होने लगीं तो इनकी जिम्मेदारी और बढ़ गई। प्रचार का माध्यम प्रजा में जाकर रागनियों के माध्यम से अपनी बात कहना था। आर्य समाज के प्रारंभिक काल में ही उत्तर भारत में पं. बस्तीराम, चौ. तेज सिंह जी, चौ. ईश्वर सिंह जी, चौ. पृथ्वीसिंह बेधड़क, स्वामी भीष्म जी, स्वामी नित्यानंद, कुंवर जौहरी सिंह आदि ऐसे प्रसिद्ध भजनोपदेशक हुए हैं, जिन्होंने समय-समय पर अपने भजन बनाकर आर्यसमाज के उद्देश्यों का प्रचार किया।

इन भजनोपदेशकों ने लोगों के सामने अपने इतिहास संस्कृति को नए रूप में रखा। इन्होंने इतिहास पुरुषों के त्यागों की कथाओं को लोकनाट्यों का विषय बनाया। पृथ्वीसिंह बेधड़क के लोकनाट्य हैं - 'महामाया', 'सत्यवादी महाराजा हरिश्चन्द्र और तारावती', 'नल-दमयन्ती', 'महारानी किरणमई', 'हिन्दूपति महाराणा प्रताप', 'महारानी अंजना देवी - पवन कुमार', 'झाँसी की वीर रानी', 'दानवीर कर्ण', 'अनंगपाल तोमर', 'काला पहाड़', 'फूलकुमारी', 'इतिहास महारानी सूर्यबाई', 'वीर भगतसिंह', 'महर्षि दयानंद जी का जीवन', 'इतिहास अजीतसिंह राजबाला', 'समरपाल', 'इतिहास दिल्ली की बेगम', 'कृष्ण सुदामा', 'भारत के शेरे बब्बर बंगाली बाबू', 'राजदुलारी रूपवती', 'जवाहरलाल की दिल्ली विजय', 'चंदनकौर का बलिदान', 'महारानी अमरकौर', 'भरथरी पिंगला', 'सरदार भगतसिंह', 'शाही लक्कड़हारा' आदि। इसके अतिरिक्त इन्होंने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं। पृथ्वीसिंह

बेधड़क को सामाजिक-राजनीतिक चेतना का लोकनाट्यकार माना जा सकता है। आज़ादी से पहले उन्होंने देश की आज़ादी से सराबोर लोकनाट्यों की रचना की। वे कौरवी क्षेत्र में पर्याप्त सुप्रसिद्ध हो गए थे। आज़ादी के बाद में उन्होंने अपना लोकनाट्य लेखन-कर्म और मंचन जारी रखा। उन्होंने लोकनाट्यों से प्राप्त आमदनी से अनेक सार्वजनिक महत्त्व की इमारतों का निर्माण करवाया, यथा विद्यालय, धर्मशाला, चौपाल या गौशाला आदि। आज़ादी के बाद सामाजिक कुरीतियों से लोक को जागरूक करना शुरू कर दिया। उस समय के बड़े नेताओं की जनसभाओं में वे एक मुख्य आकर्षण होते थे। पृथ्वीसिंह बेधड़क बेहद ईमानदार और आदर्शों के पक्के कवि थे। इन्हें शासन की ओर से दो ट्रकों के लाईसेंस[3] देने का प्रस्ताव रखा गया। परंतु इन्होंने मना कर दिया। इनके लोकनाट्य जहाँ एक ओर स्वतंत्रता पूर्व लोगों को लड़ने-मरने के लिए तैयार करते हैं, वहीं आज़ादी के बाद भारतीय समाज में बदलाव का संदेश भी देते हैं। जाति व्यवस्था के प्रति उनका संदेश दर्शनीय है -

चर्खा चरखी लोढ़ियो और जाति-पाँति तोड़ियो।
छोड़ियो ना मेरी बहना चाल महात्मा गाँधी की।[4]

उन्होंने समाज के हर वर्ग को संबोधित किया। किसान, साहूकार, महिलाओं, साधुओं, युवाओं, युवतियों, नेताओं से वे ईमानदार और कर्त्तव्यनिष्ठा चाहते थे। देश का कल्याण तभी हो सकता है, जब समाज के हर वर्ग को समानता के आधार पर देखा जाए और हर व्यक्ति अपनी सामर्थ्यानुसार देश के लिए काम करे। निठल्ले, अकर्मण्य और बेईमानों से देश डूब जाता है। कवि पृथ्वीसिंह बेधड़क ने भारत के साधुओं से प्रार्थना की है -

भारत के साधुओं तुम भी कुछ करो।
कुछ नहीं कर सकते तो कहीं डूब के मरो।
सत् करना है भला जगत का।
भारत का बाग सूखा, अब खून से भरो।
करुणा वतन पै करना, बेधड़क मत फिरना।
मरना है एक दिन पर मौत से डरो।[5]

x *x* *x*

आज़ादी के रंग में रंग दो हिन्दुस्तान को।
बुरी गुलामी दुनिया म्हं इससे कंगाली अच्छी।

स्त्री शिक्षा की ओर संकेत करते हुए वे लिखते हैं -

नहीं कसाई वह होता, जो गऊ को मारता भाई।
अरे वह निर्दयी कसाई, जिसने छोरी नहीं पढ़ाई।।[6]

बेधड़क के लगभग सभी लोकनाट्य उद्बोधन, संबोधन, ओज और उर्जस्विता से परिपूर्ण हैं। उन्होंने लोकनाट्यों का उपयोग समाज सुधार के लिए किया। उन्होंने निरे पौराणिक फ्रेम से लोकनाट्य को निकालकर समाज, राजनीति और सुधारवादी बनाया। इनके लोकनाट्य युगबोध से परिपूर्ण हैं। उन्होंने कई लोकनाट्य जीवनीपरक भी लिखे, यथा 'भगतसिंह', 'सुभाषचंद्र बोस', 'जवाहरलाल नेहरू', 'रानी लक्ष्मीबाई', 'महाराणा प्रताप' आदि। इन लोकनाट्यों का एक खास मकसद था। वे कौरवी लोक में नैतिकता, देश के लिए मरना-मिटना, साहस, कर्त्तव्य भावना और सदाचार जैसी भावनाओं का प्रचार-प्रसार करना चाहते थे। इन विषयों पर पहली बार लोकनाट्य लिखे जा रहे थे।

पृथ्वीसिंह बेधड़क का प्रस्तुतीकरण भी भिन्न था। वे एकल नाट्य करते थे। अपने साथ ढोलक व हारमोनियम वादक को रखते थे। स्वयं चिमटा बजाते थे। कभी-कभी स्वयं भी हारमोनियम बजा लेते थे। लोकनाट्य की पूरी कथा इनके कंठस्थ होती थी तथा स्वयं ही विभिन्न भूमिकाओं को निभाते हुए लोकनाट्य को संपन्न करते थे। दूर-दूर तक इनकी ख्याति हो गई थी।

मुंशीराम जांडली -

कवि मुंशीराम जांडली का जन्म 26 मार्च सन् 1915 को गाँव छोटी जांडली में पिता धारी राम एवं माता लीलावती के घर हुआ। जाट जाति के पूनिया गोत्र में जन्में मुंशीराम जी ने अपनी रचनाओं में कई जगह अपने गाँव का नाम लिया है -

सब देशां नै देखी हिन्द म्हं आज़ादी आंदी।
अफसोस घणा बुरी बात महात्मा मार दिये गाँधी।
जांदी दफा आण की ओटी, जिला हिसार जांडली छोटी।
रोटी हिन्द म्हं आकै खाइये, पहाड़ समुद्र चीर कै आइये।[7]

इन्होंने अपने ही गाँव जांडली खुर्द निवासी हरिश्चंद्र नाथ को अपना गुरु बनाया, जो उस समय अपने आस-पास के क्षेत्र में आज़ादी की भावना का प्रचार-प्रसार कर रहे थे। हरिश्चंद्र नाथ के संपर्क में आने से पहले मुंशीराम जी मात्र मनोरंजन के लिए श्रृंगार-प्रधान रागणी लिखा और गाया करते थे, परंतु इनके गुरु ने इनकी धारा देश-प्रेम और सामाजिक मुद्दों की ओर मोड़ी। मुंशीराम जांडली की रचनाओं

में अपने गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा झलकती है। वे हर सांग से पहले अपने गुरु का नाम लेना अनिवार्य समझते हैं -

नगर जांडली हुई रोशनी, रंग म्हं सूरज दिखाया दिखे।
गुरु हरिश्चंद्र की आज्ञा से, छंद मुंशीराम नै गाया दिखे।[8]

उनके गुरु हरिश्चंद्र नाथ का देहांत इनके देहांत के लम्बे अर्से बाद सन् 1993 में हुआ।

मुंशीराम जांडली का मुख्य व्यवसाय खेती ही रहा। खेती के साथ-साथ वे मनोरंजन के लिए कथा एवं सांग का सहारा लिया करते थे। मुंशीराम जी की आवाज़ बड़ी सुरीली थी। वे दूर-दूर कार्यक्रम करने जाते थे।

मुंशीराम जांडली का छोटा-सा जीवन भयानक विपत्तियों से घिरा हुआ जीवन था। मुकदमा, पेशी, जेल, पुलिस आदि के भँवर में फँसे हुए मुंशीराम जी को तपेदिक हो गया था और मात्र 35 वर्ष की आयु में जनवरी 1950 को इनका देहांत हो गया।[9]

कवि मुंशीराम जांडली ने अपने जीवन में अनेक सांग (कथा) तथा फुटकर रागणियों की रचना की परंतु संभाल न होने के कारण उनकी अधिकांश कथाएँ काल के गाल में समा गई। उनके द्वारा रचित लोकनाट्य हैं - 'राजा हरिश्चन्द्र', 'जयमल फत्ता', 'पूर्ण भक्त', 'पृथ्वीराज चौहान', 'अमरसिंह राठौड़', 'चंद्रकलाशी', 'महाभारत', 'मीरांबाई', 'सरवर-नीर', 'गजनादे' आदि। इन सागों के अतिरिक्त समयानुसार मुंशीराम जी ने अनेक फुटकड़ रागनियों की भी रचना की जिनमें उनका समाज सुधार देशभक्ति और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का व्यक्तित्व उभरकर सामने आता है। उन्होंने लोक कला का सामाजिक प्रदेय उसका मुख्य उद्देश्य माना है। वे समाज में प्रचलित अनेक रूढ़ियों, रीतियों और परंपराओं के बदलाव की बात करते हैं। उनकी फुटकड़ रागनियों में भारत-पाक विभाजन के मुँह बोलते चित्र हैं। गाँधी के प्रभाव का जैसा वर्णन उनकी रागणियों में है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। वे नशा, दहेज और जाति-पाति को समाज का दुश्मन मानते हैं। वे आडम्बर और व्यर्थ के दिखावे को समाज के लिए हानिकारक मानते हैं।

हरियाणा में अनेक लोककवियों ने 'राजा हरिश्चंद्र' सांग लिखा और मंचित किया है। परंतु मुंशीराम जी के सांग की बात ही अलग है। उनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण इस सांग में नवीनता और विलक्षणता लेकर आता है। जैसे वे बाग में रोहताश कँवर को नाग से न डसवा कर विषैली दवाई से बेहोश करवाते हैं जो

अधिक संगत है। और सांग के अंत में पूरी काशी नगरी स्वर्ग चली जाने के स्थान पर वे तीनों पात्रों (राजा, रानी और रोहताश) और परिचितों को अवध पहुँचाते हैं। वे अवध को स्वर्ग की संज्ञा दिलवाते हैं। इस प्रकार यह सांग और इसकी कथा नए रूप में सामने आई है।

'जयमल-फत्ता' दो ममेरे भाइयों की वीरता, धीरता और कौम के प्रति ईमानदारी भाव का सांग है। मुंशीराम का समय भारत में हिन्दू-मुस्लिम की फूट और इसके दुष्परिणाम-स्वरूप भारत-पाक विभाजन का समय था। एक तरह से यह समय हिंदू-मुस्लिम के वैमनस्य का चरम समय था। इस सांग की कथा में मुंशीराम जी ने अकबर कालीन कथा को चुना है। मुंशीराम जी ने अकबर के समय में जयमल और फत्ता को हिन्दू नायक साबित किया है। इस लोकनाट्य में मुंशीराम जांडली ने युद्ध के मैदान का जो वीर रस पूर्ण वर्णन किया है, हरियाणा में ऐसा अन्यत्र दुर्लभ है -

विकराल ढाल ढंग होग्या जंग का, रण भूमि म्हं बाज्या डंका
आगै मोर्चा फतेह सिंह का, गरज रहे बलवान दिखे।
लाल सुर्ख होगी धरती, खुल रही स्वर्ग अगत की भर्ती।
फिर रही ल्हाश खून म्हं तिरती, होगे लहू लुहान दिखे।
साथ तै साथी बिछड़े कुछ पटती नहीं पिछाण दिखे।[10]

'पूर्णमल भगत' की कथा जती, अनमेल विवाह, बहु विवाह और जार-कर्म विषय पर लिखी गई कथा है। मुंशीराम जी के अतिरिक्त भी कई लोककवियों ने इस कथा को लेकर सांग की रचना की है।

मुंशीराम जांडली गज़ब के आधुनिक बोध के कवि हैं। वे चाहते हैं कि आज़ाद भारत को इतना सशक्त बनाया जाए कि भारत के निम्नतम व्यक्ति को आज़ादी का आभास हो। अंग्रेजों का पूरा तंत्र शहरों से चलता था। उन्होंने गाँवों की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया था। गाँवों के लोग अत्यधिक पिछड़े और तमाम दकियानूसी, आडम्बरी और अंधविश्वासों में फँसे हुए थे। जाति-धर्म की दीवारें थी, महाजनी सभ्यता थी, लूट-खसोट थी, मारकूट थी, मेल-मिलाप नहीं था। मुंशीराम जी कहते हैं कि आज़ादी का असली मज़ा तो मिल-बाँटकर रहने और खाने में ही है। मुंशीराम जी आशा प्रकट करते हैं कि वैज्ञानिक उन्नति का लाभ दूर-दराज बसे गाँवों के लोगों तक पहुँचना चाहिए। उनका सुखद सपना दर्शनीय है -

ऐका मेल मिलाप करो कुछ फायदा नहीं बैर के म्हं।
पाप कपट छल लोभ त्याग दो ना फूंको गात जहर के म्हं।

सारी चीज होवैं खेतों म्हं ना जाणा पड़े शहर के म्हं।
गऊ माता का कष्ट मिट्या आज सुन्नी चरै डहर के म्हं।
गुरु हरिश्चन्द्र कहै रोटी मोटर खेतों म्हं जाकर देगी।
नगर जाण्डली छोटी गाना मुंशीराम का कर देगी।[12]

'रोटी मोटर खेतों म्हं जाकर देगी' की 1950 से पहले मात्र कल्पना ही की जा सकती थी। परंतु वर्तमान समय में मुंशीराम जी की कल्पना साकार होती नज़र आ रही है।

कवि के मन में चोर, जार, नशेबाज और बदमाशों के लिए कोई स्थान नहीं है। वे उपदेश देते हैं कि ऐसे लोग नरकगामी बनते हैं। क्योंकि उनकी करतूतों से समाज शीघ्र ही परिचित हो जाता है और उनके साथ वैसा ही व्यवहार करने लग जाता है। वे जीते जी सबकी आँखों से गिर जाते हैं। कवि ऐसे लोगों को लताड़ता भी है कि ये काम मनुष्य जीवन के लिए निकृष्टतम है और मनुष्य को नरक में जाना पड़ता है।

चोर जार बदमाश मनुष्य नै ढहणा मरण नै झेरा हो।
सातों कुली नरक म्हं जांगी अगले जन्म ठठेरा हो।।[14]

मुंशीराम जांडली कौरवी के एक अनूठे और विरले कवि हुए हैं, जिन्होंने रागनियों के माध्यम से अपने समय के स्वतंत्रता के आंदोलन का नक्शा खींचकर रख दिया है। उस समय और भी कई कवि हुए जिन्होंने उस समय की परिस्थितियों का कहीं भी जिक्र नहीं किया। देश की आज़ादी के बाद भी मुंशीराम जी के कवित्व में सुंदर भारत के निर्माण के लिए अनेक योजनाएँ विद्यमान हैं। वे उपदेशक हैं, प्रवचन कर्ता हैं, शिक्षक हैं और भविष्य-द्रष्टा, रणनीतिकार और दूरदर्शी हैं।

भारत के लिए आज़ादी का समय सबसे अनमोल अवसर था और कवि मुंशीराम जांडली की शिद्दत ने उस अवसर को रागनी में पिरोकर एक धरोहर को सहेजा। इनकी रागणियाँ उस समय का सबसे विश्वसनीय स्रोत हैं।

स्वामी भीष्म जी -

स्वामी भीष्म जी का जन्म सन् 1862 में करनाल में हुआ।[15] ये शीघ्र ही आर्य समाजी बन गए और लंबे समय तक घरौंड़ा में रहकर आर्य समाज का प्रचार-प्रसार करते रहे। इन्होंने अनेक लोकनाट्यों की रचना की। 'अजीतसिंह राजबाला', 'अंजनादेवी', 'धर्मपाल शांताकुमारी', 'इतिहास सेठ फूलचंद' इनके सुप्रसिद्ध लोकनाट्य

हैं। इन्होंने अनेक उपदेशक भजन भी लिखे हैं। 1957 में 'हिन्दी रक्षा सत्याग्रह' हुआ था। उस सत्याग्रह में आर्य समाज तथा अन्य संप्रदायों के साधारण पुरुष, नेता, उपदेशक, भजनोपदेशक, विद्वान, संन्यासी, ब्रह्मचारी वाणप्रस्थ तथा राजनेता भी हिन्दी भाषा की रक्षा के लिए विभिन्न जेलों में गए। स्वामी भीष्म भी इस सत्याग्रह में पंजाब में नाभा में जेल में रहे।[16] उन्होंने स्वयं लिखा है-

बारह सितंबर सन् सतावन् को चढ़ा मैं रेल म्हं।
छह बजे थे शाम के गया नाभावली जेल म्हं।[17]

जेल में रहते हुए इन्होंने अनेक भजन, रागनी लिखी जो इनकी जेल की रचनाएँ पुस्तक में संकलित हैं। इनकी पुस्तकों के नाम हैं - 'भीष्म रहस्य', 'भीष्म भजन प्रकाश', 'जेल की रचनाएँ', 'अजीत सिंह राजबाला', 'अंजना देवी' आदि।

8 जनवरी 1984 को इनका देहांत हो गया।[18] इन्होंने 122 वर्ष की लंबी आयु पाई। स्वामी भीष्म ने 'अजीत सिंह राजबाला' लोकनाट्य में दो युवा-युवती का प्रेम, त्याग, संयम, धैर्य और सच्चरित्रता दर्शाया है। अमरकोट के राजा अनारसिंह का पुत्र अजीत सिंह बेसहारा होकर एक सेठ के यहाँ नौकर लग जाता है। एक दिन उसे आने में देरी होती है तो सेठ उसे गाली बकता हे जिसे राजपूत सहन नहीं कर पाया। वह सेठ को कहता है -

कहै अजीतसिंह बलकारी, जो अब कै देगा गारी।
ये देख ले तेग दुधारी, तेरा दूंगा शीश उतार।[19]

सेठ उसे राजाबाला को ब्याहकर लाने का ताना मारता है। अपने पिता के मित्र से बीस हजार रुपये की व्यवस्था कर वह राजबाला को ब्याह लाता है। परंतु सेठ ने शर्त रखी थी जब तक उसे बीस हजार रुपये न लौटा देंगे तब तक उन्हें भाई-बहन की तरह रहना पड़ेगा। दोनों सेठ का कर्ज उतारने के लिए जगत सिंह राजा के यहाँ सैनिक लग जाते हैं। राजबाला गुलाब सिंह बनकर रहती है तथा एक शेर को मारकर राजा की जान बचाती है। जब राजा को उसकी वास्तविकता का पता चलता है। वह उसे एक चौथाई राज्य भेंट कर देता है तथा अजीत सिंह और राजबाला दोनों पति-पत्नी बनकर रहते हैं।

भीष्म जी ने यह कथानक इसलिए चुना कि इसमें दोनों प्रण के पूरे व धैर्यवान हैं। लोकनाट्य के अंत में भीष्म जी कहते हैं -

सुनने वाले ध्यान करो बस जो सत प्रण निभाएंगे।

इन दोनों की तरह देश म्हं नाम अमर हो जाएंगे।
राज चौथाई पा लीना और करजे का भुगतान किया।
कहे भीष्म जी सत्पुरुषों का किस्सा मैंने बयान किया।[20]

इनका 'अंजना देवी' लोकनाट्य एक स्त्री की दुर्धर्ष जिजीविषा का लोकनाट्य है। यह किस्सा अनेक लोकनाट्यकारों ने 'अंजना-पवन' के नाम से भी सृजित किया है। परंतु भीष्म जी अंजना के त्याग, नैतिकता और सच्चरित्रता से इतना प्रभावित थे कि इन्होंने इसका नाम 'अंजना देवी' ही रखा। लोकनाट्य के प्रारंभ में वे लिखते हैं -

ओमनाम सबसे वच्यु तुम, दो बुद्धि वरदान।
एक वीरांगना देवी का, किस्सा करूँ बयान।।[21]

लोकनाट्य की कथा वही है कि विवाह से पहले पवन अंजना के महल के नीचे उनकी सखियों की ताने सुनकर गलतफहमी पाल लेता है। और विवाह के तुरंत बाद वह उसे बारह साल का दुहाग दे देता है। अंजना विवाहित होते हुए पति रहित जीवन व्यतीत करती है। ग्यारह साल के बाद चकवा-चकवी के मिलन से पवन कुमार को अहसास होता है तथा एक रात वह अपनी पत्नी अंजना के पास पहुँचता है और अपने कृत्य की क्षमा माँगता है -

मेरे सै होगी प्यारी भूल अब मैं माफी चाहता हूँ।
महल म्हं जब तुम सब बतलाई, विद्यापर्व की करी बड़ाई।
मैं दिया जहर ठहराई, तनै मैं साफ जताता हूँ।[22]

इसके बाद भी उसके कष्ट दूर नहीं होते है। उसे गर्भ ठहर जाता है। ससुराल वाले चरित्रहीन का दाग लगाकर उसे घर से निकाल देते है, उसके मायके के लोग भी उसे शरण नहीं देते। वह जंगल में जाकर एक ऋषि के आश्रम में एक बालक को जन्म देती है जिसका नाम हनुमान रखा जाता है। परंतु अंत में पवन व अंजना का सुखद मिलन हो जाता है।

'सेठ फूलचंद' भीष्म जी का पूर्णतः मौलिक लोकनाट्य है। गंगादास और रत्नदेवी को विवाह के काफी दिनों बाद पुत्र हुआ उसका नाम फूलचंद रखा गया। पंडित ने उसकी जन्मपत्री देखकर कहा कि बालक अशुभ है और भेंट चाहता है। पंडित के कहने से सेठ सेठानी उसे गंगा स्नान के बहाने गंगा के किनारे पैड़ियों पर रख आते हैं। बच्चा थाने में ले जाया जाता है, वहाँ से कलकत्ता का एक निस्संतान सेठ वंशीधर बच्चे को ले जाता है। उधर रत्नदेवी को लड़की पैदा होती है जिसका

नाम नर्वदा रखा जाता है। गंगादास का देहांत हो चुका था। रत्नदेवी को फूलचंद का पता लग गया कि यह उसका ही पुत्र है। मरणासन्न अवस्था में रत्नदेवी वंशीधर को अपनी बेटी नर्वदा का हाथ थमा देता है। परिवार के ऊपर जो इतने संकट आए, इसके लिए कवि भीष्म जन्मपत्री के ढकोसलों को मानते हैं। इस लोकनाट्य के अंत में कवि भीष्म कहते हैं -

सज्जन पुरुषों इन पोपों का ढंग ही निराला है।
इन्होंने ही निकाला भारतवर्ष का दिवाला है।
बड़े-बड़े करोड़पतियों को मिट्टी म्हं मिला डाला है।
बस हर तरफ से अपना ही पेट पाला है।[23]

आर्य समाज में पोप शब्द पाखंडी, अंधविश्वासी, स्वार्थी ओर मूर्ति पूजकों के लिए प्रयुक्त हुआ है।

कवि ने स्त्री शिक्षा और महिला सशक्तीकरण को उद्धार का मूल माना है। वे एक फुटकर रागनी में लिखते हैं -

नारी के उद्धार बिना भारत उद्धार नहीं होगा।
निर्माता माता त्राता बिना बेड़ा पार नहीं होगा।
यदि वीरांगना हो माता तो सुत उसका महावीर बने।
राम लखन हनुमत व अंगद जैसे वज्र शरीर बने।
द्रोण भीष्म और कर्ण वृकोदर अर्जुन सा रणधीर बने।
नलुवा और राणा प्रताप शिवा सरदार नहीं होगा।[24]

लोकनाट्यकार भीष्म जी एक प्रखर मेधा, स्वाभिमानी, निडर वक्ता और निर्भीक व्यक्तित्व रहे हैं।

चौ. ईश्वर सिंह गहलोत -

चौधरी ईश्वर सिंह गहलोत का जन्म दिल्ली में ककरोला गाँव में पिता रामकिशन सिंह गहलोत के घर सन् 1885 को हुआ।[25] इनके दो भाई बलराम सिंह व भीमसिंह एवं एक बहिन सरूपी देवी थीं। ये सभी भाई-बहनों में सबसे बड़े थे।

सन् 1857 ई. तक दिल्ली पर मुसलमान शासकों का राज्य होने के कारण निकटवर्ती गाँव ककरोला आदि देहाती गाँवों में उर्दू फारसी पढ़ने-पढ़ाने का प्रचलन रहा, बाद में अंग्रेजी शासकों ने अंग्रेजी पढ़ानी आंरभ करवाई। चौ. ईश्वर सिंह ने भी नजफगढ़ के स्कूल में सन् 1900 ई. में उर्दू-अंग्रेजी के साथ सातवीं कक्षा तक की शिक्षा ग्रहण की।

इनकी अल्पायु में ही पिता के देहांत के बाद इन्हें खेत संभालने पड़ गए। ये शीघ्र ही आर्य समाज के संपर्क में आ गए और एक दिन नजफगढ़ में हो रहे आर्य समाज के उत्सव में तीन भजन गाकर सुनाए। जिसका उस समय आर्य भजनोपदेशक नत्थूराम पर खासा प्रभाव पड़ा। कालांतर में ईश्वर सिंह ने पालम गाँव के एक मुसलमान (नीलगर) रहमान से पिंगल की शिक्षा ली और लोकनाट्यकार के रूप में सुप्रसिद्ध हुए। चौ. ईश्वर सिंह आर्यसमाज की शिक्षाओं से अत्यधिक प्रभावित हुए। जिसने इनकी चेतना को संचालित किया। ये आर्य समाज की शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार के लौकिक क्षेत्र में उतर गए। उन्होंने अपनी भजन मंडली बना ली। इनकी भजनपार्टी में भीखन सिंह ढोलकिया का विशेष स्थान था जिन्हें हारमोनियम, ढोलक व चिमटा बजाने की महारत हासिल थी। इसी प्रकार श्री कांशीराम चिमटे की ताल पर ठौड़ इतनी तेज आवाज़ में गाते थे कि आकाश गूँजता था।[26]

आर्य समाज की शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार में इन भजनोपदेशकों ने अति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। चौ. ईश्वर सिंह गहलोत ने अनेक लोकनाट्यों की रचना की। यथा 'आदर्श ऋषिबोध', 'मित्रभाव कृष्ण सुदामा', 'पुणोदेवी बंजारण', 'आदर्श सारंधा', 'जलियाबाला बाग', 'महाराज जयमल की रानी', 'रामाबाई', 'वीर हकीकत राय', 'आईशा उर्फ आशा', 'सुभाषिणी उर्फ कंगालणी', 'फतेहसिंह महाराज' (कर्जन दरबार) 'राजकुमारी ऊषा', 'कश्मीर की पाँच लड़की', 'महारानी कर्मवती', 'सांवलदेवी राजा कारक', 'सती पदमनी', 'वीर जी लम्पट गुरु रामदास' आदि। इसके अतिरिक्त इन्होंने सैंकड़ों फुटकर भजन भी लिखे। उनके 'आदर्श भजनमाला' की ग्यारह पुस्तिकाएँ (गुच्छे) भी प्रकाशित हुईं। जिसमें 'सत्य भेंट' (हवाई बंब), 'राम भेंट', 'अमर भेंट', 'आदर्श चंद्रहास', 'आदर्श कल्याणी', 'आदर्श गंगा', 'आदर्श चंद्रा', 'शेर से शेर की लड़ाई' आदि प्रमुख हैं। इन्होंने अनेक मौलिक लोकनाट्यों की रचना भी की।

आर्य समाज से जुड़े लोकनाट्यकारों की खासियत रही कि इन्होंने परंपरागत लोकनाट्यों के समानांतर देश प्रेम, समाज सुधार और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परिपूर्ण लोकनाट्यों की रचना की। हालांकि इन्होंने कुछ-कुछ परंपरागत विषयों पर भी लोकनाट्य रचे। चौधरी ईश्वर सिंह कृत अधिकतर लोकनाट्यों में रागनियों की संख्या का औसत पंद्रह-सतरह का बैठता है। चंद्रा की कथा में कवि ने समाज से समता की भावना पैदा की है। उनका कहना है कि यदि समाज में सभी वर्गों में समानता की भावना ना होगी तो वह समाज रूपी भवन कभी भी गिर सकता है -

कच्ची नींव हो जिस भवन की क्या कर सकते खम्भ।
धड़ाम से गिर जाएगी जब लगे हवाई बंब।[27]

चौ. ईश्वर सिंह गहलोत के लोकनाट्य युगबोध से परिपूर्ण हैं। ''इस काव्य के पठन-पाठन श्रवण से हमारे अंदर कवित्व कला का सृजन होगा, हम राष्ट्रीय भावों से ओत-प्रोत होकर अपनी मातृभूमि के रक्षक पोषक होंगे। समाज से कुरीतियों, भेदभाव की दीवार हट जाएगी। अपने पूर्वजों के आदर्शों को सहेजकर हम देश से भ्रष्टाचार को दूर करेंगे। देश, धर्म व जाति के गौरव को जानकर राष्ट्रभक्त बनेंगे, स्वराज तथा स्वदेशी की समझ जागृत होगी। जिससे राष्ट्र उन्नत होगा, त्याग, सहिष्णुता, दान, समानता, पितृभक्ति, मातृसेवा, गौसेवा, तपस्या, विद्यादान की महत्ता, वेदों की सर्वोच्चता, सामगान की सदाशयता, आर्यों का मूल स्थान भारत, ऋषियों देवों की भूमि भारत, अपने आदर्शों का अनुसरण होगा। यह काव्य एक अनूठी परंपरा का प्रवाह है। इसे सब कोई गा नहीं सकता।[28]

आर्य समाजी भजनोपदेशक समाज में पहले से प्रचलित सांग विधा की मात्र मनोरंजनपरक प्रवृत्ति के विरोध स्वरूप उपस्थित हुए थे। ये सांग में आए द्विअर्थी शब्दों, भोंडापन और अश्लीलता के खिलाफ थे। जहाँ ईश्वर सिंह का प्रचार होता था वहाँ प्रायः सांग नहीं होता था। अमावस को हल नहीं जोता जाता था। बैलों का अवकाश होता था। यह भी चौधरी ईश्वर सिंह की ही देन थी। चौधरी ईश्वर सिंह ने सभी रसों में संगीत गाया है। वीर रस गाने में वे अद्वितीय थे, ऐसा सुरीला गायक शायद ही कोई देखने को मिले।[29] आर्यसमाजी लोकनाट्यकार स्वयं को सांगी की अपेक्षा 'भजनोपदेशक' या 'प्रचारी' कहना अधिक पसंद करते थे।

'आदर्श कवि बोध' इनका स्वामी दयानंद सरस्वती के प्रथम अनुभव पर आधारित लोकनाट्य है। नेपालवासी बजरंग पन्द्रह वर्ष से देवी की पूजा कर रहा होता है, परंतु देवी के दर्शन नहीं हुए। वह सूखकर काँटा हो जाता है। एक दिन उसे शक्ति के दर्शन तेज प्रकाश के रूप में होते हैं। शक्ति से उसे आदेश मिलता है कि वह मूर्तिपूजा के विरोधी दयानंद को समाप्त करे। एक दिन ऋषि दयानंद स्वयं मंदिर में आते हैं और मूर्तिपूजा को अनर्गल बताते हुए चले जाते हैं। मंदिर के अंदर जितने भी पुजारी थे, सब देखते रह गए। दयानंद सरस्वती के मस्तक के तेज के आगे कोई नहीं टिक पाया। एक दोहा में उनका संवाद दर्शनीय है -

शीश झुकाओ शक्ति आगे साधु नादान।
कट जाएंगे पाप सब बस कर देगी कल्याण।।

ऋषि जी हँसकर कह रहे खोलो आँख नादान।
ये पत्थर की मूर्ति क्या जाने कल्याण।[30]

अंत में बजरंग की समझ में आता है कि मूर्तिपूजा व्यर्थ है। और वह स्वामी दयानंद की शरण में चला जाता है और उनसे क्षमा माँगता है -

मैं तिपत महा हत्यारा, तुम तिपत उदाहरण हो।
बसें देश म्हं तमाम, कीड़े गर्ज कै तमाम।
जहाँ है सितम का आरा, पृथ्वी पाप के कारण हो।[31]

बजरंग को ऋषि दयानंद की प्रतिभा का बोध होता है। वह उनका अनुयायी बन जाता है।

इनका 'पूणोदेवी बंजारण' लोकनाट्य स्त्री प्रधान लोकनाट्य है। देवीदास बंजारे की लड़की पूणोदेवी भैरों मंदिर की पुजारन थी। वह युवती थी। बंगाल में उसी हिन्दूगाँव में एक माधव नाम का जमींदार था। माधव के देहांत के बाद उसका पुत्र नवलकुमार जमींदार बनता है। वह शराबी-कबाबी और कौमी जाति से था। वह एक दिन भैरों मंदिर में जाता है तो पूणोदेवी के रूप सौंदर्य को देखकर आकर्षित होता है। उसका मंदिर में आना-जाना बढ़ जाता है। पूणोदेवी स्थिति को भाँप जाती है तथा वह उसे सचेत भी करती है। नवल कुमार के अत्याचारों से गाँव के किसानों का कष्ट बढ़ जाता है। वे पूणोदेवी से मदद की गुहार लगाते हैं और पूणोदेवी की मदद से उनके कष्ट दूर होते हैं। कवि ईश्वर सिंह गहलोत ने ऐसे छोटे-छोटे कथानकों पर लोकनाट्यों की रचना की है जो जनता में उपदेशक का काम करते हैं। लोकनाट्य में कामगार की यथार्थ स्थिति का कुछ यूं वर्णन किया गया है -

कोयले की खान को खोदें फिर भी जाड़ा लगता।
क्लोथ मिल म्हं कपड़ा बुनता फिर भी उघाड़ा लगता।
मोटर रेल जहाज बनाता फिर भी भाड़ा लगता।
मुंगफली की खल खा मिलता माड़ा लगता।
और का लिबास दे अपने घर का उजाड़ा लगता।
टूटे लित्तर फटे चीथड़े जबर भर आड़ा लगता।
क्योंकि ये मजदूर है, बुरड़े मजबूर है।
रहती है नादारी, और हाँ टेर सुण ले।[32]

'पूणोदेवी बंजारण' लोकनाट्य में एक स्त्री की सच्चरित्रता के कारण पूरे समाज को लाभ पहुँचता है। इनका 'आदर्श महारानी कर्मवती' लोकनाट्य हिन्दू-मुस्लिम

एकता का एक अनूठा प्रयोग है। लोकनाट्य की पहली ही रागनी बीस कलियों की है जिसमें कवि ने भारतीय राजाओं की लड़ाई में धर्मांधता की पोल खोली है। गुजरात का राजा बहादुर शाह तथा मेवाड़ का राजा विक्रमादित्य की लड़ाई का इसमें वर्णन है। बहादुर शाह इसे धार्मिक लड़ाई का नाम देना चाहता है। चाँदखान उसे समझाता है कि इसका धर्म से कोई लेना-देना नहीं है। यह तो राजाओं की महत्त्वाकांक्षा है। रागनी 'हिन्दू-मुस्लिम ये लड़ाई कैसे' में चाँदखान उससे कहता है -

भाई दादा पोता गुरु चेला मैदान एक।
कुरुक्षेत्र म्हं कटकर मर गए ना कोई मुसलमान एक।
बजा जंग का बिगुल, खपा अठारह अक्षोहिणी दल।
समझा रहै कन्हाई ये कैसे।[33]

युद्ध तो महत्त्वाकांक्षी राजा का धर्म है। कुरुक्षेत्र का युद्ध किसी हिन्दू-मुसलमान के बीच नहीं लड़ा गया था बल्कि भाई दादा-पोते-गुरु-चेला के बीच लड़ा गया था। उसके बाद भी अनेक हिन्दू मुसलमानों की सेना में हिन्दुओं के खिलाफ तथा अनेक मुसलमान हिन्दुओं की सेना में मुसलमानों के खिलाफ लड़े। उदाहरणार्थ -

अमरसिंह राठौड़ का शहबाज से था प्यार हाँ।
रामसिंह राठौड़ था पगड़ी बदल यार हाँ।
साला अर्जुन गौड़ था, बादशाह की ओड़ हाँ।
कहो गर्दन कटाई ये कैसे।[34]

युद्ध में राजा की महत्त्वाकांक्षा को राजा धार्मिक उन्माद में बदलने की कोशिश करता है जो निहायत अनुचित है। लोकनाट्य में जब भीलराज यह कहता है कि राणाओं द्वारा भीलों को नीच कहा गया तो कर्मवती उसे भी राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाती है कि वे अपने मन-मुटाव बाद में दूर करते रहेंगे -

भीलराज कहे अपमान का मान तीर हुआ दिल जिगर कै पार।
रानी कहे मेवाड़ का अपमान आप का नहीं क्या भील सरदार।
हाथी के पैर म्हं सबका पैर है सुना होगा सब कहता संसार।
देश पराधीन हो गुलाम सब और तुम्हारा सब परिवार।।[35]

बहादुरशाह के संकट को देखती हुई कर्मवती हुमायूं को राखी भेजती है और हुमायूँ उसकी रक्षा करने के लिए तत्पर होता है। यहाँ यह सांग समाप्त हो जाता है।

ईश्वर सिंह गहलोत एक सोद्देश्य लोकनाट्यकार थे। उनके हर लोकनाट्य का सामाजिक-सांस्कृतिक उद्देश्य था। उनकी शिष्य परंपरा में भी अनेक लोकनाट्यकार हुए जिन्होंने महती लोकनाट्यों की सर्जना की। कुंवर जौहरी सिंह एक ऐसे ही लोकनाट्यकार रहे। ईश्वर सिंह गहलोत ने अंग्रेजी, उर्दू फारसी तथा विशुद्ध खड़ी बोली का भी उपयोग किया। इनका देहांत 73 वर्ष की आयु में सन् 1958 में हुआ।

कुंवर जौहरी सिंह -

कुंवर जौहरी सिंह का जन्म 9 अगस्त सन् 1913 को गाँव जसराणा तहसील गोहाना, जिला सोनीपत, हरियाणा में पिता श्री जुगलाल के घर में हुआ। वे अपने पिता की तीन संतानों में सबसे बड़े पुत्र थे। केवल वे ही शिक्षित थे, दो छोटे भाई श्री महासिंह व चंद्रभान कृषि कार्य करते थे। बारह वर्ष की आयु में इनका आर्य समाज से परिचय हुआ। जब ये सन् 1928 में फरमाना मिडल स्कूल में पढ़ रहे थे तो चौ. ईश्वर सिंह गहलोत एक दिन गाँव फरमाना में चंदे के लिए आए। उन्होंने संगीतमय कार्यक्रम किया। अनेक रागनियाँ सुनाईं तो इसका उनके ऊपर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। आपने चौ. ईश्वर सिंह जी से गाने की कला सिखाने के लिए निवेदन किया। परंतु कम उम्र होने के कारण (बच्चू मानकर) चौधरी साहब ने इनकार कर दिया। उसके बाद इन्होंने हिन्दी महाविद्यालय दादरी से हिन्दी रत्न (पंजाब) की परीक्षा उत्तीर्ण की।

आपने चौ. ईश्वर सिंह गहलोत को ही अपना गुरु बनाया। कुछ रागनियों की अंतिम कलियों में इस बात की पुष्टि होती है-

सतसंग से पहले नादान था, देखो जौहरी सिंह।
सतसंग खरा करै खोटे को, कह गए ईश्वर सिंह।[36]

x x x

जौहरी सिंह देख विचारा, देश काल पात्र का सहारा।
गुरु ईश्वर सिंह म्हारा, कविताई म्हं कमाल अच्छा।[37]

कुंवर जौहरी सिंह ने अठाईस लोकनाट्यों की रचना की- 'दानवीर कर्ण महारथी', 'एक लोटा पानी', 'भर्तृहरि', 'मेवा बंजारन' (गडरिया मालूराम) 'जसमा त्रीकम ओड़', 'शीला कुमारी', 'राम नलनी गुदड़ी का लाल', 'आज़ादी दीवाना सुभाष चंद्र बोस', 'दोयम', 'महात्मा भगत फूलसिंह', 'शुद्धि की महिमा जमना', 'गौरक्षक', 'तेजसिंह', 'सलवंत सिंह', 'नाहर गाँव मोखरा', 'आल्हा का विवाह', 'हिन्दी रक्षा

आंदोलन' 'शहीद सुमेर सिंह 1959', 'महर्षि दयानंद उदयपुर में 1882', 'विराट पर्व', 'इस्ट इंडिया कंपनी', 'कैप्टन मेजर शहीद सुरेंद्र प्रसाद', 'देशभक्त सूरजदेवी', 'वतन का पुजारी उर्फ बहादुर विजय सिंह', 'शाही भगतनी उर्फ पुष्पावती', 'अमरसिंह राठौड़', 'चंद्रशेखर आज़ाद', 'रामप्रसाद बिस्मिल', 'सुभाषचंद्र बोस भाग एक', 'सुनैहरा सिंह बुटाना', 'वजीर इंसाफ', 'आदर्श महर्षि दयानंद सरस्वती' आदि। इन लोकनाट्यों के अतिरिक्त इन्होंने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं। इन्होंने वृहद् साहित्य की रचना की। इनके लोकनाट्यों में रागनियों की संख्या कम ही रहती थी। कई लोकनाट्य तो मात्र आठ-दस रागनियों तक ही सिमट कर रह गए हैं। ये वैचारिक प्रेरणा आर्य समाज से ग्रहण करते हैं। इनके गुरु चौधरी ईश्वर सिंह आर्य समाज के भजनोपदेशक थे। इन्होंने मदिरा आदि व्यसन का डटकर विरोध किया। उस समय जाति को तोड़ने में आर्य समाज ने विशेष मुहिम चलाई थी। उनका अपना तरीका था। कुंवर जी ने पूर्ण यौवनावस्था में स्वतंत्र रूप से आर्य समाज का प्रचार आरंभ किया। इसी समय अमर हुतात्मा भक्त फूलसिंह के संपर्क में आए, उन्होंने कुंवर जी को महासभा गुरुकुल विद्यापीठ हरियाणा भैंसवाल कलां तथा कन्या गुरुकुल खानपुर कलां के प्रचार विभाग में नियुक्त कर दिया। इन दोनों संस्थाओं के लिए आपने जीवन पर्यन्त प्रचार किया। उन्होंने सामाजिक सुधार के लिए कमर कस ली। आपके प्रचार के विषय ईश्वर भक्ति, अछूतोद्धार, समाज सुधार, कन्या स्त्री सत्कार, देशप्रेम, पाखंड खंडन, मूर्तिपूजा, बालविवाह, नारी शिक्षा, सामाजिक कुरीतियाँ, परिवार नियोजन, विधवा विवाह, दहेज प्रथा, विवाह में फिजूल खर्ची, नशाबंदी, गऊमाता के उपकार, जीवन निर्माण से संबंधित, स्वामी दयानंद सरस्वती जी की शिक्षा से संबंधित होता था। इन्हीं से संबंधित विषयों पर आपने आदर्श भजन माला नाम से सात पुस्तकें कथा, भजन, गीतों के रूप में प्रकाशित करवाईं।[38]

इन्होंने रागनी के साथ-साथ कवित्त, आल्हा, सवैया, दादरा, कव्वाली, हा हा, ख्याल, दोहा, राग मालघोष, राग महैय्या, राग प्रभाती, गजल, चौपाई, कुब्त, कुंडल, मुशायरा आदि में भी काव्य रचना की है। 16 जुलाई 1981 को इनका देहांत हो गया।[39]

कुंवर जौहरी सिंह ने अनेक मौलिक लोकनाट्यों की रचना की। ये हारमोनियम बजाने में सिद्धहस्त थे। इनकी आवाज़ भी सुरीली थी। ये घूम-घूम कर प्रचार करते थे। इनके लोकनाट्यों के विषय सामाजिक तथा इतिहास महापुरुषों से संबंधित होते थे। 'आदर्श दानवीर कर्ण महारथी' लोकनाट्य में जब कर्ण मृत्यु को प्राप्त होने लगते हैं तो उनकी दानवीरता से कृष्ण अर्जुन के घमंड को तोड़ते हैं। कर्ण अत्यंत

पीड़ादायक स्थिति में भेष बदल कर आए हुए अर्जुन व कृष्ण को सोना जड़ा हुआ दाँत तोड़कर दे देता है। कर्ण की पीड़ा समझी जा सकती है -

तीर की नोंक सै वीर कर्ण नै दोनों मेख निकाली थी।
और जरा-सा पाणी लेकर पड़े-पड़े धो डाली थी।
एक-एक दे दी दोनों ब्राह्मणों को जिनकी झोली खाली थी।
अर्जुन-कृष्ण ही ब्राह्मण बने है कर्ण कै मन म्हं समा ली थी।
खड़े अर्जुन-कृष्ण भगवान जी, यो खुश हुआ जौहरी सिंह है।[40]

इनके लोकनाट्यों में नाटकीयता तत्त्व भरपूर मात्रा में है। इनका लोकनाट्य 'भर्तृहरि' लोक में पहले से ही 'पिंगला-भरथरी' के नाम से प्रचलित है। इस लोकनाट्य में एक जारिणी द्वारा किस प्रकार घर की तबाही होती है, यह दर्शाया गया है। पारिवारिक नैतिक मूल्यों की सीख के लिए यह लोकनाट्य एक बेहतरीन लोकनाट्य है। 'आदर्श मेवा बंजारन' (गडरिया मातूराम) लोकनाट्य जाति-पाँति की व्यवस्था पर गहरा कटाक्ष है। उदाहरणार्थ -

यह देखो नीच जात है जल पीवें मुँह टेक।
बंजारन कहै आपने खोया ज्ञान विवेक।
मनुष्य कोई नीच ना, प्रभु के यहाँ सब एक।
शरीर सबका यकसां है चाहे जिसका देख।
बंजारा कहै मूर्ख तू यह नीचों का नीच।
बंजारन को फर्क है आपकी बुद्धि बीच।[41]

संवाद शैली में ऊँच-नीच आदि पर विमर्श किया गया है। बंजारा अपनी पत्नी बंजारन को जंगल में छोड़कर चला जाता है। बंजारन मातूराम गडरिए बालक को पढ़ाती है तथा युवा होने पर वह मातूराम बंजारे के राज्य में चुंगी का अफसर लग जाता है। और बंजारे की मदद भी करता है। यह लोकनाट्य शिक्षा की महत्ता दर्शाता लोकनाट्य है।

'आदर्श जसमा त्रीकम ओड़' लोकनाट्य की कथा छोटी-सी है।

इस लोकनाट्य की पहली ही रागनी से लोकनाट्यकार जौहरी सिंह का लोकनाट्य का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। मेहनतकश लोक पर ऐसी रागनी लोकनाट्य के क्षेत्र में बहुत कम देखने को मिलती है -

क्या कहूं मजदूर किसान की, मेहनत करता यह दिन-रात है।

जेठ महीना सूरज तपता बरस रहे अंगारे हैं।
आगे बैल और पीछे हाली तक तक कै ललकारे हैं।
दबके बाहो रज कै खाओ, यह कृषक कै नारे हैं।
दिन ढल गया जब घर पर आए भूख प्यास के मारे हैं।
चिंता रहती अन्न-धन की यह देश के हित की बात है।[43]

x *x* *x*

टूटे हुए मकान म्हं रहता दीवारों म्हं दराड़ है।
बीझी कड़ी हैं कई गिर पड़ी हैं और कुछ गिरने को त्यार है।
चमगादड़ मच्छरों की चीं-चीं भीं-भीं भीतर और बाहर है।
चूल्हा चाकी भीगी धरती दाना ना भूखे परिवार है।
व्रत करके चूहे चंपत हुए यहाँ टोटे की ससुराल है।
परेशानी देख परेशान की बासी रोटी खा प्रभात है।[44]

इस लोकनाट्य में ओड़ जाति की नैतिकता और परिश्रमपूर्ण जीवन शैली का वर्णन है। निम्न जातियों में अभी भी संबंधों की नैतिकता बची हुई है। कवि का कथन दर्शनीय है -

मेहनत तबका ओड़ों का, है यह मशहूर बात।
भेड़ बकरियाँ गधे पालना, परिश्रम करै दिन रात।[45]

पाटन के राजा जयसिंह सिद्ध राज तालाब खुदवाने के लिए चार हजार ओड़ों को लगा देता है। जिसमें पति पत्नी त्रीकम व जसमा भी मेहनत करते हैं। एक दिन राजा जयसिंह सिद्धराज काम का मुआयना करने के लिए आता है तो उसकी नज़र जसमा पर पड़ जाती है तथा उसका जार-संस्कार कुलांचे भरने लग जाता है। वह जसमा और त्रीकम को अपने दरबार में बुलाता है। परंतु सभी ओड राजा की कुत्सित मंशा को भाँप गए थे। इसलिए वे काम छोड़कर अपने-अपने घर लौटने लगे तो राजा ने क्रोधित होकर सब पर हमला करवा दिया। जिसमें त्रीकम मारा गया तथा जसमा ने अपने पेट में स्वयं छुरा घोंप लिया। राजा जयसिंह सिद्धराज ने अपना माथा पीट लिया। जब सभी ओड़ों को राजा की मंशा का पता चलता है तो वे एक स्वर में सोचते हैं -

मजदूर हैं इज्जत नहीं बेची दल अपना अशिक्षित है।
जौहरी सिंह मत धर्म छोड़िए जीत धर्म की निश्चित है।[46]

एक जारकर्मी का शिकार बनने की अपेक्षा वे मजदूर मरना अधिक पंसद करते हैं। जौहरी सिंह अपने सभी लोकनाट्यों के आगे 'आदर्श' शब्द जरूर जोड़ देते हैं, यथा 'आदर्श रामप्रसाद बिस्मिल', 'आदर्श सुभाष चंद्र बोस', 'आदर्श देशभक्त सूरज देवी' आदि। जौहरी सिंह एक आदर्श लोकनाट्यकार के रूप में उभरते हैं। जिनकी कला देश धर्म समाज और व्यक्तिनिष्ठ नैतिकता के लिए आदर्श प्रस्तुत करती है। तद्भव शब्दों के साथ-साथ उर्दू व अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग भी यत्र-तत्र मिल जाता है। सुभाषचंद्र बोस लोकनाट्य के अंत में कवि लिखते हैं -

खिले तारे है और जश्न की रात है।
आप आ जाओ तो फिर क्या बात है।
तेरी बदौलत हिन्दुस्तान को आज़ादी मिली।
देशमाता के दिल की आज कली खिली।
रंग म्हं डूबा सब शहर और देहात है।[47]

कवि ने फुटकर रागनियों में भी मनुष्य को कुमार्ग से चेताया है। एक फुटकर रागनी की टेक व एक कली दर्शनीय है -

भरी जीवन नैया पाप से और बह रही दरिया बीच है।
बालकपन म्हं कुसंग पाकर झूठ बोलना लीना सीख।
फिर चोरी और कपट सीखकर दुराचार के गया नजदीक।
डाकू और लुटेरों के संग तू डाके म्हं हुआ शरीक।
पड़ोसियों की खेती काटी सरसम बरसम पाड़ा ईख।
अच्छी बात नहीं मानी तिरे माता पिता गुरु लिए झींक।
बड़े लोग यो कहते आए पूत पालने म्हं जा दीख।
झगड़े रखता मां बाप से रहा अधर्म बिरवा सींच है।[48]

जौहरी सिंह का प्रभाव क्षेत्र अति व्यापक रहा। कौरवी क्षेत्र में इन लोकनाट्यकारों के कारण आर्य समाज का पर्याप्त प्रचार-प्रसार हुआ। इनका देहांत 16 जुलाई 1981 को हुआ।[49]

बलवंत सिंह बुल्ली -

बलवंत सिंह बुल्ली का जन्म सन् 1905[50] में गाँव नांगल जिला बागपत उत्तर प्रदेश में हुआ। इनके पिता का नाम दिलीप सिंह था। ये मात्र 12-13 वर्ष की आयु

में ही सांग के क्षेत्र में आ गए थे। उनके मामा छपरोली से थे और दीना लुहार (दिन्ना लुहार) के सांगों में हारमोनियम बजाया करते थे। उनके मामा उन्हें भी अपने साथ ले गए और वे दीना लुहार के सांगों में बैठने लगे। दीना लुहार अपने समय के एक सुप्रसिद्ध सांगी थे। जब वे 'हीर-रांझा' का सांग करते तो बालक बलवंत सिंह को बुल्ली की भूमिका दे दिया करते थे। इस भूमिका को वे शिद्दत से निभाते। इसी कारण उनका उपनाम भी 'बुल्ली' ही पड़ गया। अब उनका नाम हो गया बलवंत सिंह बुल्ली। व्यवहारतः 'बुल्ली' शब्द बलवंत का संक्षिप्तीकरण भी लगता है।

बलवंत सिंह बुल्ली अपने समय के धुरंधर सांगियों में से एक थे। "स्वांग खेले जाने के समय आपकी यह विशेषता थी कि आप कथा वार्ता करते समय विषय से संबद्ध छंद गढ़कर सुना देते थे। शास्त्रों और पुराणों का आपको गंभीर ज्ञान था। आपकी स्वांग कला में गायन, कवित्व और विद्वत्ता का मणि-कांचन संयोग था। इनके स्वांगों का मंचन होने पर दर्शकों की भीड़ एकत्र हो जाती थी। 'हरिश्चंद्र' और 'मोरध्वज' जैसे सांगों के खेले जाने के समय जनता फूट-फूट कर रोने लगती थी। इनकी रचनाओं में रागनी, झूलना, सवैया, दोहा, चौपाई, सोरठा, चौबोला, होली आदि शैलियों का प्रयोग मिलता है।"[51] उन्होंने अनेक लोकनाट्यों की रचना की तथा पूरे पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा हरियाणा में अपनी एक अलग जगह बनाई। इन्होंने जावली (उत्तर प्रदेश) के पंडित नत्थूलाल को अपना गुरु बनाया। पंडित नत्थूलाल जावली भी अपने समय के एक सुप्रसिद्ध सांगी थे। कवि ने अपने गुरु के विषय में 'चंद्रकिरण' सांग में लिखा है-

ऊपर को चढ़ता जाता है, कभी खट नीचे को आता है।
कभी हट पीछे को जाता है, दिल म्हं ही करे था विचार।

सरकार ने मौका पाया जी, जा जोगी को कबजाया जी,
नत्थू गुरु बनाया जी, हुआ बुल्ली ताबेदार।।[52]

इनके लोकनाट्य हैं - 'रूप बसंत', 'नल दमयन्ती', 'पिंगला-भरथरी', 'सुंदरबाई', 'हरिश्चंद्र', 'चंद्रकिरण', 'सौदागर बच्चा', 'बिल्व मंगल', 'सरवर नीर', 'मोरध्वज', 'कृष्ण भात', 'चंद्रहास', 'वैराट पर्व', 'रघुवीर सिंह', 'मदनपाल-चंद्रप्रभा', 'चंद्रवती' आदि।

इनका 'सौदागर बच्चा' लोकनाट्य की कहानी 'हीरामल जमाल' लोकनाट्य की कहानी पर आधारित है। कहानी बिलकुल वही है। केवल पात्रों के नाम बदल दिए गए हैं। हीरामल की जगह हीरानंद और जमाल की जगह प्रेमवती आ गया।

कौरवी लोकनाट्य में इस प्रकार के प्रयोग और लोकनाट्यकार भी करते रहे हैं। यथा 'चापसिंह सोमवती' सांग 'पृथ्वीसिंह किरणमई' के नाम से मंचित किया जाता है। 'सौदागर बच्चा' एक जारकर्मी की कहानी पर आधारित है। हीरानंद अपनी पहली पत्नी के होते हुए प्रेमवती पर डोरे डालता है और कोतवाल द्वारा पकड़ लिया जाता है। वह अपने पिता, माँ तथा पत्नी के पास जमानत के रुपये भरवाने की मिन्नत करता है। परंतु वे उसके घृणित जार-कर्म के कारण मना कर देते हैं। उसके पिता की उस समय की रागनी एक बेहतरीन रागनी बन पाई है। जिसमें एक जार व्यक्ति के पिता की मन की पीड़ा परिलक्षित हुई है -

मेरे फरजंद हुआ तू बदकार करै था बस्ती म्हं फेरी रे।
ना तू पुत्र ना मैं तेरा तात, खड़ा हुआ मेरे फूंके गात।
हाथ म्हं दई हथकड़ी डार, करूँ ना जामिन तेरी रे।
जो तड़के फाँसी पावे, तो मेरे को सबर जब आवे।
चढ़ावे राव तुझे खुद्दार, यही अर्ज है मेरी रे।
जिगर गया म्हारा जल के, चला जा आँखों आगे से टल के।
ढलके आँसू तेरी बेकार, दुहाई क्यों दर पै गेरी रे।
तेरी तरफ से दिल मेरा हेठा, क्यों ना होते मर गया बेटा।
लिपटाना चाहता सब परिवार, मौत तेरी आई अंधेरी रे।[53]

इस प्रकार की रागनियाँ समाज में एक सुखद संदेश देती हैं कि जारकर्मी के साथ कोई भी लगना नहीं चाहता। पिता के लिए इससे बड़ी शर्म की बात नहीं हो सकती।

लोकनाट्य 'चंद्रकिरण' में कवि ने सौतन की ईर्ष्या को दिखाया है। मदनसेन पहली पत्नी गेंदा के होते हुए चंद्रकिरण से विवाह करता है। गेंदा मदनसेन को खुशी-खुशी चंद्रकिरण से विवाह करने की अनुमति दे देती है। परंतु जब वे जंगल में जाते हुए एक पेड़ के नीचे आराम करते हैं और गेंदा सो जाती है तो चंद्रकिरण मदनसेन को कहती है -

पति पोह मास के लगते, जरूरत पड़ती है खास ऊन की।
म्यान म्हं दो तेग नहीं समाती, सौकन बुरी होती है चून की।
इसका फैसला यहीं कर दे, किसी दिन बिछ जा सेज खून की।[54]

इस पर मदनसेन कहता है -

नार कुछ खता करी ना इसने, मेरे तो सर अहसान चढ़ाया।
अव्वल तो बन जोगन मुझे छुड़वाया।
दूजे माँग दान राजा से मुझको तुझे दिलवाया।[55]

परंतु वह नहीं मानती और राजा मदनसेन गेंदा को घायल कर एक कुएँ में डालकर चले जाते हैं। वह बच जाती है तथा अंत में उनका सुखद मिलन भी हो जाता है। इस लोकनाट्य में स्त्री के दो रूप दिखाए गए हैं।

बलबंत सिंह बुल्ली अपने लोकनाट्यों के मंचन में समाज की वास्तविक तस्वीर खींचना भी नहीं भूलते थे। वे लोकनाट्य के प्रारंभ में ईश्वर स्तुति के नाम पर भारत के यथार्थ को दर्शकों के समक्ष रखते थे। लोकनाट्य 'सांगीत बिल्व मंगल' में प्रारंभ में उनका भजन दर्शनीय है -

भारत हो लिया दीन बंधु भगवान लीजो खबर अविनासी।
दया धर्म कर्म हुए सब गंदे सत्य भक्ति के गल फंदे।।
कंधे पर तोलिया चले चाबते पान, अब गलियों म्हं संन्यासी।
न्याय के पेड़ गए सब सूख, दान का नज़र पड़े नहीं रूख।
धर्म भूख म्हं खो लिया, करण बली-सी संतान, फिर रही भूखी और प्यासी।
भाई-भाई को मारे सगा, मित्र-मित्र कर रहे दगा।
लगा जुल्म का कौलिया, पापों का दालान, चेत रही यूं बदमाशी।
जूते सर लग रहे अदब के, ईश्वर उदय पाप हुवे ये कब के।
तू सबके आगे रो लिया बलवंत सिंह नादान, दई नत्थू नै शाबासी।[56]

सांग के प्रारंभ में यह रागनी दर्शकों को एक प्रकार से शिक्षा देती थी कि जिस प्रकार का माहौल चारों ओर बन गया है, हमें उससे निकलने में महती भूमिका अदा करनी है। नहीं तो ताना-बाना बिगड़ जाएगा।

दिनांक 20 मार्च 1979 को लगभग 74 वर्ष की आयु में इनका देहांत हो गया और 21 मार्च को इनका अंतिम संस्कार किया गया।

बुंदू मीर -

बुंदू मीर कौरवी लोकनाट्य के एक सिद्धहस्त लोकनाट्यकार थे। इनका जन्म खानपुर उत्तर प्रदेश में हुआ। ये अंधे थे। इन्होंने अनेक लोकनाट्यों की रचना की। इनके लिखे लोकनाट्य उस समय के लोककलाकारों में खासे प्रिय थे और वे उनका मंचन किया करते थे। बुंदू मीर ने रामलाल को अपना गुरु बनाया। चंद्रहास

लोकनाट्य के प्रारंभ में वे लिखते हैं -

सात द्वीप नवखंड म्हं प्रभु तेरा प्रकाश।
मुझ मूरख अज्ञान की पूरी कर दो आस।।
रामलाल सतगुरु के धरूं चरण म्हं ध्यान।
बुंदू मीर नादान को गुरु दो बुद्धि वरदान।[57]

बुंदू मीर के द्वारा रचित लोकनाट्य हैं - 'चंद्रहास', 'पूरनमल-सुंद्रादे', 'धुरू भगत', 'भक्त मोरध्वज', 'शाही लकड़हारा', 'हीर रांझा', 'महाराजा अशोक' 'अमरछड़ी', 'हरिश्चंद्र सत्यवादी', 'गरीब की दीवाली', 'सरवर नीर', 'रूप बसंत' (संपूर्ण)[58]

बुंदू मीर की फुटकर रागनियों के नाम से भी एक दो गुच्छे प्रकाशित हुए थे। 'गरीब की दीवाली', 'महाराजा अशोक' व 'अमरछड़ी' आदि इनके मौलिक लोकनाट्य हैं। 'गरीब की दीवाली' लोकनाट्य बहुत मार्मिक लोकनाट्य है जिसमें कवि ने एक अनाथ राजकुमार की दुर्दशा का बखूबी चित्रण किया है। राजा धनीराम की पत्नी पुत्र बलराम के जन्म लेते ही मर जाती है। जब बलराम छह वर्ष का होता है तो धनीराम को भी अपने अंतिम समय का अहसास होता है और वह बलराम को अपने मंत्री मिथ्यानंद के सुपुर्द करके प्राण त्याग देता है। छह साल का बलराम ऐसी स्थिति में कहता है -

बालेपन म्हं मात पिता का मर जाना दुखदाई है।
कोई अपना नहीं दिखता कैसी आफत आई है।
मेरे ना दूजा भाई है हुआ गरक खानदान।
जैसे पांडव गले हिमालय तो कांपे जमीं आसमान।

ना माँ का कुछ सुख देखा ना बाप ने कुछ दिन प्यार किया।
ओ काल निर्दयी बाप से पहले क्यों ना मुझको मार दिया।
वो क्या जग म्हं इनसान जिया जिसने भजे ना भगवान।
बुंदू मीर बिना भगति के सुरपुर नर्क समान।[59]

पिता के मरने के बाद मंत्री मिथ्यानंद की दृष्टि बदल जाती है और पत्नी द्वारा विरोध करने के बावजूद मिथ्यानंद उसे राज्य से निकाल देता है। उसके बाद उसकी दुर्गति होनी शुरू होती है। इस लोकनाट्य में शराब पर भी पर्याप्त तंज कसा गया है। बालक बलराम कुछ शराबियों के चंगुल में फँस जाता है। जब वह शराब नहीं पीता तो वे उसके हाथ पर शराब गिरा देते हैं, तो बलराम अपने हाथ का उतना मांस ही काट डालता है। बलराम कहता है -

ऐसी हो संसार में ये शराब का नाम।
जिस जगह बूंद इसकी पड़े वो ही होजा जगह हराम।
और दिल दिमाग की नहीं नाब होती है।
ऐसी हरामजादी शराब होती है।
करे सब धन को बरबाद।
शर्म तजे निर्भय रहे बन जाए जल्लाद।
माँ बहन की इज्जत नहीं नशे म्हं करना।
धन खत्म हुए पै चोरी डकैती करना।
कहँ हाथ सामने जोड़।
जो चाहते हो जिंदगी तो दो शराब को छोड़।[60]

और उसके बाद सभी शराबी पत्थर पर मारकर शराब की बोतल को तोड़ देते हैं। यह लोकनाट्य पर्याप्त नाटकीयता से परिपूर्ण है।

इनके 'अमरछड़ी' लोकनाट्य में जादुई, तिलस्मी कथा है। इस लोकनाट्य में कवि ने अपने गुरु के गुरु की भी सूचना दी है -

कवि लज्जाराम गुरु के वो रामलाल का चेला है।
मेरे बुंदू मीर है नाम पति का रहे दोनों बंद बाजार सखी।[61]

'रहे दोनों बंद बाजार सखी' में कवि ने अपने अंधे होने का भी संकेत दिया है। इस लोकनाट्य की एक रागनी की चौथी कली में कवि ने आश्चर्यजनक रूप से अपने संगी साथियों का नाम भी लिया है, यथा -

मिले मसीतालाल बहांडर ढोलक साज बजाने वाले।
रामनाथ और रामऔतार, हरिश्यामा सुक्का गाने वाले।
छोटेलाल और फत्तू मास्टर सबको पाठ पढ़ाने वाले।
सुखबीर, तारा, लालसिंह, अमरसिंह अपना रंग जमाने वाले।
खदमत म्हं था बुन्दू गंवार काम करता कविताई का।
मगर उसे सकता था दीख नहीं।।[62]

'अमरछड़ी' लोकनाट्य की कथा जादू टोनों से भरपूर है। 'महाराजा अशोक' लोकनाट्य में कवि ने बिम्बसार की पत्नियों के मध्य अपने पुत्रों को उत्तराधिकारी बनाने की चालों का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। कवि ने इस लोकनाट्य में सम्राट अशोक की चारित्रिक उदारता, दयालुता तथा पारस्परिक सद्‌गुणों का वर्णन

किया है। बिम्ब की दो पत्नियों मंजुला व चित्रा की क्रमशः अशोक और वीतशोक संतानें थीं। चित्रा अशोक से ईर्ष्या करती थी, क्योकि वह वरिष्ठ था और सद्‌गुणों के कारण प्रजा में लोकप्रिय था। वह एक अंधे विद्वान को महल में लेकर आता है जिसका चित्रा विरोध करती है और अशोक कहता है कि महल में आए आदमी का सम्मान सत्कार होना चाहिए -

श्रीमाता जी शिरोमणी किधर तुम्हारा ख्याल।
मैले कपड़े देखकर इन्हें समझ रही कंगाल।
महल बना इनके खून पसीने से।
जिस राजा का प्रजा प्रेम ना हो, बेहतर है मौत उस जीने से।
ये महल तो क्या कुल राजपाट प्रजा की खास धरोवर है।
यह प्रजा हमारी राजा है हम तुम सब इनके नौकर है।[63]

बाद में चित्रा अपने पुत्र वीतशोक को उत्तराधिकारी बनवा देता है तथा अशोक को दिसोटा दिलवा देती है। पर्याप्त संघर्ष के बाद अशोक सम्राट बनता है तथा बाद में वह कलिंग जीतता है तथा अंत में बौद्ध धर्म ग्रहण कर लेता है।

बुंदू मीर की रागनियाँ शायराना अंदाज की है। बीच-बीच में वे गजल, शेर आदि भी जोड़ देते हैं। दोहा, रागनी, लावनी, दोचश्मी रागनी, नाटकवार्ता आदि का कवि खूब प्रयोग करते हैं।

लोकनाट्यकार बुंदू मीर सामाजिक दृष्टि से भी महत्त्व रखते हैं। उन्होंने छुआछूत, जाति-पांति के प्रति भी लोक को सचेत किया है। 'सांगीत चंद्रहास' में सबसे प्रथम रागनी में उन्होंने भारतीय समाज में प्रचलित छुआछूत का वर्णन किया है -

इस हिन्दू जाति के पूत, लगे उल्टी करने करतूत।
छुआछूत का ब्यौहार स्वामी, करता है संसार स्वामी।[64]

इन्होंने कुछ रागनियाँ फिल्मी गीतों की तर्जों पर भी लिखी हैं।

रूपचंद गन्नौर -

रूपचंद गन्नौर 'महाशय रूपचंद रेडियो सिंगर' के रूप में भी जाने जाते हैं। इनका जन्म हरियाणा के सोनीपत जिला के गन्नौर गाँव में हुआ था। इसी कारण उनके नाम के आगे गन्नौर शब्द लगता है। ये वाल्मीकि जाति से थे और इनका गौत्र सौदा था। इनका जन्म 1919-20 के आसपास हुआ।

इन्होंने 'रूप-बंसत', 'हरिश्चंद्र तारावती', 'अजीत सिंह राजबाला', 'रूपकला मनिहार', 'नौटंकी', 'राजा अंब', 'चंद्रप्रभा मदनपाल', 'पूरणमल' आदि लोकनाट्यों की रचना की। अनेक दुचश्मी फुटकर रागनियों का भी इन्होंने सृजन किया।

ये दिल्ली रेडियो स्टेशन से गाते थे। इनकी आवाज़ इतनी मधुर थी कि इन्हें देहाती गायकी का मोहम्मद रफी कहा जाता था। इनकी उषा सेठ के साथ युगल रागनियों ने तो उस समय धूम ही मचा दी थी। इनकी रागनियों को एच.एम.वी. ने इन्हीं की आवाज़ में रिकॉर्ड करवाया था। इनके प्रशंसक श्रीपाल सांगवान का कहना है, "सब सुनने वाले भाईयों को राम राम!.... राम राम मुंशी भाई भई मेरी भी राम राम है- ओऽ हो आओ कहो के सुणवा रे सूं भई सुणवाणे की बात तो पाछै होगी आज तो म्हारी पंचायत म्हं रूपचंद आए हुए सै इनते ही होज्या रागनी, भजन अर दो गाने।

यही है वो चिर परिचित सदाबहार आवाज़ें जो आकाशवाणी दिल्ली से दशकों से गूंज रही हैं..... और इन्हीं के बीच अनेक गायक आए बरसाती लाल तलत महमूद की आवाज़ लेकर आया तो कमला शर्मा गीतादत्त की शैली में गाती उषा सेठ तो शमशाद बेगम की ठसक लिए थी। परंतु रूपचंद तो अपने आप में मोहम्मद रफी था। जो देहाती गायिकी का बेताज बादशाह माना जाता है।

उन्हीं की रागनियों का संग्रह उनके फटे सटे काग़ज़ी पुर्जों, ग्रामोफोन रेकार्ड्स तथा गायकों से कर उस महान गायक और कवि को श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।"[65]

उपर्युक्त विचार श्रीपाल सांगवान के हैं जो उनके 1984 में प्रकाशित करवाए गए 'रूपचंद का गुच्छा' से उद्धृत हैं। रूपचंद के रेकार्डस उस समय धनाढ्य लोगों के ब्याह शादियों में बजा करते थे। उषा सेठ उनके साथ गाती थीं।

रूपचंद गन्नौर की रागनियाँ रागनी और गीत का मिला-जुला रूप होती थीं। वे एक प्रकार से ठेठ कौरवी में गाते थे। एक फौज की जब छुट्टी खत्म हो जाती है तो वह अपनी पत्नी से कहता है -

छुट्टी के दिन पूरे होगे मनै लाजमी जाना।
मात पिता मेरे घर पै गोरी तू इनका कहन पुगाना।
गंगा के तुल धाम तेरे तू इनकी सेवा करिए।
जैसा कहे वैसा लिए मान तू मत वचनां ते फिरिए।
सुबह शाम रट राम नाम तू बुरे करमां ते डरिए।
सीख पराई म्हं फँस के मत सर बदनामी धरिए।
तू जाने तेरा काम पता ना मेरा कदसी होगा आना।[66]

इस रागनी में फौजी की पत्नी के प्रति और मात-पिता के प्रति भी सुखद चिंता व्यक्त हुई है। रूपचंद का शब्द और भावप्रवाह तथा उनकी गायन शैली इतनी उम्दा थी कि वे लाखों लोगों के चहेते गायक बन गए थे। आकाशवाणी से उनकी रागनियाँ प्रसारित होती थीं। 'रूप-बसंत' लोकनाट्य में जब रूप की मौसी रूप के साथ जार-कर्म करना चाहती है तो बालक रूप बड़ी समझदारीपूर्ण बात करता है। बालक रूप नैतिकता का एक उदाहरण प्रस्तुत करता है। रागनी की टेक व पहली कली दर्शनीय है -

रूप : ऐरी मौसी तेरे सेती प्रेम रचा कै।
किसतै मुँह दिखाऊँ मैं।

मौसी : किसै बात का फिकर करै मत।
तेरा दिल समझाऊँ मैं।

रूप : जाणबूझ के सिर पै धरनी ठीक पाप की पोट नहीं।
दुनिया का दस्तूर सै मौसी, इसमें मेरा खोट नहीं।
मेरी तेरी जोट नहीं इस करकै माफी चाहूँ मैं।

मौसी : इन बाताँ म्हं के फर्क पड़ै, जब करकै प्रेम बुलाऊँ मैं।[67]

रूपचंद का यह सांग नैतिकता का उच्चादर्श स्थापित करता सांग है। मौसी के जार-कर्म में फँसने की बजाय रूप बसंत देश निकाला अधिक पसंद करता है। दूसरे शब्दों में एक स्त्री की जार-दृष्टि ने पूरे घर को तबाह कर दिया।

'हरिश्चंद्र तारावती' लोकनाट्य में एक मार्मिक प्रसंग आता है जब हरिश्चंद्र वरणा नदी पर पानी भरने जाता है और कृशकाय होने के कारण स्वयं घड़ा नहीं उठा सकता। संयोग से उसकी पत्नी भी वहीं पानी लेने आ जाती है। वह रामलाल ब्राह्मण के घर नौकरानी थी। क्योंकि हरिश्चंद्र कालिया भंगी के घर नौकर था, इसीलिए छुआछूत के कारण वह अपने पति को घड़ा नहीं उठवाती। उस समय उनका संवाद बहुत ही भावुक कर देने वाला है। पति घड़ा उठवाने के लिए पत्नी से विनती करता है और पत्नी उसके घड़े को हाथ लगाने तक को मना कर देती है -

ओ ओ मनै घड़ा ठुवा दे तारा।
पार बसाती कोन्या मेरी मैं जोर लगाकै हारा।
बीत रही सो कहरा सूं मैं ना कहता बात अंघाणी म्हं।
हाथ पैर मेरे चलते कोन्या अब मठती के पाणी म्हं।

सब कुछ पड़ै सोचणा तारा करकै कार बिराणी म्हं।
ओ ओ आज राम रूस गिया म्हारा।[68]

x *x* *x*

तारा तारा कर रहा सूं तेरा लिकड़ता बोल नहीं।
अपने हुए पराए तारा बिगड़ी का कुछ मोल नहीं।
हे ईश्वर तेरी लीला न्यारी पाटा कोन्या तोल नहीं।
ओ ओ यो रूपचंद समझारा।[69]

इसी लोकनाट्य का एक मार्मिक प्रसंग उस समय उपस्थित होता है, जब रोहताश कंवर को साँप डस लेता है तथा तारामती उसे श्मशान में लेकर जाती है तो हरिश्चंद्र उसे चिता में जलाने से पहले सवा रुपया माँग लेता है। हालांकि उसे पता होता है कि यह उसका स्वयं का भी पुत्र है। रागनी दर्शनीय है-

हरिश्चंद्र : मरघट का कर दिए बिना कौण मुरदा फूंकण आली।
तारामती : सरधा कोन्या कर देने की मैं फिरूं विपत की मारी।
हरिश्चंद्र : रात दिन म्हं रहूं घाट पै मारे कालिए के डर का।
तारामती : देख विपत नै घबरा जाना यो काम नहीं सै नर का।
हरिश्चंद्र : सवा रुपया दे कर का तू क्यूं सहम रौल मचारी।
तारामती : कफन तलक भी मिल्या नहीं आज मेरे म्हं लाचारी।[70]

रूपचंद गन्नौर की अपने समय में खूब लोकप्रियता रही। उनकी कविताई में विशुद्ध कौरवी शब्दों की भरमार है। इस दृष्टि से भी रूपचंद का महत्त्व है। 3 जनवरी 1959 को मात्र 40 वर्ष की आयु में इनका देहांत हो गया। पुनः श्रीपाल सांगवान का कथन उद्धृत है, सन् 1948 ईसवी राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का शहीदी वर्ष सुनो सुनो ऐ दुनिया वालो बापू की यह अमर कहानी, इसी गीत से स्व. मोहम्मद रफी श्रोताओं का चहेता बनकर फिल्मी दुनिया पर छा गया।

ओ जुल्मी तनै जुल्म करा बापू कै गोली मारी।
चारों खूंट म्हं शोर फैलागिया रोवै दुनिया सारी।''[71]

इस अमरगीत से स्व. रूपचंद उत्तर भारत के देहाती श्रोताओं के हृदय में बस गया। इस महान कवि का देहांत 3 जनवरी 1959 को 40[72] वर्ष की आयु में हुआ परंतु आज तक उनका स्थान व लोकप्रियता में न गायिकी में और ना ही कविता में कोई ले सका।

पं. बलवंत सिंह करनावल -

बलवंत सिंह करनावल का जन्म गाँव करनावल जिला मेरठ उत्तर प्रदेश में हुआ। इन्होंने अधिकतर महाभारत की उपकथाओं पर ही लोकनाट्य सृजित किए। इनके लोकनाट्य हैं - 'जुआ और द्रोपदी', 'भीष्म पर्व', 'चक्रव्यूह-द्रोण पर्व', 'जयद्रथ वध', 'कर्ण पर्व', 'शल्य पर्व', 'मोरध्वज', 'सीता बनवास', 'लवकुश युद्ध' आदि। 'लवकुश युद्ध' रामायण की उपकथा है। इनके लोकनाट्य 'होली' विधा में है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में सांग को होली भी कहा जाता है।

'कर्ण पर्व' लोकनाट्य में बलवंत सिंह करनावल ने महाभारत के युद्ध में कर्ण से जुड़े प्रसंग को मुख्य कथा बनाया है। यह लोकनाट्य उन्होंने सन् 1954 में लिखा था जिसका संकल्प उन्होंने लोकनाट्य के प्रारंभ में मंगलाचरण में दे दिया था। वे गंगा की स्तुति की रागनी में चौथी कली में लिखते हैं -

सब नदियों में उत्तम तू है, कह गए ऋषि मुनि जन संत।
खुशदिल सीता राम रहे हैं मन अपने म्हं गुरु बलवंत।
सन् चव्वन के जून मास म्हं लिखी भेंट हाल कथा सारा।[73]

इस प्रकार लेखन मास और वर्ष का उल्लेख बहुत कम कवियों में देखने को मिलता है। इससे रचनाकाल की प्रामाणिकता बनती है।

महाभारत के युद्ध में द्रोणाचार्य मारे जाते हैं तथा भीष्म बाण-शैया पर लेटे हैं तो दुर्योधन युद्ध को लेकर पर्याप्त चिंतित होता है तो कर्ण युद्ध की बागडोर संभालने का प्रण करता है। वह अपने पाँच बाणों, गले की कंठी, कानों के कुंडल और भुजा का कंगन की शक्ति आश्वस्त कृष्ण की योजनानुसार पहले कुंती कर्ण के पास जाती है और उसे भावनावश पाँचों बाण माँग लेती है। कर्ण उसे पाँचों बाण देता हुआ कहता है -

कर्णबली फिर कहे दुबारा, माता तुझे बताऊँ सांच।
मैं मरूँ चाहे मरियो अर्जुन, तेरे रहे पाँच के पाँच।[74]

जब कृष्ण को पता चलता है कि यह तो केवल पाँच बाण ही लेकर आई है तो वह स्वयं एक ब्राह्मण का भेष करके कर्ण के द्वार पर जाता है और भिक्षा के लिए अलख जगाता है -

तुम-सा राजा नहीं जगत म्हं, प्रजा के पालन वाले।
दान करण का उम्हा राव को बड़े भूप गजपुर वाले।

भूखा ब्राह्मण आया द्वार पर सुनो राव हिम्मत वाले।
बलवंत सिंह का सुनो काफिया धरे छंद ठोके ताले।[75]

कर्ण अपनी पत्नी को दान देने की कहता है। परंतु कृष्ण धोखे से तीन वचन भरवाकर वही कानों के कुंडल, गले की कंठी और भुजा का कंगन मांग ले जाता है। कर्ण की पत्नी को अनिष्ट का आभास हो जाता है। अगले दिन युद्ध के पहले कर्ण का पुत्र वृषकेतु मारा जाता है और बाद में कर्ण। कवि ने युद्ध का सजीव वीर रसात्मक वर्णन किया है -

कैरों दल सज के चला एकदम ठावें पाँव।
चाल रहे हाथी साथी घाती भी चलावें दाँव।
आसमान म्हं गर्द छाई है सूरज भी अटे हैं धूल।
दिन से हो गई रात बात राहत भी गए हैं भूल।
युद्ध लगा होण जोण सोण भी निकट रहे।
कितने ही मरे हुए रथों पै लिपट रहे।
वृषकेतु लड़ रहा अर्जुन ने चढ़ाया बाण।
हलण लगे तारे सारे जब हने है प्राण।[76]

'जुआ और द्रोपदी चीर' लोकनाट्य में कवि बलवंत सिंह करनावल ने कौरव और पांडवों द्वारा जुआ खेलना, जुआ में द्रोपदी को भी दाँव पर लगा देना, द्रोपदी का चीरहरण तथा कृष्ण द्वारा द्रोपदी की रक्षा आदि उपकथाओं को आधार बनाया है। दुर्योधन अपने मामा शकुनि से कहता है -

दुर्योधन कहने लगा सुन मामा की बात।
जब पंडों नै देख लूँ, फुँक जाता है गात।[77]

शकुनि अपने भानजे की बात मानकर पांडवों को जुआ खेलने के लिए उकसाता है और पांडव भावना में बह जाते हैं। जब पांडव द्रोपदी को भी हार जाते हैं तो दुशासन दुर्योधन के आदेश से द्रोपदी के महल में जाता है और द्रोपदी को भरी सभा में आने का आदेश सुनाता है तो गांधारी द्रोपदी का पक्ष लेती हुई दुःशासन से कहती है -

इतनी सुन गांधारी बोली दुःशासन की जो माता।
कैसे हाथ नार पै डारे पापी कोख मेरी नहीं आता।
कहे बलवंत असुर से बोली, तू तो मरा ना पूत अन्याई।।[78]

अंततः द्रोपदी को भरी सभा में लेकर आया जाता है और उसका चीर हरण करने की कोशिश होती है। जब उसका चीर हरण होता है और पाँचों पांडव व भीष्म आदि योद्धा बैठे देखते रहते हैं तो द्रोपदी को क्रोधाग्नि भभक उठती है और वह कह उठती है -

> यो कहके द्रोपदी रोई।
> रोवण लागी द्रोपद राणी मुख पर लीना आँचल डार।
> हो गई रांड द्रोपदी रानी आज मरे पाँचों भरतार।
> हो गया नाश सुसर मेरे का, वाके वंश म्हं रहा ना कोई।।[79]

फिर कृष्ण आकर उसकी मदद करते हैं। 'जुआ और द्रोपदी चीर' लोकनाट्य का बलवंत सिंह करनावल ने भुल्लन सिंह के साथ सह-सृजन किया है। इस लोकनाट्य में मंगलाचरण की रागनी की अंतिम कली में इसकी ईमानदारी बरती गई है -

> हो ना देर करो अब तावल, बिन ज्ञान अकल रहे बावल।
> बलवंत सिंह रहते करनावल, अत्रि गोत दिखाई दे।
> भुल्लनसिंह कहे कर जोड़, मढ़ तेरे में रोज कटें मुर्गे।[80]

इनका 'लवकुश युद्ध' जिसे ये 'भयंकर भूल' के नाम से भी मंचित करते थे, भी एक अति महत्त्वपूर्ण लोकनाट्य है। राम अश्वमेध यज्ञ करने के लिए घोड़ा छोड़ते हैं तो लव उस घोड़े को पकड़ लेते है तथा भारी युद्ध करते है। अंत में राम आते हैं तो उनका पता चलता है कि ये तो उसके ही पुत्र है। कवि बलवंत की भाषा बहुत ही सहज एवं मनोविश्लेषणपरक है। वे अपने लोकनाट्यों में दृश्यों का चित्र-सा खींच देते हैं।

पं. भैयाराम -

पं. भैयाराम का जन्म सन् 1880 के आसपास जिला पानीपत हरियाणा में समालखा से दो मील दूर करहंस गाँव में हुआ था। इनके माता-पिता ने इन्हें विद्याध्ययन के लिए काशी भेज दिया। इन्होंने आयुर्वेद की परिक्षाएँ भी पास की थीं। काव्य के क्षेत्र में आने से पूर्व इन्होंने पिंगल शास्त्र का विस्तृत अध्ययन किया। इन्होंने 'भजन पिंगल' नामक ग्रन्थ की भी रचना की थी और ये हरियाणा के लोककवियों से अपेक्षा करते थे कि वे जो भी लिखें पिंगल के आधार पर मात्रा, वर्ण, यति, गति अनुसार ही लिखें। सवत् 1985 अर्थात् 1928 में प्रकाशित 'भजन

पिंगल' नामक पुस्तक में उन्होंने लिखा है "हमारा पिंगल लिखने का तात्पर्य यह है कि आजकल की भजन मंडलियाँ और नाच मंडलियाँ सभी अपने को कवि समझती हैं। गाते हैं क्या और बजाते हैं क्या? कई एक तो औरतों के गीत सुन-सुनकर हमेशा अपनी मर्जी की बनावटी बहरें निकाल रहे हैं। उन्हीं को गाकर पालियों (पशु चराने वालों) को रिझाकर रुपया लूट रहे हैं। कोई एक मेले में मंडली में खड़ा होकर भजन, कली, संगीत की अनाप-सनाप तुक मिलाकर अकड़ जाता है। अकड़ता ही नहीं अपितु अपने को आशुकवि मानने लग जाता है। पर, उससे यदि पूछा जाए क्योंजी आपने यह जो कली, संगीत या कोई भजन गाया है, यह कौन-सा छंद है। मात्रिक छंद है या गण छंद है? इसकी ध्वनि, ताल का क्या नाम है और प्रमाण कौन से ग्रंथ का है? तो वे बेचारे बछिया के भाई इधर-उधर बगलें झाँकने लग जाते हैं।"[81]

पं. भैयाराम की पाँच रचनाओं में 'भजन पिंगल', 'भजन निर्वाण कसौटी', 'महाभारत विराट पर्व', 'महाभारत सौप्तिक पर्व' तथा 'भिक्षु भूषण-करण्डम' हैं।"[82] इन पुस्तकों में 'महाभारत विराट पर्व' तथा 'महाभारत सौप्तिक पर्व' इनके लोकनाट्य हैं। 'महाभारत विराट पर्व' में पांडवों के अज्ञातवास की उपकथा है जिसमें वे एक वर्ष भेष बदलकर विराट नगर में रहते हैं तथा कीचक का वध करते हैं। विराट की पत्नी सुदेशना की नौकरानी के रूप में द्रोपदी सैरंध्री नाम से रह रही थी। सुदेशना का भाई कीचक की जार-दृष्टि जैसे ही उस पर पड़ती है तो वह उसकी सुंदरता के प्रति अभिभूत हो जाता है तथा अपनी बहन को बताता है। कवि पं. भैयाराम ने कीचक की मनःस्थिति को कुछ यूं वर्णन किया है -

महल सुदेशना के ऊपर देखी फिरती नार अटारी पै।
कीचक देख पड़ा गस खा के बहुत रूप था नारी पै।
उठा संभल सोचे मन म्हं कभी चढ़ा नज़र ना म्हारी पै।
कहे ऐसी सुन्दर ना देखी फिर लिया धरणी सारी पै।
धन दौलत न्यौछावर करूं मैं इसकी सूरत प्यारी पै।
दया करो मन मोहन आ कै भैयाराम खिलारी पै।[83]

कीचक अपनी बहन पर सैरंध्री को उसके पास भेजने का दबाव बनाता है और अंत में भीम द्वारा मारा जाता है।

इनका 'महाभारत सौप्तिक पर्व' लोकनाट्य युद्ध के अठारहवें दिन के बाद बचे तीन कौरवों - अश्वत्थामा, कृतवर्मन और कृपा के कार्यों का वर्णन हैं। इसमें विशेष रूप से भैयाराम ने अश्वत्थामा के मारे जाने की उपकथा को आधार बनाया

है। उदाहरणार्थ -

दोहा : चले वहाँ से भीम जब कृष्णचन्द यदुराज।
कहे युधिष्ठिर से तभी करना चाहें काज।

छन्द : भरा शोक से भीम यह गुरुसुत को मारन धाया।
सब भाइयों से प्यारा तुमको चाहिऐ इसको बचाया।
फँस गया यह तो कठिन जाल म्हं, तुमको भेद नहीं पाया।
गुप्त बात कहूँ सुन ले राजन, भैयाराम पद कथ गाया।[84]

पं. भैयाराम संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। 'भिक्षु-भूषण करण्डम्' रचना इनकी संस्कृत में लिखी रचना है। इनकी अनेक रचनाएँ नष्ट हो गईं। सन् 1960 के आसपास इनका देहांत हो गया।

कुँवर सुखपाल सिंह आर्य प्रभाकर -

कुँवर सुखपाल सिंह आर्य प्रभाकर का जन्म गाँव करौंदा, मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश में हुआ था। ''आपके काव्य पर मार्क्सवाद का प्रभाव है। इसके साथ ही आर्य समाजी, धार्मिक सिद्धांत और राष्ट्रीय संस्कृति की झलक दिखाई देती है।'' इन्होंने पर्याप्त मात्रा में लोकनाट्यों की रचना की। कुछ लोकनाट्य हैं - 'राजबाला अजीत सिंह', 'काली चंद', 'जगदेव बीरमती', 'बिजली महारानी', 'बंगाल का शेर', 'हकीकत राय', 'मेजर आशाराम', 'द्रोपदी स्वयंबर', 'हाडी की भेंट', 'गऊ हरण', 'धर्मपाल शांताकुमारी' आदि।[85] इन्होंने अनेक प्रबोधक फुटकर रागिनयों की भी रचना की है। इन्होंने फिल्मी सुप्रसिद्ध गीतों की तर्जों पर रागनियों की रचना की है। इनकी बानगी देखी जा सकती है -

जुल्मो सितम यहाँ बढ़ते हुये, एक जमाना बीत गया।
घर-घर में हमें लड़ते हुये, एक जमाना बीत गया।
सुखपाल मंच पर आज के वक्ता, ऐसा रंग जमाते हैं।
परिवार विभाजित कर बैठे, अपनों को ना अपनाते हैं।
बू अपनी में सड़ते हुये, एक जमाना बीत गया।।[86]

इसी समय मथुरा प्रसाद ग्राम बनाँ, तहसील मवाना, जिला मेरठ, उत्तर प्रदेश भी एक मुख्य लोकनाट्यकार हुए। इन्होंने 'राम बनवास', 'गोपीचंद', 'धनुष यज्ञ', 'द्रोणपर्व' आदि लोकनाट्यों की रचना की।

पं. शोभाराम प्रेमी का जन्म 1913 ई. में गाँव मोहम्मदपुर रायसिंह, जिला

मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश में हुआ था।[87] ये आर्यसमाजी थे। इन्होंने 'ऋषिपाल चतरा', 'रागनी हाडी', 'वीर ऊधमसिंह' आदि लोकनाट्यों की रचना की। इनकी अनेक फुटकर रचनाएँ 'जीवन गीत', 'जीवन संगीत' और 'प्रेमी तरंग' आदि गुच्छों में संकलित हैं।

अभयराम शर्मा (सहारनपुर) भी आर्यसमाजी लोकनाट्यकार थे। आपने सीता वनवास, लवकुश कथा आदि लोकनाट्य लिखे।

सरदार सिंह तूफान (जन्म 1927 ई.) गाँव साकरोद, जिला बागपत, उत्तर प्रदेश ने भी अनेक लोकनाट्यों की रचना की। इनके लोकनाट्य हैं - 'जगदेव-बीरमती', 'अजीत-राजबाला', 'रूपवती-रणधीर', 'कमला-चपला', 'इंकलाब', 'सुभाष' आदि। ''आपकी लिखी रागिनी 'बोस इसी साड़ी ल्यादे हो जिसकी चमक निराली' आज भी आकाशवाणी दिल्ली से प्रसारित होती है।''[88]

बेगराज आर्य (जन्म 1931 ई.) गाँव भूड़िया, जिला गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश ने भी आर्यसमाज के प्रभाव में आकर अनेक लोकनाट्यों की रचना की। इनके लोकनाट्य हैं - 'नीरा नागिनी', 'सुमित्रा-चंद्रपाल', 'अजीत सिंह-राजबाला', 'सुंदर बाई', 'भरत मिलाप', 'जयद्रथ वध', 'विजयी भारत', 'नयी खोज', 'रणबाँकुरे' आदि।[89]

सूबेराम धामा (कस्तला, मेरठ), दीवानदत्त दबथुवा, परशादे लाल आदि ने भी इस काल में लोकनाट्यों की रचना कीं।

निष्कर्ष -

सन् 1930 के बाद उत्तरी भारत में प्रजामंडल की गतिविधियाँ तेज होती हैं। प्रजामंडल का मुख्य उद्देश्य उस समय की देशी रियासतों की पोल खोलना भी था जो अंग्रेजों के मुहरे के रूप में काम करती थीं। लोगों को स्वाधीनता के लिए जागरूक करना भी प्रजामंडल का कार्य था। प्रजामंडल मुख्य रूप से राजस्थान में सक्रिय था। आर्यसमाज का प्रजामंडल पर खास प्रभाव था। आर्यसमाजियों ने लोकनाट्यों का लोक पर प्रभाव को देखते हुए अपनी शिक्षाओं को उसी अनुरूप ढालना शुरू किया फलतः लोकनाट्य की विषयवस्तु एवं मंचन शैली में पर्याप्त बदलाव आया। विषयवस्तु में बदलाव इस रूप में हुआ कि आर्यसमाज की शिक्षाओं में दीक्षित लोक कलाकारों ने सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं पर लोकनाट्यों की रचना शुरू की। इन्होंने पारंपरिक लोकनाट्यकारों से विद्रोह किया। पौराणिक कथाओं पर बने लोकनाट्यों का एक प्रकार से इन लोकनाट्यकारों ने बहिष्कार किया। इन्होंने अनेक

ऐतिहासिक महापुरुषों की जीवनियों को लोकनाट्यों की विषयवस्तु बनाया। पृथ्वीसिंह बेधड़क, धर्मपाल भालोठिया, चौ. ईश्वरसिंह गहलोत, कुंवर जौहरी सिंह आदि के लोकनाट्यों के नाम व विषयवस्तु से यह साफ झलकता है। इन लोकनाट्यकारों ने फुटकर रागनियाँ भी खूब लिखीं। वे लोकनाट्य के प्रारंभ में या बाद में इन फुटकर रागनियों को भी गाया करते थे। हालांकि इनमें ऐसे लोकनाट्यकार भी हुए हैं जिन्होंने पहले से चली आई कथाओं पर लोकनाट्य लिखे तथापि इनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक और तार्किक रहता था। मंचन शैली में बदलाव इस रूप में आया कि वे सांगियों की तरह सांग नहीं करते थे। सांगियों की दस-बारह कलाकारों की अपेक्षा इनकी लोकनाट्य टोली में मात्र तीन-चार लोग होते थे। ढोलक और हारमोनियम से ही ये काम चलाते थे। कई बार तो बेड़ेबंद ही गाने और बजाने (हारमोनियम) का काम अकेला करता था। पूरी कथा को अकेला ही गा देता था। इस समय पं. परशादे लाल मढ़ी (चंद्रवती नासकेत) भी एक सुप्रसिद्ध लोकनाट्यकार थे। बलवंत सिंह 'बुल्ली', बूंदू मीर इस काल के पारंपरिक विषयवस्तु के लोकनाट्यकार हुए। बुंदू मीर अंधे थे तथा केवल लोकनाट्यों का सृजन करते थे। बलवंत सिंह 'बुल्ली' इस काल के बहुश्रुत लोकनाट्यकार थे।

संदर्भ -

1. बेधड़क भजन ग्रंथावली, भाग 1, आचार्य वेदव्रत शास्त्री, परममित्र मानव निर्माण संस्थान, सिंधु भवन, सेक्टर 14, रोहतक, हरियाणा, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ 13
2. पंडित लखमीचंद ग्रंथावली, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, प्रथम संस्करण 1992, पृष्ठ 626
3. बेधड़क भजन ग्रंथावली, भाग 1, आचार्य वेदव्रत शास्त्री, परममित्र मानव निर्माण संस्थान, सिंधु भवन, सेक्टर 14, रोहतक, हरियाणा, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ 13
4. वही, पृष्ठ 10
5. बेधड़क भजन ग्रंथावली, भाग 1, आचार्य वेदव्रत शास्त्री, परममित्र मानव निर्माण संस्थान, सिंधु भवन, सेक्टर 14, रोहतक, हरियाणा, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ 10

6. वही, पृष्ठ 11
7. मुंशीराम जांडली ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, सुकीर्ति प्रकाशन, डी.सी. निवास के सामने, करनाल रोड, कैथल, हरियाणा, प्रथम संस्करण 2011, पृष्ठ 24
8. वही, पृष्ठ 68
9. वही, पृष्ठ 68
10. वही, पृष्ठ 63
11. वही, पृष्ठ 105
12. वही, पृष्ठ 110
13. वही, पृष्ठ 115
14. वही, पृष्ठ 98
15. जेल की रचनायें, श्री स्वामी भीष्म जी आर्योपदेशह (संपादक आचार्य वेदव्रत शास्त्री), हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर, जिला झज्जर, संस्करण फरवरी 2018, पृष्ठ 1 (संपादकीय)
16. वही, पृष्ठ 1
17. वही, पृष्ठ 1
18. अजीतसिंह राजबाला (गुच्छा), श्री 108 स्वामी भीष्म जी आर्योपदेशक, अग्रवाल बुक डिपो (रजि.), खारी बावली, दिल्ली - 6, पृष्ठ 4
19. वही, पृष्ठ 4
20. वही, पृष्ठ 18
21. अंजना देवी (गुच्छा), श्री 108 स्वामी भीष्म जी आर्योपदेशक, अग्रवाल बुक डिपो (रजि.), खारी बावली, दिल्ली - 6, पृष्ठ 2
22. वही, पृष्ठ 15
23. वही, पृष्ठ 51
24. भीष्म भजन-प्रकाश, श्री स्वामी भीष्म जी आर्योपदेशक (संपादक आचार्य वेदव्रत शास्त्री), आचार्य प्रकाशन, दयानंद मठ, रोहतक, हरियाणा - 124001, प्रथम संस्करण नवंबर 2011, पृष्ठ 23

25. आदर्श भजनमाला (तृतीय खंड), कवि सम्राट चौ. ईश्वर सिंह गहलोत, (संपादक डॉ. बलबीर शास्त्री), प्रकाशक डॉ. बलबीर शास्त्री, प्रधान, आर्यसमाज भैंसवाल कलां, सोनीपत हरियाणा, संस्करण मार्च 2015, पृष्ठ 5
26. वही, पृष्ठ 7
27. वही, पृष्ठ 14
28. वही, पृष्ठ 14-15
29. वही, पृष्ठ 16
30. वही, पृष्ठ 9
31. वही, पृष्ठ 14
32. वही, पृष्ठ 33-34
33. वही, पृष्ठ 173
34. वही, पृष्ठ 174
35. वही, पृष्ठ 185
36. आदर्श भजनमाला (प्रथम खंड), लोककवि कुंवर जौहरीसिंह (संपादक डॉ. बलबीर शास्त्री), प्रकाशक डॉ. बलबीर शास्त्री, प्रधान, आर्यसमाज भैंसवाल कलां, सोनीपत हरियाणा, संस्करण मार्च 2015, पृष्ठ 20
37. वही, पृष्ठ 57
38. वही, पृष्ठ 9
39. वही, पृष्ठ 11
40. वही, पृष्ठ 5
41. वही, पृष्ठ 29
42. वही, पृष्ठ 37
43. वही, पृष्ठ 37
44. वही, पृष्ठ 37
45. वही, पृष्ठ 39
46. वही, पृष्ठ 4

47. वही, पृष्ठ 335
48. वही, पृष्ठ 394
49. कौरवी लोक साहित्य, डॉ. नवीन चंद्र लोहनी, भावना प्रकाशन, 109-ए, पटपड़गंज, नई दिल्ली - 110091, द्वितीय संस्करण 2016, पृष्ठ 103
50. बलवंत सिंह बुल्ली के पौत्र अनिल शर्मा से हुई बात के अनुसार
51. कौरवी लोक साहित्य, डॉ. नवीन चंद्र लोहनी, भावना प्रकाशन, 109-ए, पटपड़गंज, नई दिल्ली - 110091, द्वितीय संस्करण 2016, पृष्ठ 103
52. सांगीत चंद्रकिरन, पं. बलवन्तसिंह उर्फ बुल्ली नांगल निवासी, बासदेव गोकलचन्द बुक डिपो, गुज़री बाज़ार, शहर मेरठ, प्रथम संस्करण 1961 ई., पृष्ठ 19
53. सौदागर बच्चा, पं. बलवन्तसिंह उर्फ बुल्ली नांगल निवासी, बासदेव गोकलचन्द बुक डिपो, गुज़री बाज़ार, शहर मेरठ, प्रथम संस्करण 1959 ई., पृष्ठ 17-18
54. चंद्रकिरण, पं. बलवन्तसिंह उर्फ बुल्ली नांगल निवासी, बासदेव गोकलचन्द बुक डिपो, गुज़री बाज़ार, शहर मेरठ, प्रथम संस्करण 1961 ई., पृष्ठ 25
55. वही, पृष्ठ 25
56. विल्वमंगल, पं. बलवन्तसिंह उर्फ बुल्ली नांगल निवासी, गर्ग एण्ड को., थोक पुस्तकालय, 484, खारी बावली, दिल्ली - 6, पृष्ठ 2-3
57. सांगीत चंद्रहास, कविरत्न बुन्दूमीर खानपुर निवासी, पं. कृष्णदत्त, कामेश्वर प्रसाद बुकसेलर, बाजार सर्राफा, सहारनपुर (उ.प्र.), संस्करण 1980, पृष्ठ 1
58. वही, अंतिम पृष्ठ 34
59. गरीब की दीवाली, उस्ताद बुन्दूमीर खानपुर निवासी, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ शहर (उ.प्र.) प्रथम संस्करण 1962, पृष्ठ 4
60. वही, पृष्ठ 22-23
61. सांगीत अमरछड़ी, कविरत्न बुन्दूमीर खानपुर निवासी, भगवत बुक डिपो, पुरानी तहसील, मेरठ शहर (उ.प्र.), नवीन संस्करण 1980, पृष्ठ 10
62. वही, पृष्ठ 21
63. महाराजा अशोक, गुरु बुन्दूमीर खानपुर निवासी, जवाहर बुक डिपो, गुजरी बाजार, मेरठ शहर (उ.प्र.) प्रथम संस्करण 1957, पृष्ठ 7

64. सांगीत चंद्रहास, कविरत्न बुन्दूमीर खानपुर निवासी, पं. कृष्णदत्त, कामेश्वर प्रसाद बुकसेलर, बाजार सर्राफा, सहारनपुर (उ.प्र.), संस्करण 1980, पृष्ठ 1
65. रूपचन्द का गुच्छा, श्री भगवत बुक डिपो, पुरानी तहसील, मेरठ शहर (उ.प्र.), संस्करण 1985, संपादक श्रीपाल सांगवान, पृष्ठ 2 (शीर्षक पृष्ठ के अंदर का भाग)
66. रूपचंद रचनावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, पृष्ठ 105
67. वही, पृष्ठ 41
68. वही, पृष्ठ 57
69. वही, पृष्ठ 57
70. वही, पृष्ठ 59
71. वही, पृष्ठ 29
72. वही, पृष्ठ 12
73. महाभारत कर्ण पर्व, बलवंत सिंह करनावल, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, पृष्ठ 1
74. वही, पृष्ठ 6
75. वही, पृष्ठ 8
76. वही, पृष्ठ 16
77. जुआ और द्रोपदी चीर, बलवंत सिंह करनावल, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, पृष्ठ 2
78. वही, पृष्ठ 16
79. वही, पृष्ठ 24
80. वही, पृष्ठ 1
81. हरियाणा के संत-कवि, डॉ. बाबूराम (आलेख संत-कवि दंडी स्वामी पं. भैयाराम, डॉ. बालकिशन शर्मा), साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 140
82. वही, पृष्ठ 141
83. वही, पृष्ठ 144
84. वही, पृष्ठ 144-145

85. कुँवर की कुंजी (बंगाल पै संकट), कुँवर सुखपाल सिंह आर्य प्रभाकर, प्रकाशक महेन्द्र शर्मा भजनोपदेशक, ग्राम व पोस्ट सुन्ना जिला मुजफ्फरनगर, प्रथम संस्करण 1971, अंतिम पृष्ठ

86. वही, पृष्ठ 4

87. कौरवी लोक साहित्य, डॉ. नवीन चंद्र लोहनी, पृष्ठ 68

88. वही, पृष्ठ 73

89. वही, पृष्ठ 74-75

नौवाँ अध्याय

राय धनपत सिंह निंदाना युग

(सन् 1956 ई. - 1970 ई.)

प्रस्तावना -

कौरवी लोकनाट्य के क्षेत्र में आए आर्यसमाजी भजनीयों ने सांग का विकल्प देने का प्रयास किया। इन्होंने पारंपरिक सांग-शैली में विषयगत और प्रस्तुतीकरण में बदलाव करने की भरपूर कोशिश की। इन्होंने विभिन्न कारण बताकर सांग के खिलाफ दुष्प्रचार भी किया। मसलन से सांग में जनाने के रूप में स्त्री वेश में किसी पुरुष का नाचना अनुचित और अश्लील मानते थे। ये विदूषक के द्विअर्थक संवादों को अनावश्यक मानते थे। सांग की पारंपरिक शैली से ये घृणा करते थे, जबकि यह एक लंबी शिद्दत से पनपी विधा थी, जिसमें असंख्य लोकनाट्यकारों का अनुभव समाहित था। पारंपरिक सांग-शैली का नकारने के पीछे एक कारण यह भी था कि उसमें जाति, वर्ण और महिलाओं के प्रति पूर्वाग्रह था। उसमें मूर्ति-पूजा, अवैज्ञानिकता, पाखंड और ब्राह्मण वर्ण की श्रेष्ठता की अघाहत थी। वे जाति को सुदृढ़ करने का काम करते थे। इन्होंने (सुधारवादियों ने) कथ्य के आदर्श पर अधिक ध्यान दिया और मंच की सुंदरता को गौण समझा। यही कारण रहा कि ये कब आए और कब चले गए, इसका पता ही नहीं चला। पक्का साज, बड़ा रकाना, मंच पर संगीत की स्वर-लहरी, विदूषक की चुहल और सांगी की विशिष्ट शैली में तबले और सारंगी की टंकार सब सांग का अनिवार्य अंग थे, जो कथा को नीरसता से बचाता ही नहीं था, बल्कि उसे और अधिक निखारता था। आर्यसमाजी लोकनाट्यकारों में इनका नितांत अभाव था। इनके पास कथन तो सुंदर था और तत्कालीन समाज में बदलाव का एक अपरिहार्य माध्यम भी था, परंतु उनके प्रस्तुतीकरण का ढंग लोगों के पसंद नहीं आया। केवल एक बाजा (हारमोनियम) और ढोलक के सहारे एक ही व्यक्ति पूरी कथा को बिना किसी हँसी-मजाक व मनोरंजन के कह दे, यह लोगों को स्वीकार नहीं हुआ।

इसके साथ-साथ इन आर्यसमाजी लोकनाट्यकारों का पारंपरिक शैली के सांगियों पर असर इस रूप में पड़ा कि इन्होंने भी सामाजिक जरूरतों के हिसाब से लोकनाट्य की कथाओं में बदलाव किया। राय धनपत सिंह निंदाना ने दहेज, भ्रष्टाचार, जाति-पाँति, किसान की समस्याएँ ओर अनेक सामाजिक मुद्दों को लेकर लोकनाट्यों की रचना की। उनकी शिष्य-प्रणाली में भी अनेक लोकनाट्यकारों ने इस दिशा में महती योगदान दिया। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि आर्यसमाजियों ने भी उन्हीं पौराणिक और अवैज्ञानिक कथाओं पर सांगों का निर्माण शुरू कर दिया, जो पहले से चले आ रहे थे। फिर जातिवाद उनमें भी कूट-कूट कर भरा हुआ था। उनकी दृष्टि वेदों और स्वामी दयानंद की शिक्षाओं पर ही अधिक रहती थी। उनका मुख्य उद्देश्य आर्यसमाज की शिक्षाओं का प्रचार करना ही रहता था। लोक का मनोरंजन छूट गया था। वे जाति-पाँति का खंडन करते थे, परंतु वर्ण-व्यवस्था को महिमा-मंडित करते थे। जबकि व्यावहारिक रूप में वर्ण-व्यवस्था जाति के रूप में समाज में प्रचलित थी। ये वर्ण को जन्म के आधार पर न मानकर स्वयं जाति-विशेष में जन्म लेने के कारण गौरवान्वित होते थे। जाट समाज से आए आर्यसमाजियों में यह भावना बहुत अधिक मात्रा में मिलती थी। वे आर्यसमाजी होने से पहले जाट होना अधिक गौरव का विषय मानते थे।

यदि धनपत सिंह निंदाना युग को लोकनाट्य का स्वर्ण युग कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। क्योंकि इस काल में लोकनाट्यों की जो धूम रही, वह संभवतः किसी भी काल में नहीं रही। इस काल में संख्या और गुणवत्ता की दृष्टि से लोकनाट्य पूरे कौरवी क्षेत्र में छा गया। राय धनपत सिंह डूम जाति से संबंध रखते थे। वे अति विनम्र थे। वे खुद तो एक उम्दा लोकनाट्यकार थे ही, उनकी शिष्य प्रणाली से जितने श्रेष्ठ लोकनाट्यकार हुए। संभवतः ऐसा किसी भी लोकनाट्यकार की शिष्य प्रणाली में नहीं हुआ। वे मात्र आठवीं कक्षा तक पढ़कर जमुवा मीर की शरण में चले गए तथा उनसे पिंगल की शिक्षा ग्रहण की। जमुवा मीर स्वयं एक बड़े लोकनाट्यकार नहीं थे, परंतु छंद, यति, गति, लय, सुर का उन्हें जो ज्ञान था, उतना बहुत कम लोकनाट्कारों को था। उन्होंने अनेक धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन किया हुआ था। वे शास्त्रार्थ में निपुण थे। उनके तर्कों और ज्ञान के आगे कोई भी नतमस्तक हो सकता था। ऐसे गुरु के शिष्य राय धनपत सिंह निंदाना व उनकी शिष्य-मंडली ने सांग के क्षेत्र में जो कीर्तिमान स्थापित किया वह इस युग को स्वर्ण युग कहलाने के लिए पर्याप्त है। इस काल में धनपतसिंह निंदाना के साथ-साथ उनके समानांतर अनेक सांगी सक्रिय रूप से लोक का मनोरंजन करने की कमर कसे हुए थे। राय

धनपतसिंह के लोकनाट्यों में पृथ्वीसिंह बेधड़क जैसी समाज सुधार की भावना तो न थी परंतु इनका प्रस्तुतीकरण, गायन, स्वर-लय-ताल और वार्ता का समन्वय इतना उत्कृष्ट होता था कि लोग स्वयमेव खिंचे आते थे। लोगों की रसिक वृत्ति को उद्दीप्त करने के लिए ये जनानों पर विशेष ध्यान देते थे। 'काच्चे श्याम' व 'पाक्के श्याम' इसी युग की देन हैं जिन पर जनता टूट पड़ती थी।

इस काल के लोकनाट्यकारों ने समाज-सुधार पर भी ध्यान केन्द्रित किया था। विशेषकर उनकी फुटकर रागनियों में नशा, फूट, दहेज और मानवीय गरिमा जैसे बिन्दु होते थे। राय धनपत सिंह ने 'दहेज' नाम से ही एक लोकनाट्य सृजित किया जिसे 'सूरज चंदा' के नाम से भी मंचित किया जाता था। धनपत सिंह के एक शिष्य बंदा मीर ने भारत-पाक विभाजन के बाद मुलतान जाकर लोकनाट्यों का मंचन किया। यह अपने आप में रेखांकित करने वाली बात है। राय धनपत सिंह का 'बनदेवी' सांग का हरियाणा से पाकिस्तान गए मुसलमानों के बीच उन्होंने कई बार मंचन किया। इस काल के लोकनाट्यों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है -

राय धनपत सिंह निंदाना -

राय धनपत सिंह का जन्म 9 अगस्त, 1912[1] को वर्तमान रोहतक जिला में गाँव निंदाना में पिता चंदाराम और माता भोली देवी के घर डूम जाति में हुआ। हरियाणा में यह जाति मीर और मिरासी आदि नामों से भी जानी जाती है। मिरासी जाति अनुसूचित जाति के अंतर्गत आती है।

जातियों के सामूहिक स्वभाव और प्रकृति के मामले में मिरासी जाति गायन के लिए विख्यात है। गायन कला इस जाति का सामूहिक गुण है। राय धनपत सिंह ने अपने जन्म-स्थान के बारे में बताया है -

गरावड़ खरकड़ा मदीणा बलंभा सब नाम।
तूँ सुणिए सीम जोड़ के गाम।
खेड़ी, महम, भैण, सामायण गौरी।
फरमाणा गूगाहेड़ी जाण गौरी।
खरक बैंसी अजायब भराण गौरी, बीच निंदाणा गाम सै।।[2]

राय धनपत सिंह हरियाणा में एक ऐसी जाति से संबंधित थे जिसकी संख्या बहुत कम है। अन्य अनुसूचित जातियों में भी यह अति पिछड़ी हुई है। सो इस जाति से आकर सांग के क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बनाना एक चुनौतीपूर्ण काम था।

कौरवी क्षेत्र में जहाँ एक ओर बाजे भगत, लख्मीचंद, चंद्रलाल बादी, माँगेराम, रामकिशन व्यास, बलवंत सिंह 'बुल्ली' आदि का सिक्का जम चुका था, वहीं अपने सांगों की उत्कृष्टता, अभिनय कौशल, सुरीले गायन, असरदार आवाज़ और विलक्षण प्रतिभा से राय धनपत सिंह ने अपनी अमिट छाप छोड़ते हुए अपना अलग मुकाम बनाया। यह जहाँ एक ओर राय धनपत सिंह के विराट व्यक्तित्व का द्योतक है, वहीं कौरवी क्षेत्र की जनता की सहृदयता का भी परिचायक है। कौरवी क्षेत्र की सांग-प्रेमी जनता ने उन्हें सिर आँखों बिठाया।

राय धनपत सिंह की जाति में वर्तमान समय में भी शिक्षा का अभाव ही है। उन्होंने उस समय मिडल तक की शिक्षा ग्रहण की थी जो अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि थी। उस समय मिडल पास होना ही बड़ी बात मानी जाती थी। स्कूल में आते-जाते उनका ध्यान सांग-रागनियों की ओर उन्मुख हो गया -

> जमुवा नाम देश म्हं कढ़र्‌या, धनपत सिंह मिडल तक पढ़र्‌या।
> अक्खन काणा चित पै चढ़र्‌या चाली भूल कलाम मेरा।
> तेरे तै पहले मैं जांगा इब डटणा आड़ै हराम मेरा।।[3]

उस समय रोहतक जिले में सुनारियाँ गाँव में जमुवा मीर का बड़ा नाम था। सांग और रागणी विधा में जमुवा मीर की प्रसिद्धि हो चुकी थी। वे लिखते भी थे और गाते भी थे। राय धनपत सिंह अपने अध्ययन के दिनों में ही उनके संपर्क में आ गए और उनको अपना गुरु बनाकर मात्र सत्रह वर्ष की आयु में अपना सांग का बेड़ा बाँध लिया। जमुवा मीर को अपना गुरु बनाने के संबंध में वे लिखते हैं -

> रोहतक तैं परे नैं चल्या गया जहाँ पै बसता सुनारी गाम।
> उड़ै देस्सा और मामन देखै कवि देखै जमवा मीर।
> रामभगत और राजू देखै माँगे देखै सबके पीर।
> वहाँ जमुवा का चेल्या बणग्या मेरै ज्ञान का लाग्या तीर।
> धनपत सिंह हुशियाराँ कै इसे छंद मिलैंगे छीदे।।[4]

जमुवा मीर भारत-पाक विभाजन की विभीषिका के प्रत्यक्ष द्रष्टा थे और उनकी रागणियों में सांप्रदायिक सद्‌भाव कूट-कूट कर भरा हुआ है। यही प्रभाव राय धनपत सिंह पर भी पड़ा। वे अपने गुरु को अपना परीक्षक भी मानते हैं। 'उड़े जमुवा मीर धोरै धनपत सिंह नै छन्द परखवाणे होंगे।'[5] कहकर वे अपने गुरु का गौरव बढ़ाते हैं। राय धनपत सिंह ने अपनी प्रणाली का भी जिक्र किया। वे लिखते हैं -

सेढू के चेले लछमन थे, लछमन के शिष्य गोपाल होये।
गोपाल के चेले शंकरदास, शंकर के माँगे दयाल होये।
माँगे के चेले जमनादास, फेर धनपत सिंह पै खयाल होये।[6]

राय धनपत सिंह की प्रणाली में पहले ज्ञात गुरु का नाम सेढू था। फिर लक्ष्मन, गोपाल, शंकरदास, माँगे दयाल और जमुवा मीर हुए और जमुवा मीर के शिष्य राय धनपत सिंह।

राय धनपत सिंह हरियाणा के एक ऐसे सांगी हुए हैं, जिनके शिष्यों ने उनकी परपंरा को आगे बढ़ाते हुए स्वयं भी सांगों का सृजन किया। वे ऐसे एकमात्र सांगी हैं जिनके शिष्यों ने उनकी प्रेरणा से सांग बनाये और गाए। बंदा मीर, बनवारी ठेल, चंदगी भगाणिया, ठहरो श्याम धरौदी, काच्चा श्याम, जियालाल तथा प्रेमलाल चौहान आदि शिष्यों ने स्वयं लोकनाट्यों की भी रचना की।

राय धनपत सिंह का देहांत दिनांक 29 जनवरी, 1979[7] दिन सोमवार को उनके गाँव निंदाना में हुआ।

राय धनपत सिंह के लोकनाट्य हैं - 'लीलो-चमन', 'बणदेवी', 'बादल बागी', 'रूप-बसन्त', 'ज्यानी चोर', 'हीर-राँझा', 'गोपीचंद', 'नल-दमयन्ती', 'हीरामल जमाल', 'अंजूमन आरा-जान आलम', 'अमरसिंह राठौड़', 'गजनादे शाही मणियारा', 'निहालदे-सुलतान', 'शिलो-अशोक', 'जंगल की राणी', 'सूरज-चाँद', 'सरवर-नीर', 'राजा हरिश्चंद्र सत्यवादी', 'गुल ने सन्हार के साथ क्या किया?'[8]

राय धनपत सिंह ने भी बने बनाए ढर्रे पर चलते हुए अनेक सांग बनाए परन्तु उनके मस्तिष्क की आंतरिक संरचना मजदूर किसानों के पक्ष की थी और उन्होंने कई मौलिक सांग सृजित किये, जिनमें उनका अपना दुख-दर्द अभिव्यक्त हुआ है।

राय धनपत सिंह ने 'बादल बागी' सांग में किसानों-मजदूरों की वाणी का प्रचार किया है। इस सांग में उन्होंने जमींदारों और जागीरदारों के अत्याचारों का पर्दाफाश करते हुए बादल के रूप में आम जनता की बगावत दिखाई है। बादल अपने पिता के मारे जाने का कारण बताता हुआ कहता है कि आप तो महल में बैठे हो, आप किसान के दुख-दर्द के बारे में कैसे जान सकते हो। आपको तो बस खेत का लगान चाहिये। वह उसे 'बेईमान' कहता हुआ बोलता है -

किसान की मुसीबत नै जाणै सै किसान।
लूट-खसोट मचावणियाँ तूँ के जाणै बेईमान।।[9]

राय धनपत सिंह ऐसा समाज चाहते हैं जिसमें अमीर की गरीब के ऊपर किसी भी प्रकार की धौंस ना हो, किसान को रात-दिन अपने खेतों में न खटना पड़े, सरकार का अधिक लगान और भ्रष्टाचार न हो। कुल मिलाकर वह देश एक सुखी देश होता है, जहाँ पर किसान की मूलभूत आवश्यकताएँ आसानी से पूरी हो जाती हों और उसका जीवन उस पर भार ना बने। अफ़सर उनसे अधिक कर ना वसूलें -

गरीबों ऊपर ठाड्याँ का कोय ताण ना चाहिये।
करै दिन-रात घुलाई दुःखी किसान ना चाहिये
मैं समझाऊँ ना समझै इसा अनजाण ना चाहिये।
जो पुगण म्हं ना आवै इसा लगान ना चाहिये।
तूँ पाँच की असूली म्हं करता है पचास।।[10]

'जंगल की राणी' सांग में कांता अपने माता-पिता की अकेली संतान है। उसके माता-पिता किसान हैं। वह लड़की है परन्तु खेत की रखवाली में वह लड़कों से कम नहीं है। वह अपने माँ-बाप का हाथ बँटाती है। कांता की माँ को उस पर गर्व है। वह कहती है -

रोज सुबेरे उठ कान्ता जो खेतां की करै रखवाली।
बेशक जवान हुई मेरी बेटी पर यूँ सै भोली भाली।
रोज खेतां म्हं अच्छे बुरे जाते हैं हाली पाली।
जै कच्ची मन्दी बात होगी तै लोग पीटेंगे ताली।
जो बिदगोई ले ओट आड़े इसा कोये महान नहीं सै हो।[11]

किसान-मजदूर को इस प्रकार की चिंता भी रहती है कि कहीं कोई जारकर्मी उनकी बेटी के साथ ऊँच-नीच न कर बैठे।

राय धनपत सिंह निंदाना सामाजिक पृष्ठभूमि में मजदूर किसान और गरीब समाज से आने वाले कवि थे। उनकी खुली नज़र ने शोषण को तीक्ष्णता से देखा था। इसलिए उनके सांगों में इस शोषण के विरुद्ध आवाज़ अनायास ही आ गई है। वैसे भी शोषित वर्ग समाज का बहुसंख्यक वर्ग है। इसलिए राय धनपत सिंह में क्रांति के बीज मिलते हैं।

जो आदमी कभी स्कूल में नहीं गया, वह ताउम्र मूढ़-गँवार ही बना रहता है। 'लालो-चमन' सांग में चमन की माँ चमन को कहती है -

जो बिना पढ़ाए राक्खै बालक, आगै दुःख भरणिया हो।
गुरुकुल, स्कूल, पाठशाला तैं, बिल्कुल दूर फिरणिया हो।
मूढ़, गँवार बण्या रहै हरदम ना आगै कुछ करणिया हो।
माणस जूनी व्यर्थ गँवाई, पशुवाँ समान मरणिया हो।
कह धनपत सिंह पढ़ाई करकै अज्ञान नींव नै हिला बेटा।।[12]

'कह धनपत सिंह पढ़ाई करकै अज्ञान नींव नै हिला बेटा' में एक कवि की शिक्षा-जनित सम्मान के प्रति सदिच्छा साफ़ जाहिर है। सदिच्छा ही नहीं बल्कि टीस है।

'हीरामल जमाल' सांग में जमाल पहली ही रागणी में कहती है कि मैं बिना पढ़ाई शादी नहीं करवाऊँगी। वह कहती है कि जीवन का सबसे बड़ा आराम शिक्षा से ही है। पढ़ने से व्यक्ति का दृष्टिकोण व्यापक होता है और उसे जीवन की स्थितियाँ-परिस्थितियाँ अधिक स्पष्टता से समझ आती हैं। जमाल का कथन लोगों में शिक्षा का महती संदेश देता है -

पढ़ने कैसा दुनियाँ म्हं आराम नहीं सै।
ईमान म्हं ख्वारी का कोये काम नहीं सै।
ह्यूँ जिंदगी वार कुरान पै, ल्यूं आपा मार कुरान पै।
मैं ना करवाऊँ शादी।[13]

राय धनपत सिंह एक ऐसे लोक कलाकार हैं, जो अपने प्रभावक श्रोताओं को शिक्षा का महत्-संदेश देते हैं। वे शिक्षा द्वारा ही समाज की बेहतरी देखते हैं।

इनका 'लीलो-चमन' सांग भारत-पाक बँटवारे के बीच प्रेम की शाश्वतता का सांग है। इस सांग में विभाजन के बाद लीलो को एक मुस्लिम परिवार जबर्दस्ती पाकिस्तान में ही रख लेता है तथा भारत में एक उमेश नाम का हिन्दू लड़का शमाँ नाम की मुस्लिम लड़की को रख लेता है। इस प्रकार यह सांप्रदायिकता महिलाओं के लिए और क्रूर वातावरण सृजित करती है। भारत-पाक विभाजन के बाद अनेक मुस्लिम परिवार भारत में रह गए तथा अनेक हिन्दू परिवार पाकिस्तान में रह गए। भारत में रहे मुस्लिम तथा पाकिस्तान में रहे हिंदुओं के लिए यह सांप्रदायिकता एक अलग किस्म की परिस्थितियाँ लेकर आती है। विभिन्न अवसरों पर उन्हें उनकी नागरिकता के लिए सोचने पर मजबूर किया जाता है। उन्मादी लोग मार-काट तक करने में गुरेज नहीं समझते।

जमुवा मीर, राय धनपत सिंह, बंदा मीर इस सांप्रदायिकता के स्वयं भुक्त भोगी रहे। भारत पाक विभाजन में बंदा मीर तो पाकिस्तान ही चले गए थे, परन्तु भारत से जुड़ी उनकी टीस कभी शांत नहीं हुई। उन्होंने पाकिस्तान जाकर कौरवी लोकनाट्य परंपरा को जीवित रखा।

इस सांप्रदायिकता का सबसे क्रूरतम पक्ष उस समय उभरकर सामने आता है कि जब संप्रदाय विशेष का व्यक्ति अपने मानवी अस्तित्व को बचाने के लिए अपना नाम तक बदलने के लिए मजबूर होता है। उसके दर्द का उस समय अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

कवि की आँखों से भारत-पाक विभाजन जनित त्रासदी मिटाए नहीं मिट रही। उन्होंने अपनी आँखों से इस मारकाट के दृश्य देखे थे। 'लीलो-चमन' सांग का चमन इस विभीषिका में अपनी जान हथेली पर रखकर पाकिस्तान से लीलो को लेकर आया था। कवि धनपत सिंह इस सांप्रदायिकता की आग को समय का क्रूरतम कृत्य स्वीकार करते हैं। लाहौर से भारत आगमन में चमन के भाई किशन जैसे पता नहीं कितने लोग केवल पानी के न मिलने के कारण प्राण त्याग गए। लोकनाट्यकार लिखता है -

दिल डटता ना सिंधु।
छुटग्या कुटुंब कबीला बंधु।
हिंदू-मुस्लिम अदना आला दुखी समो नैं देश कर्या।।[14]

संप्रदाय की अपेक्षा राय धनपत सिंह जी व्यक्ति और उसके जीवन आनंद को अधिक महत्त्व देते हैं। व्यक्ति अपना विभाजन ईश्वर या अल्लाह के नाम पर न करें। व्यक्ति व्यक्ति से व्यक्ति होने के नाते प्रस्तुत हो तथा हर व्यक्ति दूसरे के विश्वासों का सम्मान करे।

राय धनपत सिंह छापकटैयों को 'बेईमान' की संज्ञा देते हैं। जब लोगों को सच्चाई का पता चलता है तो वे ऐसे छापकटैयों को तिरस्कार की नज़रों से देखते हैं। ऐसे लोग कहीं भी सम्मान नहीं पाते हैं। स्वयं राय जी के शब्दों में -

काट-छाँट कै कोय और का गाना गाता है।
दूसरे की छाप काट जो अपनी छाप लगाता है।
सारी दुनिया थुक्कै उसनै वो कहीं नहीं मान पाता है।
बेइज्जती हो सभी जगह न्यूं धनपत सिंह बताता है।
जिसका मान-सम्मान गया बता और उस पै के रह्या।।[15]

पं. माईराम -

पं. माई राम का जन्म पं. प्रभुदत्त और पूनम देवी के घर गाँव अलेवा, जिला जींद, हरियाणा में 29 दिसम्बर 1886 को हुआ था। तरुणावस्था में ही ये कविता लिखने लगे थे। माईराम ने 'फूलवती' (दो भाग), 'उदयभान संतोष कुमारी', 'जानी चोर', 'रूपकला जादूखोरी', 'हीरामल जमाल', 'च्यवन ऋषि', 'चंद्रहास', 'सत्यवान सावित्री', 'सोमवती-चापसिंह', 'उषा अनिरूद्ध', 'श्यामकला खिणने वाली', 'सरणदे नाई की' और 'अजीतसिंह राजबाला' आदि लोकनाट्य लिखे।[16]

देख-रेख व रखरखाव के अभाव में इनके अधिकतर सांग विलुप्त हो गए। ये भी छापकटैयों का शिकार हुए। इनके लोकनाट्यों की अनेक रागनियाँ दूसरे कवियों के नामो से गाई जाती हैं।

'उदयभान संतोष कुमारी' लोकनाट्य में उन्होंने अपना परिचय कुछ यूं दिया है -

तीस कोस करनाल से नगर अलेवा गाम।
घर बैठे कविता करै श्री पंडित माईराम।।[17]

माईराम ने सांगों की मात्र रचना की। इन्होंने उनका मंचन नहीं किया। 'घर बैठे कविता करै' से यही ध्वनित भी होता है। इसी सांग से उनका चमोला भी दर्शनीय है -

सुन्दरगढ़ के बीच म्हं हुए मानसिंह महाराज।
उदयभान थे लाडले करैं थे धर्म के काज।
करैं थे धर्म के काज भूप को प्रजा दिल से प्यारी थी।
शत्रु के हमले के कारण की युद्ध की त्यारी थी।
भूप ने करी लड़ाई, कोन्या दहशत खाई।
होणी है बलवान भूप के मौत शीश पर भी छाई।।[18]

सांग की कहानी लोककथा के समान काल्पनिक है। राजा मानसिंह के मरने के बाद वजीर जगतसिंह ने मानसिंह की पत्नी को जेल में कैद कर दिया तथा राजकुमार उदयभान को जल्लादों के हवाले कर दिया। वे उसे जंगल में फेंककर चले आए। वहाँ से एक निस्संतान माली उसे अपने घर ले आया। जब वह जवान होता है तो संयोग से जगत सिंह की पुत्री से ही उसका प्रेम हो जाता है। जगत सिंह क्रोधित होकर दोनों को ही अपने राज्य से निकाल देता है। बाद में बड़े नाटकीय अंदाज में दोबारा राज्य उदयभान को प्राप्त होता है। इस सांग में कई रागनी मार्मिक बन पड़ी हैं।

जब रानी पद्मा से उसका पुत्र उदयभान बिछड़ जाता है तो वह किस प्रकार विलाप करती है। उस समय की रागनी की चौथी कली दर्शनीय है -

पाप करण तै पापियो इब आगे तै डरियो।
हे भगवान जवान उमर म्हं रांड ना करियो।
और सभी दुख उट ज्यां मेरा कहण चित धरियो।
हे ईश्वर विधवा औरत का बेटा ना मरियो।
माईराम कहै बेटा बिन झूठ जगत का सार।।[19]

माईराम अपने समय के सुविख्यात लोकनाट्यकार थे। इन्होंने लोकनाट्य की विषयवस्तु, रागनी का शिल्प ओर कला के रूप में लोकनाट्य की प्रस्तुति विशेष पर ध्यान दिया। इनके संरक्षण में अनेक लोकनाट्यकारों ने शिष्यत्व ग्रहण किया। हरियाणा के सुप्रसिद्ध सांग रामकिशन व्यास इन्हीं के शिष्य थे। "परंपरागत रूप से रचनाकार स्वयं अभिनय कर सांगों का प्रदर्शन करते रहे हैं। परंतु पं. माईराम की मान्यता थी कि कुशल निर्देशन के बिना किसी भी कला का समुचित विकास और सफल प्रदर्शन संभव नहीं। अतः उन्होंने मंझे हुए कलाकारों की सशक्त मंडलियाँ तैयार कीं और स्वयं अभिनय न करके अपने निर्देशन के माध्यम से सांग मंचित करवाए।"[20]

इनका देहांत 10 मई, 1964 को हुआ।

पं. माँगेराम -

पं माँगेराम इस काल के अद्भुत हरफनमौला लोकनाट्यकार हुए। उनका जन्म सन् 1905 में जुलाई मास में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था।[21] उनके पिता का नाम अमरसिंह था। उनका गाँव जिला सोनीपत में सुसाना था। उनके पिता के पास खेती के लिए काफी जमीन थी। वे अपने पिता की ज्येष्ठ संतान थे। बचपन में ही उनके नाना ने उन्हें गोद ले लिया। उनके यहाँ कोई पुत्र ना था। इस प्रकार पं. माँगेराम का बचपन और युवावस्था पाणची गाँव, जिला सोनीपत में बीती।

स्कूली शिक्षा में उनकी कोई रुचि न थी। प्राथमिक शिक्षा तक पढ़कर उनका ध्यान पूरी तरह संगीत की ओर हो गया। प्रारंभिक दिनों में उन्होंने मोटर गाड़ी भी चलाई। परंतु इनका मन गीत-संगीत में ही अधिक रमता रहा। उन दिनों पंडित लखमीचंद के सांगों की धूम मची हुई थी। ये जैसे ही अवसर पाते उनके सांग देखने पहुँच जाते। उन्होंने पं. लखमीचंद को ही अपना गुरु बनाया। गुरु-स्मरण संबंधित

उनका काव्यांश दर्शनीय है -

मनै सुमर लिए भगवान।
लखमीचंद सतगुरु मिले, जिनतै पा लिया ज्ञान।[22]

x x x

सारी दुनिया न्यूं बूझै, तनै किसतै सीख्या गाणा।
माँगेराम बताके छिक लिया, जाँटी मिल्या ठिकाणा।
रहूं पाणची, गाँव ससाणा, म्हारा रोहतक का जिला।
सारा भेद बता दे नै तू किस नै जणी शकुंतला।[23]

इनका सांग में अभिनय का भी अकस्मात् अवसर था। एक बार संवत् 1990 (सन् 1933) में सरसा गाँव में लखमीचंद का सांग शुरू होने ही वाला था कि नायिका की भूमिका निभाने वाला उनका शिष्य पं. माईचंद भाग गया तो एक विकट समस्या खड़ी हो गई।

साई अच्छी तगड़ी थी, दूर-दूर से दर्शक आए हुए थे। ऐसी स्थिति में पं. लखमीचंद के कहने पर इरादा ना होते हुए भी पं. माँगेराम ने नायिका की भूमिका (स्त्री वेश में) निभाई। अब से पहले ये पं. लखमीचंद के प्रेमी थे। इस घटना के बाद उनके शिष्य बन गए। उस पहले ही आकस्मिक अभिनय में ये ऐसे जमे कि जन जन की जिह्वा पर इन्हीं का जिक्र होने लगा। इस प्रसंग को पं. माँगेराम ने अपने सांग 'सरवर-नीर' की एक रागनी में इस प्रकार संजोया है -

सरसा के मांह सांग करै था नबिये आळीं रौ म्हं।
पहलम झटके रल्या सांग म्हं घर के आगे छोंह म्हं।
फेर घर तै मैं चाल्य पड़्या लिया कलाहवड़ टोह म्हं।
लखमीचंद की मेहर फिरी मनै करग्या दर्जे दो म्हं।
माँगेराम बीर के मोह म्हं बैठ गया घरां घिरकै।[24]

इस प्रकार इनकी सांग में अभिनय की शुरुआत हुई। किस्सा यह भी है कि पं. लखमीचंद और पं. माँगेराम का झगड़ा भी हुआ था और पंडित माँगेराम ने उन्हीं के सामने प्रण कर लिया था कि आज के बाद उनकी रागनी ही नहीं गानी। उसके बाद पं. माँगेराम ने स्वयं के सांग रचे और गाए। पं. माँगेराम सृजनशील प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने जो सांग बनाए, वे लोक के अधिक निकट हैं। लोक उनमें अपने घर परिवार के वातावरण को महसूस करता हुआ साधारणीकरण से जुड़ जाता है। पं.

लखमीचंद के लोकनाट्य पूरी तहर से स्मृतियों, पुराण और वेद शास्त्रों पर आधारित थे, परंतु पं. माँगेराम ने लौकिक कथाओं पर सांगों की रचना की। उन्होंने पौराणिक कथाओं को भी निहायत लौकिक बनाकर प्रस्तुत किया। उनके लोकनाट्य हैं - 'कृष्ण जन्म', 'धुरू भगत', 'प्रहूलाद भगत', 'पूर्ण भगत', 'शिवजी का ब्याह', 'रूप बसंत', 'सरवर नीर', 'गोपीचंद महाराज', 'पुरंजन पुरंजनी' आदि धर्म प्रधान, 'लैला मजनूं', 'हीर रांझा', 'भरथरी पिंगला', 'हूर मेनका', 'नवरत्न', 'शकुंतला, 'हीरामल जमाल', 'खांडा राव परी', आदि शृंगार प्रधान तथा 'जैमल फत्ते', 'अमरसिंह राठौड़', 'अजीतसिंह राजबाला', 'चापसिंह', 'नर सुल्तान', 'समरसिंह राजपूत', 'हंसबाला, राजपाल', 'महकदे ज्यानी चोर' और 'सहल बाला' आदि वीर रस से ओत-प्रोत सांगों की रचना की।[25]

पं. माँगेराम ने जो लोकप्रियता हासिल की उसके पीछे इनके सांगों की विषय वस्तु का विशेष योगदान रहा। ये कथा में मार्मिक प्रसंगों के धनी सांगी थे। इनका 'पिंगला भरथरी' सांग एक सोद्देश्य सांग है जिसमें उन्होंने दिखाया है कि एक जारिणी हँसते-खेलते राजपरिवार का बंटाधार कर देती है। भरथरी की पत्नी पिंगला अपने ही सहीस के साथ जार-कर्म में लिप्त थी। उसका छोटा देवर बालक विक्रम उन्हें देख लेता है। अपने भाई से शिकायत करता है परंतु पिंगला उसी के खिलाफ अपने पति को भड़का देती है। भरथरी विक्रम को घर छोड़कर चले जाने के लिए कहता है तो उस समय की रागनी लोगों की आँखों में आँसू ला देती थी -

भाई रै मेरे लाड करणिया मरगे।
पिंगला भाभी मेरे मारण आई।
मनै सोची पुचकारण आई।
मेरी आबरू तारण आई।
भाई रै मेरै लोग चुगरदे घिरगे।[26]

भरथरी पत्नी पिंगला के प्रति इतना अंधविश्वासी था कि उसे विक्रम की बात पर तनिक भी विश्वास नहीं हुआ और वह विक्रम को दिसोटे की अपनी बात पर अडिग रहता है। तो विक्रम जाते हुए उसे चेताता है कि जारिणी स्त्रियाँ घर को बर्बाद कर देती है -

आज का बोल्या याद राखिए विक्रम भाई का।
दुनिया म्हं तै खो देगा, भरथरी बहम लुगाई का।[27]

इसी प्रकार जार-कर्म की कहानी 'रूप-बसंत' की भी है। इसमें रूप की विमाता

अपने ही सौतेले पुत्र पर जार-कर्म का दबाव बनाती है। रूप संबंधों की मर्यादा की दुहाई देता हुआ कहता है कि वह उसकी माँ समान ही है। परंतु उसका जवाब घर संस्था की बर्बादी का जवाब है -

ना मैं मौसी ना तू बेटा कर मन का चाया।

आगे क्यूं ना कदम डालता, इश्क करण की क्यूं ना सालता।
सांस चालता दीखै धड़ म्हं, भर्‌या रस केले की घड़ म्हं।
आज्या बैठ पिलंग पै जड़ म्हं जब हो आनंद काया।
मेरै छिड़ रही इश्क बीमारी, खिलरी केसर कैसी क्यारी।
सारी उम्र रहै दुख भरणा, बूढ़े पति का लेरी सरणा।
कर दे जो कुछ चाहूं करणा तेरी ही धन माया।[28]

जहाँ यह सांग जारिणी के कुकर्म का सांग है, वहीं बेमेल विवाह का भी उदाहरण है।

पं. माँगेराम की अनेक फुटकर रागनियाँ लोक का कंठाहार बन गईं, यथा

गंगा जी तेरे घर पै गड़े हिडोले चार।
कन्हैया झूलते संग रुक्मण झूल रही।[29]

दिनांक 16 नवंबर, 1967 को इनका देहांत हो गया। इनके शिष्य सांगी जयनारायण ने उनके देहांत के समय एक श्रद्धांजलि रागनी में इसे कुछ इस प्रकार बयान किया है -

सोला तारीख आठ बजे सी जिकर चलावण लागे।
बुद्ध की माँ नै सुपना आया, न्यू समझावण लागे।
एक सोने का दिया पहाड़ दिखाई, न्यू बतलावण लागे।
एक हाथी नै आकै पहाड़ का चक्कर एक लगाया।।
चक्कर चार लगे कहकै लड़का, एकदम दहाका खाग्ये।
प्राण खींच लिए ऊपर नै, सिर नीचे नै आग्ये।
लगा समाधि तुरिया पद की, आगै सोचण लाग्ये।
दसवें द्वार मैं पहुँच गए आगै लखमीचन्द पाग्ये।
वो चरण पकड़ कै गेल्यां हो लिया, उल्टा कोन्या आया।।[30]

ठहरो श्याम धरौदी -

ठहरो श्याम धरौदी का जन्म 7 जनवरी, 1931 को पिता माल्लाराम के घर मिरासी (डूम) जाति में गाँव धरौंदी जिला जींद, हरियाणा में हुआ।[31]

अल्पायु में ही ये राय धनपत सिंह के सांग में अभिनय करने लगे थे और बड़े रकाने की भूमिका में बहुत फबते थे।

ये 10 वर्ष की आयु में राय धनपत सिंह के बेड़े में शामिल हो गये। इन्होंने उनके बेड़े में लम्बे समय तक बड़ा रकाना (मुख्य नायिका) का अभिनय किया। स्त्री के वस्त्र इन पर खूब फबते थे और सांग में पूरी तरह से स्त्री पात्र में रम जाते थे। यही कारण था कि राय धनपत सिंह के ये प्रिय शिष्य थे। राय धनपत सिंह बीच-बीच में 'ठहरो श्याम' शब्द उच्चारते थे। इन शब्दों का लोगों पर ऐसा प्रभाव पड़ा था कि ये लोगों की जुबान पर चढ़ गया था।

अपना अलग बेड़ा बाँध लेने के उपरांत भी अपने गुरु में इनकी श्रद्धा कम नहीं हुई थी। बल्कि ये उन्हें अपने गुरु के रूप में पाकर उपकृत व कृतकृत्य महसूस करते थे। वे अपनी कला की उत्कृष्टता के लिए अपने गुरु धनपत सिंह की अपने ऊपर नज़र को मानते हैं। और उनका कवित्व गुरु का दिया हुआ वरदान समझते हैं -

धनपत सिंह नै श्यामलाल पै नज़र मेहर की फेरी रै।
तोल सिखा दिया मेरे गुरु नै दई सौंप ज्ञान की ढेरी रै।
ले सतगुरु का वरदान करी कविताई रै।[32]

उनके मन में घमंड का लेशमात्र भी अंश नहीं होता। 'लैला-मजनूं' सांग में कवि श्याम स्वयं को मामूली-सा सांगी बताता हुआ अपनी रागनी पर गर्व भी करता है -

मामूली-सा सांगी सै हे घड़ै रागणी चाळे की।
म्हारे महल म्हं करै बड़ाई श्याम कर्मगढ़ आळे की।
गई लाग रेख म्हं मेख।।[33]

ठहरो श्याम धरौदी ने अपने अल्प जीवन-काल में छह सांगों की रचना की - 'जंगी बहादुर', 'रूप-बसंत', 'सुन्दरी मोहनी भाग एक', 'सांग सुन्दरी मोहनी भाग दो', 'दीपक सलोनी', 'लैला मजनूं'।

'लैला मजनूं' सांग बहुत ही मार्मिक सांग बन पड़ा है। इस सांग में दोचश्मी रागनियों से पात्रों में मनोभावों का उतार-चढ़ाव साफ देखने को मिलता है। ठहरो श्याम धरौदी दोचश्मी रागनियों के माहिर कलाकार है।

इन सांगों के अतिरिक्त उन्होंने 'हीर-रांझा', 'जानी चोर' और 'लीलो-चमन'

सांगों का भी सर्जन किया था। परंतु प्रलेखीकरण के अभाव में वे लुप्त हो गए।

मात्र 31 वर्ष की अवस्था में 8 अप्रैल सन् 1962 को इनका देहांत हो गया।[34] इनकी रागनी की बनावट को देखकर लगता है कि उनका अल्पायु में चला जाना लोकसाहित्य और विशेषकर सांग विधा में अपूर्णीय क्षति है। यदि उन्हें कुछ और समय मिल जाता तो वे सांग साहित्य में अमूल्य वृद्धि करते।

ठहरो श्याम धरौदी बेहद पारिवारिक निष्ठा के सांगी हैं। सत्य, निडरता, विनम्रता, देश-प्रेम, सहयोग, परस्पर सम्मान और आचरणगत नैतिकता उनके सांगों में कूट-कूट कर भरी हुई है। वे अपने दर्शकों का मात्र मनोरंजन ही नहीं करते, अपितु उनमें जीवनोपयोगी सार भी झलकता है। वे हरियाणा के एक महती सांगी हैं। उनके सांगों में तथाकथित पौराणिक ज्ञान की अपेक्षा लौकिक उद्‌भावनाएँ प्रकट हुई हैं, जो लोक की सही मायनों में धरोहर हैं। लोक के आसपास की अनुभूतियाँ, जहाँ पारिवारिक संबंध हैं, नैतिकता है, श्रम है, खेत-खलिहान हैं, परस्पर व्यवहार है। यदि ये चीज़ें सांगों में नहीं हैं तो फिर वह कैसा लोकसाहित्य है? इस दृष्टि से ठहरो श्याम धरौदी एक परिपक्व सांगी के रूप में उभरते हैं।

सांगी बनवारी ठेल -

बनवारी ठेल का जन्म छालूराम और उमदा देवी के घर सन् 1928 में गाँव मदीना, तहसील गोहाना, जिला सोनीपत, हरियाणा में हुआ।[35]

यह समय सांग के उत्कर्ष का समय था। मात्र 14-15 वर्ष की आयु में 1943-44 में उन्होंने राय धनपत सिंह निंदाना के बेड़े में प्रविष्टि पाई। लगभग 10 वर्ष तक वे उनके बेड़े में बहुत ही प्रभावशाली भूमिकाएँ निभाते रहे। उनकी कद-काठी, वाणी और अभिनय इतना अनुभवपरक था कि इनके गुरु राय धनपत सिंह निंदाना अनेक अवसरों पर उनको ‘ठेल’ कहने लग गए थे। जिसके कारण उनके नाम के आगे ‘ठेल’ उपनाम ही जुड़ गया।

लगभग 1953-54 के आसपास इन्होंने अपना स्वतंत्र बेड़ा बाँध लिया। और लगभग तीन दशक तक सांग का परचम लहराया। गुरु धारण करने के बाद स्वतंत्र बेड़ा बाँध कर ही कोई कवि अपने मौलिक सांग रचने प्रारंभ करता था। यह एक सृजनशील सांगी के लिए अनिवार्य नियम-सा बन गया था कि यदि कोई अपने बनाए हुए सांगों का मंचन करता था तो उसे अधिक प्रसिद्धि मिलती थी। हालांकि ऐसे भी अनेक सांगी हुए है, जिन्होंने अपने सांगों का सृजन नहीं किया। वे सारी उम्र दूसरों के ही सांग का मंचन करते रहे। कला की दृष्टि से उनका महत्त्व तो है,

परंतु प्रसिद्धि की दृष्टि से वे सृजनशील सांगियों की अपेक्षा कमतर ही रहते हैं।

लगभग 55 वर्ष की आयु में दिनांक 3 अगस्त 1983 को उनका देहांत हो गया।[36]

सांगी बनवारी लाल ने अपने जीवन-काल में दो दर्जन से भी अधिक सांग निर्मित किए। जिनमें से प्रलेखीकरण न होने के कारण कुछ सांग तो काल-कवलित हो गए। वर्तमान समय में इनके प्राप्त सांग हैं - 'राजा अनंगपाल', 'राजा हरिश्चंद्र', 'रामसिंह डाकू', 'कांता देवी', 'राजा भोज - चंद्रकला', 'राजा रघबीर', 'हीरामल-जमाल', 'कृष्णा देवी - फूल बहादुर', 'सम्राट अशोक', 'चंद्रगुप्त-जहाँनारा', 'शीरीं-फ़रहाद', 'विराट पर्व' आदि।

बनवारी ठेल जी ने सांगों की सृजना कुछ इस रूप में की है कि वे परिवारों में आचरणगत घटा-बधी के बारे में अपने दर्शकों व श्रोताओं को जानकारी दे सकें। वे स्त्री व पुरुष के आचरण में नैतिकता के प्रबल हिमायती थे। इसी कारण वे घर-घर के सांगी सिद्ध होते हैं।

कवि बनवारी लाल ठेल कहते हैं कि भारत में बसने वाले सभी जातियों, धर्मों और संप्रदाय के लोगों में सभी के प्रति प्रेम, सौहार्द और एकता की भावना है। वे एक भारतीयता से जुड़े हुए हैं। सभी मिलकर बाहरी दुश्मनों के षड्यंत्रों से अपने देश को बचाएँगे। कवि का आदर्श दर्शनीय है -

हिंदू-मुस्लिम-सिख-ईसाई एक आवाज़ हमारी।
एक लाइन म्हं खड़ी रहे भारत की जनता सारी।[37]

यह वास्तव में कवि-कर्म का सफल निर्वहन है। जो हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई को भारत की जनता की संज्ञा देता है। यह भारतीय संविधान की प्रस्तावना का लौकिक रूप है। कवि ने पाकिस्तान की कारगुजारियों का भी लौकिक पर्दाफाश किया है। कवि उसे 'करेलिया' कहता है। करेलिया गिरगिट का लौकिक नाम है। जिस प्रकार गिरगिट रंग बदलता है, उसी प्रकार पाकिस्तान भी भारत के खिलाफ दुष्प्रचार व कारगुजारियों में रंग बदलता रहता है। कवि का कहना है कि कश्मीर शत-प्रतिशत भारतीयों का है। यदि पाकिस्तान नहीं मानता है तो भारतीयों के हौसलों से उसे पस्त होना ही होगा। क्योंकि भारतीयों की सेना निडर एवं वीर है। कवि बनवारी ठेल का कहना है -

जिसा करेळिया होया करै पाकिस्तान का रंग सै।

घड़ी म्हं कुछ और मिंट कुछ इसा बेईमान का ढंग सै।
सब माँगे हथियार तोड़ दिए चवालीस सेरा नंग सै।
एक बै की चाहे सौ बै की कश्मीर हमारा अंग सै।
जंग म्हं चढ़ कै बढ़ै हौसला हिन्दी वीर खिलारी।।[38]

बनवारी ठेल अपने समय की चश्मदीदी रागनियों के जनक है। जहाँ एक ओर उन्होंने शासन-प्रशासन की दरिंदगी और भ्रष्टाचार का वर्णन किया है, वहीं उन्होंने देश को जाति-धर्म के नाम पर तोड़ने वाली ताकतों को भी फटकार लगाई है। और उन्हें कहा है कि यदि व्यक्ति किसी भी धर्म संप्रदाय व जाति का हो, उसकी सबसे बड़ी पहचान भारतीय होने की है। उसकी राष्ट्रीय चेतना पाकिस्तान द्वारा भारत में किए जा रहे हस्तक्षेप पर भी जाती है। भारत के अंदरूनी विभाजनकारी ताकतों पर भी जाती है। बनवारी ठेल एक विस्तृत फलक के कवि थे।

भारतीय संविधान ने प्रत्येक भारतीय के लिए शिक्षा की व्यवस्था की है। आज़ादी के तुरंत बाद बेतहाशा स्कूल खोले गए। शिक्षा एक ऐसा करिश्मा है जिसके माध्यम से निर्धनतम व्यक्ति भी अपनी स्थिति में बदलाव कर सकता है। कम से कम अपने संवैधानिक हक की माँग कर सकता है। गरीब व्यक्ति को शिक्षा से ही सबसे अधिक मदद मिलती है -

होई विद्या तै सुणाई सबतै बाध गरीबां की।
जिनै फंदे म्हं तै काया करी आज़ाद गरीबां की।
जिनै काफी दे दी रकम करी इमदाद गरीबां की।
कई पीढ़ी सुख पावै आस औलाद गरीबां की।
आज गरीबां के देखो कमरे सुधां अटारी होगे।[39]

बनवारी ठेल आज़ादी के बाद देश के हर विकास की प्रक्रिया के प्रत्यक्ष-द्रष्टा कवि थे। उन्होंने योजनाओं के क्रियान्वयन और उनसे समाज में होने वाले बदलाव को खुली आँख महसूस किया था।

बनवारी ठेल परिवार में रचे-बसे सांगी थे। जब वे सांगों में किन्हीं संबंधों का वर्णन करते हैं तो वे उन संबंधों में गहरे पैठ कर मनोविश्लेषणात्मक वर्णन करते हैं, जिससे वे यथार्थ रूप में उभर कर सामने आते हैं। कवि की विश्वसनीयता अपने पाठकों व दर्शकों में और प्रगाढ़ हो जाती है। इस आधार पर बनवारी ठेल हरियाणा के एक विश्वसनीय और ठेल रूप में अवतरित होते हैं।

कवि देईचंद -

इनका जन्म मामचंद डाभला के घर 10 फरवरी सन् 1931 को गाँव सांखोल, जिला झज्जर, हरियाणा में धानक जाति में हुआ।[40] जब इनका जन्म हुआ उस समय झज्जर तहसील थी और वह रोहतक जिले में आती थी। कवि ने अपने जन्म स्थान का परिचय इन पंक्तियों में दिया है -

देईचंद सै नाम कंवर का जगह बता द्यूँ नर की हो।
काणोंदा कुलासी आसोदा तहसील लगै झज्जर की हो।
रोहतक जिला बहादुरगढ़ धोरै सांखोल गाँम बतावै।[41]

इनकी पत्नी का नाम सरबती देवी था।

कवि देईचंद ने देसराज को अपना गुरु बनाया। देसराज स्वयं सांगी थे और उनके गुरु का नाम था - जमुआ मीर। यह वही प्रणाली है जिसमें राय धनपत सिंह निंदाणा आते हैं। राय धनपत सिंह निंदाणा और देसराज दोनों गुरु भाई थे। वे दोनों जमुआ मीर के शिष्य थे। देईचंद को अपने जमुआ मीर की प्रणाली से होने पर फक्र है और यह फक्र उनकी कविताई में इत्र-तित्र बिखरा हुआ मिलता है। उन्हें अपने गुरु और दादा गुरु पर गर्व है। वे अपनी प्रणाली पर गर्व करते हैं -

गुरु देसा बिन देईचंद का कदे भी मिटता भ्रम नहीं।
इस भगत प्रणाली का नाम कड़ै था दादा जमुवा मीर बिना।[42]

देईचंद का मानना है कि बिना गुरु के सांग के क्षेत्र में चने चबाने के समान है। जो बिना गुरु के होते हैं, उन्हें सफलता नहीं मिलती जबकि गुरु की शरण में आने से तमाम कठिनाइयाँ समाप्त हो जाती हैं -

जिसपै मेहर गुरु की होज्या दुनियाँ म्हं आनन्द लूटै।
सुगरा चेला रोशन होज्या नुगरे की किस्मत फूटै।
जिसकी सूरत गुरु म्हं बसज्या तोड़े तै भी ना टूटै।
गुरु देसराज तै ले ज्ञान देईचन्द अमृत रस करकै घूंटै।
जिसकै लागै छूटै कोन्या खटक सांग के धन्धे की।[43]

इनका देहांत लगभग 50 वर्ष की उम्र में 18 नवंबर सन् 1981 को गाँव सांखोल में हुआ। इनके शिष्य मा. सूबे सिंह ने उनकी तेरहवीं पर एक कविता के माध्यम से उनके देहांत का डोक्यूमेंटेशन किया है। पूरी रागणी यह है -

माह मंगसर बदी तीज भाई बुधवार का दिन सुणो करकै ध्यान
विक्रम संवत 2038 मेरे गुरु करगे प्रस्थान।[44]

कवि देईचंद मूलतः सांगी थे। वे एक धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति भी थे। इसलिए उन्होंने कई फुटकड़ रागणियाँ भी लिखीं। उनके लोकनाट्य हैं - 'राजा हरिश्चंद्र', 'गजना शाही मनियारा', 'चापसिंह-सोमवती', 'नौटंकी', 'सत्यवती', 'मदनपाल-चंद्रप्रभा', 'हीर-रांझा', 'चंपाकली', 'विराट-पर्व', 'विषकम्मा', 'चंपकलता-रणधीर', 'चंदना', 'चंद्रकला और ऊखां' आदि।

वर्ण और जाति की विभीषिका भारतीय समाज का कटु सत्य रही हैं। कौरवी क्षेत्र के लोकनाट्य भी इससे अछूते नहीं रहे। हरियाणा के समाज में भंगी जाति के प्रति घृणा उत्पन्न करने का इस सांग से बढ़कर और कोई अन्य हथियार नहीं हो सकता। रानी तारावती जाति-पाँति को बरकरार रखने में ही सबसे बड़ा धार्मिक आचरण समझती है। उसका उसके पति के प्रति क्या धर्म है यह बात गौण है। उनका संवाद दर्शनीय है -

हरिश्चंद्र : हाथ घड़े कै ला दे राणी करकै दया नर्म की।
तारावती : जो तेरे हाथ घड़े कै ला द्यूं खुलज्या गांठ भरम की।
ना करूँ धर्म की हार।
हरिश्चंद्र : मेरे फेर्यां की गुनाहगार।
तारावती : धर्म बिगड़ज्या ब्राह्मण का तू सहम करै तकरार।[45]

राजा हरिश्चंद्र वरणा नदी पर पत्नी को देखकर अत्यधिक प्रसन्न होता है परन्तु तारावती उसे उसकी औकात याद दिला देती है कि वह भंगी के घर पानी भरने का काम करता है और वह स्वयं एक ब्राह्मण के घर नौकरानी होने के कारण उससे श्रेष्ठ है। रागणी में उनके मनोभावों को देखा जा सकता है -

तारावती : बरणा पै दर्शन होगे पिया भटकूं थी कई दिन की।
हरिश्चंद्र : मेरी अभिलाषा मिलने की थी करी हरि नै मन की।
तारावती : अविनाशी की मेहर मेरे पै ठीक बख्त कट रहा सै?
हरिश्चंद्र : म्हारी तै देखी जागी राणी तेरा तै दुख मिट रहा सै।
तारावती : मैं ब्राह्मण के घर करूँ गुजारा तूँ भंगी कै डट रहा सै।
हरिश्चंद्र : कोन्या खोट कसूर किसी का कर्मां का बँट रहा सै।

तारावती : किन्नर यक्ष देव गंधर्व वोहे टेर सुणा करै जन की।

हरिश्चंद्र : तेरी पाँचूं उंगली घी म्हं वो मेरी कोन्या सुणै निर्धन की।[46]

राजा हरिश्चंद्र भी पत्नी से वार्तालाप में भंगी के घर नौकरी को 'ध्याड़ा भरणा' कहता है। 'तू ब्राह्मण कै मैं भंगी कै पड़ै भरणा ध्याड़ा होग्या' में इस वर्ण व्यवस्था में राजा हरिश्चंद्र की विवशता को समझा जा सकता है।

देईचंद ने अनेक मार्मिक प्रसंग अवतरित किए हैं। इनके कई सांग तो बेहद संवेदनशील हैं। 'राजा हरिश्चंद्र' सांग में कई प्रसंग हैं जिन्हें देख सुनकर व्यक्ति भावुक हुए बिना नहीं रह पाता। इस सांग में जब तारावती अपने बेटे रोहताश को ब्राह्मण के लिए फूल तोड़ने के लिए भेजती है तो अपशकुन होने लग जाते हैं। 'रोहताश बाग म्हं फूल तोड़ने चाल्या' रागणी रोहताश के साथ भविष्य में घटित होने वाली अनहोनी का संकेत देती है। रोहताश को जब साँप डस लेता है उस समय रानी तारावती को अपना सब कुछ लुटा हुआ-सा प्रतीत होता है। वह अपने पुत्र को बार-बार बोलने के लिए कहती है -

जळग्या तेल रहूया ना बाती म्हं, छुपग्या चाँद निखण्ड राती म्हं।
हुए मेरी छाती म्हं साल।
तेरे बिन लाल तड़पती रहगी, आज मेरी बुर्ज किले की ढहगी
मेरे तन म्हं बहगी भाल।[47]

तारावती विलाप करती है तो उसके रुदन का साधारणीकरण हो जाता है। उस अवसर की मार्मिक रागणी दर्शनीय है -

के बेरा था नाग चोरटा, प्राण पूत के चोरै।
खड़ी चौगरदै देख रही, आज कांशी जी के धोरै।
सुणियो री लुगाइयो, आज मैं लुटगी कालर कोरै।
अरे कूण करै क्रिया काठी, तेरा बाबल भी ना धोरै।
मार दुहाथड़ रोवण लागी, मैं लूट लई दिन धौळी।[48]

'सत्यवती' सांग में भी अनेक प्रसंग आए हैं। फूलकंवार अपनी पत्नी सत्यवती को घर छोड़कर रोजगार के लिए कहीं दूर चला जाता है तो उसके बड़े भाई चंद्रदत्त का जार-संस्कार कुलांचे मारने लग जाता है। और वह अपने छोटे भाई की पत्नी से घृणित कृत्य के लिए दबाव डालता है। परिणाम-स्वरूप वह घर छोड़कर जंगलों में

भाग जाती है। एक सेठ के यहाँ उसे शरण मिलती है। मुनीम की ईर्ष्या के कारण उसे सेठ के पुत्र की हत्या का कारण समझ लिया जाता है। वह सेठ के पुत्र की लाश को लेकर जंगलों में चली जाती है और अपने जीवन की दुर्दशा पर रोती बिलखती है -

कोय भी सहारा कोन्या, मैं कौणसी खता म्हं।
ले कै लाश गोद के म्हं बैठगी चिता म्हं।
रो-रो रुधन मचाऊं बण म्हं कोये ना हिमाती।
कोय ना सहारा मेरा तनै भी दया ना आती।
सब ओटी सीळी-ताती ईब के करूँ बता मैं।[49]

इससे पहले जब सत्यवती अपने जेठ के चंगुल से छूटकर रंगपुर राज्य में कुएँ पर पहुँचकर पनिहारिनों से पानी की याचना करती है तो पनिहारियाँ उसकी दयनीय हालत पर द्रवित हो उठती है। वे उसकी उस हालत का कारण पूछती हैं। इस मौके की पूरी रागणी अत्यंत मार्मिक है -

हाथ काळजा खड़्या होया तेरे देख कै दुर्बल बाणे नै।
के तेरी सासू नणद लड़ी, के काढ़ दई गिरकाणे नै।[50]

कवि ने व्यभिचार और जार-कर्म को समाज के लिए कोढ़ माना है। जिस समाज में जार-कर्म को सामाजिक मान्यता है वह समाज नैतिक रूप से आगे नहीं बढ़ सकता। कवि ने 'चोरी जारी जुआ जामनी विष की बेल बतावैं सैं।'' कहकर चोरी, जारी और जुए को समाज के लिए विष के समान बताया है। 'गजना शाही मनियारा' सांग में गजना अपने पिता की अनुपस्थिति में शाही मनियारे के साथ जार-कर्म में लिप्त है। चापसिंह की सेना में शेरखान नामक सिपाही जार-कर्म में लिप्त है। 'सत्यवती' सांग में तो चंद्रदत्त के जार-कर्म के कारण उसके छोटे भाई का घर ही उजड़ जाता है। वह अपने छोटे भाई की पत्नी के साथ इश्क लड़ाना चाहता है, जिसके कारण उसे घर छोड़ कर जाने के लिए मजबूर होना पड़ता है। वह सत्यवती को देखकर उस पर मोहित हो जाता है -

कौण सै कौण सै चार दिवारी म्हं।
बिजली कैसी रोशनी पसरी अटारी म्हं।[51]

कवि देईचंद चोर, जुआरी और नशेबाज की समानता बिच्छू, साँप और गवेरा से करते हैं। जिस प्रकार इन जानवरों का कोई विश्वास नहीं। कब डस कर काम

तमाम कर दें, उसी प्रकार चोर, जुवारी और नशेबाज लोगों का भी कोई भरोसा नहीं होता। इनका स्वभाव हमेशा निकृष्ट होता है -

> चोर जुवारी नशेबाज की माड़ी हो सै नीत।
> बिच्छू साँप गवेरा हो सै नहीं किस के मीत।[52]

'चापसिंह सोमवती' सांग में शेरखान सोमवती की सत की परीक्षा लेने के लिए सोमवती के नगर में आता है और एक नटनी से उससे मुलाकात करवाने की प्रार्थना करता है। उस समय नटनी शेरखान के जार संस्कार को समझ गई। पहले तो वह उसे रोकने का प्रयास करती है परन्तु जब शेरखान उसे धन का लालच देता है तो वह सोमवती से संपर्क साधने के लिए तत्पर हो जाती है। नटनी का कथन जार-कर्म के संदर्भ में दर्शनीय है-

> या तै सारी दुनियाँ जाणै ना गऊ गधे का मेल कहैं।
> पतिव्रता के धर्म के आगै सब कुछ होज्या फेल कहैं।
> इश्क रूप की गाड़ी कै कौन्या बाग नकेल कहैं।
> शेरखान जारी करना ना बच्चों का खेल कहैं।
> परत्रिया विष की बेल कहैं क्यूँ कार करै पड़चंदे की।[53]

'मदनपल-चंद्रप्रभा' सांग में भी मदनपाल अपनी आधी उम्र देकर पत्नी चंद्रप्रभा के प्राणों की रक्षा करता है। परन्तु चंद्रप्रभा एक बाग में साधु के साथ जार-कर्म में लीन होकर अपने पति को ही कुएँ में धकेल देती है। 'विराट पर्व' में भी द्रौपदी कीचक के जार-संस्कार का शिकार होती है। इस प्रकार कवि बार-बार इन बुरी प्रवृत्तियों की ओर ध्यान आकृष्ट कर लोगों को सचेत करना चाहता है कि समाज में नैतिकता की स्थापना हो सके।

पं रघुनाथ -

पं. रघुनाथ का जन्म सन् 1922[54] में ग्राम फिरोजपुर, निकट खेकड़ा, जिला बागपत (उत्तर प्रदेश) में पंडित देशराज के घर हुआ। इनकी माता का नाम अनारो देवी था। ये चार भाइयों में सबसे बड़े थे। इनकी स्कूली शिक्षा नहीं थी। बचपन से ही गीत संगीत में रुचि होने के कारण ये नियमित रूप से विद्यालय नहीं जा पाए। इनकी संगीत की रुचि को देखते हुए इनके पिता ने तत्कालीन सुप्रसिद्ध सांगी पं. मानसिंह जावली वाले के पास जाने का सुझाव दिया। इन्होंने पं. मानसिंह को ही अपना गुरु धारण कर लिया -

गुरु मानसिंह की शिक्षा नै मेरे दिल कै खोल किवाड़ दिए।
रघुनाथ नै बोल तोलकै, सुणकै लयदारी म्हं झाल दिए।[55]

x *x* *x*

आज अजमाईश तेरी किस्मत की राजी रघुनाथ घणा है।
हकीकत राय एक हाथ म्हं प्यार का प्याला, दूजे म्हं तीर तना है।
नगर जावली बीच बणा है, तेरा गाणे का स्कूल।[56]

पं. रघुनाथ ने अपना पूरा जीवन सांग विधा को समर्पित किया। इन्होंने 42 सांगों की रचना की- 'नहुष भूप'(अहिल्या बाई), 'चित्र-विचित्र', 'कृष्ण जन्म', 'भीम का ब्याह', 'द्रोपदी स्वयंवर', 'द्रोपदी चीरहरण', 'वनपर्व', 'गऊहरण', 'कृष्ण भात', 'शांति/भीष्मपर्व', (संधिपर्व) 'गीता उपदेश' (अर्जुन कृष्ण संवाद), 'भीष्म मरण', 'द्रोणपर्व', 'चक्रव्यूह की लड़ाई', (अभिमन्यु की वीरता), 'जयद्रथ वध', 'दुर्योधन वध, 'सत्यवान सावित्री, 'नल दमयंती, 'राजा हरिश्चंद्र, 'श्रवण कुमार, 'लवकुश कांड', 'राजा मोरध्वज', 'पूर्णमल नूनादे', 'पूर्णमल सुंद्रादे', 'पृथ्वीराज संयोगिता', 'अजीत सिंह राजबाला', 'वीर हकीकत राय', 'रूपवती चुड़ावत', 'धर्मपाल शांता कुमारी', 'डॉ. चिढ़ा व रामूभगत', 'भारत की जीत,' 'कीचक वध', 'मशल्व्यूह' (श्रीकृष्ण मृत्यु), मुनि उद्दालक', चंद्रवती', जवाहर सिंह श्यामकौर', 'प्रीतम गुज्जर का भात', 'दुर्गाबाई और अंचलकुमारी', 'किसान मेला', 'सहकारिता की खोज', बदलती दुनिया', 'परीक्षित नावलदे', 'देवयानी शर्मिष्ठा', 'हीर-रांझा' आदि।[57] इसके अतिरिक्त इन्होंने विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक व आध्यात्मिक विषयों पर अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं।

पं. रघुनाथ कौरवी क्षेत्र में अत्यधिक लोकप्रिय लोकनाट्यकार हुए। उनके लोकनाट्यों की गूंज हरियाणा, राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश के विभिन्न शहरों में सुनाई देती थी। उनके सांगों में लोक जीवन व जमीन से जुड़े जनमानस का जिक्र होता था, जिस कारण हर कोई उनके सांगों का दीवाना था।[58]

पं. रघुनाथ की खासियत थी कि वे पुरातन कथाओं को भी नवीन संदर्भों में प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त थे। उन्होंने अपने सांगों में सामाजिकता का विशेष ध्यान रखा। उनके सांगों को हर आयु वर्ग का स्त्री पुरुष, बालक बैठकर देख सकता था। सांग 'धर्मपाल शांताकुमारी' में उन्होंने वर्तमान समय की बुराई रिश्वत को कुछ यूं सदर्भित किया है -

रिश्वत का संसार जगत म्हं, स्वार्थ घना बड़ा है।
है रघुनाथ बावला भोला थोड़ा लिखा पढ़ा है।
जो चढ़ा है सोई ढला, बुरा और भला।
राग का गाना, सब सुनके आप विचारे।[59]

पं. रघुनाथ कुछ समय तक अंग्रेजी सेना में भी रहे।[60] परंतु वहाँ से जल्दी ही भाग गए। अंग्रेज पुलिस इन्हें ढूंढ़ती रही परंतु ये कभी यहाँ कभी वहाँ छुपते फिरते रहे। सन् 1947 के बाद तो इन्होंने अपना व्यवसाय ही सांग करना बना लिया। इनका एक नाम टन.बी.टन. भी पड़ गया था। जिसका मतलब बुद्धि की कोई सीमा नहीं है। (एक टन की बुद्धि) अर्थात् असीमित बुद्धि से टन टना टन।[61]

पं. रघुनाथ युगबोध से परिपूर्ण लोकनाट्यकार हैं। उनके समय में हुए युद्धों में भारत को जो जीतें मिलीं, उन पर भी कवि ने अनेक रागनियाँ लिखीं। शहीदों को नमन करते हुए कवि लिखते हैं -

न्यौछावर हो गए वतन पर धन-धन उन रणधीरों को।
बार बार जयहिन्द नमस्ते श्रद्धांजलि उन वीरों को।
बड़ी बड़ी गन गर्भ के गोले गैल फौड़ कै दिखा दिए।
जहाज हवाई अमरीका कै जैट मोड़ कै दिखा दिए।
असली टैंक अष्टधातु कै साफ तोड़ के दिखा दिए।
अर्जुन राम लक्ष्मण वाले बाण छोड़ के दिखा दिए।
खड़े विदेशी देख रहे उन हथगोले और तीरों को।[62]

पं. रघुनाथ कर्मशीलता के पोषक है तथा रागनियों के माध्यम से परिश्रम करने का उपदेश अपने दर्शकों व पाठकों को देते हैं -

जाग उठो भारत वालो टैम नहीं सै सोने का।
अपने करे बिना जग म्हं कोई अपना ना होने का।
काम बिना सम्मान नहीं है जग म्हं मुश्किल जीणा।
काम बिना धेला ना उठता मनुष का जन्म लखीणा।
काम बिना अच्छा ना लगता कोई खाणा पीणा।
काम बिना कायर कहते हैं हो जा हस्ती हीणा।
जल्दी कर ले काम जगत म्हं धर्म बीज बोने का।[63]

कवि रघुनाथ जी ने परस्पर फूट को भी गुलामी का ही एक कारण माना है। उनका कहना है कि भारतीयों को परस्पर एकता बनाते हुए परिश्रमपूर्वक देश को आगे ले जाना है। यह हर भारतीय का कर्त्तव्य है -

भारत वालों फूट बीमारी दूर भगाणी है।
मिलके खुशी मनाणी है।
ओ भारत के नौजवान।
प्यारे मजदूर किसानों पैदावार बढ़ाणी है।
इज्जत के बिना आदमी की शान शक्ल ना खिलती है।
आई गुलामी भारत म्हं न्यूं कहते छाती हिलती है।
अनमिलती यहाँ होती शादी सुन के गोले सै फौज भगादी।
हो हो हो उठी आज़ादी की आंधी, हांडे खूब महात्मा गाँधी।
उनकी अमर कहानी है, बापू की बाणी है।[64]

कवि मेहनतकश, मजदूर, कृषक और शोषित के पक्ष में खड़ा होकर पूंजीपति और शोषक को लताड़ता है। भारत की रफ्तार इसी कारण रुकी पड़ी है। उनकी एक रागनी की टेक व कली दर्शनीय है -

मेहनतकश मजदूरों का दुनियां म्हं राज करो।
अटका हुआ देश भारत का पार जहाज करो।
कृषक और मजदूर करे जग म्हं दिन रात कमाई।
अन्न वस्त्र सै तंग रहे कभी मिटती नहीं तवाई।
बिन पैसे के बीमारी म्हं मिलती नहीं दवाई।
दूध दही की रखवाली करती है यहाँ बिलाई।
ईश्वर पेट भराई, फूल घर घर म्हं नाज करो।[65]

पं. रघुनाथ लोकनाट्य के मंचन में पारंगत थे। दूर-दूर तक उनकी प्रसिद्धि हो गई थी। उन्होंने अनेक मौलिक लोकनाट्यों की रचना की। लोकनाट्य को और अधिक संप्रेष्य बनाने के लिए इन्होंने फिल्मी गीतों की तर्जों का भी उपयोग किया। उनके समय में लोकनाट्यकारों में यह एक सामान्य प्रवृत्ति बन गई थी कि वे कर्णप्रिय फिल्मी गीतों की तर्ज पर रागनियाँ रचते थे। इससे वे श्रोता की पसंद के निकट पहुँचकर अपनी बात कहते थे। 55 वर्ष की आयु में सन् 1977[66] में इनका देहांत हो गया।

पं. तेजराम -

पंडित तेजराम का जन्म सन् 1931 में गाँव खरमाण, जिला झज्जर, हरियाणा में हुआ। इनके पिता का नाम पंडित रायसिंह व माता का नाम श्रीमती घोघड़ी था।[67]

इन्होंने आठवीं कक्षा तक पढ़ाई की थी। बचपन से ही इनका ध्यान गीत-संगीत की ओर था। ये स्कूल में बाल सभा में रागनी गाकर सुनाया करते थे।

सन् 1953 में पं. तेजराम ने गाँव मुनीमपुर (झज्जर) निवासी पं. नंदलाल को गुरु धारण किया। इन्होंने सन् 1955 में अपनी सांग मंडली बना ली। इन्होंने अनेक सांगों की रचना की। इनके सांगों के नाम हैं - 'उदयभान-संतोषकुमारी', 'ऊषा-अनिरुद्ध', 'कम्मो-कैलाश', 'कृष्ण जन्म', 'खाटू श्याम', 'गोपीचंद', 'दक्ष कुमारी सती', 'पूरणमल', 'महाभारत', 'राजा नल', 'राजा हरिश्चंद्र', 'लैला-मजनू', 'शंकुतला-दुष्यंत', 'शर्मिष्ठा देवयानी', 'शहजादा गुलफाम', 'शैलबाला', 'सत्यवान-सावित्री' और 'हीरामल-जमाल'।[68] इनका प्रतिनिधि सांग 'ऊषा-अनिरुद्ध' है।

इन्होंने कई सांग अपनी मौलिक कथाओं पर बनाए। 'खाटू श्याम', 'दक्ष कुमारी सती', 'शर्मिष्ठा देवयानी', 'शहजादा गुलफाम', 'शैलबाला' सांग इनके अपने मौलिक सांग है।

इनकी एक अन्य विशेषता भी रही। इन्होंने कई-कई कलियों की रागनियाँ भी लिखीं। आमतौर से एक रागनी में चार कली होती है परन्तु इन्होंने बीस, दस, सात, पाँच कलियों की भी रागनियाँ बनाई।

पंडित तेजराम ने 36 वर्ष से कुछ अधिक समय तक अर्थात् 1955 ई. से 1992 ई. तक सांग प्रेमियों का भरपूर मनोरंजन किया।[69]

कवि तेजराम ने प्रेम को इस दुनिया की सवश्रेष्ठ व अनमोल भाव माना है।

पड़ै बख्त पै सबनै जाणा यो नकली खेल तमाशा सै।
एक प्रेम बड़ा इस दुनिया कै मांह और सब झूठा राशा सै।
धरती तोलणिया भी चले गए घणा जिकर के करणा सै।
पैदा सो नापैद जगत म्हं जन्म लिया सो मरणा सै।
जड़ै बड़े गए हमनै भी जाणा काल जाल म्हं घिरणा सै।
गुरु नंदलाल जी वो जीते जिन्हें सच्चे सतगुरु का शरणा सै।
यो तेजराम भी फिरे भरमता गुरु चरण का प्यासा सै।
एक प्रेम बड़ा इस दुनिया के मांह और सब झूठा राशा सै।[70]

इन्होंने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं। 19 जून 2020 को इनका देहांत हो गया।[71]

मौजीराम स्वामी -

मौजीराम स्वामी का जन्म सन् 1908 में गाँव सिसाना, जिला सोनीपत के हरियाणा में पिता श्री नानकचंद व माता दाखां देवी के घर हुआ।[72] जब ये मात्र छह वर्ष के थे तो इनके पिता का देहांत हो गया। इनकी माता ने बड़ी विषम परिस्थितियों में इनका पालन पोषण किया। कवि मौजीराम ने अपनी एक रचना में अपने कष्टपूर्ण बचपन का वर्णन भी किया है। ये बैरागी जाति से थे।

भूख, प्यास और नींद का रंज म्हं काम ना रह्या।
मौजीराम सुसाणे आले जन्म ले कै आराम ना रह्या।।[73]

इनका रुझान बचपन से ही गीत संगीत की ओर रहा। एक दिन ये झज्जर के बादली गाँव में सरूपचंद का सांग देखने के लिए चले गए। सरूपचंद की आज्ञा लेकर मंच पर बैठ गए तथा एक रागनी भी सुनाई। कंठ की मधुरता और रागनी अनुकूलता को देखते हुए सरूपचंद ने उन्हें अपने शिष्य पं. हरफूल गौड़ के सान्निध्य में रहने का सुझाव दिया। इन्होंने पं. हरफूल गौड़ को ही अपना गुरु बनाया। दस बारह साल उनके बेड़े में रहकर इन्होंने अपने गुरु की आज्ञा से अपना स्वतंत्र बेड़ा बाँध लिया। 1940 ई. मौजीराम बेड़ेबंद बन गए तथा गाँव-गाँव घूमकर अपनी अभिनय कला का प्रदर्शन करने लगे। अपना स्वतंत्र सांगी बेड़ा बनाने के बाद उन्होंने किसी अन्य लोककवि की बंदिश (रचना) नहीं गायी। वे अपने किस्से कहानी, राग रागनी खुद बनाते थे। अपनी एक रचना में वे कहते हैं -

आओ, गाओ, अजमाओ जो पाछे तै करै बड़ाई।
मौजीराम सुसाणे आले नै, ना और किसे की गाई।[74]

मौजीराम स्वामी को लंबा जीवन-काल मिला। इनका देहांत 104 वर्ष की आयु में 19 जून 2012 को हुआ। इन्होंने सांग का लंबा समय देखा।[75]

मौजीराम स्वामी ने अनेक मौलिक लोकनाट्यों की रचना की यथा - 'कमला-बिमला', 'गुलफाम', 'ताराबाई, 'रोशन बाई' आदि। इन सांगों की कथा व सांग रचना इनकी स्वयं की है। इस आधार पर वे एक महती लोकनाट्यकार सिद्ध होते हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने 'अंजना पवन कुमार', 'निहालदे', 'पूरणमल', 'राजा अंब', 'राजा नल', 'राजा हरिश्चंद्र', 'सत्यवती' व 'हीर रांझा' आदि सांगों की भी

रचना की। जैसा कि इनके मौलिक सांगों से स्पष्ट होता है कि ये युगबोध के लोकनाट्यकार थे। इन्होंने स्वयं इंदिरा गाँधी के समक्ष भी रागनियाँ गाई थीं। सन् 1971 में भारत-पाक युद्ध और कुटनीतिपूर्वक बंगलादेश के निर्माण को कवि मौजीराम ने एक रागनी में पिरो दिया था। उस रागनी के टेक व कली दर्शनीय है -

जैसे राम नै राज विभीषण को दिया।
यो ढंग खास बणा दिया इंदिरा नै।
बंगलादेश जीत रहमान को दिया।
इतिहास बणा दिया इंदिरा नै।
नब्बे लाख शरणार्थी आगे खर्चा ठाया कई किरोड़।
अमेरिका इंग्लैंड गई, करी यात्रा सारी ठोड़।
किस्सै नै ना शर्म करी, सब दुश्मन बोले मुँह मोड़।
पागल पाजी मान्ने कोन्या यो इंदिरा नै ला लिया जोड़।
रूस का सहारा मिलते ही बंद सांस बणा दिया इंदिरा नै।[76]

इनकी कविताई शिल्प की दृष्टि से भी कलात्मक होती थी। वे अपनी रागनियों में लोक की ठेठ जीवन-शैली को उकेरते हैं। मौजीराम स्वामी ने अपने सांगी जीवन में एक दर्जन से अधिक सांगों की रचना की और सैंकड़ों मुक्तक रचे। हरियाणवी लोक काव्य को उनकी इस महती देन के लिए उन्हें अनेक प्रशस्ति-पत्र तथा पदक मिले। 'राजा हरिश्चंद्र' सांग में मौजीराम ने जब पदमावत वरणा नदी पर राजा को घड़ा उठाने से मना कर देती है तो राजा हरिश्चंद्र एक निर्धन व्यक्ति की वेदना व्यक्त करता है -

हाथ जोड़ ले पां पाकड़ ले इतनी बुरी गर्ज हो सै।
बीर का खसम नै कह दे, मर्द का खसम कर्ज हो सै।
कर्जवान टोटे आले का दुर्बल बाणा हुआ करै।
टेम उक ज्या अन्न थ्यावै ना के पीणा खाणा हुआ करै।
कर्जवान टोटे आला मोहताज बिराणा हुआ करै।
देश नगर घर गाम छुटज्या, ना ठोड़ ठिकाणा हुआ करै।
घालै हाथ नफे की खातिर, देखै उड़ै ए हर्ज हो सै।[77]

मौजीराम का यह सांग बहुत ही मार्मिक है। इन्होंने अपनी फुटकर रागनियों

में शराब, जाति-पाँति, बेईमानी, जार-कर्म, आर्थिक विषमता आदि की ओर लोगों का ध्यानाकर्षित किया। मौजीराम स्वामी एक बेहद सामाजिक कवि थे।

कवि गिरवर सिंह पंवार -

कवि गिरवर सिंह का जन्म गाँव नौरंगाबाद, जिला हिसार, हरियाणा में सन् 1922 में हुआ।[78] उनके पिता का नाम देवी सिंह तथा माता का नाम भागीरथी देवी था। कवि गिरवर सिंह पंवार एक कृषक परिवार से संबंध रखते थे। ये कविताई में कहीं-कहीं स्वयं को 'हाली' कहकर भी संबोधित करते हैं। ये हल चलाना गर्व का विषय मानते थे। इन्होंने कभी गाया नहीं, न ही स्वयं इन्होंने अपने लोकनाट्यों को कभी मंचित किया। कवि ने अपनी प्रणाली का भी 'कमला-चपला और मदनपाल' सांग की एक रागनी में वर्णन किया है। इनकी प्रणाली रामजीलाल से लाखा सिंह, लाखासिंह से देवी सिंह और देवी सिंह से गिरवर सिंह पंवार तक होती आई है। इस प्रणाली का काव्यात्मक विवरण निमन पंक्तियों में कवि ने किया है -

रामजीलाल शिष्य घीसा सिंह रट ईश्वर पार उतरगे।
घीसा सिंह शिष्य लाखा सिंह भी पढ़ पिंगल कविता धरगे।
लाखा सिंह शिष्य देवी सिंह जी प्रचार धर्म का करगे।
देवी सिंह शिष्य गिरवर सिंह भी छाँट काफिये भरगे।
करुण स्वर म्हं रानी बोली हृदय छोलती।।[79]

श्री देवी सिंह कवि गिरवर सिंह पंवार के पिता भी थे। इनके पिता भी एक उच्च कोटि के कवि थे।

कवि गिरवर सिंह पंवार ने अपने जीवन काल में अनेक सांग और फुटकर रागनियों की रचना की। उनके सांग उनकी मौलिक कवि-प्रतिभा की उपज हैं। उन्होंने पुरातन कथाओं को नवीन संदर्भों में देखा है। उनके लोकनाट्य हैं - 'पार्वती सेठानी - सेठ रत्नकुमार', 'शक्ति-बिजली', 'अंजना-पवन', 'धर्मपाल - शांता कुमारी', 'जसवंत सिंह - जवाहर बाई', 'जानी चोर', 'कर्णसिंह-तारावती', 'रूप-बसंत', 'चंद्रहास', 'जगदेव पंवार - बीरमती', 'अजीतसिंह-राजबाला', 'सत्यवादी हरिश्चन्द्र', 'मंझा रानी', 'विराट पर्व', 'कमला-चपला और मदनपाल', 'जगत सिंह - गुणवंती', 'अमर सिंह राठौड़', 'सुलतान-निहालदे', 'हीरामल-जमाल' आदि।

इन उन्नीस सांगों के अलावा चार रागनी 'सरवर-नीर' सांग की तथा एक-एक रागनी 'नल-दमयंती' तथा 'गोपीचंद' सांग की भी हैं। इसके साथ दो दर्जन से

अधिक फुटकर रागनियाँ भी हैं, जो नए फैशन, किसान की हालत, देश के वीर जवान, कर्त्तव्य परायणता और शहीदों पर लिखी गई हैं। 'पार्वती सेठानी - सेठ रत्नकुमार', 'शक्ति-बिजली', 'जसवंत सिंह - जवाहर बाई', 'कर्णसिंह-तारावती', 'जगदेव पंवार - बीरमती', 'अजीतसिंह-राजबाला', 'कमला-चपला और मदनपाल', 'जगत सिंह - गुणवंती' आदि इनके मौलिक लोकनाट्य हैं। अपने कृतित्व में गिरवर सिंह जी एक बहुमुखी प्रतिभा के धनी लोकनाट्यकार थे।

कवि जहाँ एक ओर किसान से देश के लिए काम करने का आह्वान करता है, वहीं वह चिंतित भी हैं कि इतनी मेहनत करने के बावजूद उसकी आर्थिक स्थिति कमजोर ही रह जाती है। उसकी असली फसल का मुनाफा कोई और ही ले जाता है। किसान को खेत में रेतमरेत होना पड़ता है। किसान के काम को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता। जबकि पूरे देश के भरण-पोषण का काम वही उठा रहा होता है। एक फुटकर रागनी की टेक और कली दर्शनीय है, जिसमें कवि गिरवर सिंह पंवार किसान की दुर्दशा पर चिंत्ति है -

सारी दुनिया मौज करे तेरे काम निराले।
ओ भोले जमींदार भार तुम जैसा कौन उठा ले?
तेरी कष्ट कमाई आठ पहर की करै कदे आराम नहीं।
जेठ में गर्मी पोह में पाला होने देता शाम नहीं।
दिन में हाली रात में पानी लेटण का तेरा काम नहीं।
फिर भी सेर नूण तक के तेरे मिलैं जेब में दाम नहीं।
तेरी कमाई खा-खा के बने लाला खूब रिजाले।
मोटा पेट सेठ बन के तुम से एक के बीस चुका ले।।[80]

कवि गिरवर सिंह पंवार इस दृष्टि से एक सजग-सचेत कवि थे, जिन्होंने परिवार को मजबूत बनाने के लिए कुछ इस प्रकार की कथाओं पर आधारित लोकनाट्यों की रचना भी की है। इस दृष्टि से उनके 'अंजना-पवन', 'कर्णसिंह-तारावती', 'जसवंतसिंह-जवाहरबाई', 'शक्ति-बिजली', 'हीरामल-जमाल', 'धर्मपाल-शांता कुमारी', 'विराट पर्व' आदि सांग बेहद आवश्यक सांग हैं। इन सांगों में इन्हीं के संबंधों के परिणाम दर्शाए गए हैं।

'अंजना-पवन' सांग में अंजना और पवन भले ही नैतिकता के बंधन में पूरी तरह से बंधे हुए हैं और परस्पर एकनिष्ठ हैं। परंतु जब पवन कुमार एक रात के लिए घर आता है और अंजना को गर्भ ठहर गया है। समय आने पर वह दिखने भी लग जाता है तो अंजना की सास उस पर कुपित होती है। वह मानती ही नहीं कि

पवन कुमार एक रात के लिए घर आया होगा। उसकी सास अपनी बहू को इस प्रकार पाकर हतोत्साहित होती है और उसके मुख से जो निकलता है, वह हर सास का अपनी जारिणी बहू के लिए आशंका बन जाती है। वह कहती है -

के मालूम थी ऐसे घर की म्हारे ब्याही आवैगी।
शर्म काण ना जाणै स्याही म्हारे कुटुम्ब कै लावैगी।
प्रीत मेरे बेटे की तज के किसी गैर मनुष्य को चाहूवैगी।
इसतै आगे पता नहीं और के-के खेल खिलावैगी।
अब तो सच बतला लजमारी किसका किया बैराग तनै।[81]

'हीरामल-जमाल' सांग इस जार-कर्म को ही लेकर लिखा गया सांग है। हीरामल की पत्नी है, परंतु वह जमाल से प्रेम करने लग जाता है। वह उसे कुरान की आयतों का उच्चारण सिखाने के बहाने रात में रोज मिलने जाता है। जब उसकी पत्नी को उसके जार-कर्म का पता चलता है तो वह उसे रोकती है, परंतु इस प्रवृत्ति-विशेष की बेहयायी के कारण वह पत्नी की बात नहीं मानता। जमाल के प्रति जारी जारी रखता है। उसकी पत्नी अपने सास-ससुर को भी उसके आचरण के विषय में स्पष्ट बता देती है। उनकी कई बार नैतिकता के सवाल को लेकर परस्पर झड़प भी होती है। हीरामल की पत्नी उसे कहती है कि वह किसी ऐसे-वैसे घर से नहीं है। वह एक सम्मानित घर से है। वह उसे समझाती है कि ऐसे अनैतिक काम करने से घर की मान-मर्यादा को बट्टा लगता है -

कौन सी कमेर करी बाहर आधी रात म्हं।
बैठक की ना मालूम पाटी फर्क दीखे बात म्हं।
घर के बट्टा लाओगे यह चिंता मेरे गात म्हं।
तड़के करूँ शिकायत तेरी मनै खोल सुना दी।।[82]

कवि गिरवर सिंह पंवार छाप काटने को निकृष्ट कर्म मानते हैं। वह इसे जुल्म मानते हैं। 'धर्मपाल शांता' में कवि का कहना है -

मीठी-मीठी बात करके वहीं पर ठहराया रे।
गिरवर सिंह नै के बेरा यू जाल जा बिछाया रे।
दिया पलंग बिछा लिया वहीं ठहरा कोई कविता नई बनाना।
जुल्म का सै काम समझो छाप काट गाना।।[83]

'जुल्म का सै काम समझो छाप काट गाना' उक्ति से ऐसा लगता है कि

छापकटैयों की करतूत से भली-भाँति परिचित हैं। या तो वे खुद छापकटैयों के शिकार हुए हैं या उन्होंने छापकटैयों की करतूत अपनी आँखों देखी है। छाप की नैतिकता की यह शिक्षा उन्हें अपने गुरु श्री देवी सिंह जी से मिली है।

इनका देहांत लगभग 54 वर्ष की आयु में दिनांक 26 नवंबर, 1976[84] को हुआ।

पं. माईचंद -

पं. माईचन्द का जन्म जिला पानीपत, हरियाणा में गाँव 'बबैल' में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। जब से छह महीने के ही थे तो इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। इनकी आवाज़ बहुत सुरीली थी। बारह वर्ष की आयु में पहुँचते-पहुँचते गीत-संगीत में ऐसी रुचि बढ़ी कि दूर-दूर तक भजन-मंडलियों के भजन सुनने और सांग देखने जाने लगे। सांगों में निरन्तर बढ़ती आसक्ति को देखकर दादा पं. जयराम ने इन्हें उस समय के प्रसिद्ध सांगी पं. लखमीचंद का शिष्य बनाने का निर्णय लिया और उनके पास ले गए। पं. लखमीचन्द ने बालक के सुर-लय-आवाज़ की परीक्षा ली और अपना शिष्य बना लिया।

पं. माईचंद के लोकनाट्य हैं - 'अंजना', 'ऊखां', 'सती अनुसूईया', 'तेरा रतन'[85] तथा अनेक फुटकर रागनियाँ।

पं. माईचन्द की रचनाओं में विषय विविधता एवं व्यापकता है। उन्होंने अत्यन्त सरल सहज भाषा में सामाजिक जीवन, मानवीय मूल्य, गुरु भक्ति, ईश-स्तुति, अध्यात्म एवं दर्शन, श्रृंगार एवं प्रेम-चित्रण, नारी-महिमा, नीति-वर्णन तथा संसार की नश्वरता आदि का मनोहारी वर्णन किया। काव्य-रचना में वे सरसता, सरलता एवं प्रवाहमयता के पक्षधर थे। पांडित्य प्रदर्शन एवं मिथ्याभिमान उन्हें कदापि अभीष्ट नहीं रहा। नीति-वर्णन में उनकी रचना का प्रवाह दर्शनीय है -

माठा धेरी, ठोठ गुरु, घरां रांड कलिहारी हो।
पूत, कपूत जाम जा जिसकै, दिक तै बुरी बिमारी हो।
ठोठ गुरु अक्षर ना जाणै, बातां के ला जाणै ठाठ।
गेर अंगोछा बेंत हाथ में, बण जाता है मुल्की लाठ।
उसा किसा मन्नै मतना जाणो बेदां के कर राखे पाठ।
घूम जमाना देख लिया मैं लखमीचन्द तै कोन्या घाट।
मूर्खपण की करै सराहना ओ तै आपै बेदाचारी हो।[86]

सामाजिक बुराई शराब-सेवन पर कवि का कटाक्ष कितना तीव्र है -

हे जी! हे जी! देश की कर दी चाल खराब।
घी, दूध, दही मक्खन ना, प्यारी लगै शराब।।
शराब बिना आणा-जाणा, के यारी असनाई म्हं।
बूढ़े के मरणे म्हं शराब, छोरे की सगाई म्हं।
पुलिस म्हं शराब चाहिए, कोर्ट की गवाही म्हं।
बड़-छोट रही कोन्या, मिलकै भाई-भाई पीवैं।
होटलां म्हं जा कै देखो, मरद और लुगाई पीवैं।
बाप और बेटा पीवैं, सुसरा और जमाई पीवैं।
माईचन्द इस हरियाणे का कितना गलत हिसाब।[87]

'ऊखां-अनिरुद्ध' के सांग में ऊखा के रूप-सौन्दर्य को देखकर अनिरुद्ध की दशा का चित्रण कवि ने संयोग श्रृंगार में किया है -

देखते ही रूप परी का, मेरै नागण-सी लड़गी।
खा कै पड़्या निवाला एकदम बिजली-सी पड़गी।
चमकती सूरज कैसी धूप।
बणा दिया सब तरियां बेकूफ।
देख परी का रूप, मेरे तन की लाली झड़गी।[88]

हरिश्चन्द्र व राजा नल की विपत्तियाँ, सेठ ताराचन्द की दानशीलता, नरसी का भात व मीरां की भक्ति-भावना, सावित्री व सोमवती की पति-परायणता के आदर्शों का सहारा लेकर हरियाणा वासी जीवन के कठिन दौर में भी घबराते या मुरझाते नहीं थे अपितु दुगने उत्साह से आगे बढ़ते रहते थे।

पं. माईचन्द की रचनाओं में श्रृंगार के अतिरिक्त करुण, वीर व शान्त रस का पूर्ण परिपाक दृष्टिगोचर होता है। उनका शब्द-विन्यास व वाक्य-विन्यास पूर्णतया सटीक एवं सार्थक है। छन्दों में दोहा, चमोला, भजन व रागनी का प्रचुर प्रयोग है। मुहावरे-लोकोक्ति व बिम्ब-योजना आकर्षक बन पड़ी है। अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, यमक आदि का स्वाभाविक प्रयोग मिलता है। अनुप्रास की छटा तो मनमोहक है -

सती सारदा सरस्वती सत के साथ दया करती है।
चार चीज चित्र चिन्ता चरती चपल चाँद चेहरा सै।

कोए कथन ना कथै कथा का किसनै के बेरा सै।
मात महतारी ममता माया मिरग नयनी चेहरा सै।।[89]

पं. माईचंद जी की सभी काव्य-रचनाएँ उच्च कोटि की हैं तथा उनमें श्रेष्ठ काव्य के सभी गुण विद्यमान हैं।

सन् 1970 में पं. माईचन्द ने सांग करना छोड़ दिया और अपने घर-परिवार में सुख से रहने लगे। उनकी सज्जनता, सादगी, समता और निर्भीकता को देखकर गाँव वालों ने उन्हें सर्वसम्मति से गाँव का सरपंच बना दिया। गाँव के झगड़े, गुटबाजी, कलह और राजनैतिक छल-कपट से उनका मन बहुत खिन्न हुआ और एक वर्ष बाद ही सरपंच पद से त्याग-पत्र दे दिया। वे सरल हृदय, सत्य के समर्थक, असत्य के विरोधी और परोपकारी प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उनकी कथनी-करनी एक जैसी थी, बनावटी जीवन में उनका विश्वास नहीं था। वे घोर आत्मविश्वास और स्वाभिमान के धनी व्यक्ति थे। वे जीवन की भाग-दौड़, आपा-धापी, मारा-मारी और जल्दबाजी से सदैव दूर रहे। सीमित साधनों में सुखी व शांत जीवन जीते हुए प्रभु-भक्ति व काव्य-साधना में रत रहते हुए पूरा जीवन बीता। सन् 1990 में 15 नवम्बर को इस हरियाणवी लोककाव्य-प्रहरी ने स्वर्ग को प्रस्थान किया। उनके द्वारा रचित तथा वर्तमान में अवशिष्ट उनका काव्य उनके प्रतिनिधि के रूप में सदैव हरियाणवी लोकनाट्य-परम्परा में उनके योगदान को याद दिलाता रहेगा।[90]

चौधरी खचेड़ू दास -

चौधरी खचेड़ू दास का जन्म सन् 1919 में पिता माड़ेराम तथा माता जीवनदेवी के घर जाटव जाति में गाँव बदनौली, हापुड़ से आठ दस किलोमीटर दूर जिला मेरठ में हुआ था।[91] इनकी पत्नी का नाम गंगादेवी था। इनके दो पुत्र थे, जयसिंह और जयपाल। इनके गुरु का नाम रामधन था। और रामधन के गुरु मीरदास हापुड़ वाले थे। इन्होंने जानकारी दी है -

अलख पुरुष परमात्मा धरता तेरा ध्यान।
रामधन से सतगुरु मिले मैंने जिनसे पाया ज्ञान।

धन्य खेड़ा धन्य भूमिया धन्य बसावन हार।
धन्य खेड़े के औलिया मेरी तरफ निहार।
चांवड सुमरूं भाई गाँव की खेड़े का सैय्यद पीर।
दिल्ली की चौंसठ जोगनी बंगाले के बावन वीर।

मैं किसी लायक हूं नहीं किए सभा म्हं याद।
ऐसे म्हं सुध लीजिए गुरु मीरदाद उस्ताद।।[92]

इन्होंने नल पुराण ढोला के इकत्तीस भाग लिखे, जिनके नाम है - 'प्रथम का ब्याह', 'प्रथ वियोग', 'मंझा निकासी' (नल जन्म), 'दक्षिणपुर का हाल', 'नल का पहला ब्याह', 'नल कथा, 'गंगा स्नान' (मंझा हरण), 'कंपलगढ़ की लड़ाई', 'मनसुख का ब्याह' (नटों की कला), 'दुमैती की ब्याह', 'नल औछा' (इन्द्रबाद) 'दुमैंती का दूसरा स्वयंवर', 'तेली का कुलव्हाड़', 'ढोला का जन्म' (लखिया बन की लड़ाई), 'ढोला का ब्याह' (भंवरताल का गौना) 'बीरमपुर की लड़ाई', 'चंद्रवती का चीर', 'अमरकोट की लड़ाई', 'ढोला मारू सती', 'मान नगर की लड़ाई', 'भीलगढ़ी की लड़ाई', 'किशनलाल का ब्याह', 'सूरजमल का ब्याह' आदि।[93]

ये इकत्तीस लोकनाट्य एक ही लंबी कथा की उपकथाओं पर आधारित हैं तथा क्रमिक रूप में हैं। 'मंझा निकासी' में राजा प्रथम और उसकी पत्नी मंझा तथा नल के जन्म की कथा है। राजा प्रथम की मंझा रानी और छह रानियाँ और थीं। मंझा रानी को एक साधु पुत्र का आशीष देता है और चेतावनी देता है कि गर्भ नौ महीने तक छुपाकर रखना है। परंतु एक दिन मंझा हवा खाने महल की छत पर आती है तो छहों उसे देख लेती है। ईर्ष्यावश एक ब्राह्मण की मदद से राजा को यह समझाने में कामयाब हो जाती हैं कि होने वाला पुत्र भूत है और पैदा होते ही उन्हें खा जाएगा। इसलिए राजा रानी को ही मरवा दे। रानी मंझा राजा प्रथम की मिन्नतें करती है परंतु राजा पूरी तरह छह रानियों और ब्राह्मण के झाँसे में फँस चुका था। वह जल्लादों को उसे मारने के लिए सौंप देता है -

जो कोई तेरे दर्शन कर ले भोजन तक ना पाए।
तेरे जन्में भूत जन्मते ही रानी तुझको खावे।
मेरा भी हो काल साथ म्हं इसको कौन मिटावे।
अभी चली जा मेरे महल से देखे से ना भावे।
जल्लादों के साथ भेजना बन म्हं जावे मारी।[94]

परंतु एक हंस के गले में अपने भाई सूरज के नाम संदेश भेजने पर वह आता है और जल्लादों का मुख पुनः प्रथ नगर की ओर मोड़ देता है। वह प्रथम को भी हरा देता है परंतु प्रथम छल से उसका शीश काट देता है। दैवीय शक्ति से उसका सिर पुनः जुड़ जाता है और वह अपने अजयनगर पहुँच जाता है। उधर राजा प्रथम जल्लादों को पुनः आदेश देता है कि जंगलों में जाकर मारकर आए। वह जल्लादों से जंगल

में मिन्नत करती है तो वे उसे जंगल में छोड़कर आ जाते हैं। जंगल में उसे पुत्र पैदा होता है जिसका नाम नल रखा जाता है। खचेडू दास को अपनी कविताई पर भरोसा था और उन्हें यह नई रंगत की लगती है -

एक बन लांघा दो वन लांघा तीजे वन म्हं पहुचे जाई रे।
ये नए चाल की रंगत पंचों खचेडूदास ने गाई रे।[95]

रागनी की यह नए चाल की रंगत कवि का कलात्मक विश्वास ही है।

इनका 'दुमैती स्नान' लोकनाट्य मूलतः दमयंती स्नान है। ये नल की पत्नी दमयंती को दुमैती ही लिखते हैं। दुमैती अपने पति नल के साथ गंगा स्नान के लिए जाती है तो बंगमगढ़ का राजा बंकासुर का ध्यान नहाती हुई दुमैती की सुंदरता पर चला गया। वह एक जादूगरनी दूती के माध्यम से छल से उसका अपहरण करवा लेता है। दुमैती का पुत्र ढोला तथा नल गंगा के इसी किनारे रह जाते हैं। पत्नी दुमैती व पुत्र ढोला को अपने पास ना पाकर नल अपने मित्र चौतारे नाग के माध्यम से दुमैती का पता लगाता है और उसे प्राप्त करने के लिए बंगमगढ़ जाता है। वहाँ एक बंगालन के चंगुल में फँस जाता है। इस लोकनाट्य की कथा अत्यधिक रोचक है। इस कथा में कवि खचेडू ने अपने सरकारी सेवा में होने का भी संकेत दिया है। जिसे उन्होंने खम्ब स्वास्थ्य के चलते छोड़कर सेवानिवृत्ति ले ली थी। वे लिखते हैं -

खचेडू के गाने म्हं संसार हो गया।
बीमारी के चक्कर म्हं रिटायर हो गया।[96]

नल पुराण ढोला गाने का इकत्तीसवाँ और अंतिम लोकनाट्य सूरजभान का ब्याह है। सांग की शुरूआत में उनका कबीराना अंदाज देखा जा सकता है-

माला ले हर नाम की छोड़ पाप अभिमान।
वे नर न्यूं ही जाएंगे काया खाक समान।
काम क्रोध मद लोभ म्हं डूब जाय मझधार।
करनी की किश्ती बनै हो जा परली पार।
अगम धार की नदी पर गुरु बने मल्हाय।
जिनको सतगुरु ना मिले जन्म अकारथ जाय।[97]

लोकनाट्य की पहली रागनी में उन्होंने अपनी गुरु प्रणाली का भी चौथी कली में वर्णन किया है-

मीरदाद कहै वो जावेगा जिसने महल को पहचाना।

गुरु रामधन राह बतावे सुगम होय जाकर आना।
खचेडू कह सत्त लोक म्हं अजब जोत जहाँ ललकारी।[98]

सूरज भान राजा नल के पुत्र ढोला का पुत्र था। वह जवान होता है तो उसका विवाह गढ़ गिरनार के राजा भरतसिंह की लड़की इन्द्र कुमारी से होता है।

खचेडू दास बदनौली के लोकनाट्य में कथा का एक स्वाभाविक प्रवाह है। कथा स्वयंमेव आगे बढ़ती-सी लगती है। उन्होंने रागनी के साथ-साथ दोहा, आल्हा, काफिया, अंतरा, हाथरस, मुक्ताल, निहालदे, ख्याल आदि संगीत विधियों का भी उपयोग किया है। वे हापुड़, मेरठ आदि में खासे लोकप्रिय थे। इनका देहांत 55 वर्ष की आयु में सन् 1974 में हुआ।

रघुबीर शरण सूप -

रघुबीर शरण सूप का जन्म सन् 1900 को गाँव सूप जिला बागपत उत्तरप्रदेश में हुआ। इनके पिता का नाम पं. भरत सिंह शर्मा तथा माता का नाम राघो देवी था। इनके गुरु का नाम मानसिंह था जो जावली गाँव के रहने वाले थे। इन्होंने अपनी अनेक रागनियों की चौथी कली में अपने गुरु का नाम बहुत ही सम्मान से लिया है। 'सांगीत श्यामबाई' की अंतिम रागनी में उन्होंने कहा है -

हरि की पुजारण बनी भगवां भेष धार लिया।
सुख से बसियो नगर जाबली जहाँ पै गुरुद्वारे।[99]

x *x* *x*

अदना से आला करे, प्रभु तू ऐसा जगदीश।
मानसिंह सतगुरु मिले कहूँ चरण निवा के शीश।[100]

इनके तीन लोकनाट्य मिलते हैं - 'सांगीत श्यामाबाई', 'सांगीत कृष्ण-सुदामा' और 'नरसी का भात' आदि। 'सांगीत श्यामाबाई' इनका पूर्णतः मौलिक सांग है, जिसमें उन्होंने गरीबी से तंग आकर एक पिता द्वारा अपनी पुत्री का बेमेल विवाह किया जाना तथा उस बेमेल विवाह के कारण एक स्त्री की दुर्गति को आधार बनाकर संदेशपरक सांग की रचना की है। इस सांग की कथा में सेठ दीवानचंद को कंगाली घेर लेती है। बेटे का विवाह पहले कर चुका था। वह अपनी बेटी श्यामाबाई का विवाह चालीस हजार रुपये लेकर एक लक्ष्मीचंद वृद्ध से कर देता है। विवाह के समय ही उसकी सखी-सहेलियाँ उसकी भावी कठिनाइयों का अनुमान लगा लेती है। इस अनमेल विवाह के बारे में श्यामा अपनी सखियों से कहती है -

पहलम हत्यारा जो पुत्री नै नीच बेच उद्योग करै।
दूजे हत्यारा वो मान्या जो विधवा के संग भोग करै।
तीजे हत्यारा जो अशुद्ध औषधी खुवा बौर के रोग करै।
ये तीन किसम के महाहत्यारे ब्रह्मा तक भी सोग करै।[101]

रुपये लेकर वृद्ध व्यक्ति से बेटी की शादी करने के कारण दीवानचंद का सामाजिक बहिष्कार हो जाता है। उसका बेटा सुंदरलाल उसे घर से निकाल देता है। कुएँ पर भी उसे पानी नहीं पिलाती। एक पनिहारन दूसरी से कहती है -

पनिहार बोली तभी सुन मूरख कर कान।
बेटी का गाहक बना गई शर्म बेईमान।।[102]

अंत में वही दीवानचंद अपनी बेटी को जब वेश्या के घर में देखता है तो आत्महत्या कर लेता है और कहता है -

ना सोचा और ना समझा या तबियत करकै ढेठी।
घर कुणबे का नाश करा मैं निकड़ा नीच अलसेटी।
मतना बेचियो कोई बेटी चाहे गल पै चल जा दुधारा।[103]

दहेज और तज्जनित अनमेल विवाह को लेकर लिखा गया यह लोकनाट्य लोगों की आँखों को खोलने वाला है। इसमें कवि के सामाजिक सरोकारों और लोकसाहित्य की सामाजिक उपादेयता का पता भी चला है।

इस सांग के अतिरिक्त रघुबीर शरण सूप ने 'सांगीत कृष्ण-सुदामा' व 'नरसी का भात' भी लिखे। ये दोनों ही लोकनाट्य भक्ति भावना के लोकनाट्य हैं। 'कृष्ण-सुदामा' लोकनाट्य भेंट से शुरू होता है। इस सांग में बताया गया है कि कैसे संदीपनी ऋषि के आश्रम में शिक्षा को प्राप्त करते हुए गुरुमाता के दिए हुए चने सुदामा अकेला ही खा जाता है और कृष्ण उसे श्राप देता है जिसके कारण वह निर्धन ही रह जाता है। सुदामा की पत्नी सुशीला उसे कृष्ण से सहायता मांगने के लिए विवश करती है। वह कृष्ण के पास जाता है। कृष्ण उसकी स्थिति को समझकर उसे महल बनवा देता है। जब वापस आता है और अपने महल देखता है तो कृष्ण के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता है। कृष्ण महल बनवाने के साथ-साथ अनेक दासियाँ भी उनकी सेवा में भेज देता है। दासियाँ सुदामा की पत्नी से कहती है -

मिसराणी हम चरणों की गुलाम, आपने दिया करेंगी आराम।
मानसिंह का गाम जाबली गौड़ ब्राह्मण जात।

'रगवीर शरण' ने ज्ञान दिया, करी बालकपण म्हं कुभात।[104]

रघुबीर शरण के लोकनाट्यों में कहीं-कहीं रगबीर शरण भी मिलता है। 'कृष्ण-सुदामा' लोकनाट्य बेहद मार्मिक है।

'नरसी का भात' लोकनाट्य भी भक्ति भावना का ही लोकनाट्य है। कहानी नरसी और उसकी बेटी हरनंदी की है। कंजूस नरसी बेहद निर्धन हो जाता है तथा कृष्ण की भक्ति करने लग जाता है। अपनी पुत्री हरनंदी के पुत्री के भात में वह साधुओं के साथ पहुँचता है तो हरनंदी उसका अपमान करती है। यहाँ कृष्ण आकर उसकी मदद करता है और विवाह में दी जाने वाली तमाम चीजें देकर ऐसा भात भरता है कि लोगों की आँखें खुली रह जाती हैं।

'नरसी का भात' लोकनाट्य रघुबीर शरण व लक्ष्मीदत्त वैद्य दोनों सगे भाइयों द्वारा संयुक्त रूप से लिखा गया लोकनाट्य है। इस लोकनाट्य में कुल 25 रागनियाँ है जिनमें से 9 रागनियाँ लक्ष्मीदत्त वैद्य की हैं। ये रागनियाँ बीच-बीच में है। ये दोनों ही भाई उच्च कोटि के लोकनाट्यकार थे। इनके अंदर हल्की-सी प्रतिस्पर्धा भी थी। बड़े भाई रघुबीर शरण अपने आपको छोटे भाई लक्ष्मीदत्त वैद्य से स्वयं को कहीं श्रेष्ठ मानते रहे। जब रघुबीर शरण ने 'श्यामाबाई' लोकनाट्य लिखा तो उसमें रुपये देकर अपने लिए पत्नी खरीदने वाले वृद्ध पात्र का नाम लक्ष्मीदत्त ही रखा। लक्ष्मीदत्त इस सांग में कामुक एवं धनी व्यक्ति के रूप में आया है व अंत में वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। लक्ष्मीदत्त के नाम से ऐसे पात्र की संयोजना महज संयोग भी हो सकता है।

रघुबीर शरण की रागनियों की बनावट व बुनावट एवं शब्दावली में ग़ज़ब का संयोजन है। अधिकतर रागनियों से पहले वे दोहा लिखते हैं। रागनियों के बीच में कथा के तंतुओं को जोड़ने के लिए सधी हुई वार्ता का भी प्रयोग करते हैं।

पं. भोलाराम -

पं. भोला राम का जन्म पिता नागर और माता हंसो देवी के घर गाँव अलीपुर खालसा, तहसील घरौंडा, जिला करनाल हरियाणा में वर्ष 1893 में हुआ था। इनके गुरु का नाम पं. भैयाराम था। समालखा-मण्डी से कूछ दूरी पर स्थित करहंस गाँव के पं. भैया राम जी उन दिनों इस सारे इलाके के एकमात्र विद्वान और संस्कृत पढ़े-लिखे व्यक्ति थे। उन्हें भी शास्त्र-सम्मत भजन रचना का शौक था, अतः अनेक शोधार्थी उनके पास जाकर अपनी ज्ञान-पिपासा शान्त किया करते थे। भोला राम जी

ने भी इन्हीं भैयाराम जी के पास में ही पठन-पाठन का प्राथमिक ज्ञान अर्जित किया और भैयाराम जी को ही गुरु माना।

तत्कालीन लोक-कवि केवल श्रृंगार के ही भजन गाकर वाह-वाही लूटने में अपने को धन्य समझते थे, किन्तु भोला राम जी ने भक्ति और गम्भीर ज्ञान को सरल हरियाणवी भाषा में काव्य का रूप देकर लोगों को सुनाया, तो श्रोता मुग्ध और आश्चर्य-चकित रह गये। परिणामस्वरूप गायक तो मात्र 'भजनी' कहलाते थे। किन्तु भोलाराम जो 'गुणी' के विशेषण से पहचाने जाने लगे।

पं. भोलाराम जी ने 'सत्यवान-सावित्री', 'नल दमयन्ती', 'सेठ ताराचन्द', 'हकीकत राय', 'राजा अम्ब', 'पूरण भगत', 'भर्तृहरि', 'गोपीचन्द', 'रांझा-हीर', 'चन्द्रहास', 'रुक्मणी मंगल', 'कृष्ण-सुदामा', 'पिंगला-भरथरी', 'राजा उत्तानपाद', 'पवन-अंजना', 'उषा-अनिरुद्ध', 'चन्द्र-किरण', 'राजा हरिश्चन्द्र' आदि किस्सों की रचना की।

पं. भोलाराम कृत लोक रचनाओं से प्राप्त निम्नलिखित उदाहरणों में उनके काव्य-कौशल का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। एक आकर्षक आलंकारिक नीति-वर्णन द्रष्टव्य है -

नीति भूप बिन, भूप बिन प्रजा, प्रजा सूनी राज बिना।
राजा न्याय बिन न्याय मन्त्री बिन मन्त्री फौज समाज बिना।
लाज कुल बिन, कुल पुत्र बिन पुत्र सूना रति बिना।
रति कर्म बिन, कर्म धर्म बिन धर्म ज्ञान की गति बिना।
ज्ञान गुरु बिन, गुरु वेद बिन वेद ब्राह्मण जाति बिना।
जती सती बिन सती बिन सत सत सूना हो मति बिना।
मति मात बिन, मात पिता बिन बाबल सूना काज बिना।[105]

एक रूपक के माध्यम से किया गया मृत्यु वर्णन दृष्टव्य है, जिसमें मुर्जी (अंगुलियाँ), बुर्ज (हाथ-पैर) किला (शरीर), राजा (जीव), डाकू (यमराज), पाँच (पंचभूत), सिपाही (इन्द्रियाँ), गुणगान (सत-रज-तम गुण), चोर (कोम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) गैस-लैम्प (नेत्र) का आलंकारिक वर्णन हुआ है -

बुर्जी बीस और चार बुर्ज, साबुत है गगन अटारी।
किला सम्पूर्ण छोड़ भाज गया राजा छत्रधारी।
जालिम डाकू गया किले में पाँच पार गये न्यारे।
दसों सिपाही साथ गये, जो घणै नृप के प्यारे।

तीन गये गुणवान रिपु से, लड़-लड़ कुश्ती हारे।
पाँच निकल गये चोर तभी दुश्मन के भय के मारे।
गैस लैम्प हुए बन्द जिन्ही की अजब रोशनी प्यारी।[106]

इस प्रकार से उपर्युक्त उदाहरण पं. भोलाराम जी की रचनाओं के कुछ अंशमात्र है। इन पंक्तियों में शब्द-योजना और भाव-गाम्भीर्य के दर्शनोपरान्त भोलाराम जी की प्रखर काव्य-प्रतिभा के समक्ष प्रत्येक मर्मज्ञ का मस्तक नत हो जाना स्वाभाविक ही है।

वर्ष 1967 में इनका देहांत हो गया।[107]

साँवलिया भगत -

साँवलिया भगत का जन्म गाँव भठगाँव जिला सोनीपत में चमार जाति में हुआ था। इनके पिता का नाम मंगलीराम था। इन्होंने तीसरी कक्षा तक शिक्षा ग्रहण की थी। इनका मूलनाम साँवल सिंह था। इनके गुरु का नाम निंघाइ राम था, जो अटावला गाँव (पानीपत) के थे। इनका जन्म 1900 के आसपास तथा देहांत 1975 के आसपास हुआ था।

इन्होंने 'वृषभान और चित्ररेखा', 'चंद्रहास', 'रूपा राणी चंचल बजीर' आदि अनेक सांगों की रचना की। उनके अनेक सांग प्रलेखीकरण के अभाव में विलुप्त हो गए। लोक में धारणा बन गई थी कि इनकी रागनियों की तर्जें इतनी शास्त्रीय ओर कठिन होती थीं कि उनका गायन हर कोई नहीं कर सकता था। इनकी कम ही रागनियाँ बची हैं। 'रूपा राणी चंचल बजीर' सांग की एक रागनी की टेक व एक कली दर्शनीय है -

लाचारी म्हं कुछ ना बणता आवै दर्द भतेरा सै।
मेरी सोकण कै घी के बलगे म्हारे घोर अंधेरा सै।।[108]

x *x* *x*

साँवल सिंह तू संग म्हं लेग्या उसतै ज्यादा प्रीत हुई।
जन्म लिए की बाजी हारी उस सोकण की जीत हुई।
वा गोदी भर कै लाल खिला ले उसकी पूरी जीत हुई।
थारे तै ठोसा ना पाटै वा बज्जर की भीत हुई।
तम लिप्पण की ना पोत्तण की आज वो ऊपर लिखा चतेरा सै।[109]

'रूपा राणी चंचल वजीर' सांग में ही साँवलिया भगत ने अपने गाँव का संकेत

इस रूप में किया है -

बसै एक दहिया म्हं भठगाम, अर उड़ै रोज रटै सै राम।
कहै साँवल सिंह यो काम सीख लिया गाने का।
खुशी नित हर खुश गाने म्हं, हम सबकी बड़ छोट करै।
क्या मतलब था आने का, म्हारे महल जनाने म्हं।
बता हम किसका खोट करै।।[110]

उपर्युक्त रागनी अंश रूपा की सहेलियों की चंचल वजीर को फटकार लगाने की है।

चंचल वजीर का जार-संस्कार अपने ही राजा की पुत्री को नहीं छोड़ता। एक दोचश्मी रागनी में कवि साँलिया ने उनकी मनःस्थितियों का वर्णन कुछ यूं किया है -

वजीर : मैं तेरे तै दो बात करूँगा महल चौबारे आली।
रूपा : रूपा देवी बरजै सै ना कहिए बात कुढ़ाली।।[111]

x x x

वजीर : तेरा रुखाला मैं बणग्या तू बेखटके बतलाइए।
रूपा : बतलावण का नाम लिए मत ओछे ढाल लखाइए।
वजीर : लखावैंगे सब लोग-लुगाई तू देई धाम धुकाइए।
रूपा : साँवल सिंह भी आ लेगा तू उसकी टहल बजाइए।
वजीर : पान मिठाई धजा नारियल धरी भेंट की थाली।
रूपा : बैरी म्हं तू चला जाइए जित रही लटक भवन म्हं जाली।[112]

साँवलिया भगत की गायन शैली इतनी उच्च कोटि की थी कि वह लोगों पर अपना अपूर्व प्रभाव छोड़ती थी। इनके सांग प्रलेखीकरण के अभाव में विलुप्त हो गए।

इस समय मऊ खास में महात्मा लटूर सिंह भी हुए। ''महात्मा लटूर सिंह का जन्म सन् 1885 में मऊ ग्राम (बारहा) निकट मेरठ में हुआ था। आपके पिता का नाम ठाकुर लख्मी सिंह था, माता का नाम चम्पा था।''[113] महात्मा लटूर सिंह ने यद्यपि कोई लोकनाट्य नहीं लिखा, तथापि उनकी रागनियाँ लोगों के सिर चढ़कर बोलती थीं। वे 'आर्य समाज के भीम' कहलाए जाते थे। लंबी-चौड़ी सात फुटी

कद-काठी के महात्मा लटूर सिंह ने अपनी रागनियों के माध्यम से शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया, अनेक स्कूलों के लिए चंदा एकत्रित करने का काम किया। इनका देहांत 27 अक्टूबर 1973 को ग्राम मऊ में ही हुआ।[114] महात्मा लटूर सिंह ने जाति-पाँति का खंडन इस रूप में किया है -

ऐजी ऐजी करम से बनते बड़े और छोटे।
जन्म जात के घमंड पर झगड़े बुद्धि के टोटे।।[115]

शिक्षा की महत्ता स्थापित करते हुए वे लिख हैं -

बिन विद्या संसार में ना कोई पूछे बात।
जानती है दुनिया सारी।
विद्याहीन पशु के सम है, सच पूछे तो उससे भी कम है।
गम है यो नर नार में भरा हुआ दिन रात
तड़पते हैं सब नार नारी।[116]

दीना भगत उर्फ दीना लुहार -

दीना भगत का जन्म गाँव गाधी में सन् 1900 के आसपास हुआ था। लगभग अस्सी वर्ष की आयु में इनका देहांत 1979 को हुआ। ये अपने समय के सुप्रसिद्ध सांगी थे। इनके गुरु थे नत्थूराम जावली। दीना भगत की पत्नी का नाम सरूपी देवी था। जिससे जुड़ी एक कहानी प्रचलित है कि इन्होंने अपनी पत्नी का कत्ल कर दिया था। "अपनी पत्नी की हत्या के आरोप में आपको मृत्युदंड मिला था। अंतिम इच्छा के रूप में दीना ने कचहरी में न्यायाधीश से एक चौक करने का अनुरोध किया और अपना सर्वाधिक प्रिय स्वांग 'हीर-रांझा' खेला। इस स्वांग से न्यायाधीश इतना प्रभावित हुआ कि उसने इस कलाकार की मृत्युदंड की सजा माफ कर दी थी।"[117]

इन्होंने 'हीर-रांझा', 'सोरठ' 'पूर्ण भगत', 'सरवर नीर', 'कमला-मदन', 'हरिश्चंद्र', 'नरसी भगत', 'पिंगला-भरथरी' व 'गोरखनाथ' आदि सांगों का सृजन किया।

इन्हीं के सांगों में पं. बलवंत सिंह बुल्ली के मामा हारमोनियम बजाया करते थे और बलवंत सिंह उनके साथ चले जाया करते थे। उनका उपनाम 'बुल्ली' भी दीना भगत के सांग 'हीर-रांझा' में बुल्ली का अभिनय करने से पड़ा था। पं. बलवंत सिंह बुल्ली का सांग से प्रारंभिक परिचय दीना भगत के सांगों से ही हुआ था।

दीना भगत द्वारा लिखित सांग काल का ग्रास बन गए। अब एक भी सांग नहीं मिलता है। लेखक उनके घर पर भी गया था। परंतु उनके परिवार में उनके प्रति

अभी उदासीनता बनी हुई है। उनके पास लिखित सामग्री के नाम पर कुछ नहीं मिला।

वीरेन्द्र वीर 'आर्य प्रचारक' (1912-1990) ने भी आर्य समाज की शिक्षाओं का माध्यम लोकनाट्य व रागनी को ही बनाया। ''आप संभालखा, जिला मुजफ्फरनगर के रहने वाले थे। वीरेन्द्र 'वीर' ने आजीवन एक सच्चे आर्य प्रचारक का जीवन व्यतीत किया। उत्तर भारत में अनेक आर्य समाजी संगठनों की स्थापना की।''[118] इन्होंने 'वीर ऊधम सिंह', 'वीर गर्जना', 'नीरा नागनी' आदि लोकनाट्यों की रचना की।

पं. शोभाराम प्रेमी का जन्म 1913 में गाँव मोहम्मदपुर रायपुर जिला मुजफ्फरपुर, उत्तर प्रदेश में हुआ था। ये भी आर्य समाज से प्रभावित थे। इन्होंने भी 'ऋषिपाल चतरा', 'रानी हाडी', 'वीर ऊधम सिंह' आदि लोकनाट्यों की रचना की।[119]

महाशय फूल का (1920-1998) का जन्म गाँव लोधीपुर छपका, जिला गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश में हुआ था। इन्होंने 'उदयभान संतोष कुमार', 'हरपाल रतनकौर', 'शाही लकड़हारा', 'प्रभादेवी राजकुमार', 'सत्यवती-धूमसिंह' व 'भारवी' लोकनाट्यों की रचना की।[120]

निष्कर्ष-

कौरवी लोकनाट्य के इतिहास में राय धनपतसिंह निंदाना एक ऐसे लोकनाट्यकार के रूप में उपस्थित हुए, जिसने लोकनाट्य के क्षेत्र में अपूर्व ख्याति अर्जित की। इस अपूर्व ख्याति में उनके शिष्यों ने अद्भुत योगदान किया। लोक में सांग की माँग और सांगियों की मात्रा की दृष्टि से यह युग स्वर्णकाल कहा जा सकता है। धनपत सिंह निंदाना अत्यधिक विनम्र सांगी थे। इनकी शिष्य परंपरा में बंदा मीर महमी, बनवारी ठेल मदीना, चंदगी भगानिया, ठहरो श्याम धरौदी (पाक्का श्याम) तथा श्यामलाल सौरम (काच्चा श्याम, मुजफ्फरनगर) कुछ ऐसे लोकनाट्यकार हए, जिन्होंने अपने लोकनाट्यों की सर्जना की। प्रेमलाल चौहान (शिष्य बनवारी ठेल), जियालाल (शिष्य बनवारी ठेल) आदि भी इसी प्रणाली में आते हैं। एक तरह से धनपत सिंह निंदाना सांग क्षेत्र के ध्रुवतारा बनकर उभरे। उनके सांगों का प्रस्तुतीकरण अद्भुत होता था। उनकी 'आंगलियों की मार' शैली का दर्शकों पर अपूर्व प्रभाव पड़ता था। वे सांग के हर अंग पर विशेष ध्यान देते थे। उनके सांगों में स्त्रियों का अभिनय करने वाले पुरुष कलाकार बेजोड़ होते थे। उन्होंने 1949 में निर्मित मुंबई में निर्मित 'लाहौर' फिल्म की कहानी के ऊपर 'लीलो चमन' सांग लिखा, जो उनका प्रतिनिधि सांग बन गया। इसके बाद कई लोगों ने 'लीलो चमन' सांग की रचना

की, परन्तु वे इतने कामयाब नहीं हुए। इस काल में पं. हरबंस लाल बिजरौल, बागपत (शीलादे रिसालू), रामबकस माली बुलंदशहर (शेरे अलीगढ़ बहादुर राधाचरण), छाजूराम यादव गाँव बिगोपुर, महेन्द्रगढ़, हरियाणा (उमेन्द्र की कूका), पं. शिवकरण शर्मा, बंथला, गाजियाबाद (रात की रानी) आदि लोकनाट्यकार भी हुए।

इस काल के सांगियों पर समानांतर रूप से चल रहे आर्य समाजियों के लोकनाट्य सृजन की सुधारवादी धारा का प्रभाव भी पड़ रहा था। फलतः इन्होंने भी सांगों की विषयवस्तु में समाज सुधार के आयाम जोड़ने शुरू कर दिए थे। राय धनपतसिंह निंदाना का 'सूरज-चंदा' दहेज की विभीषिका को लेकर लिखा गया सांग इसी का परिणाम है। माँगेराम में करुण रस का अद्भुत परिपाक हुआ है। वे संबंधों में गहरे उतर कर सृजन करते हैं। कविताई के मामले मे राय धनपत के समकक्ष ठहरते हैं, परंतु राय धनपत सिंह निंदाना एक 'सांग संकाय' के रूप में उभरते दिखते हैं।

इस युग में पं. मांगेराम एक प्रतिभाशाली सांगी के रूप में उभरे थे। उन्होंने अपने सांग-ज्ञान के आधार पर सांग का इतिहास लिखने का प्रयास किया था। एय रागनी इस प्रकार है -

हरियाणा की कहाणी सुणल्यो दो सौ साल की।
कई किस्म की हवा चालगी नई चाल की ।।

1. एक ढोलकिया एक सारंगियां अड़े रहें थे।
एक जनाना एक मर्दाना दो खड़े रहें थे।
पन्द्रह-सोलह कूंगर जुड़कै खड़ै रहैं थे।
गली अर गितवाड्यां के म्हं बड़े रहैं थे।
सब तै पहलम या चतराई किशन लाल की।।

2. एक सौ सत्तर साल बाद फेर दीपचन्द होग्या।
साजंदे तो बणा दिए ओ घोड़े का नाच बंद होग्या।
नीचे काला दामण ऊपर लाल कन्द होग्या।
चमोले नै भूलग्ये न्यूं न्यारा छन्द होग्या।
तीन काफिए गाए या बणी रंगत हाल की।।

3 हरदेवा, दुलीचन्द, चतरू एक बाजे नाई।
घाघरी तै उननै भी पहरी आंगी छुड़वाई।
तीन काफिए छोड़ इकहरी रागणी गाई।

उन तै पाछै लखमीचन्द नै डौल्ली बरसाई।
बाताँ ऊपर कलम तोड़ग्या आज काल की।।

4. मांगेराम पांणची आला मन म्हं करै विचार।
घाघरी के मारे मरग्ये अनपढ़ मूढ़ गंवार।
शीश पै दुपट्टा-जम्फर पायाँ मैं सलवार।
इब तै आग्गै देख लियो के चौथा चलै त्यौहार।
जिब छोरा पहरै घाघरी किसी बात कमाल की।।[121]

संदर्भ -

1. राय धनपत सिंह निंदाना ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पी. 16, सेक्टर 14, पंचकूला, हरियाणा - 134113, प्रथम संस्करण 2022, पृष्ठ 19
2. वही, पृष्ठ 19
3. वही, पृष्ठ 20
4. वही, पृष्ठ 21
5. वही, पृष्ठ 21
6. वही, पृष्ठ 21
7. वही, पृष्ठ 32
8. वही, अनुक्रमणिका, पृष्ठ 17-18
9. वही, पृष्ठ 162
10. वही, पृष्ठ 172
11. वही, पृष्ठ 516
12. वही, पृष्ठ 102
13. वही, पृष्ठ 354
14. वही, पृष्ठ 117
15. वही, पृष्ठ 77-78
16. सांग की नवीनता के सूत्रधार पंडित माईराम, सुरेश भारती नादान, दैनिक जागरण समाचार-पत्र का 'सांझी' पृष्ठ, दिनांक 11 मई, 2004 (मंगलवार)

17. उदयभान संतोषकुमारी, पं. माईराम, कविता भवन 'अलेवा' करनाल, पृष्ठ 3
18. वही, पृष्ठ 3
19. वही, पृष्ठ 12
20. लोकनाट्य सांग कल और आज, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, हिन्दी साहित्य निकेतन, 16, साहित्य विहार, बिजनौर (उ.प्र.), प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ 129
21. लोक रंगमंच के आयाम, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, हिन्दी साहित्य निकेतन, 16, साहित्य विहार, बिजनौर (उ.प्र.), प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ 101
22. लोकनाट्य सांग कल और आज, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, हिन्दी साहित्य निकेतन, 16, साहित्य विहार, बिजनौर (उ.प्र.), प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ 129
23. वही, पृष्ठ 131-132
24. वही, पृष्ठ 131-132
25. वही, पृष्ठ 140
26. वही, पृष्ठ 133
27. वही, पृष्ठ 130-131
28. वही, पृष्ठ 130
29. पण्डित मांगेराम ग्रंथावली, डॉ. पूर्ण चन्द शर्मा, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, हरियाणा, पृष्ठ 118
30. वही, पृष्ठ 12
31. ठहरो श्याम ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, साहित्य संस्थान, ई-10/660, उत्तरांचल कॉलोनी, (नियर संगम सिनेमा), लोनी बॉर्डर, गाजियाबाद - 201102, प्रथम संस्करण 2023, पृष्ठ 27
32. वही, पृष्ठ 139
33. वही, पृष्ठ 183
34. वही, पृष्ठ 36
35. कवि बनवारी ठेल ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, साहित्य संस्थान, ई-10/660, उत्तरांचल कॉलोनी, (नियर संगम सिनेमा), लोनी बॉर्डर, गाजियाबाद - 201102, प्रथम संस्करण 2023, पृष्ठ
36. वही, पृष्ठ 34
37. वही, पृष्ठ 21

38. वही, पृष्ठ 22
39. वही, पृष्ठ 23
40. देईचंद ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, काग़ज़ प्रकाशन, 13, इंप्लॉईज़ कॉलोनी, खुराना रोड, कैथल, हरियाणा - 136027, पृष्ठ 15
41. वही, पृष्ठ 15
42. वही, पृष्ठ 17
43. वही, पृष्ठ 17
44. वही, पृष्ठ 18
45. वही, पृष्ठ 29
46. वही, पृष्ठ 29
47. वही, पृष्ठ 32-33
48. वही, पृष्ठ 33
49. वही, पृष्ठ 33-34
50. वही, पृष्ठ 34
51. वही, पृष्ठ 39
52. वही, पृष्ठ 40
53. वही, पृष्ठ 40
54. कवि शिरोमणि पं. रघुनाथ कवितावली, संदीप कौशिक, हरियाणा साहित्य संग्रह प्रकाशन, म.नं. 793, नजदीक माता मंदिर, मंशना रोड, लोहारी जाटू, त. बवानी खेड़ा, भिवानी, हरियाणा - 127032, प्रथम संस्करण 2020, पृष्ठ 8
55. वही, पृष्ठ 12
56. वही, पृष्ठ 17
57. वही, पृष्ठ 9
58. वही, पृष्ठ 9
59. वही, पृष्ठ 13
60. वही, पृष्ठ 13
61. वही, पृष्ठ 15
62. वही, पृष्ठ 297

63. वही, पृष्ठ 300
64. वही, पृष्ठ 304
65. वही, पृष्ठ 306
66. वही, पृष्ठ 10
67. तेजराम, पंडित सरूपचंद की सांग प्रणाली, डॉ. केशोराम शर्मा, निर्मल पब्लिकेशन, ए 139, कबीर नगर शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2021, पृष्ठ 177
68. वही, पृष्ठ 178-179
69. वही, पृष्ठ 181
70. वही, पृष्ठ 181
71. वही, पृष्ठ 182
72. मौजीराम स्वामी, पंडित सरूपचंद की सांग प्रणाली, डॉ. केशोराम शर्मा, निर्मल पब्लिकेशन, ए- 139, कबीर नगर शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2021, पृष्ठ 127
73. वही, पृष्ठ 127
74. वही, पृष्ठ 129
75. वही, पृष्ठ 133
76. वही, पृष्ठ 132
77. वही, पृष्ठ 144
78. कवि गिरवर सिंह पंवार ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, साहित्य संस्थान, ई-10/660, उत्तरांचल कॉलोनी (नियर संगम सिनेमा), लोनी बॉर्डर, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश 201102, प्रथम संस्करण 2023, पृष्ठ 25
79. वही, पृष्ठ 27
80. वही, पृष्ठ 53
81. वही, पृष्ठ 65
82. वही, पृष्ठ 65-66
83. वही, पृष्ठ 79
84. वही, पृष्ठ 28
85. कौरवी लोकनाट्यकार भाग 1 (संपादक डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर), डॉ. बालकिशन

शर्मा, ज्योति प्रकाशन, 1087-ए, गली नं. 5, मयूर विहार, गोहाना रोड, सोनीपत, हरियाणा - 131001, प्रथम संस्करण 2022, पृष्ठ 66

86. वही, पृष्ठ 66
87. वही, पृष्ठ 66
88. वही, पृष्ठ 67
89. वही, पृष्ठ 68
90. वही, पृष्ठ 68
91. कौरवी लोक साहित्य, डॉ. नवीन चंद्र लोहनी, भावना प्रकाशन, 109-ए, पटपड़गंज, नई दिल्ली - 110091, द्वितीय संस्करण 2016, पृष्ठ
92. मंझा निकासी, चौ. खचेड़ूदास बदनौली, जवाहर बुक डिपो, निकट आर्यसमाज, स्वामीपाड़ा, मेरठ, संशोधित संस्करण सन् 2000, पृष्ठ 1
93. सूरजभान का ब्याह, चौ. खचेड़ूदास बदनौली, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ, दूसरा संस्करण सन् 1971, अंतिम पृष्ठ पर लोकनाट्यों की सूची
94. मंझा निकासी, चौ. खचेड़ूदास बदनौली, जवाहर बुक डिपो, गुजरी बाजार, मेरठ, चौथा संस्करण सन् 1980, पृष्ठ 17
95. वही, पृष्ठ 11
96. दुमैती स्नान, चौ. खचेड़ूदास बदनौली, जवाहर बुक डिपो, निकट आर्यसमाज, स्वामीपाड़ा, मेरठ, संशोधित संस्करण सन् 2000, पृष्ठ 1
97. सूरजभान का ब्याह, चौ. खचेड़ूदास बदनौली, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ, दूसरा संस्करण सन् 1971, पृष्ठ 1
98. वही, पृष्ठ 2
99. सांगीत श्यामाबाई, पं. रघुबीर शरण सूप, जवाहर बुक डिपो, मेरठ, पृष्ठ 28
100. वही, पृष्ठ 1
101. वही, पृष्ठ 3
102. वही, पृष्ठ 15
103. वही, पृष्ठ 26
104. सांगीत कृष्ण सुदामा, पं. रघुबीर शरण सूप, जवाहर बुक डिपो, मेरठ, पृष्ठ 18
105. पं. भोलाराम, डॉ. बालकिशन शर्मा, कौरवी लोकनाट्यकार भाग - 1, ज्योति प्रकाशन, सोनीपत, हरियाणा, पृष्ठ 128

106. वही, पृष्ठ 128

107. पं. भोलाराम के पौत्र मनीराम से हुई बात के अनुसार।

108. हस्तलिखित पांडुलिपि, साँवलिया भगत, संग्रहालय, चौ. तारा चंद शिक्षा एवं लोक कला संस्थान (रजि.), गाँव मलिकपुर, जिला सोनीपत, हरियाणा।

109. वही।

110. वही।

111. वही।

112. वही।

113. आर्य समाज के भीम महात्मा लटूर सिंह, संपादक ठाकुर बिक्रम सिंह, मनु संस्कृति प्रकाशन, पृष्ठ xi

114. वही, पृष्ठ xiii

115. वही, पृष्ठ 7

116. वही, पृष्ठ 45

117. कौरवी लोकसाहित्य, डॉ. नवीन चंद्र लोहनी, पृष्ठ 104

118. वही, पृष्ठ 69

119. वही, पृष्ठ 70

120. वही, पृष्ठ 71

121. पं. मांगेराम ग्रंथावली, डॉ. पूर्ण चंद शर्मा, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, पंचकूला, हरियाणा, पृष्ठ 103-104

दसवाँ अध्याय

महाशय दयाचंद मायना युग

(सन् 1971 ई. - 1985 ई.)

प्रस्तावना -

महाशय दयाचंद मायना को यदि हम लोकनाट्य का सामाजिक सुधार युग कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। लोकनाट्य के क्षेत्र में जो समाज सुधार की भावना पृथ्वीसिंह बेधड़क युग से शुरू हुई और अनेक आर्य भजनोपदेशकों ने परिवर्तन की जो अलख जगाई वह महाशय दयाचंद मायना में परिणति को प्राप्त हुई और महाशय दयाचंद मायना के शिष्यों के साथ-साथ अनेक और लोकनाट्यकारों ने उस बदलाव को अंगीकार करके लोकनाट्यों की रचना की।

इस समय कौरवी लोकनाट्य परिपक्व अवस्था में मनोरंजन के साथ-साथ समाज की जकड़न को भी महसूस कर रहा था। अनेक कवि ऐसे हुए जिन्होंने इस जकड़न का अपने लोकनाट्यों में शिद्दत से वर्णन किया। महाशय दयाचंद मायना में गजब की नेतृत्व क्षमता थी। उनका लोकनाट्य मंचन अद्भुत था। वे अभिनय भी अद्भुत करते थे। वे पात्रों में रम जाते थे और दर्शकों को उसी बहाव में बहा ले जाते थे। उनका शब्द-चयन लोक के इतना नजदीक होता था कि उनकी रागनियाँ सीधे गले उतर जाती थीं। भाषा की ऐसी पकड़ बहुत कम लोककवियों में देखने को मिलती है। उनकी 'करकै घाल तड़पती छोड़ी जान क्यूं ना काढ़ लेग्या, ओ परदेशी गेल मेरी तू बाँध क्यूं ना हाड लेग्या'[1] और 'घड़ी ना बीती ना पल गुजरा उतरा जहाज शिखर तै'[2] जैसी रागनियाँ तो लोक कंठाहार ही बन गईं। उनकी रागनी 'पानी आली पानी प्या दे' तो कई रूपों में व तर्जों में गायी गई। विवाह आदि समारोहों में यह रागनी खूब बजती है। उनका 'नेताजी सुभाष' लोकनाट्य इतना अद्भुत है कि सुभाष चंद्र बोस के जीवन की तिथियों तक का इसमें ध्यान रखा गया है।

महाशय दयाचंद मायना इस काल के एक ऐसे कवि हुए हैं जो मनुष्य-मनुष्य की समानता की बात करते हुए हर प्रकार के शोषण का पूरी निर्भीकता के साथ सामना करते हुए समाधान भी देते हैं। हालांकि लोकनाट्य की बनी बनाई लोकप्रचलित कथा में अपनी ओर से कुछ भी जोड़ने की संभावना बहुत कम होती है, परंतु महाशय दयाचंद मायना की सामाजिक समझ कोई न कोई रास्ता निकाल लेती है। उदाहरणार्थ 'राजा हरिश्चंद्र' की कथा को लिया जा सकता है। इस कथा में एक प्रसंग आता है कि राजा हरिश्चंद्र और उसकी पत्नी मदनावत एक ही समय वरणा नदी पर पानी भरने के लिए जाते हैं। उस समय हरिश्चंद्र कालिया भंगी के घर नौकर था तथा मदनावत रामलाल ब्राह्मण के घर नौकरानी थी। इक्कीस दिन तक कुछ नहीं खाए जाने के कारण हरिश्चंद्र कृशकाय हो गया था। वह अपनी पत्नी को घड़ा उठवाने के लिए प्रार्थना करता है। परंतु वह घड़ा उठवाने से मना कर देती है। कारण यही था कि वह ब्राह्मण के घर नौकरानी है और हरिश्चंद्र कालिया भंगी के घर। इस अवसर की रागनी पर ही कवि का समाजशास्त्र दिखाई देता है। जहाँ सवर्ण कवियों ने इस रागनी में जातिवाद को बढ़ावा दिया है, वहीं महाशय दयाचंद मायना ने गजब सामाजिक सौहार्द की रागनी लिखी हैं -

> तेरे नहीं लगैगी छींट भींट का तो सब झगड़ा झूठा सै।
> उसनै ब्राह्मण मत समझो जो भीतरले म्हं पाप राखै।
> अछूत और चण्डाल कहै, ऊपर तै मन साफ राखै।
> दुनिया नै भकावै पापी, झूठे हर के जाप राखै।
> अंधे माणस मूर्खां कै बंध आँखों पै पट्टी जा सै।
> हर कै घर तै एक आवै, याड़ै जात बाँटी जा सै।
> जैसा काम वैसा नाम, गत कर्मां की छाँटी जा सै।
> सै एक जात, एक बात, एक बेल बूंटा सै।[3]

यह पूरी रागनी मनुष्य मात्र की समानता पर लिखी गई रागनी है। हरिश्चंद्र अपनी पत्नी को समझाता है कि वह उसकी मदद करे। जातिवाद मन में न लाए। इस काल के कवियों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है -

महाशय दयाचंद मायना -

महाशय दयाचंद जी का जन्म 10 मार्च 1915 को वर्तमान हरियाणा के रोहतक जिले में गाँव मायना में हुआ।[4] इनके पिता का नाम नान्हू राम तथा माता का नाम जुमिया देवी था। इन्हीं नान्हू राम के घर दो बेटे तथा तीन बेटियाँ पैदा

हुई। बड़े बेटे का नाम मेहर सिंह तथा छोटे का नाम उन्होंने दयाचंद रखा। जब ये मात्र छह वर्ष के थे तो इनकी माता का देहांत हो गया। इनकी बड़ी बहन भगानी देवी ने इनका पालन पोषण किया। यही दयाचंद आगे चलकर महाशय दयाचंद मायना के नाम से प्रसिद्ध हुए।

पिता नान्हू राम ने बालक दयाचंद का उसकी सात साल की उम्र में स्कूल में दाखिला करवाया। उस समय समाज में जाति प्रथा का बोलबाला था। निम्न जातियों के बच्चों को स्कूल में उनके सवर्ण सहपाठी पढ़ने नहीं दिया करते थे।

वे सन् 1930 में पन्द्रह वर्ष की आयु में कोएटा (वर्तमान पाकिस्तान) चले गए, जहाँ पर उनके बहनोई नौकरी करते थे। बाद में सन् 1941 में महाशय दयाचंद मायना आठ मराठा एंटीटेंक रेजीमेंट बैलगाँव डिपू में भर्ती हो गए। फौज में रहकर उन्होंने अनेक स्थानों का भ्रमण किया। ये द्वितीय विश्वयुद्ध के दिन थे। फौज में रहते-रहते उनकी भाषा में निखार आ गया। विशेष रूप से अंग्रेजी तथा उर्दू के अनेक शब्द उनकी जुबान पर चढ़ गए। ये बाद में उनकी रागणियों का भी अहम् हिस्सा बने। सन् 1947 तक लगभग 6 वर्ष वे फौज में रहे। उसके बाद गाँव में आ गए। किस्से गढ़ने का काम फौज में भी चलता रहा। इन्हें फौज में सेवा के दौरान आई.एस. मेडल तथा वार सर्विस मेडल से भी सम्मानित किया गया।[5]

इन्होंने सांकोल निवासी महाशय मुंशी राम को अपना गुरु बनाया। यह इनकी रागनियों व गीतों से पता चलता है कि किस स्वाभिमान और निष्ठापूर्वक इन्होंने अपना गुरु मुंशी राम को ही चुना। गुरु के प्रति इन जैसी श्रद्धा बिरले में ही मिलती है। इन्होंने अपनी अनेक रागणियों में अपने गुरु को अमर कर दिया है। एक अंश दर्शनीय हैं -

> सतगुरु मुंशी राम के मैं पांह चुचकारूंगा।
> कहै दयाचंद तन-मन-धन उन पै वारूंगा।[6]

महाशय दयाचंद जी बेहद निर्भीक, स्वाभिमानी, मौलिक चिंतन, समाज सुधारक मनःस्थिति के कवि हुए। छह वर्षों तक फौज में रहने के कारण उनके व्यक्तित्व में निडरता का गुण समाहित हो गया था। वे हृदय से दयालु स्वभाव के थे। उन्हें अपने ऊपर कभी भी घमंड नहीं हुआ। सफलताओं के परचम लहराने के बावजूद भी वे स्वयं को रास्ते में पड़ा हुआ पत्थर ही मानते हैं। महाशय दयाचंद शालीन विनम्र, दर्प रहित, सर्व-हितैषी, स्वयं को गली का रोड़ा मानने वाले और

अम्बेडकरवादी चेतना से भरपूर स्वाभिमानी व्यक्तित्व के स्वामी थे -

लाखां कैसी बात करै सै आदमी दो आने आळा।
और किसका जिकर करूँ एक दयाचंद माने आळा।''[7]

महाशय दयाचंद मायना दिनांक 20 जनवरी 1993 को अपने पीछे प्रेमियों की एक लंबी फेहरिस्त छोड़ कर इस दुनिया से चले गए। इनके लोकनाट्य हैं - 'पूर्णिमा-प्रकाश', 'नीलम-पुखराज', 'कवि कालिदास', 'नेताजी सुभाष चंद्र बोस', 'ब्रिगेडियर होशियार सिंह', 'देवर-भाभी', 'संतमाता शबरी भीलनी', 'सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र', 'मायावती-मास्टर', 'वीर हकीकत राय', 'बलवा मंगल सूरदास', 'धर्मनीति सदावर्ती', 'सती अनुसूईया', 'दानी मोरध्वज', 'राजा परीक्षित-नावलदे', 'राजा कारक-सावलदे', 'अंजना-पवन', 'चंदा-चित्रमुकुट', 'राजा ढोल-मरवण', 'सुरेखा हरण', 'सरवर-नीर' आदि।

महाशय दयाचंद मायना के लोकनाट्यों को देखते हैं तो एक सुखद सकारात्मकता जागती है। उनके लोकनाट्यों में एक बेहतर समाज के निर्माण की ललक मौजूद है। वे ऐसा समाज चाहते हैं, जिसमें सब बराबर हों, सब एक-दूसरे के काम आएँ, सबकी नीयत साफ हो, कोई बेईमान न हो, सब काम करके खाएँ। 'धर्मनीति सदावर्ती' लोकनाट्य में धर्मनीति अपने पति को किराये पर कमरा लेने के लिए एक ऐसा पड़ोस ढूँढ़ने की सलाह देती है -

अमीरां के दूर घर, गरीबाँ का पड़ोस हो।
हाथी कैसी शान्ति और शेर कैसा जोश हो।
उन गरीबाँ के ऊपर किसे, ठाडे की ना धोंस हो।
बेईमान कळियाराँ धोरै, बसण मैं भी दोस हो।
भीतर तै रंग काळा सारा, ऊपर धोळ पोस हो।
सच्चे मनुष्य देख कै आईए, बेईमाना सौ कोस हो।
गळी मोहल्ला हिर-फिर कै, पुन्न पाप देखकै आईए।[8]

महाशय दयाचंद जी जार-कर्म के धुर विरोधी हैं। समाज में जार-कर्म घोर असमाजिकता पैदा करता है। उनके कई किस्से इस जार-कर्म के घृणित परिणाम को उजागर करते हैं। 'पूर्णिमा प्रकाश', 'नीलम-पुखराज', 'सरवर-नीर' तथा 'बलवा मंगल सूर' किस्सों में इसकी अभिव्यक्ति हुई है। महाशय दयाचंद मायना एक सामाजिक शिक्षक के रूप में लोगों को मर्यादाओं के पाठ पढ़ाते हैं। 'सरवर-नीर'

किस्से में भठियारी सौदागर को कहती है -

म्हारी सराह मैं उतपणा के, लिए मतना नाम सौदागर।
परत्रिया पै नीत डालणी, खोटे हो सैं काम सौदागर।[9]

'नीलम पुखराज' किस्से में तो एक ऐय्याश सेठ की जारी के चलते एक गरीब मजदूर बिरजू की बेटी नैना की दर्दनाक मौत होती है। वह अपने से उम्र में बड़े सेठ रत्नलाल की मिन्नत करती है -

फर्क सै घणा रात और दिन का बूढ़े जवान और बचपन का।
मेरे मन का भोग, ना सधै जोग, तू बड़ा लोग।
या बालक कन्या सै।"[10]

'पूर्णिमा-प्रकाश' लोकनाट्य में भी जफरअली पूर्णिमा को अपनी हवस का शिकार बनाना चाहता है। परन्तु पूर्णिमा के साहस और सूझ-बूझ से वह बच निकलती है। पूर्णिमा की पीड़ा भी निम्न पंक्तियों में समझी जा सकती है -

तकते बेटी और बहू, थारै मुँह लगा फिरै लहू।
मैं गरीब गऊ, तू शेर बब्बर सै, मै हीणी तू घणा जबर सै।
तेरे हाथ मैं मेरा सिर सै, गरीब जाण कै गळ नै छोलै।
यो न्याय इस संसार मैं।[11]

'बलवा मंगल सूर' किस्से में तो मंगल इस जार-संस्कार के कारण अपना सब कुछ लुटवा ही डालता है।

महाशय दयाचंद मायना स्त्री-पुरुष की बराबरी के हिमायती हैं। 'धर्मनीति-सदाव्रती' लाकनाट्य में जब सदावर्ती का कंजूस पिता उसे धर्मनीति का कत्ल करने का आदेश देता है, तो सदावर्ती अपने पिता को आकर समझाता है -

बीर-मर्द की दो काया, पर दोनों का मन एक पिता।
दोनूं शरीर मिले बर पाछै, समझा जा तन एक पिता।
तुम बतलाओ अलग-अलग हो, प्यारां का धन एक पिता।
एक दाँत की तोड़ी रोटी, चरै एक-सा अन्न पिता।
या सारस कैसी जोट मिली हो, किस तरिया तै न्यारी जा।[12]

'अंजना पवन' किस्से में भी पवन कुमार अंजना के प्रति अपने रूखे व्यवहार से बेहद विचलित होता है। पक्षियों के प्रेम के वार्तालाप से उसके अन्दर अंजना

की पीड़ा जन्म लेती है। वह अपने मंत्री को सम्बोधित करता है और स्त्री के प्रति पुरुष के कर्त्तव्य को इंगित करता है -

कहै 'दयाचन्द' दुख भरै बीर, इसे मर्द कसाई धोरै।
कदे ना हँस कै नार प्यार तै मनैं बुलाई धोरै।
मैं अंजना तै दूर रहूँ, सब लोग लुगाई धोरै।
याड़े दो दिन फौज डाट मन्त्री मैं जांगा ब्याही धोरै।
मनैं जो अंजना तै बचन भरे, वो खत्म सवाल हो लिए।[13]

'पूर्णिमा प्रकाश' किस्से में प्रकाश के लिए बीस हजार नकद का रिश्ता आता है तो प्रकाश एक बेहतरीन निर्णय लेता हुआ आज के तमाम युवाओं का आदर्श बनता हुआ उस रिश्ते को ठुकरा देता है तथा यतीमखाने में पल रही अस्पृश्य जाति की पूर्णिमा से विवाह की बात दोहराता है। यह किस्सा मायना जी का प्रतिनिधि किस्सा है जिसमें युगबोध कूट-कूटकर भरा हुआ है। प्रकाश द्वारा गाई गई रागणी की एक कली दर्शनीय है, जिसमें वह अपने पिता के सामने दहेज रहित शादी का दृढ़-निश्चय दोहराता है -

मनैं जरूरत कोन्या पिता रेडियो और कार की।
दान के बहाने रिश्वत थैली बीस हजार की।
मैं ना लेणा चाहता लड़की, ब्लैक के बाजार की।
भारत मैं जरूरत है अब ज्ञान और प्रचार की।
सोची है स्कीम हामनै देश के सुधार की।
मिलती है सहादत आदत बिगड़ी है संसार की।
यो मगज घुमाणा पड़ै जगत दे नाळ पिताजी।।[15]

महाशय दयाचंद मायना मनुष्य के जीवन में शिक्षा को ही सुधार का सबसे बड़ा कारण मानते हैं। उनके कई किस्से इसी विषय को लेकर लिखे गये हैं। 'मायावती-मास्टर', 'पूर्णिमा-प्रकाश,' 'कवि कालिदास,' 'वीर हकीकत राय' तथा अनेक फुटकल रागणियों में कवि की शिक्षा के प्रति ललक साफ झलकती है। 'कवि कालिदास' किस्से में राजकुमारी विद्योत्तमा कालिदास की अनपढ़ता के कारण उसका अपमान करती है। कालिदास को यह बात हृदय पर चोट करती है, वह सोचता है -

अगर चाहे तो मूर्ख भी विद्वान बन सकता है।
सत्संग कारण ढोर, पशु, इन्सान बन सकता है।[16]

विद्या के कारण ही पुनः विद्योत्तमा प्रसन्न होकर उन्हें पति रूप में स्वीकार करती है। विद्योत्तमा की मार और ताना सहन करके वह पढ़ने लगता है तथा संगीत की शिक्षा लेनी शुरू करता है। एक समय ऐसा आता है कि वह उच्च कोटि का कवि और गायक बन जाता है।

कवि दयाचंद जी शिक्षा के मामले में गुरु को पिता-माता जितना ही सम्मान देते हैं। गुरु ही बेहतर जीवन का मार्ग-प्रशस्त करता है। जब हकीकत को उसके पिता सेठ भागमल मदरसे में दाखिल करवाने के लिए जाते हैं तो वह अपने बेटे को समझाता है -

काजी नै भगवान समझ ले, योए पिता योए माँ बेटा।
विद्या का फल चखै तै, सतगुरु की टहल बजा बेटा।
भागमल की बातां तै, भर प्रोफेसर का पेट गया।।[17]

पिता की ऐसी भावना होने के कारण मुस्लिम अध्यापक का मन संतुष्ट हो गया और उन्होंने उसे अपने मदरसे में शिक्षा प्राप्त करने के लिए बिठा लिया। कहने की आवश्यकता नहीं कि स्वयं दयाचंद मायना कम पढ़े-लिखे थे। समाज तो आज भी कमोबेश उसी स्थिति में है। यह उनकी नज़रों से बचा नहीं था। जब तक समाज में विद्या का प्रकाश नहीं होता, तब तक लोग काल्पनिक प्रपंचों में ऐसे ही भटकते रहेंगे और शातिर उन्हें लूटते रहेंगे -

बिन विद्या प्रकाश कड़ै तै हो इस डेरे म्हं।
सब मुल्कां मैं उजियाला, हिन्द पड़ा अन्धेरे म्हं।
घर तेरे म्हं और बड़ेंगे, जाग-जाग ना तै चोर बड़ैंगे।
ले ज्यांगे धन लूट, कमाया था रो-रो कै।।[18]

कवि का मानना है कि जब तक समाज में शिक्षा का प्रसार-प्रचार नहीं होता, तब तक इनमें एकता की समझ विकसित नहीं हो सकती। पढ़े-लिखे लोग अनपढ़ तबके को मूर्ख बनाकर अपना उल्लू साधते रहेंगे -

एक सलाह होणी चाहिए, इन सारी जाताँ की।
कौन समारै और या बिगड़ी थारे हाथाँ की।
इन बाताँ की ख्यास करी ना, पढ़ कै विद्या पास करी ना।
रहे ठूँठ के ठूँठ, अकल ल्याओ टोह्कै।।[19]

महाशय दयाचंद मायना जी की कविता में देश के लिए मर-मिटने का भाव निहित है। वे स्वयं फौज में छह साल तक रहकर देश की सेवा का महती काम कर चुके हैं। सम्भवतः वहीं से उनमें यह भाव पैदा हुआ। उनका कृतित्व भी लोगों में देश-प्रेम की भावना का संचार करता है। ''उनका 'नेताजी सुभाष चन्द्र बोस' किस्सा उनके कवित्व का और उनके देश के सच्चे सिपाही होने की बानगी है। इसके साथ-साथ 'ब्रिगेडियर होशियार सिंह', 'देवर भाभी', 'वीर हकीकत राय' आदि किस्से देश के लिए मर मिटने वाले नायकों के किस्से हैं। उनके दूसरे किस्सों में भी शिक्षा, सामाजिक समानता, व्यावहारिक ईमानदारी जैसे भाव हैं। फौजी पृष्ठभूमि पर आधारित उनके किस्से जन्मभूमि के लिए प्राणोत्सर्ग का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं। कवि परिवार, यारी, असनाई की अपेक्षा देश को महत्त्व देता है।''[20]

उनके कई किस्सों में इस जाति-प्रथा तथा ऊँच-नीच का समाधान खोजा गया है। 'पूर्णिमा-प्रकाश' इस दृष्टि से एक बेजोड़ किस्सा है। इसमें उन्होंने अन्तर्जातीय विवाह करवाकर युवाओं के सामने भविष्य के एक सुखद भारत का नक्शा प्रस्तुत किया है। प्रकाश आज का पढ़ा लिखा नौजवान है जो जाति और दहेज जैसी प्रथाओं को अनर्गल बताता हुआ एक अनाथ अस्पृश्य और पढ़ी-लिखी लड़की पूर्णिमा से विवाह रचाता है। इस किस्से की एक रागणी है -

पहले आली बात पुराणे ख्याल बदलने होंगे।
ऊँच नीच के शब्द पिता फिलहाल बदलने होंगे।[21]

महाशय दयाचंद मायना की रागणियों में इस गरीबी का यथार्थ चित्रण हुआ है। एक तो सामाजिक स्तर पर सबसे निचला पायदान, ऊपर से आर्थिक मजबूरियाँ। लोक जिये तो कैसे जिये। उनके किस्सों में गाहे-बगाहे गरीब मजदूर की दयनीय स्थिति आ ही जाती है। 'संत माता शबरी भीलनी' किस्से में बालिका शबरी का दर्द पहली ही रागणी में दर्शनीय है -

भूण्डी हो सै गरीबी, बिसराओ चाहे सराह दो।
अकल बिना उघाड़ी, नंगी, कुर्ता, कच्छा पराह दो।
धमकाओ या मारो, चाहे डंडा लेकै डरा दो।
करा दो हामनै भी आज़ाद, बजाकै ज्ञान शब्द का नाद।
या दुनियां खेल कलन्दर का।[24]

कौरवी क्षेत्र में एक कहावत प्रचलित है, ‘अमीर की बहू सबकी दादी, अर गरीब की बहू सबकी भाभी’। भारतीय समाज जाति और आर्थिक विपन्नता के प्रति अत्यधिक क्रूर है। तमाम मर्यादाएँ वर्ण जाति और आर्थिक स्थिति के अनुसार रूप परिवर्तित करती हैं। ‘सरवर नीर’ किस्से में जब राजा आम (अंब) वचन के कारण अपना राज्य छोड़ने के लिए मजबूर होता है। वे कंगाल हो जाते हैं तो अपनी पत्नी को सम्बोधित करते हुए कहता है -

गोरी-गोरी रेशम डोरी, शरक फरांसी हो सै।
सुथरी बहू गरीब के घर मैं, मरद नै फाँसी हो सै।[25]

मायना जी व्यवस्था परिवर्तन की बात करते हैं। वे धन को केवल कुछ ही लोगों की कठपुतली बनने की अपेक्षा सभी के उपयोग की वस्तु मानते हैं। वे सही सोचते हैं कि धनिकों के हृदय में दया, धर्म नाम की कोई चीज नहीं होती। वे देश के संसाधनों से ही बड़े सेठ बनते हैं और मजदूरों की दिहाड़ी खा-खाकर फलते-फूलते हैं। महाशय दयाचंद मायना इस व्यवस्था में आमूल चूल परिवर्तन चाहते हैं। प्रकाश के माध्यम से वे कहते हैं -

मजदूरों की दहाड़ी खा-खा, भारी-भारी सेठ होगे।
खून गरीबां का पी-पी कै, मोटे-मोटे पेट होगे।
घर-घर के मां चौधरी सारे ऑफिसर और मेठ होगे।
धन माया के लोभी लाला, दया-धर्म तै लेट होगे।
धन आलां की जगह अब, कंगाल बदलणे होंगे।[26]

गरीब व्यक्ति हमेशा पिसता ही है। एक तो मशीनीकरण की मार, ऊपर से मालिक की बुरी नज़र, फिर एकता की कमी, फिर अनपढ़ता तथा दक्षता का अभाव। तमाम विडम्बनाओं की मार उसी गरीब मजदूर पर पड़ती है। महंगाई लगातार उसकी परीक्षा लेती है -

मेहनत, मजदूरी का तोड़ा, कुछ तुम अटका दो सौ रोड़ा।
गरीबां का जाथर थोड़ा, कुछ मंहगाई का बोझ।
ऐ धन आळे लोगो थारै नहीं दया का खोज।।[27]

महाशय दयाचंद की मौलिक दृष्टि उन्हें कौरवी के महान कवियों में शुमार करती है। रागणी की पारम्परिक विषय-वस्तु श्रृंगार, अध्यात्म और स्थूल वर्णन से निकलकर उन्होंने गरीब मजदूर की पीड़ा और उसके संघर्ष को वाणी प्रदान की है।

यह कवि की सामाजिक उपादेयता एवं प्रतिबद्धता को इंगित करता लोकनाट्य के इतिहास में एक ऐसा सुखद पड़ाव और बदलाव है और इसके प्रणेता के महत्त्व को स्वयं ही उजागर कर देता है।

सन् 2011 में मेरी संपादित पुस्तक 'महाशय दयाचंद मायना ग्रंथावली' प्रकाशित हुई। मैं इस छाप-काट दरिंदगी को देखकर हैरान था कि कोई आदमी इतना क्रूर कैसे हो सकता है? मैंने उन लोकनाट्यों और रागनियों के तमाम प्रमाण व संदर्भ देकर उन्हें महाशय दयाचंद मायना की पुनः सिद्ध कर दिया तथा ईमानदार और नैतिक गायकों को जब वास्तविकता का पता चला तो उन्होंने उन लोकनाट्यों को दोबारा मूल कवि की छाप से गाना शुरू कर दिया। इस तरह महाशय दयाचंद मायना को न्याय मिला।

महाशय दयाचंद मायना दलित समाज से थे। इस कारण उनका पूरा लोकनाट्य 'नेताजी सुभाष' जाट मेहर सिंह के नाम से योजनाबद्ध रूप में गा दिया गया। 'नेताजी सुभाष' लोकनाट्य के साथ-साथ 'वीर हकीकत राय' की अनेक रागनियाँ और अनेक फुटकर रागनियाँ मेहर सिंह के नाम से गाकर पका दी गईं। आर्थिक और सामाजिक रूप से कमजोर होने के कारण वे खुद या उनके परिवार से कोई बोल नहीं सका। दयाचंद मायना अपने जीवन के अंतिम दशक में बेहद सदमे में थे रहे। 1975-80 से ही उनकी रागनियों पर छाप कटने का सिलसिला चला और उनके देहांत के बाद तो और तेज गति से चला। जबकि लोकनाट्य की शैली, शब्दावली, सामाजिक परिवेश, ऐतिहासिक तथ्य, रागनी की रंगत सब बता रही हैं कि ये दयाचंद मायना की हैं। पूरे कौरवी लोकनाट्य के इतिहास में छापकटैयों के सबसे अधिक शिकार दयाचंद मायना हुए। कला के क्षेत्र में इस प्रकार का जातिवाद अन्यत्र दुर्लभ है कि उनकी रागनियों पर ही कब्जा कर लिया जाए। यह लोकनाट्य के क्षेत्र में साफ दरिंदगी थी। राजकिशन अगवानपुरिया, पालेराम दहिया, बाऊराम और अनेक गायकों ने धन और यश कमाने के लिए दयाचंद मायना की रागनियाँ मेहरसिंह के नाम से खूब गाईं। डॉ. रामफल चहल, प्रो. रणबीर सिंह दहिया और डॉ. संतराम देशवाल ने महाशय दयाचंद मायना के लोकनाट्यों को मेहरसिंह की पुस्तकों में धड़ल्ले से प्रकाशित करवा दिया। संपादकों के भी अपने जातिवादी निहितार्थ यहाँ दिखाई देते हैं।

मास्टर नेकीराम -

दक्षिणी हरियाणा में मा. नेकीराम जी का एक सांगी के रूप में सुप्रसिद्ध नाम

है। उन्होंने हरियाणा, राजस्थान और उत्तर प्रदेश तक सांग का परचम लहराया। लोकनाट्य सांग के क्षेत्र में उन्होंने अपनी प्रतिभा और प्रतिबद्धता के बल पर तथाकथित वर्चस्व को तोड़ा। ऊँचे स्वर और लंबे-तगड़े डीलडोल का होने के कारण उनकी छवि ही अलग बनती थी। उनकी खास विशेषता यह भी रही कि उन्होंने अपनी स्वरचित कहानियों के आधार पर कई मौलिक सांगों की रचना की। अपने जीवन काल में उन्होंने लगभग दो दर्जन से अधिक सांगों और अनेक फुटकर रागनियौं का सृजन किया। उनके कुछ मुख्य स्वरचित सांग हैं - 'राजा भोज-भानवती', 'राजा रिसालू-शीलवंत', 'राजा उदयभान-उर्मिला', 'राजा कंवरसेन-कुलवंती', 'सुल्तान सिंह-सुरेखा', 'फूल सिंह-नौटंकी', 'चापसिंह-सोमोती', 'राजा मदन सेन-चंद्रकिरण', 'राजा हरिश्चंद्र-तारावती', 'रूप-बसंत', 'बीना-बब्बन', 'हीर-रांझा', 'लीलो-चमन', 'अमर सिंह राठौड़', 'सेठ ताराचंद', 'शाही लक्कड़हारा', 'मीराँबाई', 'भक्त पूरणमल', 'गोपीचंद भरतरी', 'राजा मोरध्वज', 'पिंगला भरतरी', 'बाबा गरीबनाथ की गौरव गाथा', 'डॉक्टर भीमराव अंबेडकर' आदि।[28]

मास्टर नेकीराम का जन्मतिथि 06 अक्टूबर, 1915[29] को पिता मास्टर मूलचंद (प्रसिद्ध सांगी) तथा माता लाडो देवी के घर गाँव जैतड़ावास, डाकखाना सुलखा, जिला रेवाड़ी, हरियाणा में हुआ। केवल चार जमात उर्दू माध्यम से शिक्षा ग्रहण कर ये अपने दादा तथा पिता के सांग कला के क्षेत्र में उपस्थित हुए। मास्टर नेकीराम अपने पिता के ही शागिर्द थे लेकिन उन्होंने पिता के निर्देशानुसार राजस्थान के अलवर के गाँव सामधा स्थित प्रसिद्ध मंदिर के प्रथम गद्दी महंत श्री गरीब नाथ जी महाराज के उत्तराधिकारी तथा तत्कालीन गद्दीनशीन महंत श्री गोपाल नाथ जी को अपना गुरु बनाया। सेठ ताराचंद सांग में वे लिखते हैं -

> ध्यान लगा कै सुण ले बेटा तेरा पिताश्री समझावै।
> जो कोई हो गलती गुस्ताखी, उसकी माफी चाहूवै।
> श्री गोपालनाथ जी सतगुरु पूरे निस-दिन शीश झुकावै।
> गाणे और बजाणे का सही रास्ता ठीक बतावै।
> नेकीराम के संग म्हं रह कै बेटा सदा सुरीला गाणा।।[30]

इन्होंने लंबे समय तक सांग विधा को विभूषित किया और उसे प्रसिद्धि दी।

मास्टर नेकीराम ने देश के समस्त हिंदी राज्यों में स्थापित भारतीय सेना की विभिन्न टुकड़ियों में सैनिकों के मनोरंजन एवं उत्साह-वर्द्धन के लिए अनेक बार सांग

मंचित किए। उन्होंने सांगों के माध्यम से पारिवारिक समस्याओं यथा पति-पत्नी एकनिष्ठता, ईमानदारी, शिक्षा की महत्ता, परिश्रम आदि पर अपने दर्शकों को अभिभूत किया।

यदि हरियाणवी सांगों का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया जाए तो इस बात पर ताज्जुब होता है कि ऊँची जातियों से आने वाले सांगियों ने वर्ण-जाति व्यवस्था को पुख्ता करने का ही काम किया। स्त्री के प्रति उनकी दृष्टि पुरातन ही रही। उन्होंने उसके लिए डंकणी, मानसखाणी, रांड, निर्भागण, अनपूती और कुलनाशी जैसे शब्दों का प्रचलन किया, परंतु मास्टर नेकीराम स्त्री के पक्ष में खड़े होकर एक तरह से ऐसे पुरुष वर्चस्वी सांगियों को लताड़ रहे थे। वह स्त्री को 'खोटी बीर', 'उल्टी बुद्धि' 'गुद्दी पीछे मत' और 'बेतासीर' बताने वालों को जवाब देते हैं -

बेल बधेवा अगत निशानी खोटी बीर बताते क्यों?
उल्टी बुद्धि मति गुद्दी ने बेपीर बताते क्यों?
सुन्दर स्वच्छ पदार्थ कर दिए बेतासीर बताते क्यों?
चार आश्रम कायम कर दिए दोष शरीर बताते क्यों?
हो पूरी पक्की पंसेरी ला पासंग घाट्य करै सैं।
प्रोपगण्डा नेकीराम सब झूठी डाट्य करै सैं।[31]

इतना ही नहीं एक अभिभावक के रूप में वे स्त्रियों को एकनिष्ठता और नैतिकता की शिक्षा भी दे रहे थे। 'सोमोती-चापसिंह' सांग में जब सोमोती ब्याह के बाद अपने पति के घर जाती है तो उसकी माँ उसे समझाती है -

बणजा वीर सती पतिव्रता।
होज्या अमर नाम नहीं मरता।
गाणे के म्हां काफी करता नेकीराम खुभात है।[32]

पति व पत्नी के संबंध की नैतिकता को लोग पतिव्रता शब्द के रूप में जानता है। लोक में किसी भी ऐसे व्यक्ति को पसंद नहीं किया जाता जो जार हो और पत्नी के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र संबंध बनाता फिरे। सांगी मास्टर नेकीराम ऐसे व्यक्ति की भर्त्सना करते हैं।

शिक्षा एक ऐसा लहना है जिसके माध्यम से जीवन में किसी भी ऊँचाई पर पहुँचा जा सकता है। सांगी का प्रभाव क्षेत्र लोक होता है। जब वह रागनी के माध्यम से शिक्षा की महत्ता को बताता है तो उसका असर अधिक पड़ता है। वंचित जातियों

से आने वाले अधिकांश सांगियों और लोक कलाकारों ने बाबा साहब डॉ. अंबेडकर की जिजीविषा को शिरोधार्य करके अपने श्रोताओं और प्रशंसकों के मध्य शिक्षा का प्रचार भी किया। सांगी नेकीराम की एक सुप्रसिद्ध रागनी की टेक अपने आप में मनुष्य की तरक्की की टेक है -

लिखे पढ़े बिन कदर नहीं सै पढ़ने की तैयारी कर ले।
कोई अनपढ़ बेटा रह जा बणिये कै, तड़प-तड़प कै मर ले।[33]

शिक्षा से केवल एक ही परिवार का या एक ही व्यक्ति का जीवन नहीं सुधरता अपितु शिक्षा से संस्कार बनता है। उससे घर परिवार माता-पिता अड़ोस-पड़ोस सभी महक जाते हैं।

जो विद्या की सार जाणता, वो माणस हो अलबेला।
यो धन उसनै मिल्या करै, जिसनै सुख-दुख झेला।
सब कुणबा रह्या तेरे साथ म्हं मतना समझ अकेला।
चलो मदरसा नाम लिखा दिया सजा बगल म्हं थैला।
सच्चे मन से करो पढ़ाई फिर आगे की सुध हर ले।[34]

विद्या व्यक्ति को संवेदनशील बनाती है और संवेदनशील व्यक्ति ऊँच-नीच जात-पाँत और ईर्ष्या-द्वेष के झगड़े में नहीं पड़ता। घर, समाज और देश की उन्नति केवल शिक्षा से ही संभव है।

मास्टर नेकीराम जीवन में उन्नति के लिए अथक परिश्रम के हिमायती हैं। वह कहते हैं कि जीवन का एक-एक पल अनमोल है। इसे जागृत अवस्था में परिश्रम करते हुए बिताना चाहिए। जो परिश्रम करता है, उसका जीवन हीरे के समान अमूल्य हो जाता है और जो आलस्य में पड़ा रहता है, वह अपने जीवन को दो कौड़ी का कर डालता है। यह मनुष्य के खुद के हाथ में है कि वह कैसा जीवन व्यतीत करना चाहता है। कवि की रागनी की टेक और एक कली देखी जा सकती है -

त्याग आलस्य जाग मुसाफिर काफी नींद सो लिया।
हीरा जन्म अनमोल तनै तो कौड़ी मोल खो लिया।[35]

x x x

बालकपन हँस खेल गँवाया, जोर जवानी काम किया।
वृद्धावस्था दुखी हुआ कफ खाँसी का पैगाम किया।
खा पी माल हराम किया तनै काट्या जिसा बो लिया।[36]

जो व्यक्ति जैसा अपने जीवन में काम करता है, उसके अंतिम समय में वैसा ही उस को फल मिलता है। अथक परिश्रम करने वाले का जीवन अंतिम समय में सुखमय में होता है क्योंकि उसका कमाया हुआ धन उसके काम आता है।

आर्थिक रूप से विपन्न और सामाजिक रूप से वंचित तबकों में जन्म लेकर व्यक्ति अथक परिश्रम करके उच्चता को प्राप्त हो सकता है।

मास्टर नेकीराम के साथ एक और विशेषता यह भी जुड़ी हुई थी कि वे किसी भी सांग प्रणाली के अनुयायी नहीं थे बल्कि उन्होंने अपनी खुद की प्रणाली की शुरूआत की। इनके बाद इनके पुत्र मास्टर राजेंद्र सिंह ने इनकी सांग परंपरा को आगे बढ़ाया और अपने अंतिम समय तक इसका मंचन किया।

मास्टर नेकीराम का देहांत 10 जून, 1996 को हुआ।[37]

धर्मपाल भालोठिया -

धर्मपाल सिंह भालोठिया का जन्म 27 जनवरी, 1926 को हरियाणा में जिला महेन्द्रगढ़ में ढाणी भालोठिया गाँव में पिता धन्नाराम जांगू एवं माता श्रवणी के घर हुआ।[38] कवि ने अपने गाँव का जिक्र एक रागनी की चौथी कली में किया है -

धर्मपाल सिंह तेरे सहारे, करना तू रखवाली।
जालिम गुण्डे बेईमान, नित्य जाल गेरते जाली।
एक छोटा सा गाँव नाम ढाणी भालोठियों वाली।
जिला महेन्द्रगढ़ कहते हैं, डाकखाना सतनाली।
पूर्वी पंजाब स्टेट्स, यूनियन पटियाला।।[39]

इन्होंने प्राथमिक शिक्षा पड़ोस के गाँव कादमा में पं. ठाकुर दास जी की पाठशाला में प्राप्त की। इन्हें हिन्दी के अलावा उर्दू, पंजाबी एवं संस्कृत का भी सामान्य ज्ञान था।

बचपन से ही लोक संगीत में रुचि होने के कारण आर्य समाज के प्रसिद्ध भजनोपदेशक गाँव जुड़ोला, जिला गुड़गाँव निवासी श्री बोहतराम को इन्होंने अपना गुरु बनाया। इनकी अनेक रागणियों में इनके गुरु का नाम आया है -

गुरु बोहतराम जब आए।
दई बता पोप की दवाई री।[40]

धर्मपाल भालोठिया जी गायन कला के हुनर में इतने माहिर थे कि अकेले ही एक साथ हारमोनियम, ढोलक व चिमटा बजा लेते थे। ये बाँसुरी व बीन भी अच्छी बजाते थे।

लोकनाट्यकार धर्मपाल भालोठिया के सृजन की सबसे खास बात यह है कि वे भारतीय घर को मजबूत करना चाहते हैं। क्योंकि यदि घर मजबूत नहीं होगा तो परिवार, समाज या देश मजबूत कैसे होगा? घर की मजबूती के लिए नैतिक आचरण जरूरी है। अंधविश्वास का खात्मा जरूरी है, अदृश्य पितरों के प्रति श्रद्धा की अपेक्षा घर में जीवित बुजुर्गों का सम्मान जरूरी है, शिक्षा और स्वास्थ्य जरूरी है, जहाँ भ्रष्टाचार न हो, जहाँ छल-कपट और ईर्ष्या न हो, जहाँ परस्पर गरिमा की रक्षा हो। किसी भी देश की तरक्की के लिए उसके घरों का मजबूत होना जरूरी और पहली शर्त है। ऐसे घरों से ही आकर लोग देश को संभाल सकते हैं। वे खुशहाल परिवार में ही खुशहाल देश का सपना देखते रहे, जो निहायत व्यावहारिक है।

धर्मपाल भालोठिया को हरियाणा के सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ का चितेरा भी कहा जा सकता है। उनके कृतित्व में उनका युग साफ झलकता है। चाहे वह सामाजिक कुरीतियाँ हों या पाखंड, रीति-रिवाज व सामाजिक संदर्भ हो या जाति-पाँति की भावना, राजनीतिक सूझ-बूझ हो या शराबी को फटकार, कवि की दृष्टि से कोई भी बच नहीं पाया। उनके लोकनाट्य जीवंतता और साहसी पात्रों से भरे पड़े हैं। अनेक पात्र अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए मरते-कटते दिखाई देते हैं। उनके पास जति-सती की नैतिकता के पात्र हैं। यह शब्द पति की मृत्यु के बाद उसकी चिता में जलकर मरने वाली 'सती' के रूप में नहीं है, बल्कि अपने पति के प्रति एकनिष्ठ और नैतिक स्त्री के रूप में है।[41]

लोकनाट्यकार धर्मपाल भालोठिया की लड़ाई के कई आयाम हैं। एक, वे बीकानेर रियासत की ज्यादतियों की पोल खोल रहे थे। 'बागड़ मेल' इसका प्रमाण है। दूसरे, वे अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ लोगों को आंदोलित कर रहे थे। तीसरे, देश की गुलामी की सबसे गहरी जड़ जातिवाद और धार्मिक उन्माद, अशिक्षा, व्यसन और कुरीतियों के खिलाफ पर्याप्त मुखर रूप में रागणियों के माध्यम से लोक संस्कृति को प्रभावित कर रहे थे। उनके व्यक्तित्व का एक चौथा और सबसे महत्त्वपूर्ण आयाम यह भी था कि वे लोकसाहित्य का उद्देश्य भी स्पष्ट कर रहे थे। उन्होंने रागणी को कपोल-कल्पित विषय-वस्तु से बाहर निकाल कर उसे धरातलीय रूप प्रदान किया था। उसमें लोक आ रहा था, लोक की चिंताएँ आ रही थीं।

वे अपने समय के तमाम समाज-सुधारकों से असंपृक्त नहीं हैं। उनके संपूर्ण कृतित्व में एक एक्टिविस्ट की त्वरितता दिखाई देती है। 1946 में प्रकाशित 'बागड़ मेल' में रागणी की जो सामाजिक-राजनीतिक धार है, वैसी धार उस समय बहुत कम

लोक कवियों में दिखाई देती है। वे पृथ्वीसिंह बेधड़क के कहीं-कहीं समकक्ष ठहरते हैं। परंतु शासन को सीधी ललकारपूर्ण शैली उनकी भी नहीं है। राजस्थान सरकार द्वारा मरणोपरान्त 9 अगस्त, 2011 को आज़ादी के दीवाने को स्वतंत्रता सेनानी का सम्मान दिया गया।[41]

8 अक्टूबर, 2009 को अपनी 84 वर्ष की यात्रा पूर्ण कर आप संसार से विदा हुए, लेकिन समाज में एक सुमधुर गायक, कवि, लेखक, समाज सुधारक एवं प्रेरक व्यक्तित्व की अमिट छाप छोड़ गए।[42]

इन्होंने 12 लोकनाट्य और अनेक फुटकर रागणियाँ भी लिखीं। इनका परिचय इस प्रकार है - 'सरदारबाई-मूलचंद', 'कृष्ण-सुदामा', 'जगदेव-बीरमती', 'अजीत सिंह-राजबाला', 'सोमवती-चापसिंह', 'दुलारी-कालीचंद', 'तारावती-कर्णसिंह', 'रतनकौर-हरपाल सिंह', 'सुंदरबाई- बीरसिंह', 'सत्यवती-कर्णसिंह', 'मंझा रानी-प्रतिपाल', 'अंजना-पवन' आदि। इन बारह लोकनाट्यों के अतिरिक्त इन्होंने विभिन्न समसामयिक विषयों पर भी रागणियाँ लिखीं।

कवि धर्मपाल भालोठिया जी किसानी समुदाय से ही आते हैं। उनकी अनेक रागनियों और भजनों में किसानी जीवन की दुर्धर्ष जिजीविषा और कष्ट छलकते हैं। कवि की रागनी 'क्यों फिरे भटकता भारत के वीर कमाऊ' किसान की यथार्थ स्थिति का चित्रण करती रागणी है। किसान खुले आसमान के नीचे गर्मी-सर्दी, मींह और अंधड़ों के बीच खेत में काम करता है। खेत में साँप, बिच्छू गुव्हेरा का डर रहता है। किसान देश के लिए अन्न व सब्जी उगाता है। किसान से ही देश के सब लोगों के ठाठ हैं। किसान के बालक देश की सीमाओं पर मर-कट कर देश की रक्षा करते हैं। कवि का कथन दर्शनीय है -

नंगे आसमान के नीचे, दिन और रात कमावै तू।
जेठ साढ़ की आग पड़े जब, अपना गात तपावै तू।
तेरा पसीना नहीं सूखे फिर, कपड़े कहाँ सुखावै तू।
पोह माह का जब चले सींकटा, खेत म्हं पाणी लावै तू।
रात अंधेरी खड़ा पाणी म्हं, अपनी जाड़ बजावै तू।।
जिससे दुनिया ऐश करे, वह साधन सभी बनावै तू।
गेहूँ चावल मूँग मोठ, जौ, चणे उड़द उपजावै तू।
गुड़ शक्कर चीनी के लिए, जा खेत म्हं ईंख नुलावै तू।
तेल की खातिर मूँगफली तिल, सिरसम तरा उगावै तू।

फल सब्जी और कपास के लिए, बाड़ी बाग लगावै तू।
तेरे खेत म्हं आलू गोभी, भिंडी मटर बताऊ।।[43]

इतना होने के बावजूद किसान सरकार की योजना में शामिल नहीं है। सरकारें पूंजीपति और धन्नासेठों के लिए सुख सुविधाएँ उत्पन्न करती रहती हैं। कवि धर्मपाल भालोठिया किसान को पालनहार ईश्वर के रूप में देखते हैं।

सृष्टि में स्त्री और पुरुष का अनुपात सुरक्षित रहना बहुत ही जरूरी है। यदि केवल पुरुष ही पुरुष रहे और स्त्रियों की संख्या कम रह गई तो अनेक पुरुष अविवाहित ही रहेंगे और उस समय अतृप्त काम-विकृतियों से हत्या, अपहरण जैसे कुकृत्य को बढ़ावा मिलेगा। कवि धर्मपाल भालोठिया जी ने बहुत ही दृढ़ और कटु शब्दों में जनता को जागरूक करने का प्रयास किया। कुछ कटु पंक्तियाँ दर्शनीय हैं

कभी यहाँ सत्यवादी थे, आज धर्म ईमान बेचते हैं।
कभी यहाँ शिक्षादान बड़ा था, अब यहाँ ज्ञान बेचते हैं।
कभी यहाँ भोजन मुफ्त मिले था, अब जलपान बेचते हैं।
कभी यहाँ स्वयंवर शादी थी, अब संतान बेचते हैं।
अब के हमारी, आई बुड्ढों की बारी, बेचेंगे बेईमान।
बिगड़ गई ऋषियों की संतान।।[44]

पढ़ी-लिखी लड़कियाँ परिवार की शान बनती हैं। बोलने, सोचने-विचारने, औढ़ने-पहनने और विश्लेषण करने का ढंग ही बदल जाता है। इसलिए कवि लड़कियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देते हैं -

लाडो और सिणगारी हे, हों बी.ए., एम.ए. सारी हे।
फिर बनें कुटुम्ब की शान।।
धापां जहरो माड़ी हे, चलें पहन के साड़ी हे।
सुन्दर लगे पहरान।।
होजा दूर कंगाली हे, खुश होकर हाळी पाळी हे।
सुनें भालोठिया का गान।।[45]

कवि धर्मपाल भालोठिया का कथन है कि जातिवादी मानसिकता से ग्रस्त व्यक्ति भारत का कपूत है और जाति-धर्म की भावना से ऊपर उठकर सबको समान भारतीयता की नज़र से देखने वाला भारत का सच्चा सपूत है -

भाई व बहना, मानो ये कहना, इसमें भला है आपका।

ऊँच नीच का भेद मिटाकर, काम करो इंसाफ का।
देश के बनो सपूत, अब तो जाने दो।।[46]

जाति-वर्ण के व्यवहार को कवि बुराई के रूप में देखते हैं। वह देशवासियों से कहना चाहते हैं कि अभी भी वक्त है। हमें पिछड़े हुओं को गले लगाना चाहिए। अगर हमने अब भी पिछड़े हुओं को गले लगा लिया तो पिछली तमाम गलतियाँ माफ हो जाएँगी और हमारा आगे का रास्ता साफ हो जाएगा -

अब भी वक्त है होश संभालो, पिछड़े हुओं को गले लगा लो।
पिछली माफ हो जागी, अगली साफ हो जागी।
बुराई आपकी।।[47]

धर्मपाल भालोठिया एक सामाजिक कवि के रूप में उभरे हैं। उन्होंने कला की प्रतिबद्धता को बेहतर समाज के निर्माण के लिए उपयोग किया। इस दृष्टि से उनका एक कवि के रूप में महत्त्व स्वतः स्पष्ट हो जाता है। कवि की कविता यदि सामाजिक मुद्दों को छूती हुई अपने पाठकों और श्रोताओं को अपने जातिवादी व्यवहार के बारे में सोचने को विह्वल कर देती है तो उससे कवि की सार्थकता द्विगुणित हो जाती है।

महाशय छज्जूलाल सिलाणा -

महाशय छज्जूलाल का जन्म पिता महंत रिछपाल और माँ दाखाँ देवी के घर 14 अप्रैल सन् 1922 को झज्जर जिले के गाँव सिलाणा में वाल्मीकि जाति में हुआ।[48]

उस समय महाशय दयाचंद मायना की रागणियों और उनके प्रचार का काफी नाम था। महाशय दयाचंद मायना ने रागणी में विषयगत और कलागत नए प्रयोग किए थे। उनकी माँग थी। इन्होंने इन्हें ही अपना गुरु बनाया।

महाशय छज्जूलाल अपने गुरु महाशय दयाचंद मायना से सात-आठ वर्ष ही छोटे थे। वे अपने गुरु के निवास गाँव को किसी धाम से कम नहीं समझते -

गुरु दयाचंद का नाम सुमर ले, याहे बात जरूरी सै।
मायना गाम धाम समझ्या, उकी दया-दृष्टि पूरी सै।
गाम सिलाणा साथ तेरी, तनै फेर बी के मजबूरी सै।
जल्दी करकै चाल उड़े, रागां की भरी तजूरी सै।
छज्जूलाल नै भजन और छन्द गाण दे नै री सास पियारी।[49]

इनके किस्सों में 'डॉ. बी.आर. अंबेडकर', 'वेदवती-रतन सिंह', 'धर्मपाल-शांति', 'राजा हरिश्चंद्र', 'ध्रुवभगत', 'नौटंकी', 'सरवर-नीर', 'बालावंती', 'विद्यावती', 'बणदेवी', चंद्रकिरण', 'राजा कर्ण', 'रैदास भक्त', 'शीला-हीरालाल जुलाहा', 'शहीद भूपसिंह', 'एकलव्य' आदि।

महाशय छज्जूलाल सिलाणा द्वारा रचित लोकनाट्य 'डॉ. बी.आर. अम्बेडकर' हरियाणा के लोक-साहित्य में एक मील का पत्थर है जो कला के सामाजिक दायित्व का आदर्श स्थापित करता है। संभवतः कौरवी क्षेत्र में पूरी तरह से डॉ. अंबेडकर पर प्रथम लोकनाट्य इन्होंने ही लिखा।

डॉ. अम्बेडकर की जीवनी को 31 रागणियों के सांग में पिरोकर महाशय छज्जूलाल ने हरियाणा के लोक में डॉ. अम्बेडकर को सर्वग्राह्य बनाने का महती काम किया है। इस किस्से की पहली ही रागणी में मार्मिकता का दुर्लभ उदाहरण है -

मनुष हुया कैसे ऊँचा नीचा।
क्यूं गळ म्हारा छुआछूत नै भींच्या।
यो भेदभाव का खड्या बगीचा क्यूं ना कट पाता।
घणा हो लिया काल ईब ना और सह्या जाता।[50]

6 दिसम्बर 1956 को डॉ. अंबेडकर का देहान्त हो गया। उनके देहांत पर कवि छज्जूलाल लिखते हैं -

घोर अंधेरा माचज्या जब भान गगन म्हं ना खिलै।
जीवनदाई पवन चले बिन पत्ता तक भी ना हिलै।
अब टोहे तै भी ना मिलै वा अजब ज्योत टोहने लगे।
जब भीम तेरी अर्थी चली लाखों मनुष्य रोने लगे।[51]

इस लोकनाट्य में महाशय छज्जूलाल सिलाणा ने डॉ. अम्बेडकर के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को करिश्माई रूप में सांग का रूप दिया है। यह सांग सांग विधा का एक अनूठा प्रयोग है। जैसे-जैसे कथा आगे बढ़ती है और रागणी का रूप रंग निखरता है, दर्शक स्वयमेव प्रेरणा के सरोवर में गोते लगाने लगता है और महाशय छज्जूलाल हरियाणा के एक बेहतरीन लोकगायक के रूप में अवतरित होते चले जाते हैं।

'वेदवती-रतन सिंह' महाशय छज्जूलाल जी का एक अनुपम बहूद्देशीय लोकनाट्य है। इस किस्से में कवि ने कई समस्याओं को आधार बनाया है। इस

लोकनाट्य में कवि छज्जूलाल ने वर्तमान समय की सामाजिक समस्याओं यथा - शराब से हानि, पर्यावरण संरक्षण, स्त्री शिक्षा, लड़का-लड़की बराबरी, दहेज की कुरीति आदि को विषय बनाकर लोक साहित्य की सामाजिक प्रतिबद्धता को समझा है। यह पूरा लोकनाट्य पूर्णतः सुनियोजित है। किस्से में स्त्री के साहस की प्रतिष्ठा है। ममता अपने पति की तमाम बुराइयों के बावजूद उसे मुख्य धारा में लाकर रहती है। वह लगातार उससे जद्दोजहद करती है। स्त्री विमर्श की दृष्टि से यह लोकनाट्य एक अति महत्त्वपूर्ण लोकनाट्य है।

'सर्वजीत विद्यावती' यह लोकनाट्य राजघरानों की राजनीति का पर्दाफाश करता किस्सा है। इसका मूल उद्देश्य यही है कि राजा का मुख्य उद्देश्य जनता का कल्याण ही होना चाहिए।

'राजा हरिश्चंद्र' हरियाणा के लोक में खासा प्रिय लोकनाट्य है। यह त्याग, सत्य और मानवीय संबंधों में समर्पण का अनूठा लोकनाट्य है। लोकनाट्य में सत्यवादी हरिश्चंद्र के आचरण की परीक्षा होती है। यह लोकनाट्य समाज में जाति की संरचना को और मजबूत करने का एक औजार है। ब्राह्मण को अपना सब कुछ देकर बल्कि स्वयं तथा परिवार बिककर दाने-दाने को मोहताज होने वाला हरिश्चंद्र क्या चमार भंगी या ऐसी तमाम जातियों के लोगों के कहने से ऐसा करेगा? फिर पति-पत्नी का प्रगाढ़ संबंध मात्र अलग-अलग जातियों में रहने से टूट जाएगा? उनकी वार्तालाप से लगता है कि हरिश्चंद्र कालू भंगी के यहाँ रहने से भंगी बन गया तथा मदनावत रामलाल पंडित के यहाँ रहने से ब्राह्मण बन गई। घड़ा उठवाने के मामले में पत्नी द्वारा मना किया जाना जाति की स्वीकार्यता का दर्दनाक दृश्य है। कवि छज्जूलाल ने विशेष रूप से कालू भंगी के चरित्र के साथ न्याय किया है।

'नौटंकी' लोकनाट्य मनोरंजन की दृष्टि से हरियाणा का एक अत्यधिक पसन्द किया जाने वाला लोकनाट्य है। इससे पहले लखमीचंद ने भी इस कहानी पर सांग बनाया और खेला। उन्होंने कालू भंगी को राजा भंगश शाह दिखाया है। यह व्यावहारिक इस रूप में दिखाई देता है कि वह राजा हरिश्चंद्र को सबसे अधिक बोली देकर खरीदकर लेकर आता है।

यह लोकनाट्य विशुद्ध मनोरंजन को दृष्टिगत करके लिखा गया लोकनाट्य है। विशेष रूप से ऐसे दर्शकों तथा श्रोताओं के लिए, जो प्रेम, प्यार की चुहल से भरे हुए हैं। मालन को रुपये देकर मौसी बनाना, स्त्री के वस्त्र पहनकर राजकुमार का राजकुमारी के महल में जाना, अंधे दरबान को रुपये देकर अपने पक्ष में करना,

राजकुमारी नौटंकी द्वारा पीर की मन्नत तथा स्त्री बने राजकुमार फूल सिंह द्वारा अपने शरीर के अंगों में परिवर्तन की बात करना दर्शकों की मनोविनोद वृत्तियों को उद्वेलित करती हैं। शृंगार रस के दृश्यों से पूरी तरह लबालब यह लोकनाट्य कवि की सृजनशीलता का अद्भुत नमूना है। विशेष रूप से उस समय जब कवि एक ओर डॉ. अम्बेडकर पर विशुद्ध रूप से सामाजिक राजनैतिक चेतना से भरपूर किस्सा घड़ रहे हैं।

'ध्रुव भगत' की लोक कथा हरियाणा में खासी लोकप्रिय है। संभवतः यही कारण है कि इस पर महाशय छज्जूलाल ने लोकनाट्य बनाया। तमाम हिन्दू छल प्रपंचों को निकाल दें तो इसका एक मात्र उद्देश्य सामने आता है कि दृढ़ विश्वासी की विजय होती है।

महाशय छज्जूलाल सिलाणा ने लगभग 21 लोकनाट्यों की रचना की। परन्तु उनके संकलन में भारी असावधानी के कारण कुछ लोकनाट्य उनके साथ ही चले गये। वस्तुतः लोक सहित्य मौखिक रूप में ही पीढ़ी दर पीढ़ी शिष्य परम्परा में यात्रा करता है। इसके लेखन महत्त्व को गंभीरता से नहीं लिया गया।

इनका देहांत 16 दिसंबर 2005 को सुबह नौ बजे हुआ।[52]

महाशय गुणपाल कासंडा -

गुणपाल कासंडा का जन्म मार्च 1924 के आस-पास मोलूराम के घर गाँव कासंडा, जिला सोनीपत चमार जाति में हुआ।[53]

महाशय गुणपाल कासंडा ने उर्दू माध्यम से मात्र चार जमात तक ही शिक्षा प्राप्त की। ये कासंडी पढ़ने जाया करते थे। आगे की पढ़ाई के बारे में उन्होंने बताया कि कासंडी में स्कूल केवल चौथी कक्षा ही था। उसके बाद कहीं दूर जाकर पढ़ना था। फिर उस समय पढ़ाई को लेकर कोई गंभीर नहीं था। इसलिए पढ़ाई छोड़नी पड़ी।

इसी समय उन्हें गाने की खटक लग गई और अपने गुरु महाशय दयाचंद मायना की रचनाएँ गानी शुरू कर दी। बाद में उन्होंने अपनी कविता बनानी शुरू कर दी। उन्होंने अपने गुरु का नाम लेकर भजन पार्टी बना ली तथा कार्यक्रमों में व्यस्त हो गए। बीच-बीच में जूतियाँ बनाने का काम भी चलता रहा। कवि दयाचंद मायना का साथ गुणपाल जी अपने लिए सुखद मानते हैं -

"मायना गाम खास दयाचंद का।

गुणपाल दास दयाचंद का।
मनै मिल्या पास दयाचंद का।
छंद का बाण दंगल मैं पैनी धार कर दे तू।''[54]

महाशय गुणपाल कासंडा ने अपने जीवन काल में 16 सांगों तथा लगभग सौ रागणियों की रचना की। उनके लोकनाट्य हैं - 'लड़का नलवा व माँ भगवती', 'सती मदनरेखा', 'राजा हरिश्चन्द्र दानी', 'हरप्यारी सेठानी', 'दुष्यंत शकुन्तला', 'श्याम और रेखा', 'भगत फूल सिंह', 'राजा महाबीर व रूपवती रानी', 'चंद्रदेव सुशीला', 'चंद्रा बहन व भाई सूरज सिंह राजपूत', 'कलावती संतराम', 'माँ चपला रानी', 'अंजना-पवन', 'भोज की चवन्नी', 'ध्रुव भगत' आदि।[55]

कवि तार्किक भाषा में जाति और वर्ण-व्यवस्था का खण्डन करता है। 'भगत फूल सिंह' सांग में जब कुछ चमार कुएँ पर पानी न भरने देने की शिकायत लेकर भगत फूल सिंह के पास पहुँचते हैं तो भगत फूलसिंह उस गाँव में जाकर सवर्णों को समझाते हैं -

''कर्मां के अनुसार जगत मैं हम तुम न्यारे हो सैं।
एक बतावैं बड़े-बड़े ईश्वर के घर सारे हो सैं।
आड़ै आण कै बात दूसरी उड़ै एक ही बात बताई।
छुआछात और भेद नहीं उड़ै एक ही जात बताई।
गर्मी सर्दी सब के लिए मींह बरसात बताई।
सूर्य चन्दा सबके खातिर दिन और रात बताई।
जो ईश्वर पै दोष धरैं वे मनुष्य गँवारे हो सैं।''[56]

कवि ने तार्किक भाषा में जाति-प्रथा को निरर्थक बताया है। कवि कहता है कि सभी मनुष्यों की शारीरिक संरचना लगभग एक जैसी है। आँख, कान, नाक, खून, नाड़ी, सिर, हड्डी, हाथ, पैर में इतनी समानता होते हुए मनुष्य-मनुष्य अलग कैसे हुए -

''कारीगर करतार ठीक यह ढांचा एक बणावै सैं।
हाथ पैर और नस नाड़ी सब मिलती रेख बणावै सैं।
मिलते जुलते आँख कान और सिर अनदेख बणावै सैं।
हाड़ मांस और खून एक-सा ध्यान टेक बतावै सैं।
सबकी खातिर अगन गगन जल पृथ्वी तारे हो सै।''[57]

रिश्वत का संस्कार सीधा ईमान से जुड़ा है। वस्तुतः हर व्यक्ति भारत की एक इकाई है। रिश्वत लेने वाले अधिकारियों के अनुपात से ही देश की

उन्नति-अवनति का अंदाजा लगाया जा सकता है। कवि रिश्वत लेना 'जात बेचना' मानते हैं। 'जात बेचना' मतलब अपनी मानव अस्मिता को बट्‌टा लगाना। कवि का कथन है -

''बिन रिश्वत ना सैन करे इसे बाबू क्लर्क होगे।
एक दो और तीन रुपयां पे अपणी जात बेच कती खोगे।
चपड़ासी तक मुँह पाड़ैं कप चाह मैं नाम डुबोगे।
शीशी माँगैं अंग्रेजी की के उनका जिक्र सुणोगे।
बिन पैसे रहो बाहर ओ अन्दर बिन प्रवेश बताया।[58]

कवि गुणपाल कासंडा आलस्य को मनुष्य का शत्रु मानते हैं। आलस्य त्यागकर परिश्रम के द्वारा मनुष्य एक श्रेष्ठ जीवन जी सकता है। परिश्रमी व्यक्ति के घर में किसी चीज की कोई कमी नहीं रह सकती। 'श्याम और रेखा' सांग में उनका संदेश देखा जा सकता है -

''आलस दूर हटाओ करकै ध्यान कमाओ।
बरकत होगी तेरे काम मैं गुण ईश्वर के गाओ।
हरगिज मत घबराओ लक्ष्मी पुज्जैं पैर तुम्हारे।''[59]

'श्याम और रेखा' लोकनाट्‌य श्रम की महत्ता और श्रम के सुखद परिणाम की दृष्टि से एक बेहतरीन लोकनाट्‌य है। पिता-विहीन श्याम विषम परिस्थितियों में पढ़ता है। वह उन तमाम बालकों के आदर्श के रूप में उपस्थित होता है, जिसके पास अपनी पढ़ाई जारी रखने के लिए संसाधनों का अभाव है। श्याम का पिता शराब में घर के संसाधनों को बाराबाट करके चल बसता है, बल्कि कर्जा ही छोड़ कर जाता है। श्याम को स्कूल की फीस के लाले भी पड़ जाते हैं। अपने पिता के एक मित्र के संरक्षण में उसकी पढ़ाई जारी रहती है। नूर मुहम्मद नाम का यह व्यक्ति अपनी घोड़ी तांगा तक बेचकर उसकी पढ़ाई जारी रखवाता है परन्तु उसका भी गरीबी में देहान्त हो जाता है। इस दौरान संघर्षों से जूझते हुए श्याम बी.ए. पास कर लेता है। वह एक विभाग में नौकरी के लिए आवेदन करता है। उस समय की रागणी परिश्रम को इंगित करती एक बेहतरीन रागणी है -

''तेरे मिल की सेठ नौकरी करणा चाहूं सूं।
करकै नै मजदूरी पेट मैं भरणा चाहूं सूं।
गरीब आदमी निर्धन तेरा सरणा चाहूं सूं।
गरीबी कारण सेठ इब मैं मरणा चाहूं सूं।
मन की चिन्ता मेट चाँदनी करो अंधेरे पै।''[60]

कवि 'कर्म ही धर्म है' की प्रवृत्ति का पैरवीकार है। 'श्रम की महता' का संस्कार कवि को अपने गुरु महाशय दयाचंद मायना से मिला है। परन्तु विडम्बना यह है कि श्रमशील व्यक्ति आर्थिक पायदान की दृष्टि से निकृष्ट जीवन जीने के लिए विवश होता है। कवि गुणपाल के कई सांगों में इस मनुष्य की दरिद्र अवस्था का यथार्थ चित्रण मिलता है। 'भोज की चवन्नी', 'श्याम और रेखा', 'राजा हरिश्चंद्र' आदि कुछ सांग ऐसे हैं, जिनमें कवि ने गरीबी के हू-ब-हू चित्र खींचे हैं। 'राजा हरिश्चंद्र' सांग में ढाई भार में तीनों राजा, रानी और बेटा रोहताश बिक जाते हैं। हरिश्चंद्र राजा था और उसकी पत्नी रानी। परन्तु जब वे बिक कर नौकरों का जीवन व्यतीत करते हैं तो उन्हें वास्तव में कठिनाइयों का आभास होता है। जब हरिश्चंद्र अपने बेटे रोहताश की लाश को जलाने के लिए अपनी पत्नी की साड़ी का चीर कटवा लेता है तो कालिया भंगी को बड़ा दुख होता है। वह हरिश्चंद्र को सम्बोधित करता है -

> ''जिसके पास नहीं जागीर, उसकी माड़ी सै तकदीर।
> लाग्या दुख विप्ता का तीर बतावै सै बेवारिस बीर।''[61]

धन जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए एक बेहद आवश्यक वस्तु है। जिसके पास धन का अभाव होगा, उसका जीवन भी उसी अनुपात में सुविधाजनक होगा। कालिया भंगी हरिश्चंद्र के समक्ष अर्थ का दर्शन प्रस्तुत करता है -

> ''जिसके दिन हो सैं गर्दिश के, उसनै बोल कहै विष के
> जिसके पैसा नहीं पास, उसका रहता चित्त उदास।
> हृदय नहीं रहै प्रकाश, उसकी करणी चाहिए ख्यास।''[62]

जिस घर में अर्थ का अभाव हो, उस घर में अगड़ पड़ौसी हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर देते हैं। लोग उस घर के प्राणियों को अपनी सलाहों पर अपनी उंगलियों पर नचाते हैं। कवि गुणपाल कासंडा की नज़रों में यह स्थिति भी नहीं बच पाई है। पहले ही कहा जा चुका है कि गुणपाल जी गरीब वर्ग से संबंध रखते हैं -

> ''टोटे आळे बाप की लोगों रहा करै संतान दुखी।
> हुया करैं बिरान दुखी जिस घर मैं हुकुम बिराणी।''[63]

कवि गुणपाल कासंडा की फुटकल रागणियों में भी गरीबी के यथार्थ चित्रण मिलते हैं। गरीब व्यक्ति गरीबी से इतना आहत है कि उसे मौत अधिक आकर्षित करती है। वह भगवान से गरीबी की बदनसीबी की अपेक्षा मौत अधिक सुखकर मानता है।

मास्टर दयाचंद आज़ाद सिंघाना -

मास्टर दयाचंद आज़ाद का जन्म सन् 1925 के आस-पास हरियाणा के जींद जिले में सफीदों तहसील के अंतर्गत सिंघाणा गाँव में चमार जाति में हुआ। इनके पिता का नाम मोलड़ राम और माता का नाम पातां देवी था।[64]

मा. दयाचंद आज़ाद कभी विद्यालय नहीं गए। उस समय अछूतों के लिए सरकारी स्कूलों का रास्ता इतना आसान भी नहीं था। वे सोनीपत में कन्हैया नाम के एक सांगी के पास रहते थे। वहाँ उनका संपर्क एक रामानंद नाम के व्यक्ति से हुआ जिनका उद्देश्य समाज सेवा करना था। उन्हीं की मदद से इन्होंने थोड़ी बहुत काम-चलाऊ हिन्दी का ज्ञान प्राप्त किया।

मा. दयाचंद आज़ाद ने अपने प्रारंभिक दिनों में गाँव में ही मेहनत मजदूरी करके अपने परिवार का पालन-पोषण किया।

इन्होंने गाँव अटावला जिला पानीपत निवासी निंघाई राम को अपना गुरु बनाया। निंघाई राम से ही इन्होंने पिंगल का ज्ञान प्राप्त किया। निंघाई राम स्वयं भी एक उच्च कोटि के लोक कवि थे। 'भीम सिंह अर्जुन सिंह' सांग की एक रागणी की कली में उनकी श्रद्धा दर्शनीय है -

दयाचंद का गाम सिंघाणा टोळे गुरुद्वारा सै।
लड़का-लड़की फिरैं भटकते पति-पत्नी तै न्यारा सै।
दुःख-सुख सारा सहणा होग्या, भेद खोल कै कहणा होग्या।
परदेसां म्हं रहणा होग्या, म्हारा देश हरियाणा सै।[65]

कवि अपने गुरु के ग्राम टोळे को गुरुद्वारा की संज्ञा देते हैं। 'टोळा' नाम अटावला का ही लोक प्रचलित नाम है।

इनके लोकनाट्य हैं - 'चन्द्रप्रभा-मदन कुमार', 'चन्द्रहास', 'फूलसिंह-फूलकली', 'सतवन्ती', 'फूल बहादुर-कृष्णा देवी', 'भीम सिंह-अर्जुन सिंह', 'धर्म-जीत और विजय', 'रतन कुमार-दयावती', 'चाप सिंह-सोमवती', 'राजपाल-रूकमा', 'जानी चोर', 'रूपा देवी-चंचल वजीर', 'सीता का दसोटा', 'हीर-रांझा', 'कथा सद्गुरु रविदास' आदि। 'रूपादेवी-चंचल वजीर', 'जानी चोर', 'सीता का दसोटा' तथा 'हीर-रांझा' की भी कुछ-कुछ रागनियाँ हैं। मा. दयाचंद आज़ाद ने ये पूरे सांग तैयार किए थे और जनता में जाकर खेले थे। परंतु अब उनकी कुछ-कुछ रागनियाँ ही बची हुई हैं। 'सीता का दसौटा' उनका एक अद्वितीय सांग था, जिसमें उन्होंने एक स्त्री की पीड़ा को वाणी दी थी। इस सांग में सीता अपने जीवन का

विश्लेषण करती नज़र आती है। हालांकि इस सांग की 6 रागणियाँ ही हैं। सीता अपने पति को दोषी ठहराती है। इसके अतिरिक्त इनकी अनेक फुटकर रागनियाँ हैं, जो समसामयिक विषयों पर लिखी गई हैं।

मा. दयाचंद आज़ाद के लोकनाट्यों को पढ़कर यह सुखानुभूति होती है कि वे समाज में नैतिकता का प्रचार करते हैं। वे पति-पत्नी के संबंध को संसार का सबसे अमूल्य संबंध मानते हैं। वे कहते हैं कि अगर पति-पत्नी परस्पर एकनिष्ठ हैं, तो संसार की कोई भी समस्या उनके जीवन को बदहाल नहीं बना सकती। पति-पत्नी की नैतिकता के समक्ष दुख भी दूर से ही टल जाता है -

जित बीर-मर्द का मेल रहै दुख दूर तै टलज्या।
जिन्दगीभर का रास्सा, फाँस प्रेम का घलज्या।
जिनका मिलज्या संस्कार रह बीर-मर्द की साथ।[66]

कवि का 'चापसिंह सोमवती' इसी स्त्री-पुरुष के संबंध की परख का सांग है। चापसिंह सेना में जाने से पहले अपनी पत्नी सोमवती को समझाता है कि यदि घर में पत्नी का आचरण ठीक नहीं है तो धनी से धनी आदमी भी कंगाल है। वह अपनी पत्नी को पतिव्रत धर्म का पालन करते रहने की सलाह देता है -

करकै ख्याल राखिये गौरी जो बड़े घरां का रस्ता।
गम की घटा प्रेम का बादल दिन और रात बरसता।
तेरे प्रेम का सोमवती मेरै दीपक-सा चसता।
दयाचंद किस्मत बिन गाणा दो धेल्यां म्हं सस्ता।
जब लाल लालड़ी खोटी हो सै सिर पटके जौहरी।[67]

कवि दयाचंद आज़ाद का एक अति महत्त्वपूर्ण सांग है 'सतवंती'। इस सांग में भी कवि ने पारिवारिक मुद्दों को उठाया है। फूल कुमार और सतवंती की बातचीत से सम्बन्धित रागणी में कवि ने स्त्री-पुरुष के संबंधों पर प्रकाश डाला है -

फूलकुमार : इन्सान म्हं कीमत होया करै टोटे म्हं सस्ता दिखै सै।
सतवंती : बीर की गेल्यां घर हो सै घरबारी बसता दिखै सै।
फूलकुमार : दयाचन्द कह विपत पड़ी म्हं उल्टा रास्ता दिखै सै।
सतवंती : जब बीर मर्द का प्रेम लड़ै दीपक-सा चसता दिखै सै।
फूलकुमार : चोट चले जब टोटे की बता के कर ले घरबारी।
सतवंती : जित बीर मर्द का मेल रह जां भरम भरोटा भारी।।[68]

आर्थिक तंगी में विशेष रूप से परिवार के सदस्यों को और अधिक जागरूकता से काम लेने की आवश्यकता है, क्योंकि टोटे का स्वभाव होता है कि वह परिवार के सदस्यों में मनमुटाव पैदा करता है। कवि का आदर्श यही है कि जब आर्थिक तंगी आए तो व्यक्ति साहस और धैर्य से उसका सामना करे और समाज भी उनके साथ सहानुभूति से पेश आए। कवि कहता है कि टोटा तो बड़े-बड़े धन्ना सेठों का भी नक्शा ढीला कर देता है। टोटा पूरे परिवार का अनुशासन बिगाड़ देता है। संबंधों में दरार आ जाती है -

टोटे म्हं डिसिप्लीन बिगड़ज्या खबी खान का।
एक मिनट म्हं नक्शा झड़ज्या गर्व गुमान का।
दयाचन्द नै ढंग देख लिया जगत जहान का।
म्हारे गुरु निंघाई राम नै मारा फेर ज्ञान का।
गावणियाँ नै इश्क रह सुर ताल तर्ज की खातिर।[69]

देश को आज़ाद करवाने वाले शहीदों ने जिस भावना से सर्वस्व न्यौछावर किया था, आज़ादी के बाद उस भावना का ह्रास ही रहा। भारत को आसानी से आज़ादी नहीं मिली अपितु आज़ादी के लिए हजारों लाखों यौद्धा फाँसी पर चढ़ाए गए। भारतवासियों को अकारण अंग्रेजों ने गोलियों का शिकार बनाया। जलियांवाला बाग संहार हो या भगत सिंह को फाँसी तोड़ना या छोटे-मोटे आन्दोलनों को दमदम बुलेट के आतंक से मिटाना, अंग्रेजों के लिए कोई भी मर्यादा नहीं थी। कवि उन तमाम शहीदों के प्रति नतमस्तक है जिनकी वजह से उसे आज़ादी की हवा में सांस लेने का अवसर मिला -

भगत सिंह भी भर्ती होगे आज़ादी की जंग म्हं बेटा।
आज़ादी की भेंट गए लड़ै अंग्रेजां के संग म्हं बेटा।
फाँसी के तख्ते पै चढ़गे भर कै चाव उमंग म्हं बेटा।
शिवाजी भी भर्ती होगे सुणिये कथा पुरानी बेटा।
आज़ादी के जंग म्हं कूदे भामाशाह से दानी बेटा।
अंग्रेजां के साथ लड़ी थी वा झाँसी वाली राणी बेटा।[70]

कवि ने पाखंडों का भी खंडन किया है। पाखंडी लोग उस ईश्वर के नाम पर करोड़ों ठगते हैं। हर पाखंडी का अपना तरीका है। वह नये रूपों में भोली-भाली जनता को उस ईश्वर के दर्शन करवाने का दंभ भरता है। परन्तु वह आज तक किसी को मिला नहीं। कवि की बुद्धिमता की दाद देनी पड़ेगी कि वे इन सारी

स्थितियों से भोली-भाली जनता को कैसे निकालते हैं -

कोई कह ज्योतिष म्हं बसता पंडत जी बतावैं चाल।
दोनों बख्तां सिवाले आळा रोजाना बजावै टाल।
कोई कह संता के खाड़े जिसम्हं बाजै शंख घड़ियाल।
कोई कह स्याणपत म्हं बसता पाखण्डी-पाखण्ड करै।
तेल गेर कै ज्योत जलावैं अग्नि प्रचण्ड करै।
कह दयाचंद सिंघाणे आळा कूदे भक्त घमण्ड करै।
न्यूए सहम अन्धेरा ढो लिया हुआ पागल जगत जहान।[72]

पारिवारिक संबंधों में भी लगातार बदलाव हो रहे हैं। आगे बढ़ने की होड़ संबंधों में खटास पैदा कर रही है। भाई भाई का दुश्मन है, बेटा बाप की नहीं सुनता। कवि इन सारी बातों को सोचकर चिंतित है कि इस सारी दुनिया में नैतिकता का और कितना पतन होगा -

मुश्किल बांधी डोर प्रेम की पापण दुतिया काटैगी।
इब भाई का बणा भाई दुश्मन और घणी हद पाटैगी।
तृष्णा है प्रधान देश की किस-किस के दुःख काटैगी।
चली पाप का गाड़ा जोड़ कै दुनिया पता नहीं कित डाटैगी।[73]

कवि का मानना है कि जिस देश में गरीब की सुनवाई नहीं, उसके लिए योजनाएं नहीं, वह देश ज्यादा समय तक जीवित नहीं रह सकता। राजा बहुत कुछ कर सकता है, परन्तु यह इस बात पर निर्भर करता है कि राज्य की बागडोर किन लोगों के हाथ में है। अगर वे संस्कार से ही शोषक हैं तो गरीब मजदूर को कोई नहीं बचा सकता। भारतीय संविधान में उपेक्षितों के लिए इतने अधिक प्रावधान होने के बावजूद आज तक उन्हें उनका हिस्सा नहीं मिल पाया। भारत भ्रष्ट देशों की कतार में है। गरीब के लिए बनने वाली योजनाओं का लाभ ठगों को ही पहुँचता है -

गरीब सताए ये फल पाए देश डुबो दिया पाणी नै।
यथा राज तथा प्रजा दुख होग्या राजा राणी नै।
कुछ दिन म्हं जग प्रलय होज्या पढ़ो वेद की बाणी नै।
जैसे महाभारत म्हं कौरव-पाण्डव करगे कुणबाघाणी नै।
दयाचन्द जमाना दुनिया के धन लूटण आळा होर्‌या सै।[76]

मुहावरों और लोकोक्तियों का जितना सुंदर प्रयोग मास्टर दयाचंद आज़ाद ने

किया है, उतना और कहीं देखने को नहीं मिलता। इनके काव्य में मुहावरों और लोकोक्तियों का नए रूप में प्रयोग देखा जा सकता है -

गादड़ की आई मौत गाम का सीधा रास्ता टोह बैठ्या।
काग्गा चालै चाल हंस की अपणी भी खुद खो बैठ्या।
सब कुणबे कै लड़ ज्यागा इसा बीज विघ्न का बो बैठ्या।
अकलमन्द कौम सुनारां की बेवकूफ खामखां हो बैठ्या।
ढाई छैल नाम जानी का देख लिए इस्तिहारां नै ओ बेईमान।।[77]

मास्टर रामानंद आज़ाद -

मास्टर रामानंद आज़ाद का जन्म 2 जून 1921[78] को ब्राह्मण परिवार में गाँव गोरिया, जिला झज्जर में हुआ था। इनके पिता का नाम पंडित उदमीराम व माता का नाम सोना देवी था। सन् 1937 में दसवीं की कक्षा उत्तीर्ण करने के बाद इन्होंने लगभग चार वर्ष अध्यापन किया। बीस-इक्कीस वर्ष की आयु में ये फौज में भर्ती हो गए। लगभग चार वर्ष तक ये फौज में रहे। 1946 में फौज की नौकरी छोड़कर पं. हरफूल गौड़ का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। और सांग के क्षेत्र में पूरी तरह से रम गए। लगभग 25 वर्ष की आयु में इन्होंने सांग करने शुरू कर दिए।

मास्टर रामानंद ने 27 सांगों की रचना की, जिनमें प्रमुख हैं - 'चापसिंह', 'ज्यानी चोर', 'नौटंकी', 'मीराबाई', 'मोहनादे', 'रूप-बसंत', 'सती सावित्री', 'सेठ ताराचंद', 'हीर-रांझा' को जो लोकप्रियता मिली उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। सांगों के साथ मास्टर जी ने कुछ मुक्तक भी रचे।[79]

सांगी मास्टर रामानंद आज़ाद ने पुरातन बैर-फूट, जाति-पाँति और ईर्ष्या-द्वेष को त्यागकर परस्पर 'मेल-जोल' को प्रमुखता दी है। और राष्ट्रव्यापी गुण विकसित करने का आह्वान किया है। वे लिखते हैं -

पहले आली रीत रही ना, गया बदल जमाना ख्याल करो।
अब हमें मेल की सख्त जरूरत वैर भाव की टाल करो।
जल्द दुष्टों का करो खात्मा, अपणी करकै शुद्ध आत्मा।
घर बीच महात्मा गाँधी और पैदा जवाहरलाल करो।
नेताजी सुभाष की तरियां कायम कोए मिशाल करो।
दोस्तों इज्जत धन चाहो तो, हरा भरा ये गुलशन चाहो तो।
और बड़े बड़प्पन चाहो तो छोटों की प्रतिपाल करो।
ऊँच-नीच हम एक सारे चाहे वेद तलक पड़ताल करो।[80]

इन्होंने अधिकतर सांग पूर्व से प्रचलित कथाओं पर ही निर्मित किए। 17 जनवरी 1993 को रविवार के दिन मास्टर रामानंद स्वर्ग सिधार गए।[81]

मास्टर रामानंद आज़ाद के सांगों में जाति-पाति और वर्ण का समर्थन भी मिलता है। इनके अधिकतर सांग मौखिक परंपरा में ही विलुप्त हो गए। उनका प्रलेखीकरण नहीं हो पाया।

चौ. जगत सिंह अल्हाण -

लोकनाट्यकार जगत सिंह अल्हाण का जन्म 23 जनवरी 1918[82] को पिता देवतिया राम एवं माता भुल्लां बाई के घर गाँव नारनौंद में चमार जाति में हुआ। इनके पिता मजदूरी करते थे। यह समय हरियाणा में सांगों के प्रसार का समय था। इन्होंने राजकीय माध्यमिक विद्यालय नारनौंद से आठवीं तक की शिक्षा ग्रहण की। चौ. जगत सिंह अल्हाण सन् 1942 में फौज में भर्ती हो गए तथा 1948 में सेवा-निवृत्ति ले ली। सेवानिवृत्ति के बाद उन्होंने आजीविका के लिए घर पर ही कपड़े सिलने का कार्य शुरू कर दिया। कपड़े सिलते-सिलते इनका ध्यान कविताई में रम गया। कवि जगत सिंह ने श्री ब्रह्मानंद, गाँव ईगराह (जिला जींद, हरियाणा) निवासी को अपना गुरु बनाया। श्री ब्रह्मानंद जी भजन लिखते थे। इनकी अनेक रागनियों में श्रद्धा से इन्होंने अपने गुरु का स्मरण किया है -

> जीव ब्रह्म का रूप एक गुरु ब्रह्मानंद बतार्‌या।
> जगत सिंह का नगर नारनौंद शब्द सुरीला गार्‌या।।[83]

इनका देहांत 18 जनवरी 1986 को 68 वर्ष की आयु में हो गया।[84]

इन्होंने अपने जीवनकाल में अनेक लोकनाट्यों और फुटकर रागणियों की रचना की। इनके लोकनाट्य हैं - 'राजा हरिश्चंद्र', 'पूर्णमल राजकुमार', 'सत्यवान सावित्री', 'अंब राजा', 'सुभाषचंद्र बोस', 'बलबीर-शांताबाई', 'दाखाँ-बल्लू', 'संतोबाई-तेजपाल', 'चंद्रपाल-तारादेई', 'इन्द्रसिंह-कांताबाई', 'जमना जी का स्नान', 'चंद्रकला-पाकेश्याम'' आदि। इन्होंने परंपरागत कथाओं पर आधारित लोकनाट्य भी रचे, यथा - 'सत्यवान-सावित्री', 'राजा हरिश्चंद्र', 'राजा अंब', 'पूर्णमल' आदि। इन्होंने अपनी कहानियों पर आधारित अनेक लोकनाट्यों की रचना की, यथा - 'दाखाँ-बल्लू', 'संतोबाई-तेजपाल', 'चंद्रपाल-तारादेई', 'इंद्रसिंह-कांताबाई' आदि।

इन सांगों के अतिरिक्त इन्होंने 'बीरमती-जगदेव', 'पृथ्वीसिंह-किरणमई', 'देवकला पालीभोज', 'हीर-रांझा', 'नल-दमयंती', 'शकुंतला-दुष्यंत', 'छोरी गड़रिये

की', 'बाबा मकड़ीनाथ', 'पीले जंफर आळी', 'धापां छोरी बुआ पतौरी' आदि सांगों की भी रचना की थी, जो अब अनुपलब्ध हैं। उनकी फुटकर रागनियों में उसका युगबोध अधिक मुखरता के साथ उभरकर आता है।

कवि जगत सिंह ने अपनी फुटकर रागणियों में स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस, जाति-पाँति, जार-कर्म, स्त्री-पुरुष नैतिकता आदि विषयों पर रागणियों की रचना की है।

कवि जगत सिंह का जीवनकाल भारत की गुलामी, आज़ादी के संघर्ष और आज़ादी के बाद बनते-बिगड़ते सपनों का काल है। भारत की गुलामी में अंग्रेज भारत के संसाधनों की लूट मचा रहे थे। अनेक क्रांतिकारी फाँसी के तख्ते पर झूल रहे थे। उग्र स्वतंत्रता-आंदोलन में अंग्रेज और क्रूर होते जा रहे थे। आज़ादी के आंदोलन के साथ-साथ सामाजिक आंदोलन भी तेज हो रहा था। दलितों और महिलाओं के मानवीय अधिकारों पर बात होने लगी थी। आज़ादी मिलने और संविधान लागू होने के बीच देश के भावी परिदृश्य को सुखद बनाने की ओर दृष्टि लगी हुई थी। कवि भारत की आज़ादी से आह्लादित है। उन्होंने आज़ादी के लिए किए गए संघर्षों को एक रागनी में पिरोया है, इसकी टेक दर्शनीय है -

सुनो-सुनो ए दुनियां वालों वीरों की कुर्बानी।
भारत की आज़ादी की हम तुम्हें सुनायें अमर कहानी।।[85]

कवि का कहना है कि भारतवासी केवल अंग्रेजों की ताकत से गुलाम नहीं बने थे, बल्कि कुछ स्वार्थी, कपटी और तिकड़मबाजों के कारण गुलाम बने थे। यहाँ के रजवाड़ों की अकर्मण्यता और आलस के कारण भारत दो सौ साल तक अंग्रेजों का गुलाम रहा। अंग्रेज भारत से धन लूट-लूट कर ले गए, जिसके कारण भारत आर्थिक रूप से पिछड़ गया -

दो सौ साल हुए भारत म्हं राज करें थे गोरे।
अंग्रेजों के गुलाम हुए थे हिन्दुस्तानी छोरे।
भारत के राजे महाराजे घोर नींद म्हं सोरे।
ब्रिटिश वाले ले जाते भर-भर माया के बोरे।
देख-देख भारत वालों को हुई घणी हैरानी।।[86]

भारत विविधताओं का देश है। भौगोलिक परिस्थितियों के साथ-साथ भारत में अनेक धर्म, जाति, संप्रदाय और भाषा-भाषी इस दिन अपने सभी भेदभाव भुलाकर

तिरंगे को सलामी करते हैं और एक हो जाते हैं। सब आपस में भाई बन जाते हैं। तिरंगे की रक्षा का प्रण दोहराते हैं। कवि की भावविह्वलता और राष्ट्रीय चेतना दर्शनीय है -

हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध, पारसी, सिख, जैनी और ईसाई।
भेद भाव को त्याग-त्याग कर बजा रहे हैं शहनाई।
सब भाई यहाँ पर आए इस झंडे की रखनी जो लाज है।
आज़ाद दिवस इस भारत म्हं पंद्रा अगस्त ही कहलाता।
आठ बजते ही ग्यारह मिनट पै राष्ट्रध्वज यहाँ लहराता।
सूत काता हुए मनचाहे मिल-जुल के करना यह काज है।[87]

कवि चौ. जगत सिंह अल्हाण का मानना है कि जब सभी इसी देश में पैदा हुए हैं तो कोई छोटा या बड़ा या ऊँच-नीच कैसे हो गया? सभी को शिक्षा आदि के समान अवसर दिए जाने चाहिएँ। किसी के साथ जाति, वर्ण या धर्म से संबंधित भेदभाव देशद्रोह के समान है -

छुआछूत बीमारी खोटी इसे देश से दूर करो।
राम कृष्ण की संतानों को मत ज्यादा मजबूर करो।
म्हारे देश के बच्चों को भाई विद्या से भरपूर करो।
मिट्टी के म्हां मिलज्या काया मतना घणा गरूर करो।
क्यूं घूर करो कुछ सहूर करो यह झूठा माया जाल।
एक दिन खा जाता है काल।[88]

कवि छुआछूत को खराब बीमारी मानते हुए इसे देश से दूर करने की सलाह देते हैं। पूरे देश में सभी एक ही ईश्वर की संतानें हैं। कवि कहता है कि जाति-पाँति के नाम पर किसी को कभी भी दयनीय जीवन जीने के लिए मजबूर नहीं किया जाना चाहिए। देश के प्रत्येक बालक को जाति, धर्म, संप्रदाय के आधार पर भेदभाव किए बिना शिक्षा के लिए तैयार किया जाना चाहिए। हर एक शिक्षित बालक मजबूत देश का मूल बनेगा।

जिसके पास विद्या रूपी धन नहीं होता उसकी गणना पशुओं में की जाती है। अनपढ़ रहकर जीवन व्यर्थ गँवाने के समान होता है और अनपढ़ व्यक्ति को खाने-पीने के भी लाले पड़ जाते हैं -

विद्या धन ही गुप्त बताया नहीं चोर का डर होता।
इस कैसा अनमोल रतन ना और दूसरा जर होता।

पशुओं ही तुलना हो जो बिना इल्म का नर होता।
भीमराव नै बतलाया वो बिना पूँछ का खर होता।
फिरें यूं ही रोता जिंदगी खोता ना मिले ठीक जलपान।[89]

कवि ने छापकटैया गायकों और कवियों को भी आड़े हाथों लिया है, जो दूसरों की रागणी के ऊपर अपने नाम की छाप लगाकर भोग लगा लेते हैं। जो निहायत घृणित दुष्कर्म है। ऐसे छापकटैयों को कविताई का 'क' भी पता नहीं होता। ऐसे लोग हमेशा दूसरों में कमियाँ ढूँढ़ा करते हैं -

तुकबन्दी का पता नहीं इसे बहोत फिरें मुँह बावनियां।
एक भजन दो सीख रागनी अपणा भोग लगावनियां।
कोय कहै मेरी तर्ज सुरीली कोन्या साज बजावणियां।
चारों तरफ लखा कै नै कोय टोह्वै दिल प्रचावणियां।
जगत सिंह ना गावणियां एक मामूली होशियारी होगी।
नगर नारनौंद रोशन होग्या पाणी की बिमारी होगी।।[90]

कवि ने छापकटैयों को 'कसाई' कहा है। कसाई निर्मम और निर्दय होता है।

चौधरी पोलूराम आज़ाद -

चौधरी पोलूराम आज़ाद का जन्म गाँव कुंभा तहसील हाँसी जिला हिसार में पिता तथा माता के घर चमार जाति में हुआ। इनके पिता का नाम जयकरण था। इन्हें बचपन से ही गाने का शौक था। गाँव में खेती बाड़ी का काम करते हुए उन्होंने तत्कालीन सुप्रसिद्ध लोकनाट्यकार चौ. जगत सिंह अल्हाण को अपना गुरु बनाया तथा लोकनाट्य सृजन में लग गए। 'पृथ्वीराज मोहम्मद गौरी' लोकनाट्य में उन्होंने अपने गुरु के विषय में इन्होंने लिखा है -

तूही तूही अंत म्हं और तूही गुण की खान।
संत मुनिजन रट रहे सब धर ईश्वर तेरा ध्यान।
हे ईश्वर परमात्मा मेरे काटो जम के फंद।
कवि जगतसिंह सतगुरु मिले तो दादा गुरु ब्रह्मानंद।
तनै सुमरै देई देवते री तनै सुमरै गृहस्थी साध।
बार बार सुमरण करता है यो पोलूराम आज़ाद।[91]

इनके लोकनाट्यों में उन्मुक्त स्त्री-पुरुष संबंधों का अधिक वर्णन मिलता है। इनके लोकनाट्य है - 'पृथ्वीराज मोहम्मद गौरी', 'साके पाड़ पठाण की', 'खड़ा त्यौहार

सपेले की'। इसके अतिरिक्त इनकी फुटकर रागनियों की भी कई पुस्तिकाएँ (गुच्छे) प्रकाशित हुईं। 'छोरे साईकिल आले', 'छोरे छतरी आले' आदि इनके फुटकर रागनियों के गुच्छे हैं।

'पृथ्वीराज मोहम्मद गौरी' लोकनाट्य बहुत कम लोकनाट्यकारों ने लिखा है। इस लोकनाट्य में पोलूराम आज़ाद ने पृथ्वीराज चौहान और मोहम्मद गौरी के बीच लड़ाई के मनोवैज्ञानिक कारणों को उद्धृत किया है। जयचंद की पुत्री संयोगिता पृथ्वीराज चौहान की मूर्ति को देखकर उस पर आशिक हो जाती है। जब उसका स्वयंवर रचा जाता है तो आए हुए सभी इच्छुक राजकुमारों को छोड़कर वह पृथ्वीराज चौहान की मूर्ति को माला पहना देती है। छुपकर आया हुआ पृथ्वीराज चौहान संयोगिता को भगाकर ले जाता है। जिससे जयचंद स्वयं को अपमानित महसूस करता है तथा पृथ्वीराज चौहान से सहस्र बार हारे हुए मोहम्मद गौरी से हाथ मिलाकर युद्ध में उसकी मदद करता है। पृथ्वीराज युद्ध में हार जाता है तथा मोहम्मद गौरी उसकी आँखें फुड़वा देता है। चंद्रभाट के काव्यमयी इशारे से पृथ्वीराज शब्दभेदी बाण छोड़ता है तथा मोहम्मद गौरी के मरने के बाद वे दोनों भी आत्महत्या कर लेते हैं।

यह लोकनाट्य वीर रसपूर्ण लोकनाट्य है। लोकनाट्य से ध्वनित होता है कि संयोगिता का पृथ्वीराज के साथ भाग जाना परिवार की प्रतिष्ठा के खिलाफ था जिसने जयचंद को मोहम्मद गौरी की मदद करने के लिए विवश किया। जब मुगल पठान दिल्ली पर आक्रमण करता है तो उस समय की रागनी वीररस से भरपूर है। उदाहरणार्थ -

ऐजी ऐजी देहली चढ़ चलो मुगल पठाण।

उस राजा की हार करांगे जो पृथ्वीराज चौहान।
चाह म्हं भरकै हाथी घोड़े दिल्ली राट दबाए थे।
ऊँट गर्द गुमार मुगल सब रणखेतों म्हं आए थे।
दिल्ली के खांडा रण म्हं जिणै आकै डेरे लाए थे।
सबके दिल चाहे थे फेर कोन्या लाई हाण।
कह पोलूराम उस मोहम्मद नै दिल्ली को घेरा था आण।[92]

इनका 'साके पठाण की' लोकनाट्य आशिक मिजाजी लोकनाट्य है। पठाण की लड़की जिल्लो दिल्ली हाईस्कूल में पढ़ती थी और एक खत्री का लड़का मदन कालेज में पढ़ता था। दोनों की मुलाक़ात होती है। मदन उससे बात करना चाहता है परंतु वह उसे दुत्कार देती है और अनेक उदाहरण देकर परत्रिया के चक्कर में न

फँसने की सलाह देती है। परंतु पर्याप्त समय पश्चात् दोनों परस्पर चाहने लगते हैं। जिल्लो की सहेली सकीना उनकी सारी बातें जिल्लो की माँ को बता देती है। इस पर कुपित होकर जिल्लो का पिता उसका विवाह एक साठ साल के बूढ़े यूसुफ खाँ से कर देता है। मदन को जब इस बात का पता चलता है तो यूसुफ खां के घर से जिल्लो को भगा लाता है। और विवाह करके आनंद से रहते हैं। इस लोकनाट्य में जवान लड़की की माँ की चिंता देखी जा सकती है-

जो पीहर म्हं इश्क कमावै छोरी न्यूं रोप दे चाळा।
मात पिता कै धब्बा लागै होज्या मुँह काळा।
या गाळा जान का करै फेर कितै डूब कै मरै।
जब छिड़ज्या डबल कहाणी।[93]

जब जिल्लो का पिता उसका विवाह साठ साल के यूसुफ से करता है तो जिल्लो की उस समय की अनमेल विवाह पर कवि की शानदार रागनी है-

क्यूं कुएँ बीच धिकावै माँ कुछ करियो बात विचार कै।
ना बुड्ढे गेल्यां ब्याह करवाऊँ मरूँ टक्कर मार कै।

x x x

हाण जोग के पति बिना मुश्किल होज्या उमर बिताणी।
न्यूं तड़फ-तड़फ मर ज्यांगी ज्यूं मछली बिन पाणी।
या दर्द भरी कहाणी सुणले कहूं सांस सबर के सार के।
तेरी बेटी या काची कौरी चंदन कैसा पोरा सै।
उस पोल्लूराम तै ब्याह करवाऊँ वा मेरे हाण का छोरा सै।[94]

चौधरी पोलूराम आज़ाद की रागनियाँ फिल्मी गीतों की धुन पर आधारित हैं। वे युवा-युवती के मन को प्रेम उमंग में बहाने वाली रागनियाँ हैं। युवावस्था में अनेक युवा उनकी रागनियों को कंठस्थ कर गाया करते थे।

सांगी प्रेमलाल चौहान -

सांगी प्रेमलाल चौहान का जन्म सन् 1930 में पिता नेकीराम चौहान के घर गाँव निसिंग में चमार जाति में चौहान गौत्र में हुआ था।[95] इनके पिता मजदूरी करते थे।

अपने निसिंग के आस-पास के गाँवों का उल्लेख कर उन्होंने अपने गाँव के आसपास के गाँवों के भूगोल का भी जिक्र किया है। डाचर, गोंदर, ब्रास, सांभली,

अस्तली, गिणाणा निसिंग के आस पास के गाँव हैं -

डाचर, गोंदर तनै धोकण आवैं निसंग म्हं तेरा बण्या ठिकाणा।
ब्रास, सांभली और अस्तली और थोड़ी दूर म्हारा गिणाणा।
प्रेमलाल की करो सहाई, भरी सभा म्हं तू मनाई।
भुल्ले नै रस पाज्या।[96]

प्रेमलाल एक दो साल ही स्कूल में गए और बचपन में ही अपने गुरु बनवारी ठेल के बेड़े में शामिल हो गए। उन्होंने स्वयं यह बात एक रागनी की चौथी कली में कही है -

प्रेमलाल कहै निसिंग आळे नै पूरा ज्ञान हो ज्यागा।
बच्चेपन से सांग सीख लिया गुरु मिले बनवारी।[97]

इन्होंने बनवारी ठेल, जो उस समय के सांगियों में एक बड़ा नाम था, को अपना गुरु बनाया।

सांग कार्य के अतिरिक्त समय का उपयोग प्रेमलाल चौहान किरयाने की दुकान चलाकर किया करते थे। उन्होंने निसिंग के नये अड्डे पर किरयाने की दुकान की हुई थी। इसका भी परिचय उन्होंने अपनी एक रागनी की चौथी कली में दिया है। वे लिखते हैं -

बनवारी लाल गुरु मेरा दुनिया के म्हां ज्ञान करै।
प्रेमलाल छोटा-सा सांगी अड्डे पै दुकान करै।
तेरे से बढ़ कै ना चाला कोय तनै मौत के घाट वे तार दिए।[98]

विनम्रता उनके स्वभाव का एक अनिवार्य गुण था। वे स्वयं को सभी कवियों का सेवक कहकर संबोधित करते थे। उनकी यह विनम्रता उन्हें एक महान सांगी बना देती है -

सब कवियों का सेवक सै सबसे शीश झुकाणा।
गुरु शरण म्हं हो सै जाणा कटजै लाख चौरासी।।[99]

इनका देहांत दिनांक 29 अप्रैल, 1987 को हुआ।[100]

सांगी प्रेमलाल ने अनेक सांगों की रचना की। परंतु उनके कई सांग विलुप्त हो गये। वे कम पढ़े-लिखे थे। आशुकवि भी थे। सांग उनके जहन में थे। उनके देहांत के बाद उनके शिष्य तितर-बितर हो गये। वर्तमान में इनके चार सांग उपलब्ध हैं - 'राजा हरिश्चन्द्र', 'सांग चंदना', 'सतवंती', 'ज्यानी चोर'। 'सतवंती' इनका

मौलिक सांग है। प्रेमलाल चौहान ने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखी हैं। वे इन रागनियों को सांग की कथा के अनुरूप कहीं भी जोड़ देते थे।

'सतवंती' एक स्त्री-प्रधान सांग है, जिसमें अग्रोहा शहर के मंगूमल सेठ के दो लड़के थे। मंगूमल अपनी जायदाद अपने दोनों बेटों रतनकुमार और फूलकुमार में बराबर बाँटकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। बड़ा लड़का रतनकुमार उस जायदाद को अथक परिश्रम द्वारा और बढ़ा लेता है। परन्तु फूलकुमार शराब आदि के व्यसन में पड़कर सब कुछ खो खिंडा देता है। उसकी हालत इतनी खराब हो गई कि खाने के भी लाले पड़ गए। फूलकुमार की पत्नी सतवंती भी दुख पाती है। इस सांग की पहली ही रागनी शराबी पर गहरा कटाक्ष है। सतवंती रागनी में अपने पति को कहती है -

मेरे माँ-बापाँ नै जुल्म करे मैं तेरी गेल्याँ ब्याही।
सुल्फा-दारू पीवण लाग्या ओ तनै शर्म ना आई।
रंडीबाजी, जुआ खेलै हाथ लिया सै ताश तनै।
कोठी बिल्डिंग सब गिरवी धर दी घर का कर लिया नाश तनै।
कितै बोलण जोगा रहा नहीं लोग कहै बदमाश तनै।
ब्याही बीर का कहा ना मानै करा नहीं विश्वास तनै।
मेरा कंगले आळा भेष करा, दई मोस बेगानी जायी।[101]

शराब एक ऐसी बुराई है जो चारित्रिक दोष भी उत्पन्न करती है। सुल्फा, रंडीबाजी, जुआ, जारी उसके अनुसंलग्नक हैं।

कवि प्रेमलाल ने समाज के विकास में शिक्षा को सबसे महत्त्वपूर्ण माना है और ऐसे व्यक्ति को कवि समाज के लिए कलंक मानते हैं, जो शिक्षित होने के बावजूद समाज से दगा करता है। कवि ने छापकटैयों को भी आड़े हाथों लिया है। छाप काटना एक अपराध है। किसी कवि की रागनी या गीत को अपने नाम या किसी अन्य के नाम से प्रचलित करना छाप काटना कहलाता है। कवि प्रेमलाल ने ऐसे 'छापकटैये' गायकों को नुगरा और 'नरक का वासी' कहा है। कवि का आक्रोश दर्शनीय है -

जो विद्या ले कै दगा करै हो दरगाह म्हं मुँह काळा।
नरक का बासी हुआ करै सै छाप काटण आळा।।
गाण ध्यान का पता नहीं फेर ठाली मुँह नै बावें सैं।
टेक किसे की कली किसी की थुक्कों के बंद लावें सैं।
झूठे फोटू धर कै गुरु के ब्याह म्हं लाडू खावें सैं।

आठान्ने की कॉपी ले कै सांगी बणना चाह्वैं सैं।
पी कै शराब चढ़ैं तख्तां पै आवण लगै तिवाळा।[102]

कवि छाप काटकर गाने को 'थुक्कों के बंद' लाना कहते हैं। यानी व्यर्थ में गाना।

सांगी प्रेमलाल चौहान की कविताई में कला स्वाभाविक रूप में आई है। उनकी रागणियों में ठेठ कौरवी झलक मारता हुआ दिखाई देता है। कौरवी लोकोक्तियों और मुहावरों की तो उन्होंने झड़ी-सी लगा दी है।

कृष्णचंद्र नादान -

कृष्णचंद्र नादान का जन्म सन् 1922 में गाँव सिसाना जिला सोनीपत, हरियाणा में हुआ। इनके पिता का नाम पं. शिवलाल तथा मां का नाम श्रीमती नंदी देवी था।[103] ये सन् 1940 में फौज में भर्ती हो गए। इन्होंने सन् 1950 में दिल्ली पुलिस में सहायक उपनिरीक्षक के पद पर नौकरी प्राप्त की। बॉलीबॉल में इनकी महारत थी।

इन्होंने 19 लोकनाट ्यों की रचना की- 'कथा सावित्री', 'कथा नल दमयंती', 'कथा श्रवण कुमार', 'भीष्म प्रतिज्ञा', 'कथा द्रोण पर्व', 'हैण्डव राक्षस व भीम का हिडिम्बा से विवाह', 'विराट पर्व' (कीचक वध) 'किस्सा नरसी का भात', 'किस्सा महाभारत', 'सुरेखा हरण', 'कथा जलकरण चंद्रकांता', 'कथा वीर हकीकत राय', 'कथा चंचल बाई', 'किस्सा कमला', 'भगत फूलसिंह', 'कथा सुभाष चंद्र बोस', 'किस्सा बाबा मस्तनाथ', 'किस्सा श्री जमनादास', 'किस्सा जीवन साथी', 'महाबली सतपाल' आदि। इन किस्सों के अतिरिक्त उन्होंने आज़ादी और सामाजिक बुराईयों पर अनेक फुटकर रागनियाँ भी सृजित की।

इनका कथा सुभाषचंद्र बोस लोकनाट्य पर पूरी तरह महाशय दयाचंद मायना के लोकनाट्य 'नेताजी सुभाष' का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। ऐसा लगता है कि यह लोकनाट्य इन्होंने महाशय दयाचंद के लोकनाट्य को सामने रख बनाया हो। कहीं-कहीं तो रागनियों के अवसर और शब्दावली भी यूं का यूं मिलती है। रागनियाँ उन अवसरों की इनकी खुद की सृजित की हुई है। उदाहरणार्थ महाशय दयाचंद मायना की रागनी है -

धोखा दे कै परदेशी नै डाट्या ना करते।
घर आए माणस कै सिर नै काट्या ना करते।[104]

और इनकी रागनी है -

भाई चलते मुसाफिर सो धमकाया ना करते।
और धक्के ऊपर धक्का दे कै ताह्या ना करते।।[105]

'महाबली सतपाल' इनका मौलिक सांग है जिसमें उन्होंने बुवाना गाँव के पहलवान सतपाल के जीवन पर सांग लिखा। सतपाल पहलवान अपने गुरु हनुमानसिंह के निर्देशन में 1982 के एशियाड खेलों में स्वर्णपदक जीतकर लाया था। कवि की रागनी द्रष्टव्य है -

आगै-आगै बढ़ण लग्या सतपाल।
मल्लखाड्यां म्हं कुश्ती लड़कै लाग्या करण कमाल।
दिखे बुवाणा के दंगल कै म्हं छोहरे तोड़ तोड़ मारे।
बहोत से तो हाथ उठागे निम्बू सा निचोड़ मारे।
जिसनै हाथ मिलाया आकै करकै नै बोड़ मारे।
जामा मस्जिद दंगल कै म्हां पकड़ पकड़ कै तोड़ मारे।
नौसेवा खिताब जीता छोहरां के मुँह फोड़ मारे।
1964 के मांह दंगल कई खोड़ मारे।
या कर दी एक मिशाल।[106]

इनका 'बाबा मस्तनाथ' किस्सा भी व्यक्ति प्रधान किस्सा है। इस किस्से में छह रागनियाँ हैं। 'भगत फूलसिंह' लोकनाट्य में कवि कृष्णचंद नादान ने भगत फूलसिंह की वीरता, धीरता और उन द्वारा किए गए समाज सुधार के कामों का उल्लेख किया गया है। इस किस्से की पहली ही रागनी इस प्रकार है -

एक माहरा गाम जिले रोहतक म्हं बाबर सिरे जमींदार हुआ था।
माँ तारावती थी धर्म की पत्नी सजा ठीक व्यवहार हुआ था।
था नेक चलण और मिलणसार पर टोटे म्हं लाचार हुआ था।
इब आगे का हाल सुणो यो क्यूंकर बेड़ा पार हुआ था।[107]

कृष्णचंद नादान ने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं। शराब के व्यसन पर उनकी रागनी दर्शनीय है -

आज सुणों एक बात कहूँ सूँ छोट्टे बड़े भाइयाँ नै।
या दारू एक दुष्टनी दे सै जग म्हं जन्म बुराइयाँ नै।

ये झूठ कपट छल बेईमानी सब हरदम रहती दारू म्हं।
चोरी ठगी बदमाशी सब दुनिया कहती दारू म्हं।
ये छीन झपटी नहर पाप की देखो बहती दारू म्हं।
ये फोड़ फुड़ाई कटा कटाई कत्ल डकैती दारू म्हं।
याह दारू प्या कै मूर्ख छोड़ दे ला दी लाख बीमारी दारू म्हं।[108]

इस रागनी की चारों कलियों में दारू के दुष्परिणामों की ओर कवि ने संकेत किया है। कवि ने शिक्षा को भी मनुष्य जीवन की सार्थकता का सबसे बड़ा साधन माना है। शिक्षा से ही मनुष्य के जीवन के तमाम संसाधनों का लुत्फ उठा सकता है -

आदमदेह की दुनिया के म्हां श्यान पढ़ाई हो सै।
बिन विद्या के पशु कहै इन्सान पढ़ाई हो सै।
विद्या नर का आभूषण इतिहास बताया जा सै।
और धनां तै विद्या का धन पास बताया जा सै।
आदमदेह म्हं विद्या का प्रकाश बताया जा सै।
विद्या के संग ब्रह्मचर्य का इकलास बताया जा सै।
ब्रह्मचर्य से ताकत हो बलवान पढ़ाई हो सै।[109]

कृष्णचंद नादान ने अनेक मौलिक सांगों की रचना की। इन्होंने तद्भव व उर्दू व अंग्रेजी के शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है।

शुभकरण मांडी -

शुभकरण मांडी का जन्म उपलब्ध जानकारी के अनुसार सन् 1913 में हुआ गाँव मांडी, जिला कैथल, हरियाणा में हुआ था। इनके पिता का नाम रामलाल और माता का नाम मनकौर था। ये चमार जाति से थे। इन्होंने लगभग 20 वर्ष की अवस्था में लोकनाट्य रचने शुरू किए। ये अल्पशिक्षित थे। शुरुआती युवावस्था में जाट किसानों के यहाँ सीरी का कार्य किया। उसी समय ये सांग रचने लगे। फिर सीरी कार्य छोड़कर मोची का काम करने लगे। साथ में सांग रचना जारी रहा।

शुरुआत में इनके रचे गए गीत (रागनी) शौकिया तौर पर एक दो लोगों ने गाने शुरू किए। जब लोगों ने इनके गीत रागनियों को सुना तो काफी प्रभावित हुए। फिर उन गाने वालों ने मिलकर कुछ अन्य लोगों को साथ जोड़ लिया। ये सभी मुख्यतः दलित ही थे।

लोककवि शुभकरण जी ने सांग की शिक्षा अपने गुरु से नहीं ली बल्कि कई सांग रचने के बाद इन्होंने फूलसिंह गाँव खेड़ी शेरखाँ को अपना गुरु मान लिया था। फूलसिंह जाट थे। लेकिन शुभकरण जी से बेटे की तरह स्नेह करते थे।

लोककवि शुभकरण जी की कविताई की यह एक अलग खूबी रही कि गाँव की किसान महिलाएँ कृषि कार्य करते हुए जैसे - कपास की चुगाई, भी इनकी कविताई का सांग भरती थी। कई लड़कियाँ व महिलाएँ इनके सांगों की दीवानी थीं। बिल्कुल इनकी सांग-मण्डली की तरह अभिनय भी खेतों में आपस में करती थी।

लोककवि शुभकरण जी ने एक जमींदार के यहाँ रहते हुए उस पर ही एक पूरा सांग बना दिया था। उस जमींदार का नाम मुथरा था। लेकिन अफसोस की बात यह है कि आज उस सांग की एक भी रागनी उनके किसी शिष्य को याद नहीं है। डॉ. अम्बेडकर जी के संविधान के लागू होने से दलित जातियों में जो स्वाभिमान जागृत हुआ जिसके कारण अनावश्यक सहन करना बंद करने लगे। इसी कारण से जमीनों के मालिकों ने दलितों पर सामाजिक बंदी लगाई। उसी बंदी के प्रतिरोध स्वरूप लोककवि शुभकरण जी ने एक रागनी लिखी। इस तरह की रागनी हरियाणा के किसी अन्य सांगी की उपलब्ध नहीं है।

शुभकरण रचनाकार एक दलित लोक कवि थे। प्रस्तुत रचना में उन्होंने अपने गाँव में सवर्णों द्वारा दलितों पर लगाई गई बन्दी का दलितों से एकजुट हो मुकाबला करने का आह्वान किया है -

जितने हिन्दुस्तानी भाई सब मेल से रह्या करो।
छोटी-छोटी बातां पै सुणो मत आपस म्हं लड़्या करो।
धर्म जात और गोत के ऊपर ना आपस म्हं भिड़्या करो।
कर ल्यो नै सलूक थारी आटो पाटी ठीक नहीं।
आपस के म्हं गाळम गाळा मार अर लाठी ठीक नहीं।
कदे बन्दी कदे गाम निकाला इसी पंच कमैटी ठीक नहीं।
कहै शुभकरण हो ताऊ सरपंच या तेरै क्यूं ना समझ म्हं आती।[110]

लोककवि शुभकरण जी ने लगभग 10-12 सांग बनाए जिनमें से 5 पूर्ण उपलब्ध हैं। बाकी के सांगों से अलग-अलग संख्या में रागनियाँ उपलब्ध हैं। मुख्यतः इन्होंने 'नरसी का भात, 'पूर्ण भगत, 'चन्द्रप्रभा-मदनसेन', 'साँवल देवी', 'गोपीचंद', 'सत्यवान-सावित्री', 'शाही लकड़हारा', 'नवरत्न छबीली भटियारी' तथा 'संत रविदास',

‘रूप-बसंत’ आदि सांग रचे। ‘रूप-बसंत’ सांग में चिड़े की विवशता देखी जा सकती है -

एक चिड़िया के दो बच्चे थे चिड़िया करगी काल पिया।
ओ चिड़ा दूसरी चिड़िया ले आया सुनिये मेरी मिसाल पिया।
ओ चिड़ा भी आग्या चुगा लेकर बच्चां धोरै धरग्या।
ममता का मार्‌या चिड़ा बच्चां पै गेर कै पाँख पसरग्या।
पहली चिड़ी नै कर कै याद ओ चिड़ा हर्ख म्हं भरग्या।
उस चिड़िया नै कह-सुण कै चिड़ा तो ढिगरग्या।
चिड़ा धोरै तो न्यू कह थी मै लूं बच्चां नै पाल पिया।
पाछै तै पिट्‌टण लाग्गी इसी देखी चिड़ी चाण्डाल पिया।[111]

लोककवि शुभकरण जी ने अलग-अलग विषयों पर दर्जनों फुटकर रागनी भी लिखी हैं। इन रागनियों में इन्होंने नैतिक व सामाजिक आचरण पर बल दिया है। कहीं इन्होंने छापकाटने वालों पर प्रहार किया तो कहीं माता-पिता की सेवा से मुँह फेरने वाली सन्तान को लताड़ा है। नशे आदि बुराइयों का विरोध भी इनके काव्य में प्रखर है। संत-रविदास साँग में ब्राह्मणों के माध्यम से जातिवाद पर प्रहार करते हुए ब्राह्मणों के ब्रह्म-ज्ञान को चुनौती भी दी है।

लोककवि शुभकरण जी ने लगभग 85 वर्ष की अवस्था में इस संसार को सन् 1998 में अलविदा कह दिया।

फकरू मीर -

कवि फकरू मीर का जन्म सन् 1923 में पिता जनाब नन्हा हुसैन के घर ब्लाक ऊन, ग्राम दथेड़ा, पोस्ट ऑफिस गढ़ी हसनपुर, जिला शामली, उत्तर प्रदेश में हुआ था। इनकी एक बहन थी। इनकी पत्नी का नाम अमतुल था। इन्होंने अपनी एक रागनी में अपने गाँव का परिचय कुछ इस प्रकार दिया है -

ना तबीयत रही ठिकाने, जलाल चाल्या था सेठ को बुलाने।
ला दथेड़ा ग्राम स्थान के, तू फकरू मीर कमाल।
गुणी पंचात के धोरै।।[112]

बचपन से इनको गाने-बजाने का शौक था। इन्होंने स्वाध्याय से ही हिन्दी व उर्दू का ज्ञान हासिल किया। इनके गुरु थे - बलवंत सिंह ‘बुल्ली’। बलवंत सिंह ‘बुल्ली’ अपने समय के जाने-माने सांगी थे। उन्होंने अनेक सांगों का सृजन किया

था। कवि फकरू मीर की कविताई में अपने गुरु के प्रति यत्र-तत्र सम्मान भाव दिखता है। यथा -

कहीं डंका दीन सुधार हिंद म्हं, अंत और आदि बजा गए।
मुरलीधर मुरली प्रसन्न हो के हिंद आज़ाद बजा गए।
शंकर नत्थू कड़ताल गुणी, दादा उस्ताद बजा गए।
ऊँकार अलख जा मोरध्वज के द्वारे नाद बजा गए।
बलवंत गुरु दर्शन को फकरू मीर जवाहर चले हैं।।[113]

फकरू मीर शंकरदास की शिष्य परंपरा के सांगी थे। उपर्युक्त पंक्तियों में उन्होंने अपनी इस प्रणाली का भी जिक्र किया है। इन्होंने पाँच लोकनाट्यों की रचना की - 'जलालुद्दीन-मंजरी', 'श्याम-सलोनी', 'विराट पर्व', 'राजा मोरध्वज', 'सुंदर बाई'। इसके अतिरिक्त इन्होंने अनेक फुटकर भजन एवं रागनियाँ भी लिखीं।

'जलालुद्दीन मंजरी' इनका एक ऐसा सांग है जो सांग के इतिहास में साम्प्रदायिक सौहार्द का अनूठा दस्तावेज है। इस सांग में उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम के बीच नैतिकता और मानवीयता का एक ऐसा ताना-बाना बुना है कि श्रोता या पाठक फकरू मीर की कला की सामाजिकता के प्रति नतमस्तक होता चला जाता है। कवि फकरू मीर का महती उद्देश्य धार्मिक सौहार्द है। 'जलालुद्दीन-मंजरी' सांग का एक दोहा भी अति सामाजिक संदेश लिए हुए है। जलालुद्दीन कहता है -

ना हिन्दू ही बुरा है ना मुसलमान बुरा है।
बुराई में जो आ जाए वो इन्सान बुरा है।[114]

इस सांग की तीसरी रागनी में जलालुद्दीन सेठ दयाराम को नैतिकता का हवाला देते हुए कहता है -

तनै दयाराम तो नाम धर लिया, करता काम कसाई का।
ब्राह्मण कन्या पै नीत धरी, तेरा यू ना कर्म भलाई का।।
सीधी सड़क साफ रस्ते नै कोई ना मानस थका करे।
नीच आदमी बणज करे मुँह से ओली-सोली बका करे।
साहूकार निर्धन मानस का सदा पिच्छोया ढका करे।
साहूकारों की धी बेट्टी अपनी धी बेट्टी तका करे।
या कोड़ कही तैं लाला जी क्या मिलग्या ताज बड़ाई का।।[115]

'जलालुद्दीन-मंजरी' लोकनाट्य का नामकरण भी आश्चर्यजनक रूप से अद्भुत है। आमतौर पर लोकनाट्यों के नाम प्रेमी-प्रेमिका, पति-पत्नी के युगल नाम

पर होते हैं। कुछ लोग अनुमान लगा सकते हैं कि शायद यह लोकनाट्य हिन्दू-मुस्लिम, प्रेमी-प्रेमिका की कथा पर आधारित होगा परंतु यह इस नाटक में दोनों भाई-बहन और उनके बीच अगाध विश्वास है जबकि खुद हिन्दू दयाराम और जानकी नाथ मंजरी को वह भाव नहीं देते जो एक लड़की को दिया जाना चाहिए। जानकी नाथ तो उसके साथ दुराचार ही करना चाहता है। जबकि उसके सम्मान की रक्षा के लिए जलालुद्दीन अपने मुस्लिम बंधुओं से मदद माँगता है तो वे दिल खोलकर उसकी मदद करते हैं। अब्दुल गफूर जुगल किशोर का शुक्रिया अदा करता है कि उन्होंने अपने घर में एक मुस्लिम बालक का लालन-पालन किया। अब्दुल गफूर जलालुद्दीन के दीन ईमान से प्रभावित होता है कि किस प्रकार वह अपनी हिन्दू धर्म बहन का मान सम्मान बचाने के लिए स्वयं भिखारी बन जाता है और किसी भी युवक के लिए यह सबसे बड़ा धर्म होता है कि वह अपनी बहन की सुरक्षा करे। चाहे वह हिन्दू हो या मुस्लिम या अन्य धर्म से संबद्ध।

फकरू मीर के लोकनाट्यों की विषयवस्तु में भी वे सामाजिक सदिच्छाएँ प्रस्फुटित हुई हैं जिन पर अनिवार्य बहस होनी चाहिए। उनका ‘जलालुद्दीन-मंजरी’ लोकनाट्य तो अद्वितीय है ही, इसके साथ-साथ ‘सुन्दर बाई’, ‘राजा मोरध्वज’, ‘श्याम-सलोनी’ तथा ‘विराट पर्व’ लोकनाट्यों में भी स्वस्थ मनोरंजन आया है। ‘सुन्दर बाई’ लोकनाट्य में वे भारतीय समाज में प्रचलित पुरुषवादी प्रवृत्ति के चलते एक स्त्री की दुर्गति दिखाने में कामयाब हुए हैं। एक पुरुष अपने वचन पर अडिग रहने के लिए किस प्रकार स्त्री से उसकी स्वाभाविकता को छीन लेता है, यह इस सांग में बहुत ही बेहतरीन तरीके से दिखाया गया है। राजकुमारी सुन्दर बाई राजकुमार बीरसिंह से ही विवाह करना चाहती है। इसके लिए वह शिव के व्रत भी करती है। परंतु सहेलियों से मजाक-मजाक में कह देती है कि वह स्वयं तो लाल है और बीरसिंह सड़ा प्याज। उसी बगीचे में छिपा हुआ बीरसिंह इस बात को सुन लेता है। बस इसी कारण वह विवाहोपरांत सुन्दर बाई को दुहाग दे देता है। भारतीय लोककथाओं मे नवविवाहिता को दुहाग दे देना उसके लिए सबसे बड़ी सजा है। वह रोती है और अपने पति से विनती करती है -

सुन्दर : बीर की हूँ जात हाँ ले भाइया कसम जाण दिए।
प्यार म्हं दिन चार के कर लाड़ खेल्लण खाण दिए।
मध पे खेत्ती आरी सुन्नी छोड़ ना किसान दिए।

बीरसिंह : इस खेती ने करूँ रेत खेत, चाहूं मैं गंठों की पौध लगाणा।[116]

'बीर की हूँ जात' कहकर ऐसा लगता है कि सुन्दर बाई भारतीय समाज में तमाम स्त्रियों की पीड़ा का ही अंकन कर रही हो। 'जात' का मतलब 'कौम' होता है।

'राजा मोरध्वज' सांग भी करुण रस का सांग है। इस सांग में राजा तथा रानी को अतिथि सत्कार करने के लिए अपने एकमात्र पुत्र को अपने ही हाथों से आरे से चीरना पड़ जाता है। एक पिता के लिए इससे अधिक प्रलय और क्या हो सकती है? कवि का दोहा दर्शनीय है -

जग परलो-सी बाबा कर गया मेरे दिल म्हं उठे है वियोग।
साधु चाळा कैसा कर गया तनै क्या कहेंगे के जगत के लोग।[117]

मोरध्वज अपनी पत्नी से सलाह मशविरा करता है। वे दोनों अपने पुत्र की पत्नी से भी बात करते हैं। वह भी अपने सास-ससुर की वचनबद्धता की रक्षा करती है। राजा का कड़ा दर्शनीय है -

जग प्रलय म्हं कसर रह ना जो बेटे ने चीर देगी मैया।
बाबा कुछ तो तरस तू खा ले, क्यूँ मेरी डुबोवे नैया।
तेरा शेर यूँ ही खा लेगा पुत्र हाजिर है ऐ कृष्ण कन्हैया।।[118]

करुणा की धारा वहाँ बह निकलती है, जब राजा रानी अपने हाथ में आरा लेकर अपने ही जवान पुत्र को चीरने लगते हैं। शर्त यह भी है कि माता-पिता में से कोई रोएगा भी नहीं। अगर कोई रो पड़ा तो साधु का शेर मांस नहीं खाएगा और उनका आतिथ्य व्यर्थ चला जाएगा। फखरू मीर ने इस स्थिति में एक शेर भी कहा है -

जुदा किसी से किसी का कोई हबीब ना हो।
यह दाग वह है जो दुश्मन को भी नसीब ना हो।[119]

रानी की वेदना दर्शनीय है -

एक ठिकाने मन करके ले आरा हाथ म्हं।
बेटे वाली झाल उठे पिया मेरे गात म्हं।।
हुआ दीखना बंद मेरी दोनों आँख फूट ली।
चाणचक म्हं बैठे बिठाए हाय राम लूट ली।
यूँ आँसू छूट ली ज्यूँ पाणी बरसे बरसात म्हं।।[120]

राजा भी इस कृत्य को अपने लिए मरण ही मानता है -

मैं बेटा चीरूं बाबा जी एक ध्यान धर लिए।
बेटा चिर जा हम दोनों के भी प्राण हर लिए।
थोड़ा पर्दा कर लिए, नहीं रुक्का पड़ जा छत्तीस जात म्हं।[121]

असल में यह सांग एक स्त्री-पुरुष की परीक्षा का ऐसा सांग है जिसमें उन्हें अपने ही हाथों अपने ही पुत्र को बिना शोक मनाए चीरना पड़ता है। वह भी इकलौता पुत्र।

कवि का सांग 'विराट पर्व' भी अत्यधिक मनोरंजनकारी सांग है। इसमें एक राजपरिवार में दासियों का किस प्रकार यौन शोषण होता है, यह दर्शाया गया है। अज्ञातवास में पांडव विराट नगर में अपनी पहचान छुपाकर रह रहे थे। द्रोपदी रानी सैरंध्री की दासी बनकर रह रही थी। सैरंध्री के भाई कीचक की उस पर निगाह पड़ गई, तो उसका जार-संस्कार कुलांचे मारने लगा। वह अपनी बहन पर दबाव डालता है। अंततः उसे भीम के हाथों अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता है। यह सांग भी एक महती संदेश देता है कि किसी असहाय स्त्री पर बुरी नज़र डालने वाला का हश्र बुरा ही होता है।

फकरू मीर ने वीर रस का भी अद्‌भुत चित्रण किया है। 'सुन्दर बाई' सांग में जब चतरसिंह को पता चलता है कि उसकी मंगेतर की शादी तो बलबीपुर के राजकुमार बीरसिंह के साथ हो रही है तो वह क्रोध से भर जाता है और अपने सैनिकों का आह्वान करता है। उस समय की रागनी उत्साह और जोश से भरी हुई है -

चलो जवानो बलबीपुर को हो जावो तैयार।
चतरसिंह की क्रोध म्हं आंखें हुई लाल अंगार।।
मेरी माँग को ब्याह के लेग्या, दुख मुझे जिन्दगी भर का देग्या।
मेरे हाथ से बचके रहग्या, वो जालिम मक्कार।
अपने हाथ से आज ही उसका दूंगा शीश उतार।[122]

x *x* *x*

मौत से बिलकुल नहीं घबराते, काल को खुश हो गले लगाते।
हम अपनी आन पे मिट ही जाते मर्यादा अनुसार।
मैं पीठ दिखाने वाला नहीं, चाहे काल भी करे प्रहार।।[123]

फकरू मीर की रचनाशीलता पर यदि दृष्टिपात किया जाए तो आश्चर्यजनक

रूप से कहा जा सकता है कि वे मुस्लिम होते हुए भारतीय समाज में प्रचलित लोक कथाओं के गहरे जानकार कवि थे।

फकरू मीर साहब का देहांत दिनांक 5 मई, 1993 को लगभग 70 साल की उम्र में हुआ।[124] उनकी लोकनाट्य कला और गायन की उत्कृष्टता को देखकर कहा जाता था कि वे सांगियों के सांगी थे।

सूरत सिंह नांगल -

सूरत सिंह नांगल का जन्म सन् 1928 के आसपास हरियाणा के जिला सोनीपत के निकट राई के पास नांगल कलाँ गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम कुंदन सिंह था। ये जाति वाल्मीकि से थे। जब इनका जन्म हुआ तो सोनीपत रोहतक जिला की तहसील थी। सोनीपत से पूर्व में तीन कोस की दूरी पर नांगल गाँव पड़ता है। कवि सूरत सिंह अपने नाम के पीछे अपने गाँव का नाम लगाते थे जो अधिकतर हरियाणवी कवियों की आदत रही है। एक अन्य रागनी में भी उन्होंने अपना परिचय कुछ इस प्रकार दिया है -

जिले सोनीपत म्हं राई धौरे नांगल कलां सै गाम मेरा।
गाना बजाना करता जमींदारा सै काम मेरा।
किसे बात की दहशत कोन्या रह तै राजी राम मेरा।
एक मामूली-सा गावणियाँ सूरत सिंह सै नाम मेरा।
बचपन म्हं सीख लिया लय-सुरदारी ताल मनै।
इब तै ये झगड़े पड़ेंगे छोड़ने आज नहीं तै काल मनै।[125]

इनका विवाह सरबती देवी से हुआ था। इन्होंने खेड़ा कलाँ, दिल्ली निवासी श्री रूड़ेचंद को अपना गुरु बनाया। रूड़ेचंद एक सामान्य व्यक्ति थे। उनके कई शिष्य हुए जिन्होंने काव्य रचना की।

इन्होंने अपनी अनेक रागनियों में अपने गुरु का नाम अत्यधिक सम्मानपूर्वक लिया है। कुछ उदाहरण दर्शनीय है -

लिया गुरु रूड़ेचंद का शरणा सै, काम तन-मन-धन तै करना सै।
मनै फिरना सै देश तमाम, छुटग्या ऐश और आराम।
हरदम रह गावण का काम, जिला सोनीपत नांगल गाम।
मेरा सूरत सिंह सै नाम सूं प्रचारी, पनिहारी।[126]

इन्होंने अनेक लोकनाट्यों रचना की, जिनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं - 'अंधी दुल्हन', 'अंजना-पवन', 'शकुंतला-दुष्यंत', 'ब्रिगेडियर होशियार सिंह', 'सोमवती-चापसिंह', 'मीरांबाई' आदि।

सन् 1978 में लगभग पचास साल की आयु में इनका देहांत हो गया।

स्त्री की पीड़ा का दर्दनाक वर्णन हमें सूरत सिंह के लोकनाट्य 'अंजना-पवन' में देखने को मिलता है। इस लोकनाट्य में राजकुमार पवन अपनी पत्नी अंजना को शक के आधार पर गलतफहमी का शिकार होकर दुहाग दे देता है। एक स्त्री को अपने विवाहित जीवन के पहले बारह वर्ष पति के बिना ही व्यतीत करने पड़ते हैं। अंजना के दुखों का अंत यहीं नहीं हो जाता। हद तब होती है जब पवन कुमार एक रात के लिए अंजना के महल में रुक कर जाता है। गर्भावस्था की स्थिति में उसकी सास उसे घर से चरित्रहीनता का आरोप लगाकर निकाल देती है तथा उसके मायके में उसकी माँ व पिता भी उसे शरण नहीं देते। परिणामस्वरूप उसे जंगल में जाकर एक ऋषि की शरण लेनी पड़ती है और तमाम सुविधाओं के अभाव में पुत्र को जन्म देती है। गलतफहमी का शिकार होकर जब पवन अंजना को बारह साल का दुहाग देता है तो वे चौंक जाती है और उससे कारण पूछती है। वह सफाई भी देती है कि उसकी सहेलियों ने उसे लक्षित कर मजाक नहीं किया था। वे तो किसी और का मजाक उड़ा रही थीं। फिर भी वह नहीं मानता तो अंजना उससे निवेदन करती है कि यदि वह बारह वर्ष तक उसे अकेली छोड़कर जाना चाहता है तो बेहतर यही होगा कि वह उसकी हत्या करके चला जाए। इस समय सूरतसिंह की रागनी में एक पीड़ित स्त्री का दर्द यथार्थ रूप में आया है -

अहसान तेरा होगा साजन, कुछ मेरा भी फैसला करता जा।
इस जिन्दगी से तो बेहतर है, मेरी नाड़ पै आरा धरता जा।।
चढ़ता आवै सूरज गगन म्हं, ख्याल करो कुछ पिया मन म्हं।
जंगल झाड़ पहाड़ बन म्हं, ये मेरा जिया अकेला डरता जा।[127]

सांग 'शंकुतला-दुष्यंत' में भी कवि ने शंकुतला की पीड़ा को भी वाणी दी है जब दुष्यंत उसे पहचानने से ही इनकार कर देता है। एक स्त्री के लिए उसका पति जैसा संबल होता है। वह हमेशा अपने पति की सदिच्छा की इच्छुक रहती है। जब दुष्यंत शंकुतला को पहचानने से ही इनकार कर देता है तो शंकुतला को अत्यधिक कष्ट पहुँचता है। उसका तो घर पर कोई ठिकाना भी नहीं था, जहाँ वह

जाए। उसे भी गर्भावस्था में जंगल की ही राह पकड़नी पड़ती है। इस अवसर की रागणी की तीसरी कली दर्शनीय है -

पति तेरी पर्वत कैसी ओट
मनै क्यूं काढ़े सै बिन खोट
होंठ सूखगे क्यूं घबरावै, यो शरीर हो रहा बेकार।
यो चमका लागै नूर का।।[128]

सूरत सिंह गायनकला को आसान काम नहीं मानते हैं। इस कला में गलाकाट प्रतिस्पर्धा है। यह कला समर्पण और कवित्व की मौलिकता की माँग करती है। यह एक जंग है जिसके हथियार है मौलिक उद्भावना, भाषा, छंद, अलंकार व गायन की मिठास और भावानुरूप अभिनेयता का गुण। कवि सूरत सिंह ने स्पष्ट रूप से गायन विद्या को जंग माना है -

ऐसा गा दे गीत सुरीला भर कै मीठा रंग रै।
गावण का ना काम असानी पड़े जीतना जंग रै।
सूरत सिंह पद पा ले जोड़ इसा ला ले बात न तोल रै।[129]

सोनीपत, रोहतक, दिल्ली, करनाल आदि क्षेत्रों में सूरत सिंह का पर्याप्त प्रभाव रहा। उनकी गायन की मौलिक शैली ने लोगों को प्रभावित किया था।

गुलाब सिंह भारती -

गुलाब सिंह भारती का जन्म गाँव सरूरपुर, जिला बागपत, उत्तर प्रदेश में सन् 1937-38 के आसपास पिता छोटन के घर हुआ था। ये डूम जाति से थे।

इनके गुरु का नाम रामेश्वरदास था। इन्होंने लोकनाट्य के प्रारंभ में मंगलाचरण में सदैव उनका स्मरण किया है-

हे ईश्वर परमात्मा मेरे तीन लोक के साथ।
श्री रामेश्वर सतगुरु मिले जिनकी गौड़ ब्राह्मण जात।[130]

इनके गुच्छों पर लिखा होता था - ‘रेडियो, टी.वी. एवं एच.एम.वी. कलाकार’। गुलाबसिंह अपने समय के एक बेहद लोकप्रिय लोकनाट्यकार, कवि एवं गायक थे। इन्होंने ‘महाभारत’ की कुछ उपकथाओं को लेकर लोकनाट्यों की रचना की। इनके लोकनाट्य हैं - ‘गुलाबसिंह का महाभारत’, ‘जानी चोर महकदे’, ‘पूर्णमल’, ‘हीर-रांझा’, ‘बांगर का वोट’ आदि।

महाभारत में कवि गुलाब सिंह ने बब्रूभान की उपकथा को लिया है। यह कथा महाभारत के युद्ध के बाद की कथा है, जब पांडव मिलकर अश्वमेध यज्ञ करते हैं, तो अर्जुन और चित्रांगदा का पुत्र उनके घोड़े को पकड़ लेता है। वह कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न को बंदी बना लेता है तथा कर्ण के पुत्र विकर्ण को हरा देता है। बाद में जब अर्जुन उससे लड़ने आता है, तो उसकी माँ उससे कहती है कि अर्जुन के साथ न लड़े। परंतु परिस्थितिवश उसे अर्जुन को बंदी बनाकर लाना पड़ता है जिस कारण चित्रांगदा उसे कोढ़ी हो जाने का श्राप देती है। वह उसे अपने पिता बासक से नागदवन बूटी लाने की कहती है। नाना बासक अर्जुन से दुश्मनी के कारण बूटी देने से मना करता है तो वह लड़ाई कर सबको हरा कर बूटी ले आता है। यह लोकनाट्य कई जगह भावनात्मक भी हो जाता है। बब्रुभान कर्ण के पुत्र विकर्ण को अपने समक्ष देकर कहता है -

क्युकर मारूं तीर तू मेरा भाई दीखै सै।

चली जागी जान रोवती ताई दिखै सै।[131]

वीररस का भी उदाहरण देखा जा सकता है -

बबराभान रण म्हं लड़े रूप विकराल।
बीस तीस बाण मारे जणें टूट पड़्या काल।
प्रदुमन के तीर चले जणे हो प्योणिया काल।
अर्जुन के पुत्र ने बाण काट दिए तत्काल।
पाँच सौ जवान मरे बाकी गए रण से चाल।
पाँच बाण प्रदुमनी के मारे कर दीना घाल।
झट कैद किया बलवान।[132]

'बांगर का वोट' लोकनाट्य मनचले प्रेम पर आधारित है। इसमें दो मित्र राजकुमार व नंदकिशोर हैं। राजकुमार रेल में बैठकर भठिंडा जा रहा था तो उसकी नजर बांगर की एक लड़की रूपकुमारी पर पड़ती है। वह भठिंडा न जाकर बांगर की उस रूपकुमारी के गाँव में ही चला जाता है। वह उसके साथ जान-पहचान बढ़ाता और दोनों में प्रेम हो जाता है। पहले तो रूपकुमारी उसे डाँटती है -

चोरी जारी बदमाशी तै टलना ठीक सै।
धर्म-कर्म की मर्यादा पै चलना ठीक सै।
लैला मजनूं न रहे कीचक बाली से गए।
रावण कै भिड़ग्या ताला।[133]

रूपकुमारी के घर जब उसका पता चलता है तो वे उसका विवाह घीसू नाम के लड़के के साथ कर देते है। परंतु बाद में राजकुमार अपने दोस्त नंदकिशोर को लेकर आता है और रूपकुमारी को ले जाता है। इस लोकनाट्य में शृंगार रस दर्शनीय है -

जोबन की झूल हूर मनै ठा-ठा पटकै सै।
लम्बे केश हूर के ढुंगे चोटी लटकै सै।
तेरे रूप पै पागल की ज्यूं होयां भटकै सै।
गुलाब सिंह तेरी गोल पुतली हृदय खटकै सै।[134]

'जानी चोर महकदे' लोकनाट्य में जानी चोर की वीरता, धर्मपरायणता साफ दिखाई गई है। जानी चोर अदली खाँ के चंगुल से राजकुमारी महकदे को बचाकर लाता है इसके लिए वह कई प्रकार भेष बदलता है। यह लोकनाट्य रोमांच, रहस्य, जिज्ञासा से परिपूर्ण है।

गुलाब सिंह भारती ने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं। ये रागनियाँ ठेठ पारिवारिक और व्यावहारिक धरातल की रागनियाँ है। इनकी निम्न फुटकर रागनियाँ पर्याप्त प्रसिद्ध हुई थीं -

दारू दुश्मन हो माणस की ना पीणी प्याणी चाहिए।
करै शरीर का नाश आदमी नै अक्कल आणी चाहिए।[135]

x *x* *x*

दरजी के मेरा सूट सीम दे मैं घणी दूर तै आई।
सूट सीम दूंगा पर तनै महंगी पड़ै सिमाई।[136]

x *x* *x*

हेरी छोरी दिल्ली की तेरी कमर पै चोटी लटकै सै।
हो छोरे हरियाणे के तू मेरी आँख्याँ के म्हं खटकै सै।[137]

x *x* *x*

बारा बाट करै माणस नै या दारू की प्याली।
पीनी छोड़ दिए साजन नूं कहरी सै घरवाली।[138]

गुलाब सिंह भारती दोचश्मी रागनियों के माहिर थे। देवर-भाभी, जीजा-साली, पति-पत्नी, डाक्टर-मरीज, प्रेमी-प्रेमिका की रागनियाँ उन्होंने खूब लिखीं। कुसुम तनवर गुलाब सिंह की नाट्यमंडली का एक अहम अंग थी। उन्होंने एक रागनी में

इनका नाम कुछ इस प्रकार लिया है -

गुलाब सिंह नै ले कै आइए/आगे बरात म्हं।
रे पार्टी उसकी बुलवाइए।
कुसुम तनवर भी गुलाब सिंह के साथ म्हं होई।[139]

गुलाबसिंह अपने समय के ख्यातिनुमा कलाकार थे। उनकी रागनियाँ रेडियो से प्रसारित होती थीं। सन् 1992-93 के आसपास इनका देहांत हो गया।

नसरू मीर -

नसरू मीर का जन्म गांव शबगा, जिला बागपत, उत्तरप्रदेश में सन् 1912 के आसपास पिता हाजी मल्हू मीर के घर हुआ। इनके गुरु का नाम था झंडू मीर। झंडू मीर उस समय के ख्यातिनुमा सांगी थे।

इन्होंने 'बणकन्या', 'साह सिकली', 'हीर-रांझा', 'नौटंकी', 'उखां अनिरुद्ध', और 'कमला' आदि लोकनाट्यों की रचना की। 'साह सिकली' इनका प्रतिनिधि सांग था। ये सांग के क्षेत्र में कौरवी के दिग्गज सांगी थे। इनका देहांत सन् 1982 में लगभग सत्तर वर्ष की आयु में हुआ। इनके शिष्यों में भुल्लण सिंह भी एक सुप्रसिद्ध सांगी हुए। 'बणकन्या' सांग में एक जार-कर्मी के आगे बणकन्या की दुइाई देखी जा सकती है -

मैं बेटी समान लगूं सूं तेरा पिता का दर्जा।
पिता छोड़ कै पति बणा ले इसमें के तेरा हर्जा।
हर्जा तो है बहोत घणा बेटी तै इश्क कमावै।
इश्क मुहब्बत प्यार दोस्ती धुर तै होती आवै।
हर कै पाप पुण्य तुल जागा गड़ा धर्म का नर्जा।
धर्मी रहैंगे अधम बिचालै पापी पार उतरजा।[140]

नसरू मीर ने अपने समय की अनेक बुराइयों पर भी निडरतापूर्वक लिखा है। उनकी एक रागनी की टेक दर्शनीय है -

पाप जगत म्हं बधण लग्या धर्म घाट कुछ बंद होग्या।
धर्मी फिरै मुसीबत भरते पापी कै आनंद होग्या।[141]

इस संसार की नश्वरता पर भी उन्होंने लिखा है। एक रागनी की टेक व एक कली दर्शनीय है -

मरने पीछे आवै फिज़ा सब बाग बहार चली जागी।
झूठे झगड़े दुनिया खाली हाथ पसार चली जागी।
हर माणस के भीतर मैं दे मैं के बिना रीता।
वेद पुराण शास्त्र देखे उपनिषद देखी गीता।
राम लक्ष्मण कहै मेरी और रावण कहै मेरी सीता।
इन तीनों का करो फैसला कौण हारा और कौण जीता।
जिब ये तीनों ही ना रहण के जीत और हार चली जागी।[142]

नसरू मीर के शब्दों का प्रवाह बेहद स्वाभाविक रहता था। कबूल, रहमत खाँ और बशीर उनके सांगों में साजिंदे होते थे।

पं. हरिदत्त नादान -

पं. हरिदत्त नादान का जन्म 28 जनवरी 1946 को गाँव भराला, जिला मेरठ, उत्तर प्रदेश में पिता परमेश्वर दत्त तथा माँ चंद्रवती के घर हुआ था। इन्होंने पाँचवीं कक्षा तक शिक्षा ग्रहण की थी। इनकी पत्नी का नाम अंगूरी देवी था। इनके गुरु थे - मूलचंद शर्मा। मूलचंद शर्मा मछली गाँव के थे। वे आर्यसमाजी थे। वे आकाशवाणी से भी गाते थे। आर्य समाज की शिक्षाओं का पं. हरिदत्त नादान पर भी असर पड़ा। ये भी आकाशवाणी पर गीत-रागनी गाया करते थे। इन्होंने कभी अपने लोकनाट्यों का मंचन नहीं किया। इन्होंने केवल रचना की है। इनके लोकनाट्यों के नाम है - 'वीरांगना सारंधा', 'वीर हकीकत राय', 'चित्र-विचित्र', 'कर्ण पर्व', 'जयद्रथ वध' आदि। इसके अतिरिक्त इनकी फुटकर रागनियों की भी कई पुस्तिकाएँ (गुच्छे) प्रकाशित हुए, जिनके नाम हैं - 'वैदिक तराना', 'वैदिक गीत', 'चेतावनी', 'दहकता अंगार', 'मुँह तोड़ जवाब' आदि।

इनका देहांत 16 अप्रैल 1984 को हुआ। 'रानी सारंधा' लोकनाट्य की पहली ही रागनी 'ईश्वर प्रार्थना' में कवि पर आर्य समाज का प्रभाव देखा जा सकता है -

ये डूबी जाती है भंवर म्हं नैया हमारी।
हे ईश्वर जगदीश्वर जरा दे दो सहारा।
हमें मिल जाए किनारा होगा अहसान तुम्हारा।
कौशल्या सुमित्र जैसी हो माता।
राम लक्ष्मण से हों भ्राता।
आज लड़ते फिरते हैं आपस म्हं करते हैं ख्वारी।।[143]

x x x

हरिदत्त कहे पौराणिक पंडे।
झूठे भगत और डोरी गंडे।
इनको मिटा दे करबद्ध बिनती हमारी।[144]

ये अपने लोकनाट्य की शुरूआत उसके नाम का परिचय देते हुए एक दोहे से करते हैं -

पारब्रह्म परमात्मा परमात्मा कर बुद्धि प्रकाश।
क्षत्राणी सारंधा का शुरू करूं इतिहास।।[145]

'रानी सारंधा' लोकनाट्य एक वीरांगना की वीरता एवं साहस की कहानी है, जो अपना प्रण निभाने के लिए अपने पति तथा स्वयं के लिए मौत चुनती है। रायपुर शहर के राजा अनिरुद्ध थे तथा उसकी पत्नी का नाम शीतला था। अनिरुद्ध की बहन सारंधा थी। एक बार अनिरुद्ध युद्ध से भागकर आ जाता है तो सारंधा उसे ताकीद करती है कि यह क्षत्रियों का काम नहीं है। इस पर भाभी शीतला सारंधा पर क्रोधित होती है और चेतावनी देती है कि कभी ऐसी स्थिति में वह खुद होगी तो वह भी मृत्यु की अपेक्षा जीवन को चुनेगी।

कालांतर में सारंधा का विवाह ओरछा रियासत के राजा चंपतराय से हो जाता है। चंपतराय का राज्य शाहजहाँ के पुत्र दाराशिकोह के अधीन था। सारंधा चंपतराय से कहती है कि बुंदेले तो वीर होते हैं वे किसी के अधीन नहीं रह सकते और आप तो मुगलों के अधीन हैं। वह कहती है -

यहाँ आकर मैं बादशाह के हूँ सेवक की नारी।
ओरछा के अंदर थी मैं एक राजा की रानी।[146]

इस प्रकार सारंधा की प्रेरणा से चंपत राय दिल्ली से ओरछा में ही आ जाते है। उधर शाहजहाँ बीमार पड़ गए तो शहजादा मुराद अली व महीउद्दीन ने चंपतराय के पास बुलावा भेजा परंतु रानी सारंधा उनके खिलाफ बीड़ा उठा लिया -

रानी ने उठाकर बीड़ा खिला दिया पान का।
रक्षक मेरा साजन आज बुंदेलों की आन का।
क्षत्री का धर्म यो ही मेरे पति जी।
युद्ध से ही होती सदा वीर की गति जी।
सती सारंधा कहे ये बख्त है इम्तिहान का।।[147]

कालांतर में सारंधा का लड़का छत्रसाल भी जवान हो जाता है। एक दिन

छत्रसाल घोड़े पर सैर को जा रहा था तो बली बहादुर खाँ ने उससे घोड़ा छीन लिया। इस पर सारंधा कुपित होती है और घोड़ा लेने स्वयं पहुँच जाती है। आलमगीर के साथ उनका युद्ध होता है। चंपतराय बीमार हो गए। इस सांग के अंत में सारंधा पहले पति के सीने में खंजर घोंपती है तथा बाद में अपने सीने में। इस प्रकार वे वीरगति को प्राप्त होते हैं। ओजगुण और वीररस से परिपूर्ण यह लोकनाट्य सारंधा की भावुक वीरता का अंकन करता है। इनकी भाषा में भावाभिव्यक्ति का प्रवाह इतना सहज रूप से आया है कि पाठक या श्रोता रस से सराबोर होते चले आते हैं। ये बहुत ही कटु शब्दों में अपने तर्क रखने की सामर्थ्य रखते हैं।

भुल्लन सिंह -

भुल्लन सिंह का जन्म गांव कसेरवा कलां, जिला शामली उत्तर प्रदेश में हुआ। इन्होंने अपना परिचय कुछ यूं दिया है -

मैं बेदर्दी क्युकर सूं जब हुई सुबह से शाम दिके।
या तो मनै बता मनियारे कौन तुम्हारा गाम दिके।
कलाँ कसेरवा गाम मेरा भुल्लण सिंह है नाम दिके।
मेरी तेरी जोड़ी मिलजा डोरी हाथ म्हं थाम दिके।
मैंने नसरू मीर की सेवा करके तेरी सारी पेटी भर दी हो।
मेरा हुआ गात नास मनियारे मैं दाऊं कोड़ी कर दी हो।[148]

उपर्युक्त रागनी अंश से भुल्लण सिंह ने अपने बारे में कई सूचनाएँ दी हैं कि उनका गाँव कसेरवा कलां है और उनके गुरु का नाम नसरू मीर है।

इनके पिता कपड़ा बुनने का काम करते थे और जाति से जुलाहा थे। भुल्लण सिंह का जन्म जून 1915 के आसपास हुआ और इनका देहांत 70-71 वर्ष की आयु में 1985-86 में हुआ। इनका 'असली संगीत चांदकौर बंजारे की' सन् 1954 में जवाहर बुक डिपो गुजरी बाजार मेरठ से प्रकाशित हुआ। इन्होंने 'मोरध्वज' व 'हीर-रांझा' आदि सांग भी निर्मित किए।

नसरू मीर भी अपने समय के सुविख्यात सांगी हुए है। ये गांव शबगा, जिला बागपत उत्तर प्रदेश से थे। नसरूमीर झंडू मीर के शिष्य हुए। इसका संकेत भी भुल्लन सिंह ने दिया है -

यो किस्सा गुरु नसरू मीर पै पास कराया था अकना।
दादा झंडू मीर सतगुरु नै बुरा बताया था अकना।[149]

झंडू मीर भी अपने समय के एक सुप्रसिद्ध सांगी हुए। भुल्लण सिंह का एक ही सांग मिल पाया - चांद कौर-बजारे की। यह सांग विशुद्ध मनोरंजन और प्रेमकथा पर लिखा गया सांग है। पंजाब के रतनपुरी शहर के राजा रतनसिंह का लड़का सरूपचंद अपने मंत्री के साथ सैर करते-करते कलकत्ता आ जाता है। वहाँ एक सौदागर मोहन चंदपुरी रियासत के राजा चांदसिंह बणजारा की लड़की चांदकौर का सुन्दर चित्र खींचकर बेच रहा था। सरूपचंद उस चित्र पर मोहित हो जाता है और उससे मिलने के लिए भेष बदलकर चंदपुरी में पहुंच जाता है। चंदपुरी के बाग में आकर चालाकी और वाक्पटुता से एक स्त्री को मौसी बनाकर उसके घर में पनाह पाता है और चूड़ी वाला मनियारा बनकर वह चांदकौर के महल में पहुंचता है तथा चांदकौर को ब्याहकर लाता है। इसका कथानक छोटा-सा है, परंतु रागनियों में पर्याप्त उतार-चढ़ाव है। सरूपचंद की पहली पत्नी उसे रोकने का प्रयास भी करती है, परंतु वह मानता नहीं। सांग में दृश्य परिवर्तन का सवैया दर्शनीय है -

चूड़ी ले लो चूड़ी ले लो गली म्हं हांक लगाई सै।
सखी सहेली आवाज सुण कै मनियार धोरै आई सै।
थोड़ी देर के अर्से म्हं उन्हीं बणजारों म्हं आवे सैं।।[150]

इससे पहले जब सरूपचंद चांद कौर का फोटो देखता है, तो उसकी आसक्ति दर्शनीय है -

या इस तरियाँ सै रीझी, सिर पै मौत करण लगी तेजी।
या खांड की जलेबी, मेरी गौरी इसके आगै बूर दिखाई दे।
चौगरदे नै चाँदकौर का नूर दिखाई दे।[151]

अपनी पत्नी को 'बूर' की संज्ञा देना एक नया उपमान है। भुल्लण सिंह का वर्तमान समय पर कटाक्ष दर्शनीय है-

बंजड़ धरती धन देरी शाही क्यार न्यूं ही रहगे।
गुंडों पै चौधर आगी, इज्जतदार न्यूं ही रहगे।[152]

भुल्लण सिंह एक स्वाभाविक सांगी थे। निश्चित रूप से 'चांदकौर बंजारे की' सांग के अतिरिक्त भी उन्होंने और भी अनेक सांगों की रचना की थी परंतु वे मौखिक परंपरा में विलुप्त हो गए।

पं. श्रीराम शर्मा -

पं. श्रीराम शर्मा का जन्म सन् 1907[153] में पिता किशना व माता चलती देवी के घर गाँव भैसरू कलां, रोहतक हरियाणा में हुआ था। पं. मौजीराम बली ब्राह्मणान

सोनीपत, हरियाणा को इन्होंने अपना गुरु बनाया। पं. मौजीराम पहलवान थे। पं. श्रीराम शर्मा सरल हृदयी व्यक्ति थे। रचनाएँ प्रकाशित करवाने से बचते थे। इन्होंने अनेक लोकनाट्यों की रचना की। इनके लोकनाट्यों के नाम है - 'सावित्री सत्यवान', 'नल-दमयंती', 'हरिश्चंद्र', 'पवन-अंजना', 'उषा-अनिरुद्ध', 'नरसी का भात,' 'श्रीकृष्ण जन्म', 'कृष्ण-सुदामा', 'विक्रम-भरथरी', 'सरवर-नीर', 'अजितसिंह-राजबाला', 'चंचल कुमारी', 'धर्मपाल-शांताकुमारी', 'सुभाष चंद्र बोस', 'चंद्रहास', 'झाँसी की रानी', 'कमला-चंपा', 'जयमल फत्ता' आदि।[154] इन्होंने महाभारत की कई उपकथाओं पर भी लोकनाट्यों की रचना की। लोकनाट्यों के साथ-साथ इन्होंने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं। इन फुटकर रागनियों में समाज-सुधार, देशभक्ति, गुरु भक्ति, अध्यात्म व शिक्षा आदि समसामयिक विषयों पर व्यंजना हुई है।

इनके अधिकतर लोकनाट्य पूर्व में प्रचलित कथाओं पर ही आधारित हैं। रागनियों की बनावट इनकी अपनी है। इन्होंने अनेक दोचश्मी रागनियों की सर्जना की है। दोचश्मी रागनी में लोकनाट्य में अभिनेयता व नाटकीयता तत्त्व को अधिक बल मिलता है। 'कमला-चंपा' लोकनाट्य में कवि ने कमला और उसकी सहेलियों की सुन्दरता का वर्णन इस प्रकार किया है -

बाग के माँह फिरती देखी सारस कैसी जोट।
नहर कैसी मोरी चाल्ली पाणी कैसे लोट।
बुलबुल कैसे बच्चे उनमें कई छोरी देखी।
सबतै आला दर्जा एक कमला गौरी देखी।
बाग के माँह होरी देखी, साम्मण कैसी घोट।।[155]

श्रीराम शर्मा का शृंगार भी बहुत संयमित और मर्यादित है।

इनका सत्यवान सावित्री लोकनाट्य पति-पत्नी के बीच की एकनिष्ठता का एक बेहतरीन लोकनाट्य है। कथा काल्पनिक है जिसमें सावित्री यमराज के शिकंजे से अपने पति की जान बचाकर ले आती है। जब यमराज उसके पति की जान लेकर चलने लगते हैं तो वह सहम जाती है। उस समय सावित्री की मनःस्थिति का कवि श्रीराम शर्मा ने मार्मिक वर्णन किया है -

अणहद लीला ईश्वर तेरी, बण म्हं कूण सुणनिया मेरी।
सिर के नीचै गोड्डा देरी, रोवै थी बन म्हं।
मैं मारी मरूं थी इस डर तै, कुछ जोर चलै ना ईश्वर तै।

घर तै आच्छा-बिच्छा आया, यो दिन नारद नै बतलाया।
हे ईश्वर तेरी लीला माया, के रच दी छन म्हं।।[156]

वन में अकेली स्त्री के ऊपर इस प्रकार का संकट आता है, परंतु वह हिम्मत नहीं हारती और अपने पति को जिंदा करवाकर ही मानती है। "उन्होंने अशिक्षा, सामाजिक कुरीतियों, फिरका-परस्ती आदि को खूब फटकार लगाई। नारी-सम्मान की रक्षा की। अपने प्रचार-काल में उन्होंने जो भी राजनीतिक, प्राकृतिक अथवा सामाजिक उथल-पुथल देखी, उसको काव्यबद्ध किया। शर्मा जी की काव्यभाषा सरल और सुग्राह्य है।"[157]

चौ. मनफूल सिंह त्यागी -

चौ. मनफूल सिंह त्यागी का जन्म गाँव निवाड़ी जिला गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश में हुआ था। लोकनाट्य के रूप में उनकी होलियाँ सुप्रसिद्ध हुई थीं।

ये चौ. फूलसिंह नंगला के शिष्य थे। इनका एक प्रकाशित लोकनाट्य (होली) है जो सन् 1981 में प्रकाशित हुआ था। उसमें अंतिम पृष्ठ पर उनके कृतित्व के स्वामित्व व वसीयत को लेकर कुछ सूचनाएँ इस प्रकार हैं, "विदित हो कि गुरु मनफूल सिंह त्यागी निवाड़ी निवासी डा. खास जिला गाजियाबाद का देहावसान हो चुका है। अब उनकी समस्त पुस्तकें छपवाने का अधिकार चौ. रिछपाल सिंह त्यागी पुत्र चौ. हेतराम त्यागी और उनके सहायक चौ. निरंजन सिंह त्यागी, चौ. बाबू न्यादर सिंह, चौ. बिसम्बर सिंह त्यागी (अमीन) चौ. होशियार सिंह, चौ. फतेहसिंह, चौ. रघुनाथ सिंह त्यागी, चौ. देवकिशन सिंह इत्यादि को है।"[158] इसी पृष्ठ पर चौधरी मनफूल सिंह त्यागी के गुरु की भी सूचना इस रूप में है - "गुरु मनफूल सिंह पगड़ी किसको दी जाय, इस बात का विचार करने के लिए मनफूल सिंह के गुरु फूलसिंह नंगला निवासी के पुत्र चौधरी हंसराज कालन्द से हरबन्स सिंह को बुलाया गया।"[159]

त्यागी गौत्र विप्र का ही गौत्र है। यह सूचना भी कवि ने 'मारू का भात' लोकनाट्य में दी है -

भले भिखारी के बी ढके परदे, ढोल कंवर ने बी मेहर करी।
त्यागी वंश मनफूल विप्र ने, ना कथने म्हं फिर देर करी।
देर करी ना फिर मारू ने, भोजन जिमवाने की कर दई फेर त्यागी।[160]

सोहनलाल सिवाहा -

सोहनलाल सिवाहा का जन्म जिला जींद हरियाणा में गाँव सिवाह में 1924

के आसपास हुआ। इनके पिता का नाम नत्थूराम बुंबक था। ये वाल्मीकि जाति से थे। इन्होंने खानपुर गाँव के वाल्मीकि जाति के फकीर चंद को अपना गुरु बनाया।

इन्होंने अनेक सांग सृजित किए - 'चंद्रप्रभा-मदनपाल', 'हीरामल जमाल', 'पिंगला भरथरी', 'सत्यवान सावित्री' व 'बणदेवी' आदि।[161]

इनके बारे में एक कथा प्रचलित है कि ये सांग करते हुए अभिनय करते हुए ही चल बसे थे। ये 'चंद्रप्रभा मदनपाल' सांग कर रहे थे। इसमें राजा मदनपाल व रानी चंद्रप्रभा जंगल में जा रहे थे। वे स्नान करके एक वृक्ष के नीचे लेटकर सो जाते है। रानी को साँप ने डस लिया। राजा जब उठा और रानी को मृत देखा तो वह जोर-जोर से रोने लगा। शिवजी और पार्वती उसकी रोने की आवाज सुनकर उसके पास आते हैं व उससे रोने का कारण पूछते हैं। वह बताता है कि उसकी पत्नी को नाग ने डस लिया तो शिवजी उससे कहते हैं कि तुम्हारी उम्र चालीस साल बची है, यदि तुम इसमें से बीस साल अपनी पत्नी को दे दो तो यह जीवित हो सकती है। शिवजी के कहने से वह लेट जाता है।

सांग में दर्शकों का कहना था कि सांग में रमे जैसे ही सोहनलाल लेटे और उसके ऊपर चादर ढक दी गई तो वह असलीयत में ही मृत्यु को प्राप्त हो गए। यह सांग के इतिहास में अद्‌भुत घटना थी। यह समय सन् 1984 का था जब सोहनलाल सिवाहा जी लगभग साठ वर्ष के थे। इन्होंने लम्बे समय तक सांगों का मंचन किया। परंतु प्रलेखीकरण के अभाव में वे उनके साथ ही काल-कवलित हो गए।

पीरू मिलक -

पीरू मीर का जन्म गाँव मिलक लच्छी, जिला गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश में सन् 1904 ई. में पिता अजीम खान एवं माता लुहारी के घर हुआ था। इनके गुरु का नाम था - गौरी शंकर। इन्होंने अपने गुरु के विषय में 'सांगीत गऊ हरण' में पहली ही रागनी में लिखा है -

भूरे शेर पै गेर कै पाखर आजा काली कालका।
भरी सभा म्हं याद करै तनै चेला गौरी लाल का।
जहाँ पीरू नै जन्म लिया सदा बसो मिलक का खेड़ा।[162]

मिलक गाँव दिल्ली से बिलकुल संलग्न गाँव है। पीरू मिलक की ख्याति दूर-दूर तक हो गई थी। उस समय के सुप्रसिद्ध सांगी पं. बलवंत सिंह बुल्ली भी उनका लोहा मानते थे। पीरू मिलक द्वारा रचित लोकनाट्य हैं - 'सत्यवादी

हरिश्चन्द्र', 'सरवर नीर', 'वीर भगत सिंह', 'सत्यवान सावित्री', 'द्रोण पर्व', 'वैराट पर्व', 'गऊ हरण', 'द्रोपदी-चीर', 'कृष्ण भात', 'भीष्म पर्व', 'कर्ण पर्व', 'पूरनमल सुन्द्रादे', 'भक्त पूरनमल', 'अमरसिंह राठौर', 'हकीकत राय', 'रूप-बसंत', 'मोरध्वज', 'गोपीचंद', 'हीर-रांझा', 'नरसी का भात' आदि।

पीरू मिलक ने पहले से चली आई कथाओं पर ही सांगों का सृजन किया। 'वीर भगत सिंह' के इलावा इनके सभी सांग बनी बनाई कहानियों पर आधारित हैं।

कला की दृष्टि से पीरू की लोकप्रियता थी। उनकी सांग-मंचन शैली बेहद शानदार व प्रेरक होती थी। खुद उस समय के सांगी उनकी प्रशंसा करते थे। इनकी रागनियों में ठेठ लोकभाषा का निर्वहन हुआ है। देवी-देवता भी बिल्कुल लौकिक धरातल पर आते हैं। 'द्रोपदी चीर हरण' सांग में जब पांडव विवश हो जाते हैं और दुःशासन द्रोपदी का चीर हरण करने की कोशिश करता है तो द्रोपदी के सब्र का बाँध टूट जाता है और वह कृष्ण को पुकारती है। उसके पुकारने का अंदाज बिल्कुल लौकिक भाई-बहन जैसा है। वह कहती है -

कित मरग्या कृष्ण कन्हैया, मेरा चीर उतररा भईया।
अब आगे क्या हो रे, आगे क्या होय।
मोर मुकुट मुरली वाले दई सब ढालों से खोय।
सभी हार के बैठ गए मैं जिनकी थी अरधंगी।
बाबा भीष्म द्रोणाचारी चाह्वैं देखनी नंगी।
कैरों की हँस रही लुगाई रही बहन आपकी रोय।[163]

इस सांग की पहली ही रागनी दुर्योधन अपमान की आग में सुलगता हुआ दुःशासन को द्रोपदी का उसे 'अंधे का अंधा' कहना याद दिलाता है। दुर्योधन कहता है -

मेरी इज्जत तारगी जो पांडवों की नार।
अंधे का अंधा कह गई ऐसी बोली मार।[164]

x x x

अंधे का अंधा बतलाया बेहूदी उस पांडवों की बीर नै।
मेरी सुखा दई काया, उसकी बोली के तीर नै।
तेग नै उठा कै पहले महलों म्हं जाना।
चाहे जिस हाल म्हं हो सभा म्हं ले आना।
चाहे जिस हाल म्हं हो सभा म्हं ले आना।

आज यह जरूरी कर दे, मेरी बात पूरी कर दे।
हो जागा मनचाहा तारैंगे आज बैरण के चीर नै।[165]

पीरू की अधिकतर रागनियाँ फिल्मी गीतों की तर्ज पर आधारित हैं। पीरू तक आते-आते रागनियाँ फिल्मी गीतों की तर्ज पर गाई जाने लगी थीं। अनेक लोकनाट्यकार तो इन तर्जों के कारण भी सुप्रसिद्ध हुए। पीरू ने एक फुटकर रागनी में पहले और आज के समयों पर अंतर भी स्पष्ट किया है। पहले समय कितना सुखमय था परंतु आज छल कपट, वैमनस्य बढ़ गया है। एक रागनी की टेक व चौथी कली दर्शनीय है -

पाप जगत म्हं फैल गया और धर्म का दौर अलग होगा।
भाई का भाई गल काटे ये कैसा पापी जग होगा।[166]

x *x* *x*

हिन्दू मुस्लिम दो भाई थे, ना आपस म्हं तकरार हुआ।
रास खोस लिया अंग्रेजों सै ना आपस म्हं प्यार हुआ।
कहीं आप मरे कहीं औरत लुटगी ऐसा अत्याचार हुआ।
आगे कलम काम ना करती 'पीरू' भी लाचार हुआ।
कहीं मोटर लुटगी रेल कहीं कहीं ड्राईवर गार्ड बिरग होगा।[167]

पीरू मुस्लिम थे। उसके बावजूद उन्होंने सांग के क्षेत्र में अपार ख्याति अर्जित की थी। देश की आजादी और विभाजनजन्य मारकाट के वे प्रत्यक्षद्रष्टा थे। हिन्दू-मुस्लिम के बीच बढ़ती खाई को देखकर उनका मन आहत था।

वर्ष 1999 ई. में उनका देहांत हो गया। इनके प्रिय शिष्य सतपाल दौसा ने भी लोकगायकी के क्षेत्र में खूब नाम कमाया।

निष्कर्ष -

महाशय दयाचंद मायना युग लोकनाट्य और रागनी कंपीटिशन का संधिकाल था। इस समय लोकनाट्य मंचन क्षय की ओर था तथा रागनी कंपीटिशन उभार की ओर था। लोकनाट्य (सांग) मंचन और रागनी कंपीटिशन में मूलभूत अंतर यह था कि लोकनाट्य का मंचन पूर्णतः सुनियोजित ढंग से होता था। एक ही कथा को रागनियों के माध्यम से एक पूरी सांग-मंडली द्वारा प्रस्तुत किया जाता था। लोकनाट्यकार सांगी कहलाता था। वह अपने या अपने गुरु के सृजित सांग का मंचन करता था। उसके लिए मंच होता था, चारों और दर्शक बैठते थे। उसमें स्त्रीवेश में पुरुष जनानों की भूमिका करता था। विदूषक दर्शकों को हँसाता था। उसके लिए

पाँच छह घंटे का समय अनिवार्य था। इसके विपरीत इस समय गायकों का एक ऐसा वर्ग उभरा जो न तो रागनी रच सकता था, न किसी गुरु के प्रति उसकी प्रतिबद्धता थी, वह किसी की भी रागनी गा सकता था। एक ही मंच पर अनेक गायक रागनी गाते थे। रागनी गायन में केवल गायक की प्रवीणता देखी जाती थी। घड़वे-बैंजू का प्रयोग इसी काल में हुआ। इन गायकों के साथ-साथ इस वर्ग का एक श्रोतावर्ग भी उभरा। उसे सांगों की अपेक्षा रागनी कंपीटिशन में ही अधिक आनंद आने लगा। सांग के गायक की अपेक्षा रागनी कंपीटिशन का गायक कम महत्त्व का था। उसके लिए पैसा अधिक महत्त्वपूर्ण था। सांग में एक आदर्श था, गुरु के प्रति और गायकी के प्रति तथा साजिंदों के प्रति और रागनी के स्वामी (रचयिता) के प्रति। किसी भी सांगी ने कभी भी किसी कवि की रागनी को छाप काटकर नहीं गाया। यह एक जघन्य अपराध माना जाता था। खुद लोकनाट्यकार अपनी रागनियों में छाप काटकर गाने वालों की निंदा करते थे, परंतु रागनी कंपीटिशन के गायक के लिए ये कोई आदर्श नहीं थे। उनके लिए केवल रुपया ही महत्त्वपूर्ण होता था। वे अवसर देखकर किसी भी रागनी पर किसी की भी छाप लगा देते थे। ऐसे गायकों को ही 'छापकटैया' कहा जाता है। रागनी गायकों ने भी छाप काटकर रागनी गाई तथा उसके बाद अनेक संपादकों ने भी किसी-किसी की रागनी किसी कवि विशेष की पुस्तक में उसके नाम से प्रकाशित कर दी। यह कला के क्षेत्र की बेईमानी है।

इस छापकाट बीमारी के सबसे अधिक शिकार हुए महाशय दयाचंद मायना। उनके किस्से के किस्से फौजी मेहरसिंह के नाम से गा और प्रकाशित करवा दिए गए। महाशय दयाचंद मायना के परिजन और शिष्य तथा शुभचिंतक बिसूरते रह गए। फौजी मेहरसिंह जाट जाति के थे तथा दयाचंद मायना वाल्मीकि जाति के। यह गायकों का और संपादकों का कला के क्षेत्र में सरेआम जातिवाद था। हरियाणा में जातिवाद का यह घिनौना रूप था। फौजी मेहरसिंह के नाम से अनेक कवियों की रागनियों को बेशर्मीपूर्ण गा दिया गया। हरियाणा में इस कुरीति के विरुद्ध 'छापकटैया' विमर्श की शुरूआत हुई। लेखक की इस दिशा में 'छापकटैया' पुस्तक में ये सारे राज बड़े तर्कपूर्ण और ससंदर्भ खोले गए हैं।

लखमीचंद नै सांग कर्‌या नौटंकी लक्कड़हारा,
मांगेराम ब्राह्मण हीर पीर की जोड़ रागणी गार्‌हा,
एक धनपत डूम निंदाणे आला, लीलो चमन नै ठार्‌हा,
सुण-सुण कै नै बात उघाड़ी, यो भारत डूब्या जार्‌हा,
करो दयाचंद प्रचार धर्म के, या दुनिया थूक बिलोगी।[168]

इस कली में दयाचंद जी ने अपने कवित्व के उद्‌देश्य को स्पष्ट किया है। वे देश-प्रेम के धर्म के प्रचार को ही कला का सबसे बड़ा साध्य मानते हैं।

इस समय कुँवर सुखपाल सिंह आर्य प्रभाकर (राजबाला अजीत सिंह, कालीचंद, जगदेव बीरमती, बिजली महारानी, हकीकत राय, भयंकर भूल, द्रोपदी स्वयंवर, गऊहरण, धर्मपाल शांताकुमारी), ओमप्रकाश शर्मा बापोड़ा हिसार, हरियाणा (कली पै भौंरा, नखरेबाज लुगाई, गौरी फूलगुलाब), बिट्टू सिंह ग्राम दौलतगढ़ बुलंदशहर (द्रौपदी चीरहरण), भीमराज रायसराना रंगीला (जेलीझाड़ खूटपाड़, आशिकों की दुनिया, सांगीत हूर सपेले की, सांगीत फूलकोर, सांगीत हीर रांझा, सांगीत सरौली आम), पं. लीलेराम, मस्जिद मोठ दिल्ली (अजीत सिंह-राजबाला, शकुंतला-दुष्यंत, सेठ ताराचंद, पृथ्वीसिंह- किरणमई), पन्नालाल शर्मा (चढ़ता जोबन गौरी का), महाशय सुल्तान सिंह चंदीला, बड़ौली, वल्लबगढ़ (सत्यवान-सावित्री, सुंदरबाई, अंजना-पवन), मा. गन्नू राम (केलावती देवी), रामकला (अजीत सिंह-राजबाला, सरवर-नीर), अंगदलाल अलबेला (लवकुश की वीरता), चौ. भूलेलाल मावई (सांगीत किरणमई), महाशय सूबेराम धामा कस्तला (कम्मो-कैलाश, सुंदर और सरकार, रूप-बसंत), दीपचंद आजाद बुड़ौली (तड़फती दुलहन), महिपाल सिंह वासवान (किस्सा राजा मोरध्वज), मनफूल सिंह त्यागी (मारू का भात), हरबंस लाल बिजरौल (शीलादे-रिसालू), पं. रामस्वरूप शर्मा ढलना (नरसी का भात) आदि लेकनाट्‌यकारों ने लोकनाट्‌यों का सृजन किया। भीमराज रायसराना के लोकनाट्‌यों के शीर्षक बताते हैं कि उनके नाट्‌यों में प्रेम और उदात्त मस्ती की छाप अधिक है।

संदर्भ -

1. महाशय दयाचंद मायना ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, अकादमी भवन, पी-16, सेक्टर 14, पंचकूला, हरियाणा - 134113, प्रथम संस्करण 2014, पृष्ठ 177
2. वही, पृष्ठ 170
3. वही, पृष्ठ 210
4. वही, पृष्ठ 21
5. वही, पृष्ठ 23
6. वही, पृष्ठ 23

7. वही, पृष्ठ 27
8. वही, पृष्ठ 273
9. वही, पृष्ठ 410
10. वही, पृष्ठ 125
11. वही, पृष्ठ 120
12. वही, पृष्ठ 269
13. वही, पृष्ठ 350
14. वही, पृष्ठ 348
15. वही, पृष्ठ 114
16. वही, पृष्ठ 144
17. वही, पृष्ठ 233
18. वही, पृष्ठ 424-425
19. वही, पृष्ठ 425
20. वही, पृष्ठ 50
21. वही, पृष्ठ 113
22. वही, पृष्ठ 59
23. वही, पृष्ठ 125
24. वही, पृष्ठ 195
25. वही, पृष्ठ 407
26. वही, पृष्ठ 113
27. वही, पृष्ठ 425
28. हरियाणवी लोककाव्य एवं नाट्य के गौरव मास्टर नेकीराम, डॉ. शिवताज सिंह, विवेक पब्लिशिंग हाउस, धामाणी मार्केट, जयपुर 302003, राजस्थान, प्रथम संस्करण 2012, पृष्ठ 5 (विषय-सूची)
29. वही, पृष्ठ 47
30. वही, पृष्ठ 289

31. वही, पृष्ठ 261-262
32. वही, पृष्ठ 154
33. वही, पृष्ठ 291
34. वही, पृष्ठ 291
35. वही, पृष्ठ 359
36. वही, पृष्ठ 360
37. वही, पृष्ठ 59
38. स्वतंत्रता सेनानी धर्मपाल भालोठिया ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, साहित्य संस्थान, ई-10/660, उत्तरांचल कॉलोनी (निकट संगम सिनेमा), लोनी बॉर्डर, गाजियाबाद - 201102, प्रथम संस्करण 2022, पृष्ठ 30
39. वही, पृष्ठ 31
40. वही, पृष्ठ 31
41. वही, पृष्ठ 38
42. वही, पृष्ठ 38
43. वही, पृष्ठ 56-57
44. वही, पृष्ठ 63
45. वही, पृष्ठ 65
46. वही, पृष्ठ 69
47. वही, पृष्ठ 70
48. महाशय छज्जूलाल सिलाना ग्रंथावली, डॉ राजेन्द्र बड़गूजर, गौतम बुक सेंटर, सी-263 ए, चंदन सदन, हरदेवपुरी, शाहदरा, दिल्ली - 110093, प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ 30
49. वही, पृष्ठ 34
50. वही, पृष्ठ 70
51. वही, पृष्ठ 41
52. वही, पृष्ठ 50

53. महाशय गुणपाल कासंडा हरियाणवी ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, सुकीर्ति प्रकाशन डी.सी. निवास के सामने, करनाल रोड, कैथल, हरियाणा - 136027, संस्करण 2012, पृष्ठ 30

54. वही, पृष्ठ 32

55. वही, पृष्ठ 6 (अनुक्रमणिका)

56. वही, पृष्ठ 52

57. वही, पृष्ठ 53

58. वही, पृष्ठ 63

59. वही, पृष्ठ 69

60. वही, पृष्ठ 70

61. वही, पृष्ठ 79

62. वही, पृष्ठ 79

63. वही, पृष्ठ 81

64. मा. दयाचंद आज़ाद सिंघाना ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, कागज़ प्रकाशन, 13, इंप्लॉईज़ कॉलोनी, खुराना रोड, कैथल, हरियाणा - 136027, प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ 28

65. वही, पृष्ठ 29

66. वही, पृष्ठ 43

67. वही, पृष्ठ 44

68. वही, पृष्ठ 46

69. वही, पृष्ठ 46

70. वही, पृष्ठ 50

71. वही, पृष्ठ 53

72. वही, पृष्ठ 59

73. वही, पृष्ठ 61

74. वही, पृष्ठ 62

75. वही, पृष्ठ 62-63

76. वही, पृष्ठ 63
77. वही, पृष्ठ 76
78. मास्टर रामानंद आज़ाद, पंडित सरूपचंद्र की सांग प्रणाली, डॉ. केशोराम शर्मा, निर्मल पब्लिकेशन, ए-139, कबीर नगर, शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2021, पृष्ठ 156
79. वही, पृष्ठ 156
80. वही, पृष्ठ 160-161
81. वही, पृष्ठ 162
82. चौ. जगत सिंह अल्हाण रचनावली, प्रो. राजेन्द्र बड़गूजर, साहित्य संस्थान, ई-10/660, उत्तरांचल कॉलोनी (निकट संगम सिनेमा), लार्नी बॉर्डर, गाजियाबाद - 201102, प्रथम संस्करण 2023, पृष्ठ 32
83. वही, पृष्ठ 33
84. वही, पृष्ठ 35
85. वही, पृष्ठ 47
86. वही, पृष्ठ 48
87. वही, पृष्ठ 49
88. वही, पृष्ठ 53
89. वही, पृष्ठ 59
90. वही, पृष्ठ 78
91. पृथ्वीराज मोहम्मद गौरी, चौ. पोलूराम आजाद, शंकरदास अंगनामल कागजी, हालू बाजार, भिवानी, पृष्ठ 1
92. वही, पृष्ठ 4
93. साके पाड़ पठाण की, चौ. पोलूराम आजाद, शंकरदास अंगनामल कागजी, हालू बाजार, भिवानी, पृष्ट 14
94. वही, पृष्ठ 16
95. प्रेमलाल चौहान रचनावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, अयन प्रकाशन, जे-19/39, राजापुरी, उत्तम नगर, नई दिल्ली - 110059, प्रथम संस्करण 2023, पृष्ठ 19
96. वही, पृष्ठ 19

97. वही, पृष्ठ 19

98. वही, पृष्ठ 20

99. वही, पृष्ठ 21

100. वही, पृष्ठ 21

101. वही, पृष्ठ 25-26

102. वही, पृष्ठ 30

103. स्वतंत्रता सेनानी एवं लोककवि पं. कृष्ण चंद्र 'नादान' हरियाण्वी ग्रंथावली, रामफल चहल, सुकीर्ति प्रकाशन, डी.सी. निवास के सामने, करनाल रोड, कैथल, हरियाणा - 136027, प्रथम संस्करण 2012, पृष्ठ 13

104. महाशय दयाचंद मायना ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, अकादमी भवन, पी-16, सेक्टर 14, पंचकूला, हरियाणा - 134113, प्रथम संस्करण 2014, पृष्ठ 163

105. स्वतंत्रता सेनानी एवं लोककवि पं. कृष्ण चंद्र 'नादान' हरियाण्वी ग्रंथावली, रामफल चहल, सुकीर्ति प्रकाशन, डी.सी. निवास के सामने, करनाल रोड, कैथल, हरियाणा - 136027, प्रथम संस्करण 2012, पृष्ठ 247

106. वही, पृष्ठ 277

107. वही, पृष्ठ 228

108. वही, पृष्ठ 313

109. वही, पृष्ठ 303

110. हस्तलिखित पांडुलिपि, शुभकरण मांडी, संग्रहालय, चौ. तारा चंद शिक्षा एवं लोक कला संस्थान (रजि.), गाँव मलिकपुर, जिला सोनीपत, हरियाणा।

111. वही।

112. कवि फकरू मीर रचनावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, साहित्य संस्थान, ई-10/660, उत्तरांचल कॉलोनी, लोनी बार्डर, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 13

113. वही, पृष्ठ 104

114. वही, पृष्ठ 39

115. वही, पृष्ठ 39

116. वही, पृष्ठ 205
117. वही, पृष्ठ 30
118. वही, पृष्ठ 30
119. वही, पृष्ठ 31
120. वही, पृष्ठ 131
121. वही, पृष्ठ 31
122. वही, पृष्ठ 209
123. वही, पृष्ठ 210
124. हस्तलिखित पांडुलिपि, सूरत सिंह नांगल, संग्रहालय, चौ. तारा चंद शिक्षा एवं लोक कला संस्थान (रजि.), गाँव मलिकपुर, जिला सोनीपत, हरियाणा।
125. वही।
126. वही।
127. वही।
128. वही।
129. वही।
130. गुलाब सिंह का महाभारत, गुलाब सिंह भारती, श्री भगवत् बुक डिपो, पुरानी तहसील, मेरठ, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 1
131. वही, पृष्ठ 12
132. वही, पृष्ठ 9
133. बांगर का बोट, गुलाब सिंह, अग्रवाल बुक डिपो (रजि.), दिल्ली - 6, पृष्ठ 5
134. वही, पृष्ठ 5
135. गुलाब सिंह का बड़ा गुच्छा, गुलाब सिंह, जवाहर बुक डिपो, मेरठ, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 9
136. नया गुलाब सिंह का रिकार्ड तोड़ गुच्छा, गुलाब सिंह, धार्मिक प्रकाशन (पंजी), फतेहपुरी, दिल्ली - 6, पृष्ठ 12
137. वही, पृष्ठ 14
138. वही, पृष्ठ 21

139. गुलाब सिंह का बड़ा गुच्छा, गुलाब सिंह, जवाहर बुक डिपो, मेरठ, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 29

140. हस्तलिखित पांडुलिपि, नसरू मीर, संग्रहालय, चौ. तारा चंद शिक्षा एवं लोक कला संस्थान (रजि.), गाँव मलिकपुर, जिला सोनीपत, हरियाणा।

141. वही।

142. वही।

143. नादान के चमकते गीत, रानी सारंधा, हरिदत्त नादान, जवाहर बुक डिपो, स्वामीपाड़ा, मेरठ, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 1

144. वही, पृष्ठ 1

145. वही, पृष्ठ 2

146. वही, पृष्ठ 8

147. वही, पृष्ठ 11

148. असली सांगीत चाँदकौर-बँजारे की, भुल्लन सिंह, जवाहर बुक डिपो, गुजरी बाजार, मेरठ शहर, पृष्ठ 23-24

149. वही, पृष्ठ 11

150. वही, पृष्ठ 18

151. वही, पृष्ठ 6

152. हस्तलिखित पांडुलिपि, भुल्लन सिंह, संग्रहालय, चौ. तारा चंद शिक्षा एवं लोक कला संस्थान (रजि.), गाँव मलिकपुर, जिला सोनीपत, हरियाणा।

153. हरियाणा के लोकगायक, डॉ. पूर्ण चंद शर्मा, गीतिका प्रकाशन, साहित्य विहार, बिजनौर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 212

154. वही, पृष्ठ 212

155. वही, पृष्ठ 213

156. वही, पृष्ठ 214-215

157. वही, पृष्ठ 215

158. मारू का भात, चौ. मनफूलसिंह त्यागी निवाड़ी निवासी कृत, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ - 2, पृष्ठ 74 (अंतिम पृष्ठ)

159. वही, पृष्ठ 74 (अंतिम पृष्ठ)

160. वही, पृष्ठ 67

161. सोहनलाल सिवाहा के पौत्र से हुआ साक्षात्कार।

162. सांगीत गऊ हरण, पीरू मिलक, भगवत बुक डिपो, पुरानी तहसील, मेरठ - 2, पृष्ठ 1-2

163. द्रोपदी चीर, पीरू मिलक, भगवत बुक डिपो, पुरानी तहसील, मेरठ - 2, पृष्ठ 19

164. वही, पृष्ठ 2

165. वही, पृष्ठ 2

166. पीरू का लटका, पीरू मिलक, भगवत बुक डिपो, पुरानी तहसील, मेरठ - 2, पृष्ठ 3

167. वही, पृष्ठ 4

168. महाशय दयाचंद मायना ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, अकादमी भवन, पी-16, सेक्टर 14, पंचकूला, हरियाणा - 134113, प्रथम संस्करण 2014, पृष्ठ 155

ग्यारहवाँ अध्याय

चंद्रलाल बादी युग

(सन् 1985 ई. - 2004 ई.)

प्रस्तावना -

यह काल लोकनाट्य का उत्कर्ष और अवसान का काल कहा जा सकता है। इस समय में एक ओर चंद्रलाल बादी जैसे अद्भुत प्रतिभा के धनी लोकनाट्यकार हुए, वहीं मंचन की दृष्टि से लोकनाट्य का क्षय होता चला गया। मनोरंजन के दूसरे साधन आ गए। लोकनाट्य का सबसे ज्यादा अहित किया रागनी कंपीटिशनों ने और छापकटैया गायकों ने। इस काल में एक से एक लोकनाट्यकार हुए जिन्होंने अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया। इस समय सांग पूरी तरह से व्यावसायिक हो गया था। लोग चंद्रलाल बादी के सांग सिनेमा हालों की तरह टिकट लेकर देखा करते थे। उनका कहना था कि उनका कंपीटिशन सांगियों से नहीं है। उनका कंपीटिशन तो बंबई वालों से है। एक तरह से चंद्रलाल बादी कला के मायने में मुम्बई से होड़ करने लगे थे। मुम्बई यानि सिनेमा से।

इस काल तक आते-आते लोकनाट्यकार एक लंबी ऐतिहासिक अनुभव शृंखला से परिचित हो गए थे। लोकनाट्यकारों की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक जिम्मेदारी बढ़ गई थी। लोग सामाजिक उपक्रम के कार्यों में चंदा एकत्रित करने के लिए सांगियों का सहारा लेने लग गए थे। चंद्रलाल बादी इस समय में बड़े धनाढ्य सांगी थे। वे अपनी कमाई का काफी भाग सामाजिक कार्यों में लगाते थे। यथा उन्होंने इंदिरा गाँधी को 1962 की भारत चीन लड़ाई में प्रधानमंत्री राहतकोष में चार किलोग्राम सोना और पाँच किलोग्राम चाँदी भेंट की थी। उन्होंने दो एकड़ जमीन खरीदकर अपने गाँव दत्तनगर में एक 'आदर्श भारतीय चंद्रलाल इंटर कालेज' की स्थापना भी की थी। पूरे हरियाणा-उत्तर प्रदेश के साथ-साथ उन्होंने मुबंई में भी सांग किए और प्रशंसा बटोरी। चंद्रलाल बादी ने सांग के हर अंग पर ध्यान दिया था।

यथा उनके संग सारंगी वादक मामन खान थे जिन्हें बाद में सारंगी वादन में राष्ट्रपति पुरस्कार मिला। उनके शिष्यों में कैलाश बेदी और सूरज बेदी थे। सूरज बेदी अब तक सांग विद्या में रमे हुए हैं। उन्हें हरियाणा सरकार से कई पुरस्कार मिल चुके हैं। जनानों (सांग में स्त्री की भूमिका निभाने वहाँ पुरुष पात्र) पर उनका विशेष ध्यान होता था। अनुशासन की दृष्टि से भी चंद्रालाल बादी पर्याप्त अहतियात बरतते थे।

चंद्रलाल बादी ने विपुल लोकनाट्यों की रचना की। पचास से अधिक लोकनाट्य लिखने वाले चंद्रलाल बादी का संपूर्ण जीवन लोकनाट्यमय हो गया। इस काल में लोकनाट्यकारों में लोकनाट्य के प्रदर्शन को लेकर एक खास किस्म की प्रतिद्वन्द्विता-सी भी थी, जो स्वाभाविक भी है। यह प्रतिद्वन्द्विता नए-नए विषयों पर मौलिक नाटक लिखने से लेकर मंचीय साज-सज्जा तक भी जाती थी। इस युग के लोकनाट्यकारों का परिचय कुछ इस प्रकार है -

चंद्रलाल बादी -

कौरवी क्षेत्र में चुनिंदा सांगियों में चंद्रलाल बादी जी का अहम् स्थान है। पूरे हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, मुंबई और पाकिस्तान तक अपनी कला का परचम लहराने वाले चंद्रलाल बादी जी ने सांग विधा को जो ऊँचाइयाँ प्रदान कीं, शायद ही किसी ने की होगी। अपने समय में वे सर्वाधिक लोकप्रिय सांगी हुए, जिनकी प्रखर और रंजक शैली ने नए कीर्तिमान स्थापित किए।

चंद्रलाल बादी का जन्म 3 अगस्त 1917[1] को रक्षाबंधन के दिन हरियाणा में वर्तमान में जिला चरखी दादरी में गाँव चरखी में हुआ था। बाद में इनके माता-पिता उत्तर प्रदेश में मेरठ में गाँव दत्तनगर में जाकर बस गए थे। इनके पिता का नाम सोहनलाल तथा माँ का नाम चावली देवी था।

ये अपने पिता की इकलौती संतान थे। इनके पिता भी गायन-कला में निपुण थे। इन्होंने अपने वंश का परिचय स्वयं एक रागणी की कली में दिया है -

सुपुत्र सोहनलाल के यजमान सांगवान जाट।
नट बादी का ब्योंक है कौम हमारी भाट।।
नमों-नमों माता-पिता जिनसे हुआ शरीर।
ग्राम मेरा है दत्तनगर जहाँ तपते संत फकीर।
श्री मंगल चंद सतगुरु मिले धन्य दादा शंकरदास के नाम नै।[2]
जिनके शिष्य नत्थू हुए प्रणाम दादा गुरु के जावली ग्राम नै।।

चंद्रलाल जी अपने पिता की इकलौती संतान थे और ये भी विवाह के काफी अंतराल के बाद हुए थे। इनके पिता विभिन्न अवसरों पर सुरीली आवाज़ में आल्हा गाया करते थे, जिसका प्रभाव इनके जीवन पर भी पड़ा। हालांकि शुरू में इनके पिता नहीं चाहते थे कि ये भी गाने-बजाने को ही अपना पेशा बनाएं परंतु बाद में जब उन्होंने गायन के क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्त करनी कर दी तो उन्हें खुश होकर सांग आदि करने की अनुमति दे दी।

चंद्रलाल बादी के समय में छपी उनकी रागणियों के छोटे-छोटे गुच्छों में उनका नाम चंद्रलाल भाट उर्फ 'बादी' दत्तनगर निवासी मिलता है। कई जगह चंद्रलाल भाट उर्फ 'बेदी' भी मिलता है।

चंद्रलाल बादी के गायन प्रभाव-क्षेत्र में उन्हें अलग-अलग नामों से सम्बोधित किया जाता है। गाजियाबाद और उसके आस-पास के क्षेत्रों में उन्हें 'चंद्र नट' कहकर पुकारा जाता है। करनाल, कुरुक्षेत्र, अम्बाला, पानीपत के आसपास के क्षेत्रों में 'चंद्रलाल बेदी' और हरियाणवी सांग और रागणी का गढ़ कहे जाने वाले सोनीपत, रोहतक, जींद और झज्जर आदि क्षेत्रों में वे 'चंद्र बादी' के नाम से ही प्रसिद्ध थे। वैसे उनकी जाति भाट थी। कहीं-कहीं उनका नाम 'चंद्र भाट' भी मिल जाता है।[3]

इनके गुरु का नाम था मंगलचंद। मंगलचंद इनके सगे चाचा थे। उनके शिष्य मा. वेदप्रकाश भारती बताते हैं कि उन्होंने मात्र दस वर्ष की आयु में ही अपना गुरु धारण कर लिया था। इनके दादा-गुरु का नाम था मा. नत्थूलाल जो बागपत जिला के जावली गाँव के रहने वाले थे। और नत्थूलाल मा. शंकरदास के शिष्य थे। सांग 'नौबहार' में ये अपने गुरु व गुरु-परम्परा का परिचय देते हैं -

मंगलचन्द गुरुद्वार जावली ग्राम सुणा होगा।
चंद्रलाल दत्तनगर सांग का काम सुणा होगा।
विद्या के शुभ तट का जिठोली धाम सुणा होगा।
शंकर के स्वामी कहै न्यूं शंकर नाम सुणा होगा।
ये ब्रह्मज्ञानी गुण शंकरदास फकीर म्हं यो था।[4]

कवि चंद्रलाल बादी अपने समय के एक मशहूर सांगी थे। इसी मशहूरी ने अनेक नवोदित कलाकारों को उनसे जोड़ा। उनका सांग का बेड़ा हरियाणा में सबसे चर्चित रहा। साज-बाज, जनानों के वस्त्र, नाच-गाना सब पर वे इतना ध्यान देते थे कि दर्शक उनके सांगों पर भाव-विभोर हो जाते थे।

चंद्रलाल बादी सांग कला के लिए समर्पित सर्जक थे। उनका सांग का

संभवतः सबसे लम्बा अनुभव रहा। वे इस कला में इतना रच-बस गए थे कि उन्हें सोते-जागते, उठते-बैठते सांग और रागणी ही सूझती थी। उन्होंने बचपन से ही अपना सांग एवं गायन कला को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया था। रागणी की एक कली में उन्होंने स्वयं स्वीकार भी किया है -

शायरी तुकन्त म्हं शरीर काफिया।
छन्द धरणिये नै दीखै नजदीक काफिया।
चन्द्रलाल का ठीक काफिया भिड़ता आवै सै।
बालकपन तै सही रागनी घड़ता आवै सै।।[5]

'छंद धरणिये नै दीखै सै नजदीक काफिया' में कवि का अनुभव झलकता है। कविता की रचना करने वाले को हर समय कविता, छंद और काफिया ही दिखाई देता है।

चंद्रलाल जी ने अनेक मौलिक सांगों की रचना की। अपने जीवनकाल में उन्होंने पचास के आसपास सांगों का सृजन किया - 'सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र', 'हीर रांझा', 'नौबहार-धर्मदेवी', 'बीजा-सोरठ', 'मोहनादेवी-रामकुमार', 'चंपादे माली की', 'अमरसिंह राठौड़ भाग 1', 'अमरसिंह राठौड़ भाग 2', 'चंद्रपाल-सुमित्रा', 'गजना गोरी-मणियारा', 'कमला-मदन', 'सत्यवान-सावित्री', 'पृथ्वीसिंह - किरणमई', 'नागिन', 'रूपा-रेल्हू राधे-श्याम', 'धन्ना भगत', 'निहालदे के परवाने', 'विश्वामित्र-हूर मेनका', 'शकुंतला-दुष्यंत', 'सुहागन को दुहागन', 'मायादेवी-रणतेज कुंवर', 'अजीत सिंह - राजबाला', 'गुलशन-गुलबहार भाग 1', 'गुलशन-गुलबहार भाग 2', 'लालबहार-कांता देवी भाग 1','लालबहार-कांता देवी भाग 2', 'कीचक-वध', 'गौहरण भाग 1', 'गौहरण भाग 2', 'गौहरण भाग 3', 'देवर-भाभी', 'रूप-बसंत', 'भारत-इंग्लैंड', 'रतना-बादल', 'सांग दीपक-सलोनी', 'छोरी स्कूटर आली', 'अथ संगीत राजा मोरध्वज', 'दमयन्ती स्वयंबर', 'नई भाभी', 'सांगीत जगदेव वीरमती', 'हरफूल जाट जुलाणी वाला' आदि।[8]

हरियाणा में सांगों की संरचना और मौखिक प्रचलन होने के कारण उनका डोक्यूमेंटेशन न होना लोक कला के क्षेत्र में एक ऐसी भारी रिक्ति है कि अनेक लोक कवि अपने सृजन को अपने साथ ही लेकर चल बसे और इतिहास के पन्नों से गायब हो गए। चंद्रलाल बादी के भी अनेक सांगों अब केवल नाम ही बचे हैं। ऐसे सांगों में 'इश्क-हुश्न', 'अनारकली', 'दहेज', 'कृष्ण भात', 'विराट पर्व', 'पाखंड खंड रामायण', 'विद्या-भारत', 'सरवर-नीर' जैसे सांग हैं। 'भारत-इंग्लैंड', 'भारत-बंग्लादेश', 'भारत-चीन' उनके ऐसे सांग हैं जिनमें उन्होंने एक लोक कवि की जिम्मेदारी समझते

हुए समकालीन परिस्थितियों से अपने दर्शकों को अवगत कराया है। इस दृष्टि से वे एक अनूठे लोक कवि बनकर उभरते हैं।

चंद्रलाल बादी के सांगों की एक खास विशेषता है कि उनके सांगों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध के धरातलीय रूप दिखाई देते हैं। इस मायने में वे माहिर लोककलाकार हैं। वे किसी आदर्श के चक्कर में लौकिक व्यवहार में प्रचलित सम्बन्धों को नहीं भूलते। इस लौकिक व्यवहार के बीच ही वे नैतिकता का पाठ पढ़ा जाते हैं। उनकी अनेक रागणियों में 'चोर-जार-ठग' शब्द समाज-विरोधी शब्द के रूप में आए हैं। वे इस प्रवृति को समाज के लिए घातक मानते हैं। वे इन्हें विश्वसनीय नहीं मानते -

ये मेरे बस का ना काम तू है माणस बदकार।
चोर-जार-ठग जगत म्हं नहीं किसी के यार।।[9]

कवि के कई सांगों में जार-कर्म को मुद्दा बनाया गया है। वे अपने दर्शकों को जार-कर्म जनित बुराइयों से आगाह करते हैं।

चंद्रलाल बादी अपने समय के यथार्थ को प्रस्तुत करने वाले हरियाणा के एक उम्दा सांगी थे। वे सांग को एक माध्यम मानते थे, जिससे जनता को समय की बुराइयों से आगाह किया जा सके। उन्होंने अपने सांगों के माध्यम से ईमानदारी, परोपकार, त्याग आदि की मिसाल कायम की।

चंद्रलाल बादी का जब इस परिप्रेक्ष्य में अध्ययन-मनन करते हैं तो सुखद अनुभूति होती है कि वे लोककला या सांग के माध्यम से बीच-बीच में सामाजिक अध्यापक के रूप में भी उपस्थित होते हैं। वे सांगों की कथा के बीच में शिक्षा-प्राप्ति का महती संदेश दे देते हैं। वे कहते हैं कि भारत किसी भी मायने में किसी भी अन्य देश से कम नहीं है। देश को आगे ले जाने के तमाम संसाधन यहाँ मौजूद है। यह देश अपने अतीत में सोने की चिड़िया रहा। परन्तु घोर वैयक्तिक स्वार्थ के चलते मुट्ठी भर लोगों का अधिकतम संसाधनों पर कब्जा हो गया। कवि लिखते हैं -

भारत देश खान सोने की बिन विद्या निर्धन होग्या।
परमार्थ की रीत छोड़ कर पाप करन म्हं मन होग्या।।[10]

'सत्यवान सावित्री' सांग में सत्यवान के पिता अपने परिवार के साथ जंगलों में रहने के लिए मजबूर हुए। किशोर सत्यवान, जो कभी राजकुमार था, अपने हाथों पानी लेकर भी नहीं पीता था, हरदम सेवकों का जमावड़ा लगा रहता था। वही सत्यवान अपने वस्त्र गिरवी रखकर पैसे लाता हैं, उनसे कुल्हाड़ी आदि औजार

खरीदता है और लक्कड़हारे का जीवन व्यतीत करता है। उस समय की रागणी में चंद्रलाल बादी जी ने एक राजकुमार की विवशता का क्या खूब अंकन किया है -

मैं हूँ आदमी गरीब लाला ध्यान कर लिये।
टोटे म्हं दुखिया के लत्ते गहणे धर लिये।।
कदे हम राजा थे भोपाल, आज सैं बिन पैसे कंगाल।
थे नौ करोड़ के लाल, माटी म्हं जर लिये।।
कदे राजा थे राजभवन म्हं, आनन्द रहा करैं थे धन म्हं।
इब माता-पिता भोजन बिन वन म्हं, भूखे मर लिये।।[11]

'थे नौ करोड़ के लाल, माटी म्हं जर लिये' और 'इब माता-पिता भोजन बिन वन म्हं, भूखे मर लिये' जैसी उक्तियाँ दर्शकों के गहरे उतर जाती हैं।

भारत में आर्थिक असमानता अनेक बुराइयों की जड़ है। इसके कारण अनेक अपराध पनपते हैं। अमीर आदमी अपनी दौलत को और अधिक बढ़ाने के लिए गैर-कानूनी काम करते हैं। वे अनेक योजनाएँ बनाते हैं। जो गरीब अमीरों के लिए महल, कोठियाँ और राजमहल तैयार करते हैं, उनके सिर पर छत भी नहीं होती। कवि चंद्रलाल की आँखों से समाज की यह आर्थिक असमानता बच नहीं पाई। उनका कहना है -

सेठ दौलत जोड़न की तरकीब करते हैं।
कोठियां और महल खड़े गरीब करते हैं।
धन से अपने आपको हबीब करते हैं।
हबीबों की टहल बदनसीब करते हैं।
गरीब करते हैं राज महलों की चिनाई।।[12]

कवि का साफ मंतव्य है कि जब अमीर और गरीब दोनों इस देश के समान नागरिक हैं तो यह आर्थिक असमानता क्यों? गरीब व्यक्ति अमीर को अपना जिगर निकालकर भी दे दें तो भी वे उन्हें गले नहीं लगाते। जबकि अमीरों के तमाम चोंचले गरीबों की मेहनत पर ही निर्भर होते हैं। वे उनके श्रम का शोषण करते हैं। उनसे सेवा करवाते हैं परन्तु इतने बेदर्द हैं कि उनकी मूलभूत आवश्यकताओं की उन्हें तनिक भी चिंता नहीं होती। अमीर व्यक्ति गरीब के साथ भाईचारा भी नहीं रखता

अमीर को गरीब अपना सौंप दे शरीर।
फेर भी डरता हुआ रखै कपड़े झीरम-झीर।

भरते हैं गरीब नौकर अमीरों का नीर।
हर तरह अमीरों के गरीब दामनगीर।
कहैं ना अमीर फिर भी गरीब को भाई।।[13]

चंद्रलाल बेदी जी ने भारत की मौलिक समस्याओं - जाति और धर्म के प्रति अपनी उद्‌भावनाएँ अपने श्रोताओं के समक्ष रखी हैं जिनमें सब कुछ सुखद है, सकारात्मक हैं और सुन्दर भविष्य है। वे मानव को महत्त्व देते हैं और उसकी खुशी को सबसे बड़ा धर्म मानते हैं। वे मानव में केवल मानव को देखते है। इसके अतिरिक्त मानव की कोई पहचान ही नहीं है। मानवीय संवेदनाओं से युक्त चंद्रलाल बादी हरियाणा के एक उत्कृष्ट कवि साबित होते हैं।

किसान खेतों में काम करता है। रात-दिन उसका जीवन संकटों से जूझता है। साँप, बिच्छू आदि विषैले जानवरों का खटका उसे बना रहता है। उसकी व्यक्तिगत जरूरतें कभी भी पूरी नहीं होती। कर्जा उसका साथी होता है जो उसे पैदा होते ही मिला था और मरते दम तक उतरता नहीं। कवि ने कर्जे को 'मरद का खसम' बताकर कर्जे की सर्व-व्यापक पीड़ा का बखान किया है। धन्ना को कर्जे की चिंता लगातार कचोटती है -

खून सुखा दे देही का या चिन्त्या बुरा मर्ज हो सै।
दिन और रात फिकर म्हं बीतै मर्द का खसम कर्ज हो सै।।[14]

किसान की दुर्गति शासन की व्यवस्था की कमी है। ऐसे लोग जो कुछ नहीं करते वे लखपति-करोड़पति हैं और दिन-रात खेत में काम करने वाला किसान कर्ज के बोझ से दबा पड़ा है। कवि का निष्कर्ष यही है कि शासक की गलत और अन्यायपूर्ण नीतियों से यह होता है -

इज्जत बिगड़ै नहीं जो साथी भाई का भाई हो तो।
राज बिगड़ता नहीं जो सच्ची नीति की रूहाई हो तो।
राजा अन्याई हो तो प्रजा का घणा हर्ज हो सै।।[15]

राजा को इस भूमिपुत्र की संभाल लेनी चाहिये। उसे अपनी योजनाओं में किसान पुत्र की सुख-सुविधाओं का ख्याल करना चाहिये।

कवि चंद्रलाल बादी को महज हरियाणवी लोककवि या मनोरंजन मात्र का सांगी मान लेना उनके विराट व्यक्तित्व के साथ बेमानी होगा। उन्होंने अपने सांगों और फुटकल रागणियों में अपने दर्शकों को देशव्यापी विमर्शों से भी जोड़ा। उनका

मानना है कि भारतवासी होने के गौरव की अनुभूति करने के लिए अपने देश हेतु श्रम करना अति आवश्यक है। जब तक भारत का एक-एक नागरिक परिश्रम नहीं करता तो भारत को इक्कीसवीं सदी के अनुरूप कैसे बनाया जा सकता है? भारत भी तो अपने नागरिकों पर गर्व करे! कोई भी देश अपने श्रमशील नागरिकों के बूते जीवित और स्वतंत्र रहता है। कवि की फुटकल रागनी की कली दर्शनीय है -

हमारा प्यारा हिन्दुस्तान, सुर्ग समान हरेक इंसान।
करो श्रमदान जाण शुभ काम।
देश को जब होगा आराम।[16]

सभी धर्मों, जातियों, संप्रदायों और मतों के लोगों को भारत से अपना देश समझकर इसे महान बनाने के लिए जुटकर श्रमदान करना होगा। परिश्रमी लोगों के सहारे ही देश का मजबूत ढांचा खड़ा हो सकता है।

यहाँ प्रसंगवश यह बताना अति आवश्यक हैं कि उन्होंने दत्तनगर जैसे ग्रामीण इलाके में शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु इंटर कॉलेज की स्थापना करवाई थी जो अभी भी सुचारू रूप से चल रहा है। वे कहते थे कि अकर्मण्य, जार, चोर, बदकार, रिश्वत लेने वालों से देश की साख को बट्टा लगता है -

योजना से देश की बेरोजगारी मिटाई जा।
कॉलिज के म्हां हर बच्चे को दस्तकारी सिखाई जा।
बेटों के समान बेटी बाहण भी पढ़ाई जा।
खेती भी तो जमींदारों की नए ढाल से कराई जा।
ना रहैं चोर और जार, ठग बदकार, पापी विचार, रिश्वती यार।
करै ना जो भारत को बदनाम।
देश को जब होगा आराम।[17]

कवि चंद्रलाल जी देश की सरकारों का भी आह्वान करते हैं कि देश के लोगों का जीवन-स्तर सुधारने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं को सही तरीके से लागू करें।

चंद्रलाल बादी जी का देहांत लगभग 87 साल की उम्र में 6 अगस्त सन् 2004 को हुआ।

रामकिशन ब्यास -

राम किशन ब्यास का जन्म 11 अक्तूबर 1925 ई. को पिता पं. सीताराम और माता रामरिच्छया (रामरक्षा) के घर गाँव नारनौंद जिला हिसार हरियाणा में हुआ।[18]

इनके बचपन का नाम हीरालाल था। इनके दादा श्री आशाराम ने इन्हें प्यार में रामकृष्ण कहना आरंभ कर दिया जो आगे चलकर रामकिशन कहलाया। बचपन में ही कुछ अलग करके दिखाने और सुप्रसिद्ध होने की ललक ने इन्हें सांग के क्षेत्र में सुप्रतिष्ठ कर दिया। इन्होंने उस समय के एक बहुत ही लोकप्रिय कवि पं. माईराम अलेवा को अपना गुरु बनाया।[19] प्रारंभ में इन्होंने माईराम के सांगों का मंचन किया और बाद में अपने स्वयं के सांग सृजित कर मंचित करने लगे। इनके द्वारा सृजित सांग है- 'नल दमयंती', 'सत्यवान सावित्री', 'कीचक वध', 'चंद्रहास', 'हीर रांझा', 'गोपीचंद', 'ज्यानी चोर', 'चापसिंह सोमवती', 'सत्य सांई जीवन चरित्र', 'सत्यवती देवी', 'हीरामल जमाल', 'सरणदे नाई', 'कम्मो कैलाश', 'रूपकला जादूखोरी', 'धर्म जीत', 'शशीकला-सुखबीर' आदि। ये एक मौलिक लोकनाट्यकार थे। इन्होंने कई मौलिक कथाओं पर लोकनाट्य सृजन किया। इन लोकनाट्यों के अतिरिक्त 'पूर्णमल', 'च्यवन सुकन्या', 'फूलकली गोपीचंद', 'ऊषा अनिरूद्ध', आदि लोकनाट्यों की भी कुछ रागनियाँ लिखीं।[20] इन्होंने अपने गुरु के विषय में लिखा है -

तीस कोस करनाल से गुरु का अलेवा स्थान।
श्री माईराम सतगुरु मिले, गुरु कहूँ के भगवान।[21]

(करनाल से तीस कोस गुरु का स्थान अलेवा है। श्रीमाईराम मुझे सतगुरु मिले। मैं उन्हें गुरु कहूँ या भगवान)

रामकिशन ब्यास ने अपने सांगों तथा फुटकर रागनियों में पाखंडों का डटकर विरोध किया।

मूंड मुंडाएँ जटा बढ़ाएँ ना बण म्हं जाएं राम मिलै।
जनधारा और अमि म्हं ना शरीर तपाएं राम मिलै।[22]

इन्होंने देश-प्रेम से परिपूर्ण रागनियाँ भी लिखीं। आज़ादी वैसे ही नहीं आई। इसके लिए अनेक महापुरुषों और शहीदों ने अथक परिश्रम किए। उनकी एक फुटकर रागनी की टेक और पहली कली दर्शनीय है -

आज़ादी खातर हिन्द वालों ने ब्होत मुसीबत ठाई।
क्यूं द्यो सो बुराई।
तिलक गोखले ओर मालावी नारोजी परेशान हुए।
नाना साहिब अजीमुल्ला खां क्रान्ति के इन्सान हुए।
सन् अठारा सौ सतावन मैं दो देशभक्त बलिदान हुए।
मंगल पांडे तात्यां टोपे हिंद खातिर कुर्बान हुए।
आज़ादी के बदले उनको फाँसी की सजा सुणाई।[23]

इनका ‘कम्मो कैलाश’ लोकनाट्य भारत-पाक विभाजन त्रासदी के बीच एक प्रेम कथा की मार्मिकता का लोकनाट्य है। इसमें कम्मो एक मुस्लिम परिवार से तथा कैलाश एक हिन्दू परिवार से था। राय धनपतसिंह निदाना के ‘लीलो-चमन’ सांग जैसी ही संवेदना इस सांग की भी है। इस सांग की शुरूआत का चौबोला देखा जा सकता है। जिसमें कवि सांग का परिचय देता है -

अमृतसर पंजाब म्हं हुए अहमद खां पठाण।
नूरां दे घर नार थी हुई कम्मो सुता जवान।
हुई कम्मो सुता जवान, सज्जनों वा बाबल घरां कँवारी थी।
अहमद खां गए गुजर, हुई नूरां नै चिंता भारी थी।
नूरां नै चिंता भारी थी, ये सच्चा हाल सुणाया था।
अहमद खां और लक्खी सेठ का गाढ़ा प्रेम बताया था।
गाढ़ा प्रेम बताया था, नूरा मन म्हं शरमाती थी।
निकाह करो कम्मों का पड़ोसण, न्यूं कह-कह कै जाती थी।[24]

रामकिशन ब्यास के सांग अक्सर चौबोला से प्रारंभ होते है। चौबोला में वे अपने दर्शकों को कथा से जोड़ लेते थे। चौबोला के बाद वे वार्ता प्रारंभ करते थे। यह उनका अपना ढंग था। इस सांग में अंतर्धर्म विवाह, आर्थिक विषमता, भारत पाक विभाजन जनित ईर्ष्या-द्वेष, रिश्तों की लंपटता आदि सब कुछ दिखाने का प्रयास किया गया है।

इनका ‘रूपकला जादूखोरी’ सांग भी विवाह के समय एक लड़की के विषय में दुष्प्रचार के कारण उसकी जिंदगी पर पड़ने वाले असर को दिखाया गया है। यह सांग स्त्री प्रधान सांग है। यह सांग रूपकला, चत्रसुजान, चंपावती और प्रेमवती के आसपास घूमता है। प्रेमवती अपने पुत्र चत्रसुजान का विवाह रूपकला से तोड़कर चंपावती से कर देती है। रूपकला उसे कोढ़ी हो जाने का श्राप देती है। एक बाबा के कहने से चत्रसुजान रूपकला को लेने जाता है तो चंपावती का ईर्ष्यादाह देखा जा सकता है। वह चत्रसुजान को कहती है -

रूपकला नै मतना ल्याइए मेरा कहा ले मान पिया।
शोकण का दुख देख्या ज्या नहीं मैं खो दयूंगी जान पिया।
शोकण हो सै बुरी चून की सोच समझ कर ख्याल पिया।
घर म्हं बाजैं जूत हमेशा बकै जमाना गाल पिया।

दुनिया हवा उड़ावै पावै सदा आत्मा काल पिया।
सुन्नी सेज तेरे बिन भटकूं कर जावण की टाल पिया।
फेरों ऊपर वचन भरे वही सच्ची राख जुबान पिया।[25]

सांग के अंत में सुखद भरत वाक्य कुछ इस प्रकार है।

रूपकला ली साथ म्हं, घर आग्या चत्रसुजान।
कुष्ठ सास का हटा दिया, करवा कै अस्नान।[26]

'धर्म जीत' सांग भी एक स्त्री के त्याग और पति के प्रति समर्पण भाव तथा सत्य और आदर्श की कथा का सांग है। धर्म और जीत का विवाद होता है। परंतु आकस्मिक घटी घटना के कारण उन दोनों को भाई-बहन की तरह रहने के लिए विवश होना पड़ता है। धर्म की वंश वृद्धि की चिंता करती हुई जीत अपनी बहन विजय का विवाह उससे करवा देती है। घर आकर धर्म विजय से जीत वाला ही बहन का संबंध बना लेता है और एक ही घर में विवाह के बावजूद वे भाई-बहनों के समान सहने लग जाते हैं। उन्हें दिखाकर कृष्ण अर्जुन का सबसे बड़ा भक्त होते हुए घमंड तोड़ता है।

रामकिशन ब्यास ने लंबे समय तक सांग किए। उनका देहांत 2 अगस्त 2003 में हुआ। लगभग साठ साल तक उन्होंने लोकनाट्य परंपरा को कृतकृत्य किया। इन्होंने अपनी वृद्धावस्था का चित्रण कुछ इन शब्दों में किया है-

मस्त जवानी हुई दिवानी मनै छोड़कै चली गई।
हाथ पैर गोड्डे थकगे मेरी कमर तोड़ कै चली गई।[27]

लोकनाट्यकार रामकिशन ब्यास सामाजिक मसलों को अपने सांग में लेकर आते थे। उन्होंने जार-कर्म को समाज व घर के लिए घातक बताया है। सांग 'हीरामल जमाल' में जब हीरामल जमाल के चंगुल में बुरी तरह फँस जाता है। तो हीरामल व उसकी पत्नी सुशीला की बातें होती है। हीरामल स्पष्टीकरण देता है तथा सुशीला जार-कर्म की बुराई बताती है -

सुशीला : परनारी हो बुरी जगत म्हं गात बचाणा चाहिए।
हीरामल : मेरे जिगर के टुकड़े नै मत सेठाणी बिसराहिए।
सुशीला : त्रिया खातर नारद नै मुख बांदर का करवाया।
हीरामल : नारद जी का ध्यान डिग्या तो ना दुनिया म्हं पाया।

सुशीला : जो तनै ऐसी करणी थी तो क्यूं मनै ब्याह कै ल्याया।
हीरामल : खेल्लो, खाओ रहो मौज सै घर म्हं काफी धन-माया।
सुशीला : उसके धौरे जाओ तो मनै म्हारे घरां खदाइए।
हीरामल : कौण-सा तनै हराम्बै, सै तू बेशक चाल्ली जाइए।[28]

इन संवादों में हीरामल का जार संस्कार अपनी पत्नी का भी ख्याल नहीं करता। रामकिशन ब्यास की लोकप्रियता का अनुमान इस प्रकार भी लगाया जा सकता है कि उन्होंने बिना किसी संगीतमय पारिवारिक पृष्ठभूमि के माँगेराम, चंद्रलाल बादी, पं. सुल्तान सिंह, राय धनपत सिंह जैसे दिग्गज सागियों के बीच अपना मुकाम खड़ा किया।

कवि लिल्ला मीर -

लिल्ला मीर का जन्म सन् 1938 में शामली जिला में कैराना के पास ग्राम गंगेरू में हुआ। इनके पिता का नाम अब्दुल हकीम तथा माँ का नाम शीदो उर्फ रसीदन था।

लिल्ला मीर के गुरु थाना भवन, जिला शामली, उत्तर प्रदेश के बशीर अहमद थे। कवि लिल्ला मीर ने अपनी अनेक रागनियों की चौथी कली में स्वाभाविक रूप से अपने गुरु का नाम स्मरण भी किया है। 'धर्म-जीत-विजय' सांग की एक रागनी की चौथी कली में कवि का कथन दर्शनीय है -

गुरु बशीर कह थाना भवन का छन्द मोती से जड़े थे।
वहीं पर पहुँचे जहाँ तीनों मरे पड़े थे।
यह लिल्ले मीर की कविताई है जिसकी जात मिरासी।[29]

इनका देहांत लगभग 73 वर्ष की आयु में 14 अप्रैल, 2011 को हुआ।

कवि लिल्ला मीर ने अपने जीवन काल में दस सांगों की रचना की - 'सत्यवान सावित्री', 'धर्म-जीत-विजय', 'रूप-बसंत भाग-1', 'रूप-बसंत भाग-दो', 'हरिश्चंद्र', 'पूर्णमल भाग-दो', 'कम्मो कैलाश', 'सरवर-नीर', 'राजा भोज और भानमती', 'रांझा-हीर' आदि।[30]

कवि लिल्ला मीर के सांगों की कथाओं की विषय-वस्तु पर जाया जाए तो वे एक बेहद सामाजिक सांगी के रूप में उभरते हैं। उनके सांगों में सामाजिक व्यवहार का यथार्थ मिलता है। माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी और सौतेली माँ और संतान

के कटु यथार्थ उनमें देखने को मिलते हैं। इस दृष्टि से उनका सांग 'रूप-बसंत' भाग एक व दो, 'धर्म-जीत-विजय' तथा 'विजय-कांता' बेहद प्रासंगिक है। 'रूप-बसंत' सांग में कवि का मन बेहद रमा है। यह सांग हमारे परिवारों के बेहद नजदीक का सांग है। इस सांग में मरण-शैया पर लेटी माँ की अपने तरुण बच्चों के प्रति चिंता, एक मौसी का तरुण बालकों पर कहर ढाना तथा पिता का अपनी पत्नी के चंगुल में फँसकर अपने ही पुत्रों से अन्याय एक ऐसी दर्दनाक कहानी बयां होती है कि श्रोता अश्रु बहाते रह जाते हैं।

राजा अपनी दूसरी पत्नी से यह बात भी छिपा लेता है कि उसकी पहली पत्नी से दो संतानें भी थीं। एक दिन रूप-बसंत अपने दोस्तों के साथ खेल रहे थे तो गेंद उछलकर मौसी के महल में जा गिरती है। बसंत उसे लेने जाता है तो मौसी की निगाह उसकी तरुणाई पर पड़ गई। उसका जार-मन उद्दीप्त हो गया। उसने बसंत को पकड़ लिया तथा उसके साथ कुकर्म करना चाहा। बसंत तरुण था और इस प्रकार के व्यवहार से अनभिज्ञ था। वह तो उसे माता ही मानता था। वह उसे उदाहरण देकर स्पष्ट करता है कि उनका संबंध तो माता-पुत्र जैसा ही है। यदि माता-पुत्र के संबंध में जार-कर्म आ जाता है तो फिर कुछ भी बाकी नहीं रह जाता। बसंत का जवाब दर्शनीय है -

पृथ्वी आकाश डोल जा मैया मत ऐसे बोल बोल।
भगवान से डर के बात करो, मत सड़े प्याज नै छोल।
तोल नरजे म्हं ना पाप को मौसी, पता चले मेरे बाप को मौसी।
तुझे नहीं रहने दे रनवास म्हं।
तेरी बदनामी ढोल पिटे इजलास मैं।[31]

इस रागनी में बसंत मदनावत-रोहताश, कौशल्या-राम, कुंती-कर्ण, सुभद्रा-अभिमन्यु, यशोदा-कृष्ण आदि के अनेक उदाहरण देकर बताता है कि मेरा और आपका भी वैसा ही संबंध है। परंतु वह मानती नहीं और परिवार कलह का अखाड़ा बन जाता है।

लिल्ला मीर इस दृष्टि से एक व्यावहारिक और सुखद समता संस्कृति के सांगी थे। वे ऊँच-नीच, अमीर-गरीब, हिन्दू-मुस्लिम तथा जातिवाद की भावना से बाहर निकले सांगी थे। उनका सांग है - राजा हरिश्चंद्र। इस सांग में जहाँ हरिश्चंद्र अपने प्रण को पूरा करने के लिए ब्राह्मण को अपना राज-पाट सब सौंप देते हैं। वहीं उसका लड़का रोहताश अपने आस-पास के सभी बालकों के साथ बिना भेदभाव के खेलता है। उस समय की रागनी में कवि लिल्ला मीर की परस्पर भ्रातृत्व की भावना का पता

चलता है। रागनी की टेक दर्शनीय है -

बच्चो सब हो जाओ कट्ठे, मत करो आपस म्हं ठट्ठे।
कभी होने लगे लड़ाई, आओ मिलके खेलें भाई।
आओ मिलके खेलें भाई।।[32]

'राजा हरिश्चंद्र' की कथा को लेकर अनेक सांगियों ने सांगों की रचना की है। यह सांग इस क्षेत्र में विशेष लोकप्रिय है। कथा वही है परंतु रागनियाँ व प्रस्तुतीकरण सांगी का अपना है। संभवतः इस अवसर की रागनी किसी भी कवि ने नहीं रची, जब सांग में रोहताश अपने मित्रों के साथ खेलता है। पहली दो कलियाँ दर्शनीय है, जिनमें कवि अमीर-गरीब को मिलकर एक साथ रहने की सलाह देता है। एकता, सहयोग, मैत्री का भी कवि संदेश देता है -

अमीर हो चाहे गरीब हो, हम मिलके एक रहेंगे।
हम सबका भगवान एक, हम दिल के एक रहेंगे।
बच्चों की तो माया एक, यह बड़ों ने बात बताई।
खेल शुरू होने वाला सब बच्चो बजाओ ताली।
जो लग जाए चोट किसी के, मतना देना गाली।
कदम बढ़ाओ बड़े प्रेम से देखें लोग लुगाई।[33]

लिल्ला मीर का 'कम्मो-कैलाश' सांग सांप्रदायिक सद्भाव व भारत-पाक विभाजन की विभीषिका का जीता-जागता उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह सांग राय धनपत सिंह निंदाना के सांग 'लीलो-चमन' की याद दिला देता है। उसकी भी कथा कुछ ऐसी ही है। 'लीलो-चमन' का प्रेम परवान चढ़ता है तो भारत-पाक बँटवारा हो जाता है। इधर कम्मो-कैलाश का प्रेम परवान चढ़ता है तो भी भारत-पाक बँटवारा हो जाता है। चमन भी लीलो को पाकिस्तान जाकर लाता है और कैलाश भी कम्मो को पाकिस्तान से ही जाकर लाता है। 'लीलो-चमन' सांग के प्रारंभ में चमन का परिवार आर्थिक तंगियों का शिकार होता है तथा 'कम्मो-कैलाश' सांग में कम्मो का परिवार। विभाजन प्रेमियों के लिए कहर की तरह आया। इस सांग में कवि ने भारत-पाक विभाजन के बाद बनने वाली स्थितियों के वास्तविक चित्र रागनी के माध्यम से खींचे हैं। कवि लिल्ला मीर भारत-पाक विभाजन के समय नौ वर्ष के थे और उन्होंने इस त्रासदी को अपनी आँखों से देखा व महसूस किया था। 'कम्मो-कैलाश' सांग की एक रागनी की टेक व कली दर्शनीय है -

पंजाब म्हं अमृतसर तक हिन्दुस्तान हो गया।
सरहद से परे भाई पाकिस्तान हो गया।।

ऐसी हुई लड़ाई, के भाई ने मारा भाई को।
अपने-अपने बच्चों की खबर रही ना भाई को।
कोई जान बचाकर भाग गया, झट छोड़ कै लुगाई को।
कोई मर गया कोई बच गया, किसी का कुटुम्ब बिरान हो गया।[34]

भारत-पाक विभाजन की ऐसी सच्ची अभिव्यक्ति लोक साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। जनता को अचानक पता चलता है भारत पाक की विभाजन रेखा यह बनेगी तो भगदड़ मच गई। लोगों को अपना होश भी नहीं रहा। जो पहले भाई-भाई की तरह रहते थे, अब एक दूसरे के जानी दुश्मन बनकर मारने-काटने लगे। अपनी पत्नी तक को त्यागकर लोग अपनी जान बचाने के लिए इधर-उधर भाग गए। न जाने कितने ही लोग मारे गए। अगली कलियों में विदीर्ण दृश्य स्पष्ट है -

चारों ढब से मारधाड़ का शोर होता आ रहा।
कोई भूख म्हं, कोई प्यास म्हं, पड़ा बिलबिला रहा।
लाशों के ऊपर को हाय सरकारी मोटर जा रहा।
मुसलमान हिन्दू हिन्दू मुसलमान हो गया।
जिसके टुट्टी छान थी, उनके महल अटारी होग्ये।
जोणसे दाना माँगा करे थे, आज वो व्यापारी होग्ये।
जिनके माया भरी पड़ी थी, दर-दर के भिखारी होग्ये।
अमीर गरीब, कंगाल भी धनवान हो गया।[35]

चारों ओर मारकाट का दृश्य था। लोग भूखे मर व बिलबिला रहे थे। अपनी जान बचाने के लिए लोग नए-नए तरीके खोज रहे थे। कुछ लोगों को इसका आर्थिक लाभ भी पहुँचा। निर्धन धनी हो गए तथा धनी कंगाल हो गए। कम्मो की माँ नूरादे भी कम्मो को यहीं छोड़कर पाकिस्तान चली गई। इस अफरा-तफरी में कम्मो ने कैलाश के पास आकर शरण ली -

जान बचा के नूरा भागी, तरह मछली की लोच गई।
लाहौर शहर म्हं जाकर के, अपने दिल म्हं सोच गई।
लिल्ला मीर कह कम्मो भी कैलाश धोरै पहोंच गई।
किसी को माया मिली, किसी का नुकसान हो गया।[36]

कवि लिल्ला मीर युगबोध के विश्वसनीय कवि हैं। उनके सांगों और फुटकर रागनियों में उनका समय साफ दिखाई देता है। वे सुखद समाज के प्रस्तावक सांगी हैं।

बलराज सिंह भाटी -

बलराज सिंह भाटी का जाम 1 जनवरी सन् 1932 को गाँव लुहारली (वर्तमान गौतम बुद्ध नगर जिला) उत्तर प्रदेश में हुआ। इनके पिता का नाम हरगुलाल व माता का नाम जियोदेवी था। इन्होंने दसवीं तक की शिक्षा प्राप्त की थी। इनके दादा का नाम वजीर सिंह था। इन्होंने रामस्वरूप को अपना गुरु बनाया। रामस्वरूप लुहारली से ही थे। ये कवि नहीं थे। बलराज भाटी गूजर समाज से थे। इनकी पत्नी का नाम चतरो देवी था। ''आपने रागिनी गायन और लेखन में पर्याप्त ख्याति अर्जित की है।''[37]

इन्होंने एक दर्जन से अधिक लोकनाट्यों का सृजन किया- 'पूरनमल नूनादे', 'मोरध्वज', 'गऊहरण', 'अजीत सिंह राजबाला', 'निहालदे परवाना', 'धुरू भगत, 'कृष्ण फैसला', 'गोपीचंद', 'सरवर नीर', 'पूरनमल सुन्द्रादे', 'सत्यवान सावित्री', 'कीचक वध', 'हकीकत राय', 'निहालदे सती', 'हरिश्चंद्र', 'कृष्णभात', 'भारत की ललकार' आदि। 'बलराज का गुच्छा', 'बलराज की धूम' तथा 'बदलती दुनिया' आदि गुच्छों में इनकी फुटकर (मुक्तक) रचनाएँ प्रकाशित होती थीं। इन्होंने अपने गुरु के विषय में बताया है -

ओउम नाम रटते रहो ओउम जगत का मूल।
जब तक घट म्हं प्राण है ओउम नाम मत भूल।
बाबुल भेजे बणज को गए डगरिया भूल।
ऐसी नगरी जा बसै जहाँ ब्याज मिला ना मूल।
परम पिता परमात्मा तेरे रूप अनूप।
स्वर्ग बीच बासा करे मेरे सतगुरु रामस्वरूप।[38]

गुरु रामस्वरूप के देहांत के बाद भी वे उन्हें अपना गुरु मानते रहे। अपने हर लोकनाट्य के प्रारंभ में वे ईश्वर और अपने गुरु का स्मरण करना नहीं भूलते।

बलराज सिंह भाटी की मंडली घड़वा-बैजू पर गाती-बजाती थी। कौरवी लोकनाट्य में घड़वे बैजू का प्रचलन बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में शुरू हो गया था। जो रागनी कंपीटिशन में पर्याप्त मात्रा में प्रयोग हुआ। सांगी पहले भी पक्के साज पर सांग करते थे तथा बाद में भी। विशुद्ध सांगी घड़वे को त्याज्य मानते रहे। 'अजीत सिंह राजबाला' लोकनाट्य में कवि बलराज सिंह भाटी ने एक रागनी की चौथी कली में स्वीकारा है -

संवत् दो हजार बीस गए सतगुरु स्वर्ग सिधार।
फागुन शुदी त्रोदशी लागी दिन था मंगलवार।

संसार की तज मोह माया, बस ध्यान हरि नै लाया।
रे गाया छंद भारी बलराज, साज म्हारा मटके वाला।[39]

कौरवी क्षेत्र में एक समय मटके का साज अत्यधिक लोकप्रिय भी हुआ। इसका अपना एक श्रोतावर्ग है। प्रकाश भाटी उनके प्रिय शिष्यों में से एक थे जो बहुत सुरीला गाते थे। स्वयं बलराज भाटी उनके गायन के दीवाने थे। उन्होंने अनेक बार अपने शिष्य प्रकाश का नाम भी रागनी की चौथी कली में लिया है -

गुरु रामसरूप मेरे आदत भोली भाली।
नित नए नए छंद धरे बलराज सिंह हाली।
प्रकाश तेरी बोली जाय कालजा चीर।[40]

प्रकाश भाटी, ओमप्रकाश जाटव, दयाराम शर्मा, रिछपाल, महीपाल, जगमाल, आदि इनके प्रिय शिष्य हुए।

बलराज सिंह भाटी की एक विशेषता और थी, वे अक्सर लोकनाट्य की कथा प्रारंभ करने से पहले ईश्वर और अपने गुरु का नाम लेने के बाद एक भेंट गाते थे, जो प्रायः सामाजिक उपदेश या शिक्षाप्रद होती थी। 'सांगीत गोपीचंद' में कवि ने 'मद्य निषेध' पर रागनी सृजित की है -

भारत के नर छोड़ दियो पीनी और पिलानी।
सबसे ज्यादा होय बुरी ये मदिरा नाश निशानी।
लाखों कै घर खाक बने इस बोतल के पानी म्हं।
जो पीने लगे हुए ना उभरे जिंदगानी म्हं।
इस यमराज की नानी भाई भरी अनेकों हानी।[41]

'सांगीत सरवर-नीर' में लोकनाट्य के मंचन से पूर्व की रागनी में कवि ने नैतिकता का पाठ पढ़ाया है कि किस प्रकार अलग-अलग समय में जार-कर्मियों ने परत्रिया की सोहबत में धोखा खाया है। रागनी की टेक ओर प्रथम कली दर्शनीय है -

परत्रिया हो बुरी जगत म्हं कह दूं कोरा कोरी।
धोके मत आ जाइयो खाल देख के गोरी।
हूर मेनका पर विश्वामित्र ने ध्याना डिगाया।
उद्यालक ने भी त्रिया कारण ध्यान भजन सै ठाया।
नारद ने त्रिया कारण मुँह बंदर का बनवाया।

बाली ने भी परत्रिया कारण अपना गात खपाया।
रावण का हुआ नाश जानकी ले ली चोरा चोरी।[42]

'सांगीत सरवर-नीर' लोकनाट्य में एक सौदागर रानी अमली को अपने जहाने में जबरदस्ती बिठाकर ले जाता है और अंत में उस सौदागर को फांसी की सजा होती है। बलरामसिंह भाटी लोक में पर्याप्त लोकप्रिय थे। इनका देहांत 6 मई 2021 को हुआ।

पंडित देबीदत्त -

पंडित देवीदत्त का जन्म विक्रमी संवत् 1985 (सन् 1928) में गाँव बुपनिया, जिला बहादुरगढ़, हरियाणा में हुआ। उन्होंने अपनी एक रागनी की कली में लिखा है -

थाना और तहसील बहादुरगढ़, झज्जर लगै जिला सै।
नूणा माजरा छोड़ उतर लिए डाबोदा गाँव कलाँ सै।
बादली एक रोड़ मिलै, न कोए मोड़ मिलै।
जड़ै बसै बुपनिया गाम।[43]

इनके ताऊ पंडित बालमुकुंद एक लोकनाट्यकार थे। वे गीत रागनी गाया करते थे और हारमोनियम बजाया करते थे। बचपन में पंडित देवीदत्त को अपने ताऊ का सान्निध्य मिला। ये एक कुशल कार चालक रहे। इन्होंने दिल्ली में बिड़ला मिल में कार चालक के रूप में काम किया। फिर हरियाणा के पूर्व मुख्यमंत्री भगवत दयाल शर्मा, 21 भारत के प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई 21के निजी कार चालक के रूप में भी रहे। इन्होंने कला के क्षेत्र में अपने ही गाँव के पंडित गोपीराम को अपना गुरु धारण किया। ये पं. लखमीचंद से भी प्रभावित रहे।

इनका रचनाकाल 1980 ई. के बाद का रहा। सन् 1980 ई. के बाद गाँव में रहकर पंडित देवीदत्त ने अपनी रचनाएँ भी रची हैं। इनकी लगभग सौ रचनाएँ उपलब्ध हैं, जिसमें एक पूरा लोकनाट्य 'हरनंदी का भात', बीस से अधिक ऐसी रागनियाँ जो विभिन्न किस्सों से संबद्ध है तथा पचास से अधिक ऐसी रचनाएँ हैं जो मुक्तक की श्रेणी में आती हैं। फुटकर (मुक्तक) रचनाओं के माध्यम से लोककवि ने जनसाधारण को नीति, भक्ति, वैराग्य आदि के उपेदश दिए हैं।[44] हरनंदी का भात लोकनाट्य एक कृपण सेठ का हास्यपद लोकनाट्य है। लोकनाट्य के प्रारंभ में एक सेठ नरसी कंजूस करोड़पति था तथा दान के लिए तरह-तरह के

बहाने बनाता है। एक विप्र उन्हें सबक सिखाता है तथा बाद में नरसी एक भक्त के रूप में विख्यात हो जाता है। उसकी पुत्री हरनंदी का भात स्वयं श्रीकृष्ण आकर भरते हैं। कुछ इस प्रकार की कथा है। इस सांग में कवि ने हरियाणा के लोक के स्वभाव के बारे में लिखा है -

> न्यूं तै छोहरे हरियाणे म्हं आपस के मांह गावै भी सै।
> जित फेटै आदर तै बोलै चरणां शीश झुकावै भी सै।।
> कुछ बिन गुरु के चेले जो लख्मीचंद बणना चाहूवै भी सै।
> पर वेदां के उदाहरण दे के हम इस महाकवि के से जोड़ कित सै।
> घर की पूंजी पास नहीं तै माणस तेरी मरोड़ कित सै।
> सुर सरगम लयदारी म्हं ब्राह्मण के सै तोड़ कित सै।
> ईब कित तै ल्यावां इस सुरीले गले नै।
> वे पानी गए मुलतान एक बै उनकै।[45]

हरनंदी का भात के अतिरिक्त इन्होंने 'कृष्ण जन्म', 'कृष्ण सुदामा', 'गोपीचंद', 'चापसिंह', 'चीर-पर्व', 'पिंगला-भरथरी', 'पूरण भक्त, मीराबाई', 'राजा हरिश्चंद्र', 'रामायण', 'शाही लक्कड़हारा', 'सेठ ताराचंद' आदि लोकनाट्यों की भी कुछ-कुछ रागनियाँ लिखीं। इन्होंने अपनी स्वयं की मौलिक कथाओं पर लोकनाट्यों की रचना नहीं की। दिनांक 25 दिसम्बर 2012 को इनका देहांत हो गया। इन्होंने लोकनाट्यों का मंचन नहीं किया।

गुरशरण दास -

गुरुशरण दास का जन्म 1 मार्च 1939 को उत्तरभारत के ग्राम बैरंगपुर उर्फ नई बस्ती गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश) में एक सामान्य वैष्णव (ब्राह्मण) परिवार में हुआ।[46] इन्होंने किसी गुरु से दीक्षा नहीं ली अपितु ये तुलसीदास को अपना गुरु मानते रहे। इनके पिता का नाम मनीराम वैष्णव तथा माता का नाम कीर्ति देवी था। इन्होंने अनेक लोकनाट्यों की रचना की - 'महाराणा प्रताप', 'रूप बसंत', 'गोपीचंद', 'सती मोह सांगीत', 'हकीकत राय', 'भगत पूर्णमल नूनादे', 'सांगीत सरवर-नीर', 'सांगीत कीचक वध', 'अमरसिंह राठौड़', 'श्री सुदामा चरित्र', 'राजा मोरध्वज', 'अजीतसिंह राजबाला', 'सेठ ताराचंद', 'नौटंकी' आदि। इन्होंने महाभारत में अनेक काव्यांशों पर भी लोकनाट्यों की रचना की, यथा- 'आदिपर्व', 'सभापर्व', 'द्रोणपर्व', 'कर्ण पर्व', 'शल्य पर्व', 'गदा एवं दुर्योधन पर्व', 'सौप्तिक पर्व', 'अनुशासन पर्व', 'शांतिपर्व', 'अश्वमेध पर्व', 'आत्मवाणिक पर्व', 'मूसल पर्व', 'महायथानिक पर्व',

'स्वर्गारोहण पर्व' आदि। इनके अतिरिक्त इन्होंने अनेक समसामयिक विषयों पर भी फुटकर रागनियों की रचना भी की है।

इनका महाराणा प्रताप लोकनाट्य एक मौलिक लोकनाट्य है, जिसके प्रारंभ में वे लिखते हैं -

असत्यता, अकर्मता, अशिष्टता, विलासिता।
अदूरता, अशूर मध्य, मूर्ख निवासिता।
कुवागिता, कुरागिता, कुमंत्रणा, कुशाशिता।
कुमित्र से विनाश होत वेद यो ही भाषिता।[47]

उन्होंने महाराणा प्रताप के लोकनाट्य में मुख्य रूप से हल्दीघाटी की लड़ाई पर केन्द्रित किया है। गुरशरण दास के काव्य में भाव और भाषा का अद्भुत समन्वय है। गुरशरण दास ने ऐतिहासिक सांस्कृतिक तथा समाज नीति विषयक काव्य का प्रणयन किया है। आपने मात्र रागिनी और भजन ही नहीं लिखे, अपितु सांस्कृतिक हिन्दी भाषा में दोहा, चौपाई छंदों का भी प्रणयन किया है।[48] 9 सितम्बर 2012 को इनका देहांत हो गया।[49]

सेवाराम बखेता -

लोकरंग सांग विधा में रचे-बसे सेवाराम बखेता जी का जन्म 27 जून, 1930 में रोहतक जिले के बखेता गाँव में पिता प्रीतू और माता नंदो देवी के घर जोगी जाति में हुआ।[50] सेवाराम के परिवार में लालूनाथ पहले ज्ञात कलाकार हुए जो सारंगी-वादक थे। उनके पुत्र पीरूनाथ भी सारंगी बजाते थे। पीरूनाथ के गुरु किशनलाल भाट थे। इसी वंश में आगे चलकर सेवाराम हुए। स्कूली शिक्षा छठी तक हुई और उसके बाद उन्होंने गायन का पेशा अपना लिया। गायन का वातावरण परिवार में पहले से ही प्रचलित था। इनके बड़े भाई रामचंद्र भी पेटी-मास्टर (हारमोनियम वादक) थे।

इन्होंने मनाना निवासी हुकमचंद को अपना गुरु बनाया। हुकम चंद जी 'हुकमी खूंडा' के नाम से प्रसिद्ध थे तथा लख्मीचंद के समकालीन थे। सेवाराम दीपचंद की प्रणाली से हैं और इसका उन्हें गर्व है कि वे दीपचंद, हरदेवा, भरतचंद और हुकमचंद की शिष्य परंपरा में सांग विधा को समृद्ध कर रहे हैं। 'शकुंतला दुष्यंत' सांग में वे लिखते हैं -

दीपचन्द, हरदेवा कहगे आज की मिसाल नहीं कहती।
दादा भरतचन्द का कहणा सै बणा कै हाल नहीं कहती।

गुरु हुक्मचन्द तै बूझ झूठ घड़ कै फिलहाल नहीं कहती।
मेरी सेवाराम गवाही दे मैं गन्दे ढाल नहीं कहती।
या कण्व की भेंट स्वीकार करो मुनियां की पीड़ हरण आळे।[50]

सेवाराम जी ने सन 1956 तक अपने गुरु हुकमचंद के बेड़े में काम किया। वहाँ उन्होंने बड़े रकाने का अभिनय किया। परंतु सृजनशीलता एवं नेतृत्व क्षमता ने उन्हें 1956 में अपनी अलग सांग-मंडली बनाने को प्रोत्साहित किया और कुछ शिष्यों को लेकर वे स्वतंत्र रूप से सांग करने लग गए। 1956 से 1990 तक लगभग 34-35 साल उन्होंने अबाध रूप से सांग किए।

सेवाराम बखेता ने सन् 1944 में पं. लख्मीचंद के मंच से रागणी गायन किया था। वे खुद बताते हैं कि उनकी सांग-पार्टी गऊशाला पानीपत में सांग करने के लिए गई हुई थी। वहाँ पं. लख्मीचंद के सांग हो रहे थे। लखमीचंद 'हरिश्चंद्र' का सांग कर रहे थे। दृश्य उस समय का था जब हरिश्चंद्र वरणा नदी पर पानी भरने गया हुआ था। उधर से उसकी पत्नी मदनावत भी आई हुई थी। कृशकाय होने के कारण हरिश्चंद्र मदनावत को घड़ा उठवाने का आग्रह करता है। अचानक लख्मीचंद ने हुक्मचंद को आगे की रागणी गाने का प्रस्ताव रखा। हुक्मचंद ने अपने शिष्य सेवाराम को आदेश दिया। सेवाराम ने मोर्चा संभालते हुए मंच पर आकर अपने गुरु हुक्मचंद की रागणी 'वरणा पै बाट भतेरी देख ली।' सुनाई। सेवाराम के गाने का अंदाज देखकर लख्मीचंद बहुत खुश हुए और अपनी जेब से 5 रुपये निकालकर पुरस्कार स्वरूप सेवाराम को दिए। लख्मीचंद ने हुक्मचंद को कहा था - 'तुम्हारा यह चेला तुम्हारा नाम रोशन करेगा।' वर्तमान में सेवाराम जी 88 वर्ष पार कर चुके हैं। ये बातें सुनाते हुए उनके चेहरे पर अजब स्वाभिमान की रौनक छा जाती है। इस समय वे हरियाणा में एकमात्र ऐसे सांगी हैं जिसने पं. लख्मीचंद के मंच पर गाया था और उनसे शाबासी ली थी।

'बहम' का सांग सेवाराम बखेता जी का प्रतिनिधि सांग है। इस सांग से ही उनकी प्रसिद्धि हुई। एक पुरुष के जार-कर्म और स्त्री के त्याग व बलिदान पर आधारित यह सांग हरियाणा में बहुत अधिक पसंद किया गया। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'बीजा-सोरठ', 'दुष्यंत शकुन्तला', 'नल-दमयंती भाग 1', 'नल-दमयंती भाग 2', 'सेठ ताराचंद भाग 1', 'सेठ ताराचंद भाग 2', 'छबीली भठियारी', 'नेताजी सुभाष चंद्र बोस', 'सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र', 'सोमवती चापसिंह' सांग भी लिखे और मंचित किए।[52]

सांगी सेवाराम ने अपने सांगों में रागनी के बोलों में अपने दर्शकों को एक खुशहाल परिवार की सीख दी है। खुशहाल परिवार में दो बातें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं - 'पति-पत्नी का विश्वास और जार-कर्म से दूरी' यदि इन दो बातों का गृहस्थी में ध्यान रखा जाए तो घर खुशहाल होगा। 'शकुंतला-दुष्यंत' सांग में जब दुष्यंत अपने भाई पुष्कर से जुए में सब कुछ हार जाता है तो उसकी पत्नी शकुंतला उसका साथ देती है और जंगल में उसके साथ चल देती है। यह मना भी करता है परंतु वह पति-पत्नी के एकनिष्ठ संबंध को याद दिलाती है और कहती है कि पत्नी पति की मुसीबतों की दवाई होती है। पत्नी साथ है तो सभी मुसीबतें हल्की हो जाती हैं। मुसीबतें बँट जाती हैं। रागनी की कली दर्शनीय है -

समय के अनुकूल तनै इस बन म्हं भी आराम द्यूंगी।
किसै रूख की जड़ के सहारै लेट मैं तकिए का काम द्यूंगी।
अज्ञानी रूपी टोटे द्यूंगी पिया ज्ञान रूपी दान द्यूंगी।
कोए अनुचित कर्म करैगा तै पिया करते नै थाम द्यूंगी।
बीर दवाई बनकै काटै मर्द की बीमारी नै।।[53]

पत्नी अपने पति को गलत काम करते हुए रोक भी लेती है। वह उसकी वैचारिक सहायक बन कर भी उभरती है। कवि सेवाराम का कहना है कि जो व्यक्ति घर में पत्नी तथा दूसरे सदस्यों की इज्जत करता हो उसे बाहर भी इज्जत मिलती है। चौधर का ढंग घर से बनता है और जिस घर में फूट हो उस घर को नष्ट होते देर नहीं लगती। जिस घर में स्त्री और पुरुष नैतिक आचरण के हैं और एक दूसरे के साथ न्याय करते हुए लोकतांत्रिक तरीके से प्रस्तुत होते हैं तथा परस्पर भावनाओं को समझते हैं, वही घर बसते हैं। 'शकुंतला-दुष्यंत' सांग में कवि का उपदेश दर्शनीय है -

जिसकी घरां कद्र हो बाहर भी इज्जत चौधर का गेड़ा हुया करै।
जिस घर मैं होज्या फूट-फुटम का जल्दी नमटेड़ा हुया करै।
जड़ै जती-सती न्यां-भ्या कोन्या वो उजड़ खेड़ा हुया करै।
जड़ै पति सती की करै बुराई डुब्बण का बेड़ा हुया करै।
तनै हाथ पकड़ कै ताह दी इसा डिठोरे आळा होग्या।।[54]

कवि ने स्त्री-पुरुष संबंध में नैतिकता का समर्थन किया है। 'बीजा सोरठ' सांग में सोरठ ने पतिव्रता स्त्री को जारदृष्टि से देखने वाले पुरुष के बारे में कहा है कि ऐसा व्यक्ति निश्चित रूप से अपना अहित ही करवाता है -

केहरी केश भुजंग मन पतिभरता का गात।
सूरा शस्त्र कृपाण धन ये मरै लगांदे हाथ।।[55]

इस रागणी की बाकी चारों कलियों में उन्होंने जारों की दुर्गतियों के उदाहरण दिए हैं। 'राजा हरिश्चंद्र' सांग में हरिश्चंद्र अपनी पत्नी को सांग की अंतिम रागणी में कहता है कि परधन और परत्रिया की ओर सपने में भी नहीं देखूंगा। यह कली कौरवी क्षेत्र में एक सांगी द्वारा अपने दर्शकों श्रोताओं को ईमानदारी और नैतिकता की सीख देती है -

परधन और परतिरिया की ढब सुपनैं म्हं भी नहीं लखाऊँ।
धर्म छोड़ कै धन ना खाता ना सत्कारण प्रण गंवाऊँ।
बेटे बिन ना जाऊँ सुरग के द्वार मैं।।[56]

'बहम' सांग में सेवाराम जी ने वेश्या के चंगुल में फँसे एक पढ़ने वाले किशोर युवक की दुर्दशा दिखाकर समाज को एक संदेश दिया है कि परिवार में पति-पत्नी के अतिरिक्त कहीं और संबंध मनुष्य को समाप्त कर डालता है। समाज में जार या जारिणी प्रताड़ित करने योग्य ही होते हैं। 'नल-दमयंती' सांग में हंसों के माध्यम से सेवाराम जी ने यही बात कही है -

करोंत कुहाड़ा कुड़ आदमी मिले नै पाड़ण खातर।
नसे बीसे और जुवा झगड़ा बसै उजाड़ण खातर।
चोर जार कामी कुकर्मी ये चारों ताड़ण खातर।
मिला दें सुई सुहागा सुगड़ बुर्यां का नक्शा झाड़ण खातर
राखैगा जिन्दगी भर याद भूप तेरा ईसा गमीणा करज्यां।।[57]

'सेठ ताराचंद' सांग में ताराचंद अपने पुत्र को मंशा सेठ के यहाँ गिरवी रखते समय उसे कुछ उपदेश देते हैं। और विशेष रूप से नैतिकता की बात समझाते हैं। सेठ ताराचंद जार-कर्म को 'मलिन' कर्म की संज्ञा देता है -

परधन और परतिरिया नैं चाहूवै ये काम मलीन कहे जा सैं।
सच्चे मित्र का साथ छोड़ दे वह बुद्धिहीन कहे जा सैं।
बेटा, सेवक और स्त्री ये निर्धन तीन कहे जा सैं।
काम क्रोध अतिलोभ ये तीनों दुख के दीन कहे जा सैं।
महिमा घटी समुन्द्र की जिब रावण बसे बराबर मैं।[58]

कवि ने छद्मी मित्रों से दूर रहने की सलाह अपने कृतित्व में दी है। ऐसे छद्मी

मित्र वैसे तो बहुत आकर्षक और सच्चा हितैषी दिखने की कोशिश करते हैं परंतु उनका मन छल-कपट से भरा होता है। मौका मिलते ही वे अपना स्वार्थ सिद्ध कर जाते हैं -

बदमाश फिरैं काफी प्यारे किसे जेब काटणियां।
तुरंत पूरा करा करे मन गरीब का नाटणियां।
थारी साथ पकड़ा जागा डाटणियां जो और ठहराणा चाहो।[59]

सांगी सेवाराम बखेता ने परिश्रम को ही व्यक्ति की सबसे बड़ी दौलत माना है। जो व्यक्ति परिश्रम करता है उसके लिए तरक्की के सारे रास्ते खुले होते हैं। 'बहम' सांग में उसका यही दर्शन साकार हुआ है। जो आदमी खुभात करता है तो उसकी खुभात का फल उसे हर हाल में मिलता है। यह उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन में भी महसूस कर लिया है।

सेवा राम रटा कर हर, कोन्या किसै बात का डर।
मत कर कसर खुभात म्हं मिलै काम करम का मेल।
रागनी दूर तक जा ली।।[60]

सांगी सेवाराम को अपने जीवन काल में ही अपने परिश्रम के परिणाम मिलने लगे थे। 'रागनी दूर तक जा ली' एक कवि की सर्वव्यापी स्वीकार्यता को दर्शाता है।

सांगी सेवाराम एक सामाजिक एवं व्यावहारिक कवि के रूप में निकल कर सामने आते हैं। वह समाज में प्रचलित व्यवहार को अपने सांगों को का विषय बनाते हैं तथा कुछ सूक्तियाँ भी समाज में प्रचलित करते हैं। वे समाज को ईमानदारी, नैतिकता, सच्चाई और विश्वास का पाठ पढ़ाते है।

महाशय दीवान सिंह सिंघवा -

महाशय दीवान सिंह सिंघवा का जन्म शिशुराम एवं माता रेशमा देवी के घर दिनांक 7 अप्रैल 1934 को चमार जाति में गाँव सिंघवा राघो, जिला हिसार, हरियाणा में हुआ।[61] बालक दीवान सिंह को पढ़ने-लिखने का शौक था, परंतु परिस्थितिवश पढ़ नहीं पाए और पालियों के साथ भैंस आदि के चराने के काम में पारंगत हो गए। गीत-संगीत का इन्हें बचपन से ही शौक था। कुछ पैसे इकट्ठे करके हारमोनियम ले आये। खुद गाना बजाना सीखा। दिन में भैंस चराना व रात को हारमोनियम पर गाने का अभ्यास करना इनकी दिनचर्या हो गई। इस प्रकार वे आस-पास में गायन के लिये प्रसिद्ध होने लगे। उनके गीत-संगीत को लेकर आस-पास चर्चा होने लगी।

एक बार वे रामरा के मेले में गए हुए थे। वहाँ अनेक सांगी-भजनी आये हुए थे। इस मेले में नारनौंद वासी कवि चौ. जगत सिंह भी गए हुए थे। वे पर्याप्त ख्याति प्राप्त कवि थे। दीवान सिंह ने भी उनका नाम सुना हुआ था। चौ. जगत सिंह ने उन्हें कोई भजन सुनाने के लिये कहा तो वे खड़े हो गए और मधुर आवाज़ में महाशय दीवान सिंह ने कई भजन सुना दिए। चौ. जगत सिंह उनकी आवाज़ में अपने भजन सुनकर गद्‌गद् हो गए। दीवान सिंह ने उन्हें अपना शिष्य बना लेने का अनुनय किया तो चौ. जगत सिंह ने उन्हें अपने हृदय से लगा लिया और उन्हें शिष्यत्व की गरिमा प्रदान की।

श्री दीवान सिंह जी एक स्वस्थ शरीर के व्यक्ति थे। सन् 2010 में इन्हें कैंसर चिह्नित किया गया और 9 दिसंबर को 2010 को इनका लंबी बीमारी से देहांत हो गया।[62]

इन्होंने 22 लोकनाट्यों की रचना की - ‘पिंगला-भरथरी’, ‘पृथ्वीसिंह-किरणमई’, ‘अंजना-पवन’, ‘शाही लकड़हारा’, ‘जैमल-फत्ता’, ‘अजीत सिंह-राजबाला’, ‘सत्यवादी हरिश्चन्द्र’, ‘नल-दमयंती’, ‘राजा अंब’, ‘सरदार ऊधम सिंह’, ‘ध्रुव भगत’, ‘कृष्ण-सुदामा’, ‘सत्यवान-सावित्री’, ‘रूपकला जादूखोरी’, ‘धर्मपाल-शांताकुमारी’, ‘कंवल देवी-कंवल फूल’, ‘शकुंतला-दुष्यंत’, ‘राजा भोज-अकल कौर’, ‘रामसिंह-सुरसती’, ‘किस्सा रामायण’, ‘रामलाल-रत्नादे सेठानी’, ‘जगदेव-बीरमती’ आदि।[63]

इन बाईस सांगों के अतिरिक्त उन्होंने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं हैं, जिनमें उन्होंने अपने समय की विसंगतियों का यथार्थ वर्णन भी किया है।

कवि दीवान सिंह सिंघवा के सांगों की खास बात यह है कि वे सांगों को बिल्कुल लौकिक कथा बनाकर प्रस्तुत करते हैं। लोक अधिकांशतः त्रस्त, पीड़ित और आर्थिक अभावों का अभ्यस्त होता है। कवि के सांगों की कथा में जहाँ कहीं भी आर्थिक अभाव की बात आती है, वहाँ वे अभाव के विश्वसनीय एवं प्रामाणिक चित्र खींचने में कामयाब हुए हैं।

कवि ने अनेक फुटकर रागनियों से भी इस पारिवारिक नैतिकता के प्रश्न को मुखरता के साथ उठाया है। एक व्यक्ति की खुशहाल जिंदगी के लिए कवि दीवान सिंह की शिक्षा दर्शनीय है -

जुआ चोरी और जामनी इनके नेड़े ना आइये।
नार पराई चुगली चर्चा बिलकुल ना करणी चाहिये।
नशा विषा भी काम का कोन्या अपणे मुँह कै मत लाइये।
फेर कोई नहीं रोकण आळा चाहे कौणसी गली चाल्या जाइये।

कहै दीवान सिंह सोना ना बिगड़े लोहा बण्या जरण की खातिर।[64]

कवि दीवान सिंह जुआ, चोरी, जामनी, चुगली, नशा, विषय-वासना के साथ पराई नार से बचकर रहने का संदेश देते हैं, जो व्यक्ति की नैतिक उन्नति के लिए बहुत ही आवश्यक है। जो व्यक्ति को विशुद्ध रूप से पारिवारिक बनाती है।

कवि सुल्तान सिंह शास्त्री -

कवि सुलतान सिंह शास्त्री का जन्म पिता श्री चन्दूलाल एवं माता भुल्लां देवी के घर गाँव फरमाणा, जिला सोनीपत में 5 अप्रैल, 1917 को हुआ।[65] ये डूम जाति से थे। इन्होंने चार जमात हिन्दी व उर्दू मा. मातुराम जिन्दल के पास से पढ़ी। चौथी कक्षा पास करने के बाद (संगीत कला) ग्रहण करने के लिए सन् 1935 में वे सिसाना चले गए। उस समय हरियाणा के नामी सांगी बाजे भगत का बड़ा नाम था और अंग्रेज़ों का जमाना था। उसके पास संगीत कला की शिक्षा ली। उन्होंने अपनी एक रागणी में स्वयं बताया है कि 1935 में वे श्री बाजे भगत की शरण में गए और उनका शिष्यत्व ग्रहण किया -

सन् 1935 में मिलै परमोशन।
बाजे भगत गुरु दुनिया म्हं रोशन।
सुल्तान सिंह करो गाकर गाना।।[66]

सन् 1935 से 1936 तक जो कुछ भी स्व. बाजे भगत ने गाया। वो उनके बताए बगैर सब कुछ याद हो गया। उस जमाने में चमोला, छोटा देश, बड्डा देश, राधेश्याम, पैड़ा, छन्द, लावणी, बहर-तबील, काफिया, सवैया, दोहा, झूलना, चौपाई ये सब गुरु बाजे भगत जी गाया करते।

हालांकि कवि सुल्तान सिंह का श्री बाजे भगत से बहुत कम समय तक संपर्क रहा, 1935 में वे अपने गुरु बाजे भगत की शरण में गए और 1936 में उनका देहांत हो गया। सुल्तान सिंह छज्जू की प्रणाली के लोक कवि है। छज्जू के शिष्य दीपचंद, दीपचंद के शिष्य हरदेवा, हरदेवा के शिष्य बाजे भगत और बाजे भगत के शिष्य सुल्तान सिंह। इस प्रणाली की हरियाणा के लोक साहित्य में धूम रही। सुल्तान सिंह ने इस प्रणाली में स्वयं को अंतिम शिष्य माना है -

पहलम तै खाण्डै म्हं दीपचन्द नै चिणी पाठशाला।
गऊशाला और क्षेत्र खोले, धर्म की अणी पाठशाला।
हरदेवा, भरतू, खीमा, कुतबी, बनगी घणी पाठशाला।

बाजे के चेले सुलतान सिंह की, फरमाणै बणी पाठशाला।
संगीत कला की दे शिक्षा, सोनीपत फरमाणा गाम लिखा।[67]

कवि सुल्तान सिंह अपने गुरु के प्रति पूरी तरह से आश्वस्त हैं। वह उनके गुरुत्व को देखकर ही उनके प्रति श्रद्धावनत हैं। उनके गुरु के समक्ष इस दुनिया में किसी की कविताई उन्हें रुचती नहीं। सुल्तान सिंह शास्त्री ने 26 लोकनाट्यों की रचना की - 'महाराजा बाप्पाराव अर्पणा भाग 1, भाग 2, भाग 3', 'सिद्ध गोरखनाथ का जन्म', 'राजा नल-दमयंती भाग 1, भाग 2', 'सांग एक गऊ व ब्राह्मण', 'चंद्रावती-कृष्णदत्त', 'हीर-रांझा', 'रुक्मणि मंगल', 'गुग्गा पीर भाग 1, भाग 2', 'भगवान परशराम', 'स्वतंत्रता सेनानी रणबीर सिंह हुड्डा', 'सैन भगत', 'महाबली सतपाल' आदि। इनके अतिरिक्त उन्होंने 'गोपीचंद', 'चंद्रकिरण', 'आदिपर्व महाभारत', 'भगत पूर्णमल', 'कृष्णजन्म', 'दुष्यंत-शकुंतला', 'मीरांबाई', 'ज्यानी चोर', 'हीरामल जमाल', 'महाराजा सूरजमल' आदि किस्सों की भी कुछ-कुछ रागणियाँ लिखी हैं। उन्होंने अनेक फुटकर (मुक्तक) रागणियाँ भी लिखी हैं।

कवि छापकटैया गायकों को 'नुगरे' की गाली से संबोधित करता है। कवि सुल्तान सिंह छापकटैया को चोर, जार, नीच, लफंगे, पापी, नुगरा और जूठन खाने वाला कहता है -

चोर, जार, ठग, नीच, लफंगे, सुलतान इसा नै कह्या करैं।
सबतै पापी नुगरा हो सै, वो बेतरणी म्हं बहा करैं।
कली छाप काट कै गाणी हो पिया।
या झूठ पराई खाणी हो पिया।[68]

किसी की रागणी को किसी दूसरे की छाप से गाना या अपनी छाप से गाना एक प्रकार से किसी का दिया हुआ जूठा भोजन खाना है।

कवि सुल्तान सिंह शास्त्री ने विद्या को मनुष्य के लिए सबसे जरूरी मानते हुए पढ़ने पर जोर दिया है। माता-पिता का अपनी संतान के प्रति सबसे पहला फर्ज यही होता है कि वे उसे शिक्षित बनाने में सहयोग करें, योगदान दें। शिक्षा ही संसार में हर व्यक्ति का सगा साथी है -

विद्या का पढ़ाणा पहला, फर्ज बाप का हो।
विद्या पढ़णे से पता मनुष्य नै, पुन पाप का हो।
विद्या पढ़ने से दुनियां म्हं, कल्याण आपका हो।

ये विद्या है ब्रह्म बूटी, नाश तीन ताप का हो।
बिन विद्या मानस का साथी, कोए और नहीं सै।[69]

कवि सुल्तान सिंह शास्त्री एक विशुद्ध सामाजिक कवि के रूप में उभर कर सामने आते हैं। वह एक बेहतर समाज चाहते हैं, जिसमें जात-पात, ऊँच-नीच, जार, जुआ ना हो। 'हीर रांझा' सांग में रांझा मालिन के समक्ष अपने चरित्र के बारे में बताता है और जिसका निष्कर्ष निकलता है कि व्यक्ति को चोरी, जुआ और पराई स्त्री से बच कर रहना चाहिए। झूठ बोलना, किसी की बुराई करना व्यक्ति के अवगुण हैं। व्यक्ति को निर्भीक होकर अपनी कही बात पर अडिग रहना चाहिए और ईश्वर को अपने साथ समझना चाहिए। कवि के शब्दों में -

चोरी जुआ जामनी, ना बहू-बेटी पै बुरी नीत धरूँ।
झूठ बोलना, निन्दा करना, इन बाताँ तै घणा डरूँ।
शेर, साँप, छत्री का कायदा, दुश्मन तै कदे नहीं घिरूँ।
सिर जाओ, चाहे धड़ जाओ, कह कै उल्टा नहीं फिरूँ।
भक्ति करूँ पाँच टेम सुबह-शाम मालिन छह रुत महीने बारा।।[70]

कवि शील स्वभाव और नैतिकता को परिवार के लिए श्रेष्ठ गुण मानते हैं। गृहस्थ व्यक्ति घर आने वालों का मन से विनयपूर्वक सत्कार करते हैं। 'हीर-रांझा' सांग में कवि कहता है -

जो आए का आदर करते, चलते शीश निवावै।
कह सुल्तान इसे बन्दां तै, ईश्वर फेर मिलावै।
मर्दां की गर्दां नै तै यो, सारा जगत सराहवै।
भागवान की पाँत भली, न्यूं दुनियां कहती आवै।
पटमल कैसे पाजी का, ना अच्छा सरहज सिरहाणा।[71]

'नल-दमयंती' सांग में जब राजा नल जुए से अपने भाई पुष्कर से अपना सब कुछ हार जाता है और वह जंगल-जंगल खाक छानते फिरते हैं तो उन्हें अपने बेटा-बेटी का ख्याल आता है। वह उन्हें जंगलों में भटकता देखकर आहत होकर उन्हें उनके मामा-मामी के पास भेजने का निर्णय लेते हैं। उस समय नल उन्हें परिवार के संबंधों के बारे में बताता हुआ क्या कहता है -

माँ का जाया भाई कहै भुजा हुआ करै बाहमी।
अपने भाई की देख रेख म्हं, मतना करिये खामी।
दुश्मन नै भी अपना कर ले, सब तै बड़ी मुलामी।

अपने नाना नानी की मत, नज़र उठाइयों साहमी।
पहाड़ किसे थारे मामा-मामी, थारा दरजा राई का।[72]

कवि का कहना है कि सगा भाई अपनी बाईं भुजा के बराबर होता है।

एक स्त्री को अपने जीवन-काल में अनेक परीक्षाओं से गुजरना पड़ता है 'गूगा पीर' सांग में भी कवि ने पति-पत्नी संबंध की एकनिष्ठता पर प्रकाश डाला है। लोक में प्रचलित पतिव्रता शब्द एकनिष्ठता का ही लोक रूप है -

जो कहरा सै जरूर करैगा, कोन्या फर्क रती का।
बालम का दुख बँटवावै, यो हो सै धर्म सती का।
प्रण निभावै अपने पति का, जो अक्लमंद स्याणी।[73]

अंग्रेज भारतीय समाज में पहले से व्याप्त धर्म, जाति, संप्रदाय की भिन्नता का लाभ उठा कर लंबे समय तक भारत को गुलाम बनाए रखने के मंसूबे बाँधने लगे थे। भारतीयों की समझ में भी यह बात आ गई थी और वे अपनी तमाम प्रकार की विषमता को भुला रहे थे। कवि ने इसका चित्रण निम्न रूप में किया है -

ओ ब्रिटिश अन्याई, हो ली बहुत समाई।
हम हिन्दू, मुस्लिम और सिक्ख ईसाई।
भारत माता के वीर सिपाही।
करैंगे लड़ाई भर कै, चाव उमंग म्हं।[74]

कवि हिंदू और मुसलमानों को दो भाई कहता है। इनकी फूट का लाभ उठा कर ही अंग्रेजों ने लंबे समय तक भारत में शासन किया।

अमीर-गरीब की खाई इतनी बढ़ गई थी कि देश के अधिकांश संसाधन थोड़े से लोगों के हाथ में आ गए थे तथा बहुसंख्यक जनता मूलभूत अधिकारों से भी वंचित हो गई -

गरीबों को ना मिलै खाण नै, तुम घी अग्नि म्हं फूँक रहे।
महाराजा कुछ हौंस करो, क्यूं भूल भ्रम के बीच बहे।
ऐसी बात बता कै, किसनै बुद्धि हड़ ली थारी।[75]

17 नवंबर, 2018 को इनका देहांत हो गया।

श्यामलाल सौरम उर्फ काच्चा श्याम -

श्यामलाल (काच्चा श्याम) सौरम का जन्म सन् 1938 में गाँव सौरम जिला

मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश में पिता बारूमल के घर हुआ था।[76] श्यामलाल सौरम कुम्हार जाति से थे।

उन्होंने राय धनपत सिंह को अपना गुरु बनाकर उनके सांग बेड़े में तेरह वर्ष तक रहे तथा 1969 में उन्होंने अपना बेड़ा बाँध लिया था। यानी वे सन् 1956 में अठारह वर्ष की उम्र में राय धनपत निंदाना के सांग-बेड़े में एक जनाना कलाकार के रूप में शामिल हुए थे। इन तेरह वर्षों में वे पूरे हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में अपनी अभिनय कला के माध्यम से काच्चा श्याम के रूप में छा गए थे। कौरवी क्षेत्र में 'काच्चा' शब्द अत्यधिक सुंदर व कमसिन व्यक्ति के लिए किया जाता है।

श्यामलाल सौरम सांग विधा में रचे-बसे कलाकार थे। 11 नवंबर सन् 2021 में 83 वर्ष की आयु में उनका देहांत हुआ।[77]

रागनी की एक कली में कवि ने अपनी गुरु-परंपरा का भी उल्लेख किया है जो सेढ़ू से शुरू होती है। कवि अपनी गुरु परंपरा से जुड़कर कृतकृत्य महसूस करता है। कवि श्यामलाल लिखते हैं -

सेढ़ू लक्ष्मण गोपाल जी सब आगे देने दर्शन।
शंकर, मंगल, जमनादास रंग देख कै होंगे प्रसन्न।
गुरु धनपतसिंह शिष्य धर्मपाल प्रकाश लगे जब हर्षन।
काच्चे श्याम सबसे चाहै मिलना लगे मन-मन म्हं तरसन।
सुगरों की सतगुरु सब दाते आये करते रखवाली।[78]

जमुवा मीर कवि के दादा गुरु हैं। जो जमना दास के नाम से भी बाद में जाने गए।

उन्होंने तीन सांग ही लिखे - 'सत्यवान-सावित्री', 'अजीतसिंह-राजबाला' व 'कृष्णा देवी'। 'कृष्णा देवी' उनका मौलिक सांग है।

कवि श्यामलाल ने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं। हमारे जवान दूध-दही पर पलने वाले जवान हैं। जो भी हमारी सीमाओं पर बुरी नज़र से देखता है, हमारे जवान उसकी छाती तोड़ने की हिम्मत रखते हैं। वे मर जाते हैं परन्तु पीछे कदम नहीं हटाते। कवि का अपने जवानों के प्रति गर्व दर्शनीय है -

पहले नंबर देश हमारा दूध दही की नदी बहै।
अच्छा अन्न सम्वत् अच्छे हो मर्द गाबरू यही रहै।
दुश्मन की छाती नै तोड़ैं बीर मर्द सब यही कहै।
दुश्मन म्हारे आगै ढहै ना पिच्छे कदम हमारा।।[79]

‘अजीतसिंह-राजबाला’ सांग में कवि ने अजीतसिंह और सेठ के व्यवहार में यह दिखाने का प्रयास किया है कि गरीब व्यक्ति आदमी तो है ही। अमीर का उसके प्रति व्यवहार मनुष्य के नाते होना चाहिए। सभी व्यक्तियों में मानवोचित गर्वानुभूति का भाव होता ही है। अजीतसिंह राजबाला का पति है किन्तु परिस्थितिवश उसे एक सेठ की दुकान पर काम करना पड़ गया। एक दिन वह थोड़ा बिलंब से आता है तो सेठ उसे अपना निकृष्ट नौकर मानकर उसको गाली देता है तथा अपमान करता है। इस पर अजीत सिंह के भीतर का स्वाभिमानी मनुष्य जाग जाता है और वह सेठ को चेतावनी देता है -

हद तै बाहर बात हो ली इब बस म्हं कर ले गात।
मनै ऊँच-नीच कहिये मतना और सह लूंगा सब बात।।
मैं इब भी कमाऊं शाम को खा लूं मने कैसा गुरूर।
जो हुक्म करोगे प्यार तै मैं हाजिर रहूँ हूजूर।
ल्यूं खरी नौकरी काम लो, अच्छा ना टलूं काम तै दूर।
जो मैं करूँ सामना आपका क्यों करो मनै मजबूर।
कैक टके की रहै सेठ जी जो करूँ आप पर हाथ।[80]

कवि श्यामलाल सांग और कवित्व में रचे-बसे कलाकार थे। उन्होंने अपने कवित्व में इस बात पर ध्यान रखा है कि किसी धर्म, जाति, वर्ण व संप्रदाय को किसी भी प्रकार की ठेस ना लगे। बल्कि वे सब मिलकर अपने सच्चरित्र से भारतीय समाज को मजबूत बनाने का प्रयास करते रहें। उन्होंने सांग की एक समर्थ परंपरा में सांग का प्रशिक्षण ग्रहण किया था। सांगी धनपत सिंह निंदाना अपने शिष्यों के माध्यम से एक ब्रांड के रूप में जाने जाने लगे थे और श्यामलाल भी अपने गुरु भाइयों की संगत में इस क्षेत्र में कृतकृत्य हो रहे थे।

पं. जगदीश चंद्र वत्स -

पं. जगदीश चंद्र वत्स का जन्म 6 जून 1916 को पिता पं. लखीराम एवं माता भूरो देवी के घर गाँव कुराणा जिला पानीपत में हुआ।[81] इनके जन्म के लगभग 17 वर्ष बाद इनका परिवार गाँव ऐंचरा जिला जींद में आकर बस गया। इनकी प्राथमिक शिक्षा गाँव कुराणा और आठवीं तक की शिक्षा इनकी बुआ कांति के घर गाँव बल्लाँ (करनाल) में हुई। मात्र ग्यारह वर्ष की आयु में (1927) इनका विवाह गाँव जौरासी जिला पानीपत के पं. रविदत्त शर्मा की पुत्री मेवादेवी से हुआ। इनके गुरु का नाम रतिराम शर्मा था।

ये ताउम्र कृषि-कार्यों में ही संलग्न रहे। और लोकनाट्यों की रचना करते रहे। इन्होंने लोकनाट्यों का कभी मंचन नहीं किया। गाँव के सरपंच बने, ब्लॉक समिति के सदस्य बने। इनके लोकनाट्यों के नाम हैं - 'श्री कृष्ण जन्म', 'विद्याधर भारवि', 'पवन कुमार अंजना', 'महाराजा अंब-रानी अम्बली', 'चंद्रहास-विषया', 'श्रवण भक्त', 'लवकुश कांड', 'चंद्रगुप्त शहजादी हेलन', 'चंचल बाई-राजसिंह', 'धर्मपाल शांताकुमारी', 'वीर हकीकत राय', 'बीरमती जगदेव', 'चंद्रप्रभा-मदनसेन', 'सत्यवान-सावित्री', 'भर्तृहरि-पिंगला', 'शुक्राचार्य कच देवयानी', 'देवयानी शर्मिष्ठा', 'ययाति देवयानी शर्मिष्ठा', 'श्री राजीव गाँधी हत्याकांड', 'ध्रुव भक्त', 'राजा हरिश्चंद्र', 'विश्वामित्र हूर' मेनका, 'शंकुतला-दुष्यंत', 'नल-दमयंती', 'धेनु माँग', 'कौरव-पांडव', 'गुरु द्रोण कथा', 'अनुग्रह पर्व', 'जातूग्रह पर्व', 'हिडिंबा वध पर्व', 'वक्रवध पर्व', 'द्रोपदी स्वयंवर', 'द्रोपदी चीर हरण', 'पांडवों को कौरवों द्वारा षडयंत्रकारी निमंत्रण', 'द्यूत पर्व', 'पांडव प्रवेश पर्व', 'कीचक वध पर्व', 'गौहरण पर्व', 'नरसी भक्त', 'चापसिंह सोमवती', 'अजीत सिंह राजबाला', 'प्रेमवती विजयपाल', 'सुंदरबाई बीरसिंह', 'चंद्रदेव सुशीला', 'मदनरेखा', 'उदयभान शशिकला' और 'राधाकृष्ण' आदि।[82]

इन्होंने महाभारत की छोटी-छोटी उपकथाओं को लेकर अनेक स्वतंत्र लोकनाट्यों की रचना की है। उनकी एक आनंदी दर्शनीय है -

ज्ञान बढ़ै गुणवान की संगत, ध्यान बढ़ै तपस्वी संग लिन्है।
क्रोध बढ़ै नर मूढ़ की संगत, लोभ बढ़ै धन म्हं चित्त दिन्है।
मोह बढ़ै परिवार की संगत, काम बढ़ै नारी संग किन्है।
बुद्धि विवेक विचार बढ़ै, कवि विद्वान सज्जन शिक्षा लिन्है।[83]

पं जगदीश चंद्र वत्स की भक्ति भावना भी अद्वितीय थी। वे सच्चे आस्तिक थे। अपने आराध्य के प्रति जो श्रद्धा और निष्ठा उनमें थी, वह निष्काम भक्ति की श्रेणी में आती है। वे भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति में पूर्ण रूप से रम चुके थे। उनकी भक्तिपरक रचनाओं का भण्डार इस बात का प्रमाण है।

पं. जगदीशचंद्र वत्स के लोकनाट्य बहुत ही सहज तरीके आगे बढ़ते हैं। वे सामाजिक मसलों को छूते हुए आगे बढ़ते हैं। 'पवन कुमार अंजना' सांग में जब अंजना के पिता को पवन कुमार अपनी बेटी अंजना के लिए उपयुक्त वर लगता है तो वह महेन्द्रपुर में राजा महेन्द्र के पास पवन कुमार के रिश्ते की सहमति का पत्र

भेज देता है। पवन कुमार को जब इस बात का पता चलता है तो वह अपने मंत्री से स्त्रियों के बारे में क्या कहता है -

उस घर देवता वास करै, जहाँ चातर नेक लुगाई।
फूहड़ और कलिहारी नारी, ला दे कुल कै स्याही।
माया छाया नेक लुगाई, मौड बताई घर का।
टोटा खोटा नार कुलच्छणी, ओड़ बताई घर का।
नाश मिन्ट म्हं कर बिटौड़ा, ठोड़ बताई घर का।
जिसकै हो कलिहारी नारी, तोड़ बताई घर का।
इसी बीर तै राम बचावै, दे जिनै लोग बुराई।[84]

पवन कुमार अपने विवाह से पहले ही अपनी होने वाली पत्नी से मिलने उसके राज्य में चला जाता है। वहीं से उसे जो गलतफहमी होती है, उससे अंजना का भविष्य चौपट हो जाता है और वह पूरा जीवन घोर तंगियों में रहती है।

कवि का 'महाराजा अंब महारानी अंबली' सांग भी अत्यधिक मार्मिक सांग है। इस सांग में जारकर्मी सौदागर अंबली को जबरदस्ती अपने जहाज में बिठाकर ले जाता है तो अंबली उससे परस्त्री के चक्कर में फँसे हुए लोगों की दुर्गतियाँ गिनवाती है -

परतिरिया के जो मोह म्हं घिरगे।
इन्द्र, शशि ऋषि, विपदा भरगे।
बाली, रावण, कीचक मरगे।
आशकी की चास, आबरू का नाश।
मौत को बुलावै मत पापी।[85]

इस सांग के अंत में उस सौदागर को फाँसी की सजा दी जाती है। समाज में जार-कर्मी का यही हाल होता है। जगदीश चंद्र वत्स की एक खास बात है कि वे अपने लोकनाट्य की शुरुआत सवैया से करते हैं। यह सवैया एक तरह से लोकनाट्य की भूमिका होता है जिसमें वत्स जी कथा का परिचय दे देते हैं। लोकनाट्य का 'सवैया' देखा जा सकता है -

रूपनगर एक शहर कभी विक्रमसिंह की राजधानी थी।
चंचल कुमारी पुत्री घर पै पढ़ी लिखी हुई स्याणी थी।
उसी समय म्हं देहली तख्त पै औरंगजेब हुक्मरान हुआ।

हिन्दू धर्म और रजपूतों का जानी दुश्मन आन हुआ।
देहली से एक चली बितारण रूपनगर चलकै आई।
तरह-तरह की तस्वीरें वो साथ बेचने को ल्याई।
फिरती-फिरती विक्रम सिंह के पहुँच महल म्हं जाती है।
फोटू ले लो फोटू ले लो, यह आवाज़ लगाती है।[86]

इस प्रकार के सवैये से कथा का सहज विकास हो जाता है। इन सवैयों का कवि लोकनाट्य के बीच में भी उपयोग करते हैं।

पं. जगदीश चंद्र वत्स ने पचास से अधिक लोकनाट्यों की सृजना कर कौरवी लोकनाट्य की गरिमा को बढ़ाया। उनकी भाषा बेहद सरल और बोधगम्य है। दोहा, सवैया और रागनी के माध्यम से बीच-बीच में वे 'वार्ता' द्वारा लोकनाट्य का सृजन करते हैं। दिनांक 4 मई, 1997 को इनका 81 वर्ष की आयु में देहांत हो गया।[87]

रामकंवार खालेटिया -

हरियाणा के सुप्रसिद्ध सांगी एवं लोकनाट्यकार रामकंवार खालेटिया का जन्म 6 नवंबर सन् 1930 को पिता रुड़मल शर्मा और माता बसंती देवी के घर गाँव खालेटा, जिला रिवाड़ी, हरियाणा में हुआ।[88] जब ये मात्र दो वर्ष के थे तो इनके पिता रुड़मल शर्मा का देहांत हो गया। इनका पालन-पोषण इनके चाचा रामगोपाल शर्मा के संरक्षण में हुआ। कवि ने अपने गाँव का जिक्र एक कली में किया है -

हरियाणे का मशहूर सांगी सही भरणिया पेटा सै।
थाना खोल तहसील रेवाड़ी बसे गाँव खालेटा सै।
जब से रामकंवार फेटा सै मजा आ रहा सै मुलाकात म्हं।[89]

रामकंवार खालेटिया जी 15 वर्ष तक आर्य समाज का प्रचार करते रहे और उसके बाद इन्होंने अपना सांग-बेड़ा बाँध लिया।

इनका विवाह गाँव हरजीपुर निवासी चिरंजीलाल शर्मा की पुत्री कलादेवी से हुआ, जो बहुत ही सुशील और कर्त्तव्य-भावना से परिपूर्ण महिला थीं। कवि रामकंवार खालेटिया को कोई संतान नहीं हुई। इसका उन्हें बहुत दुख था। यह दुख 'धर्म-जीत' सांग की जीत द्वारा गाई गई एक रागणी की चौथी कली में भी झलकता दिखाई देता है, जब जीत धर्म के समक्ष अपने निस्संतान होने के दर्द को अभिव्यक्त करती है -

जरूरत हो सै हर नर-नार नै।

नहीं तो के फुक्कै गृहस्थ व्यवहार नै।
थी रामकंवार नै भी चाहना।
दिखे पर सुनी नहीं भगवान।[90]

इन्होंने श्री श्योनारायण जी को अपना गुरु बनाया और संगीत तथा सृजन की शिक्षा उन्होंने उनसे प्राप्त की। रामकंवार खालेटिया जी ने अपनी अनेक रागणियों में अपने गुरु का स्मरण भी किया है -

इंच्छापुरी जुग-जुग बसो श्रीगंगा कैसा धाम।
शिवनारायण महाराज को करूँ कोटि-कोटि प्रणाम।[91]

इन्होंने 22 लोकनाट्यों की रचना की - 'शांता-सत्यपाल', 'अजीत सिंह-राजबाला', 'धर्म-जीत', 'अंजना-पवन', 'नल-दमयंती', 'रविरूपा-प्रतिपाल', 'सरवर-नीर', 'सत्यवान-सावित्री', 'पन्ना धाय', 'बाबा पुरुषोत्तम दास', 'इतिहास यादव कुल का', 'पिंगला भरतरी', 'रतनसिंह-किरणमई', 'शकुंतला-दुष्यंत', 'पूर्णमल', 'विराट-पर्व', 'मदनपाल-चिंतामणि', 'ध्रुव जन्म', 'रामसरूपदास की जीवनी', 'प्रह्लाद भगत', 'कृष्ण जन्म' और 'चंद्रहास' आदि।[92] रामकंवार खालेटिया ने अपने जीवन काल में अनेक सांगों तथा समसामयिक विषयों पर अनेक फुटकर रागणियों की रचना भी की।

रामकंवार खालेटिया के कृतित्व पर दृष्टिपात करते हैं तो उन्होंने स्त्री-पुरुष संबंध के महीन तंतुओं को छुआ है। उनके अधिकतर लोकनाट्यों में नैतिकता के प्रश्न दिखाई देते हैं।

लोकनाट्यकार रामकंवार खालेटिया जी के लोकनाट्यों का अध्ययन करते हैं तो आश्चर्य होता है कि वे अपने समय की जरूरतों, विडंबनाओं और विषमताओं से दो-दो हाथ करते नज़र आ रहे हैं। लोकनाट्यकार रामकंवार खालेटिया जी ने मूर्खता के नाश के लिए शिक्षा को ही सबसे बड़ा हथियार माना है। यह हमारी बुद्धि को मांजती है, छाँटती है। कवि का कहना है कि भारत का उद्धार तभी तय है जब भारत के वीर युवा शिक्षित होंगे। हर स्त्री-पुरुष पढ़ा लिखा होगा। जो अपने बच्चों को पढ़ाता नहीं, वह भारी भूल कर रहे हैं और देश को पीछे ले जा रहे हैं -

भारतवासी वीरो भारत का उत्थान करो।
जो कुछ हम बतलाएँ उस पर सब ही ध्यान करो।
साक्षरता म्हं होएँ निपुण ना अनपढ़ हो नर नारी।
जो नहीं पढ़ाते बच्चों को वह भूल कर रहे भारी।
मूर्खता मिट जाए सारी, पढ़ा-लिखा विद्वान करो।।[93]

एक-एक व्यक्ति की शिक्षा का ग्रैंड टोटल देश की विकसित अवस्था में परिणत हो जाता है। कवि ने माना है कि व्यक्ति का सबसे बड़ा सम्मान शिक्षा से ही होता है -

विद्या पढ़ ले बड़ा सम्मान होगा।
मानव जीवन का सारा ही कल्याण होगा।।[94]

एक व्यक्ति का सबसे बड़ा अनमोल खजाना शिक्षा ही है। यह वैयक्तिक है। दूसरी चल-अचल संपत्तियों की तरह इसे कोई बँटवा नहीं सकता।

कवि रामकंवार खालेटिया जी समाज के इस बदलते रूप से परिचित हैं। वे इस गिरती जीवन-शैली से हतप्रभ हैं। वे लोगों के चारित्रिक पतन, दोगले चरित्र और दोहरे मानदंडों से हैरान हैं। लोग बाहर से कुछ और अंदर से कुछ और हैं। कवि लोगों के ऐसे चरित्र को भारत की तरक्की से जोड़कर देखते हैं। असल में लोगों का चरित्र उस देश के उत्थान-पतन में भारी महत्त्व रखता है। कवि की चिंता दर्शनीय है -

बुगले भगत जगत म्हं रह गए घने पेट के काले।
भीतरले म्हं दगा बाहर से दिखे भोले भाले।
मिलकर कर दे घात साथ कहो किसे समझ ले अपना।
पेट कतरनी छुरी हाथ मुख राम नाम का जपना।
स्वार्थ म्हं हो रहे गारत लगी मन म्हं रहै कल्पना।
कैसे पूरा होगा लोगो भारत माँ का सपना।।
किसी नै पड़ रहा था तपना किसी कै बह कपट के नाले।[95]

कवि रामकंवार खालेटिया एक सामाजिक कवि होने के नाते मनुष्य के चरित्र की इस गिरावट से बेहद आहत हैं। सगे भाइयों का भी परस्पर प्रेम नहीं रहा। मानवता किस ओर जा रही है -

देखो कैसा जमाना आया है।
इतबार किसी का नहीं रहा।
बेईमानी दिलों म्हं है छाई, करते हैं अपने मन की चाही।
भाई चाहे माँ का जाया है, पर प्यार किसी का नहीं रहा।[96]

लोग खुदगर्जी में भाईचारा जैसे शब्दों को भूल ही गए हैं।

कवि रामकंवार खालेटिया जी लड़का व लड़की की शादी दहेज की अपेक्षा

उनके गुणों के आधार पर करने को तर्कसंगत मानते हैं। वे दहेज को 'लूट' कहते हैं। वे सादे ब्याह को अधिक महत्त्व देते हैं। कवि का कथन दर्शनीय है -

दहेज प्रथा करो बंद लूटो मत मतना लुटवाओ।
गुण कर्म सुभा मिला कै बच्चों की शादी करवाओ।
साधारणता से लड़की ब्याहो धन मतना दान करो।[97]

कवि की एक दोचश्मी रागनी में पति-पत्नी के संवादों में शराब के दुष्परिणामों पर प्रकाश डाला गया है। रागणी के प्रारंभ में पति अपनी पत्नी की सलाह को हल्के में लेता है परंतु रागनी की चौथी कली तक आते-आते पत्नी की बात से सहमत होता हुआ पत्नी के प्रति कृतज्ञ भाव से भर जाता है। रागनी की टेक दर्शनीय है -

पत्नी : दारू मत ना पीवै साजन बात मान ले मेरी।
पति : मनै छिक कै मज़े उड़ा लण दे क्यूं उल्टी शिक्षा देरी।[98]

पति शराब पीने को मजे उड़ाना मानता है। परंतु इसके दुष्परिणामों से घर उजड़ जाता है।

कवि का मानना है कि अदृश्य भगवानों, देवी-देवताओं में न उलझ कर घर में व्यावहारिक रूप से विद्यमान सभी छोटे बड़ों की आवश्यकताओं की पूर्ति में लगाया गया धन अधिक फलदाई होता है। कवि का तर्क दर्शनीय है -

मत जाओ मथुरा, मत जाओ काशी।
करना गंगा का क्यों अस्नान है।
अपने घर म्हं ही तीरथ महान है।
रगड़ मसल कै सासू-ससुर को न्हुवाओ।
रुचि अनुसार उन को खाना खिलाओ ।
उनका आशीर्वाद जो पाओ।
वही बड़ा वरदान है।[99]

लोकनाट्यकार रामकंवार खालेटिया युगबोध चेतना से पूरी तरह से सराबोर कवि हैं। अपने सांगों और फुटकर रागनियों के माध्यम से अपने दर्शकों का जहाँ वे मनोरंजन करते हैं, वहीं युगीन समस्याओं से भी अवगत कराते हैं। व्यवहारिक दृष्टिकोण से वे उन्हें नफा-नुकसान भी समझाते हैं। प्रत्यक्षतः वे उन्हें निर्देशित करते हैं कि यदि मनुष्य जन्म पाया है तो तर्क आधारित जीवन-शैली के माध्यम से इसे

सरल और सरस बनाया जाए। संसाधनों का उपयोग अपने जीवन को बेहतर बनाने के लिए किया जाए। समय को देखकर कुरीतियों और व्यसनों से बचते हुए समझदारी से काम लिया जाए। कवि कथन दर्शनीय है -

समझदार होशियार वही जो समय देख कर काम करै।
बिना विचारे काम करणिया आदम देह बदनाम करै।
वक्त मुताबिक चलना चाहिए नीति हमें बताती है।
सही रीत हो परतीत उसी से जग म्हं जीत कहाती है।
जीवन म्हं जस मिले खिले यश-कमल समझ म्हं आती है।
जाती है बाजी जीती और दुनिया जीती गाती है।
जिसको यह बात सुहाती है वो संकट दूर तमाम करै।[100]

कवि का मानना है कि मनुष्य जन्म पाकर मनुष्य को इसे सार्थक बनाने का प्रयास करना चाहिए।

माँ-बाप का असली फल उसके बच्चे होते हैं, जिनके कारण उनकी पीढ़ियाँ चलती हैं। संतान की चाह हर गृहस्थ की महती चाह है। 'ध्रुव भगत' सांग में उत्तानपाद और सुनीति को लंबे समय तक संतान नहीं हुई। सुनीति संतान के बिना चिंतित होती है। वैसे भी एक स्त्री का रंगीन संसार उसकी संतान से बनता है। बिना संतान के स्त्री अपेक्षया अधिक आहत महसूस करती है। राज परिवारों में संतान के मायने भावी राजा के भी होते हैं -

पुत्र बिना म्हारे घर म्हं पिया नहीं कोई रुशनाई।
कौन करैगा राज ताज कोई शीश धरणिया नाहीं।
छाई चर्चा शहर देहात नार बुरी हो सै बेऔलादी।[102]

वह अपनी छोटी बहन सुरुचि का विवाह अपने पति के साथ करवाने के लिए अपने माँ-बाप से सलाह मशविरा करती है तो उसका पिता कहता है -

दूजे का दुख मेटणिया भी हो भगवान बराबर।
तेरी चिंता कौण समझ सकै बेटी तेरी बाहण बराबर।
गृहस्थी कै संतान बराबर और कोई मार नहीं सै।[103]

गृहस्थी में पति-पत्नी के लिए एकमात्र साध उनकी संतान होती है। बिना संतान के जीवन में पूर्णता नहीं समझी जाती। सुनीति अपनी छोटी बहन सुरुचि का विवाह अपने पति से करवाती है तथा बाद में सुनीति से भी ध्रुव का जन्म होता है। यह अलग बात है कि सुरुचि ध्रुव से ईर्ष्या करती है।

रामकंवार खालेटिया देश, धर्म, परिस्थिति से जुड़े लोकनाट्यकार थे। उनकी कविता में त्वरित भावाभिव्यक्ति दिखाई देती है। इस दृष्टि से वे कौरवी के एक महत्त्वपूर्ण लोकनाट्यकार साबित होते हैं।

पं. लक्ष्मीचंद वैद्य -

लक्ष्मीचंद वैद्य का नाम सन् 1912 में गाँव सूप जिला बागपत, उत्तर प्रदेश में पिता पं. भरतसिंह शर्मा व माता राघो देवी के घर हुआ।[104] इन्होंने मिडिल परीक्षा पास करके हरिद्वार उत्तराखंड से आयुर्वेदाचार्य की उपाधि प्राप्त की तथा वैद्य का काम करने लगे। इनके बड़े भाई पंडित रघुवीर शरण भी कवि थे। इन्होंने अपने बड़े भाई को ही अपनी सांग विद्या का गुरु बनाया। इन्होंने 1960 तक वैद्य का काम किया। तथा उसके बाद भजन व सांग लिखने प्रारंभ कर दिए। 1970 में इन्होंने अपना बेड़ा बांध लिया तथा सांगों का मंचन करने लगे। इन्होंने लगभग 30 वर्षों तक सांग का मंचन किया। इनके सांगों के नाम हैं - 'वीर हकीकत राय', 'ध्रुव भक्त', 'मां का प्यार', 'गोपीचंद', 'पिंगला भरथरी', 'दुष्यंत शंकुतला', 'अमरसिंह राठौड़', 'सिल्ली रत्न', 'सती मंदालसा', 'सीता स्वयंवर', 'सलोचना सती', 'सोमनाथ प्रभावती', 'दानवीर कर्ण', 'भीष्मपर्व', 'सत्यवान सावित्री' तथा 'चीन की बेशर्मी भारत की गर्मी' आदि। इनका 'माँ का प्यार' लोकनाट्य गनका निषिध के नाम से भी प्रचलित था। 'सोमनाथ प्रभावती', 'सिल्ली रत्न', 'माँ का प्यार', 'सती मंदालसा' आदि इनके कुछ मौलिक लोकनाट्य इन्होंने बनी बनाई कथाओं पर ही सृजित किए। इनका प्रस्तुतीकरण बेहद रोचक होता था। अपने गुरु के विषय में ये 'हकीकत राय' लोकनाट्य की पहली ही रागनी की चौथी कली में लिखते है-

इष्टदेव रघुवीर शरण के, लक्ष्मीचंद नित दास चरण के।
भक्ति की शक्ति का तेरे संत करै उपदेश।[105]

सांग की शुरुआत में लक्ष्मीचंद वैद्य ईश्वर एवं अपने गुरु का नाम लेना परम आवश्यक समझते हैं। यह उनका मंगलाचरण है। 'माँ का प्यार' लोकनाट्य में उन्होंने अपने गुरु रघुवीर शरण की अपेक्षा मानसिंह का भी स्मरण किया है। असल में मानसिंह रघुवीर शरण के गुरु थे। वे जाबली गाँव के थे। एक प्रकार से लक्ष्मीचंद वैद्य के दादा गुरु थे। उदाहरण द्रष्टव्य है-

हे गंगे भागीरथी स्वर्ग मोक्ष की धाम।
मानसिंह गुरुदेव को मेरा बार-बार प्रणाम।

वो वाणी वाणी नहीं जिस मुख म्हं नहीं राम।
उस वाणी को समझिए मरे पशु का चाम।[106]

पं. लक्ष्मीचंद वैद्य मार्मिक प्रसंगों के चित्रकार थे। 'हकीकत राय' लोकनाट्य में जब ग्यारह वर्ष के लड़के हकीकत राय को मुसलमान लड़के झूठे आरोप में फँसाकर सजा दिलवाना चाहते हैं, तो उसकी माँ कोरा सकते में आ जाती है और वह काजी के समाने भिखारन बनकर अपने पुत्र की भीख माँगती है। उस समय की रागनी वात्सल्य और करुण रस से भीगी हुई है जो अपने दर्शकों को भी भाव विह्वल कर देती है। टेक और पहली कली दर्शनीय है -

खुदा के नाम पर माँग रही मैं तो आज तेरे से दान।
बख्श दे रे काजी लाडले के मेरे प्राण।
सोता हुआ लाल कभी खाट से जगाया नहीं।
इसके बिना टुकड़ा मैं अकेली नै खाया नहीं।
एक ही आस मेरे दूसरा कोई जाया नहीं।
औरसे के डर के मारे ठंडे म्हं न्हुवाया नहीं।
माटी के म्हं मतना मिलावै मेरी चंदा बरगी शान।[107]

पं. लक्ष्मीचंद वैद्य के इस सांग की विशेषता है कि उन्होंने हकीकत राय की मृत्यु के बाद भी उसकी पहली पत्नी लक्ष्मी के सती होने, बादशाह द्वारा वास्तविकता जानकर काजी मुल्ला को रावी में डुबोने और अंत में भागमल और कोरा को एक पुत्र और होने तक लोकनाट्य को खींचा है। आमतौर पर दूसरे लोकनाट्यकार हकीकत राय की फाँसी पर ही पूर्ण विराम दे देते हैं।

हकीकत राय की उस समय उम्र ग्यारह वर्ष की थी तो उसकी पत्नी लक्ष्मी तो और भी कम उम्र की थी। उसी उम्र में वह हकीकत राय के साथ चिता में सती हो जाती है। चिता में जिदां बैठते हुए लक्ष्मी की रागनी भी दर्द से परिपूर्ण है। इस रागनी की तीसरी कली है-

बिना पिया के कोई मत रहियो इस दुनिया म्हं केली।
याणी उमर म्हं बहन बीर पै चोट नहीं जा झेली।
सबको मेरी बहन नमस्ते जितनी सखी सहेली।
पिया बिना शमशाण बराबर जग म्हं हाट हवेली।
अब साजन की याद बहन हे मनै भलोवण लागी।[108]

पं. लक्ष्मीचंद वैद्य अपने लोकनाट्यों में संबंधों के बीच के तंतुओं को भी छूते हैं। 'माँ का प्यार' उनका एक ऐसा ही लोकनाट्य है जिसमें उन्होंने एक वेश्या के कुप्रभाव और जार-कर्म के दुष्परिणामों को दर्शाया है। कलकता शहर के सेठ सूर्यभानु का लड़का उदयभानु डबल एम.ए. होने के कारण अपनी ग्रामीण पत्नी ललिता से कुपित होकर एक विश्वकुमारी वेश्या के चंगुल में फँस जाता है। वेश्या उसे लूट बगाती है। इसी रंज में उसका पिता चल बसा। वेश्या के ही कहने से उसने अपनी माँ की निर्मम हत्या कर दी। यह लोकनाट्य अनमेल विवाह जनित परिवेश का भी चित्र खींचता है। एक दोचश्मी रागनी की तीसरी कली दर्शनीय है-

उदय : एक शेर के संग ना गिदड़ी का मेल मिले।
गांव की गुड़िया अपटूडेट से यू कोन्या खेल मिले।
काली कागणी मूरख रे तू हंस की गेल मिले।

ललिता : चकवा चकवी मस्त रहे चंदा की कोर से।
इसी तरह से मगन मोरनी अपने मोर से।
एक बात मैं पुच्छा चाहूं अपणे त्योर से।
और सै प्यारा मेरे से खार जब मेरी नहीं थी लोड़।
मने क्यूं ल्याया पकड़ हाथ म्हं हाथ।[109]

ललिता उसे लाख समझाती है परंतु जार-कर्म की उल्टी राही पर चलकर उसने अपना सारा घर बरबाद कर दिया। पं. लक्ष्मीचंद वैद्य के सभी लोकनाट्यकार महती संदेश से परिपूर्ण हैं।

भारत भूषण सांघीवाल -

भारत भूषण सांघीवाल का जन्म गाँव सांघी, जिला रोहतक हरियाणा में 28 फरवरी 1932 को पिता छोटेलाल विद्यासागर व माता चंद्रकला देवी के घर हुआ।[110] आठ वर्ष की ही आयु में पिता का देहांत हो जाने के कारण इसका संघर्षमयी जीवन प्रारंभ हुआ। सन् 1950 में इन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ से शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की। उसके बाद 'साहित्यरत्न' और 'आयुर्वेदरत्न' की परिक्षाएँ भी उत्तीर्ण कीं। भारतभूषण जी संस्कृत के शिक्षक रहे। इन्होंने संस्कृत व कौरवी लोकभाषा में काव्य-सृजन किया।

इनके लोकनाट्य हैं - 'नरसी भात', 'परशुराम चरित', 'सीताहरण', 'श्रीकृष्ण जन्म कथा', 'कीचक वध', 'धर्मवीर हकीकतराय', 'महाराणा प्रताप',

‘छत्रपति शिवाजी’, ‘बीरबाला चंचलकुमारी’, ‘फूलझड़ी उर्फ ब्रह्मदेई’, ‘स्वामी दयानंद सरस्वती’, ‘महात्मा गाँधी’, ‘जवाहरलाल नेहरू’, ‘सूरजकौर’, चाँदकौर’, ‘झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई’, ‘नेताजी सुभाषचंद्र बोस’, ‘सरदार भगतसिंह’, ‘सरदार उधमसिंह’ आदि। इन्होंने हरियाणवी नाटक एवं एकांकियाँ भी लिखीं, यथा - ‘चमकता सूरज, ‘जय जय हिन्दुस्तान’, ‘विद्या बिन अंधेरा’, ‘दीवे तलै अंधेरा’, ‘थोड़े बच्चे होते अच्छे’, ‘धरती के लाल’ आदि।

इनके लोकनाटयों में स्वाभिकता, स्पष्टवादिता एवं शिक्षक का प्रभामंडल साफ झलकता है। स्पष्टवादिता सांघीवाल के व्यक्तित्व का महत्त्वपूर्ण गुण है। क्रोध और अहंकार से कोसों दूर रहते हुए वे अपनी बातों को स्पष्ट शब्दों में कहते हैं। इन्होंने समाज के घिनौने पक्ष की डटकर निंदा की है। दहेज और मद्यपान के विषय में सृजित इनकी कविताएँ इनके स्पष्टवादी व्यक्तित्व का द्योतक हैं। दो टूक बात करने में उन्हें कोई संकोच नहीं है।

भारत भूषण सांघीवाल लोकनाट्य के प्रारंभ में ईश्वर स्तुति में मंगलाचरण द्वारा उस ईश्वर का स्मरण करते हैं, जिसकी कृपा से उन्हें कवि बनने का अवसर मिला है। ‘नरसी भगत’ लोकनाट्य का मंगलाचरण दर्शनीय है -

ओम नाम सबसे बड़ा, इससे बड़ा ना कोय।
जो इसका सुमरन करै, हिरदा निर्मल होय।
तज दो मन कै मैल नै, लाओ हरि म्हं ध्यान।
कै बेरा इस सांस का, हो अक ना हो आन।
दया-धर्म हिरदे नहीं, रहा नशे म्हं टूल।
मूर्ख अपनी अगत म्हं, क्यूं गाड़ै से सूल।
दान करो खाओ पिओ, सबतै रखो प्यार।
भारत भूषण सै पूरे, बस जीवन का सार।[111]

‘दान करो खाओ पिओ, सबतै राखो प्यार।’ उक्ति में कवि ने एक महती जीवन का सार स्पष्ट कर दिया। यह कवि की समाहार शक्ति है।

कवि भारतभूषण सांघीवाल जी के लोकनाट्यों में उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता स्पष्ट दिखाई देती है। विशेषकर उनकी फुटकर रागनियों में यह प्रतिबद्धता शिद्दत से आई है। उनकी ‘हरियाणवी गीतांजलि’ से उदाहरण द्रष्टव्य है।

भाषा प्रांत जात मजहब के झगड़े सारे मिटा दियो।
माँ जाए सां भाई सारे, भेदभाव सब हटा दियो।

भारत माता की रक्षा म्हं, तन मन और धन लुटा दियो।
बेशक अपना सिर कट्ज्या पर, माँ का सिर ना कटा दियो।[112]

'माँ जाए भाई सां सारे' में उनकी एक भारतीयता की झलक दिखाई देती है। जाति, धर्म, संप्रदाय और भाषा प्रांत आदि के झगड़ों से अलग हर भारतीय को राष्ट्रीय स्तर की चिंतनधारा का विकास करना होगा तभी भारत का कल्याण हो सकता है। उन्होंने एकता का संदेश दिया और कहा कि यदि हम मिलकर रहेंगे तो कोई भी बाहरी शक्ति हमें बाँट नहीं सकती। वे कहते हैं -

राखो एका मिलजुल के रहो, आपस म्हं सारे भाई।
एक माँ के बेटे हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई।
बंध्या भरोटा तोड़ सकै ना, हो कितना ए बलदाई।
न्यारी न्यारी करकै भाई, लाकड़ी जा सै पड़ताई।[113]

'बंध्या भरोटा' उदाहरण अंलकार के माध्यम से कवि भारतभूषण एकता का संदेश देते हैं।

कवि भारत भूषण सांघीवाल ने राष्ट्र चरित नायकों पर कई लोकनाट्य लिखे हैं, यथा - 'महाराणा प्रताप', 'छत्रपति शिवाजी', 'स्वामी दयानंद सरस्वती', 'वीर हकीकत राय', 'नेताजी सुभाषचंद्र बोस', 'महात्मा गाँधी', 'जवाहरलाल नेहरू', 'सरदार भगतसिंह', 'सरदार उधमसिंह'। यह कवि की सुनियोजना का हिस्सा है। देश के महापुरुषों के चरित लोक के बीच लेकर आने का लोकनाट्य एक सशक्त माध्यम है। 'छत्रपति शिवाजी' लोकनाट्य में कवि की उद्भावना देखी जा सकती है -

जबर जोर जुल्म के बादल, भारत माँ पै छाए थे।
भार धरण का तारण खातर, वीर शिवाजी आए थे।
मनमानी मलेच्छ करै थे, मंदिर तोड़ जाते थे।
वेद जला ले चोरी और, जनेऊ काट बगाते थे।
बहू बेटियाँ की इज्जत लूटै, दुष्ट नहीं शरमाते थे।
बेबस हिन्दू जजिया तीर्थकर, से टैक्स चुकाए जाते थे।
गौ ब्राह्मण विद्वान कवि, अर साधु गए सताए थे।[114]

यह 'छत्रपति शिवाजी' लोकनाट्य की पहली ही रागनी है।

'धर्मवीर हकीकत राय' लोकनाट्य में हकीकत धर्म-परिवर्तन की बात नहीं मानता जिसके कारण उसको मरना पड़ता है। कवि का छंद दर्शनीय है -

फिर क्या था वो हँसते-हँसते हकीकत कुर्बान हुआ।
गया स्वर्ग म्हं सीधा, भू पर फैला यश सम्मान हुआ।
उधर महल म्हं शाहजहाँ नै ख्वाब रात को आता है।
जो कुछ हुआ जुल्म दिखाई सपने म्हं दे जाता है।
बादशाह बेगम को जैसे अपना ख्वाब सुनाते हैं।
सुनो पाठको! ज्यों का त्यों हम एक भजन म्हं गाते है।[115]

जिन लोगों ने वीर हकीकत को षडयंत्र के तहत मार डाला, जब बादशाह शाहजहाँ को इस बात का पता चलता है तो वह षडयंत्रकारियों को नाव में बिठाकर नदी में डूबाकर मार देता है। इस प्रकार बादशाह शाहजहाँ हकीकत राय के पिता भागमल व माँ कौरां को न्याय दिलवाते हैं।

इनका 'महाराणा प्रताप' लोकनाट्य भी देश प्रेम, त्याग और दुर्धर्ष जिजीविषा का लोकनाट्य है। इस लोकनाट्य में कवि ने महाराणा प्रताप के माध्यम से देश के लिए आजीवन संघर्ष का संदेश दिया है। हल्दीघाटी के युद्ध में चेतक के प्रसंग का कवि ने सजीव वर्णन किया है-

चेतक अपने स्वामी के कीमती बचा कै प्राण।
धड़ाम दे सी गिर्या सीधा गया स्वर्ग के दरम्यान।
इन्सान से बढ़कर था वो, क्युकर उसने कहै हैवान।
वीर बहादुर देश अर धर्म पै जो हो कुर्बान।
लोककवि भारत भूषण करै उनके गुणगान।
सुण सुण कै नै हरियाणे के भाई बणै पुरुष महान।
या धरण सुरग तै न्यारी मातृभूमि सै सबतै प्यारी।[116]

भारत भूषण सांघीवाल के लोकनाट्यों में उनका शिक्षक का व्यक्तित्व सर्वत्र झलकता है। इन्होंने नशा, साक्षरता, महंगाई, एकता, भ्रूण हत्या, एड्स जानलेवा बीमारी, वोट की कीमत, कारगिल की लड़ाई आदि विषयों पर अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखी हैं।

जीयालाल -

इनका जन्म जीन्द जिले के बुआना गाँव में 5 जून 1946 को हुआ।[117] इनके पिता का नाम चन्दगी राम था जो एक अच्छे ढोलक वादक थे। जीयालाल छह भाई बहन थे और पारिवारिक वातावरण लोक-संगीत से प्रभावित होने के कारण ये सारे

भाई लोकगीत और रागनियाँ बचपन से ही गाते थे।

ये स्कूल में होने वाली बालसभा में रागनियाँ सुनाते थे। वे स्कूली शिक्षा की तरफ कम साँग कला में ज्यादा रुचि रखते थे। इनके पिता चन्दगीराम ने इनकी रुचि सांग कला में देखकर धरौदी निवासी श्यामलाल की शरण में सांग सीखने के लिए भेज दिया। श्री श्यामलाल एक उत्कृष्ट लोकनाट्यकार थे।

जीयालाल ने 'प्रेमकला आज़ाद माली', 'फूल चमेली', 'सोमवती चापसिंह', 'सत्यवान सावित्री', 'शाही लक्कड़हारा' आदि साँग रचे। इसके साथ-साथ अपने गुरु श्यामलाल और दादा गुरु धनपत सिंह के रचे हुए साँगों का भी मंचन किया। इनकी प्रसिद्ध रागनी की चन्द पंक्तियाँ निम्नलिखित है -

बादशाह सुणले अर्ज हमारी मनै बुंदीगढ़ म्हं जाणा
चिट्ठी मुकलावे की आरी।
माता-पिता भाई बन्धु घर म्हं कोन्या याणा स्याणा।
मैं नौकर मजबूर सूं तेरा होगा कहण फगाणा।
दो दिनां की छुट्टी दे-दे मनै लाजमी होगा जाणा।
जब तै चिट्ठी बाँची मेरी तबीयत होगी परेशान।
हाथ जोड़ कै कहरा सूं मेरी बातां मैं धर ले ध्यान।
के बेरा के तै के कर दे त्रिलोकी सच्चा भगवान
मुकलावे की सुण कै होग्या आनंद गात मैं भारी।
बादशाह सुण ले।[118]

जीयालाल की अपने गुरु में पूरी निष्ठा तथा विश्वास था, इसी कारण वे अपने सांग की शुरूआत गुरु-वन्दना से ही प्रारम्भ करते थे -

कर्मगढ़ धरौदी और बीच म्हं खुद बसते हैं आप।
श्री श्यामलाल सतगुरु मिले गुरु समझ चाहे बाप हेजी।[119]

जीयालाल साँगी ईश्वर में पूरी आस्था रखते थे। उनका विश्वास था कि धरती के कण-कण में ईश्वर विद्यमान है। इस बात को वो इस तरह से कहते -

जो सच्चे बन्दे रटणा हर का नाम चाहिए सै।
मनै क्याएं की परवा ना एक भगवान चाहिए सै।[120]

ये अपने साँग में सहज, सरल और आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते थे। इनकी भाषा की ये भी विशेषता थी कि उसको शिक्षित या अशिक्षित दोनों तरह

के लोग समझ सकते थे। उनकी भाषा का वर्णन करने के लिए अग्रलिखित पंक्तियाँ ही काफी है -

मेरे तै सुथरी बाबा इसी कौण लुगाई सै
अपणे मुँह तै बावली क्यूं करै बढ़ाई सै।
मेरा रूप गजब की मार गात का खिंचरा गोला सै।
जिसके तूं ब्याह राखी खाम-खा होर्‌या बोला सै।[121]

जीयालाल सांगी ने अपने साँगों में नारी के सम्पूर्ण रूप-सौन्दर्य का चित्रण बखूबी के साथ किया है। नारी के सौन्दर्य में जीयालाल साँगी ने नारी के सिर से लेकर पाँव तक के रूप का वर्णन किया है। इन्होंने अपने साँगों में स्त्री पोशाक में नर्तकों के रूप में नारी के सौन्दर्य का वर्णन किया है। इसी कारण उनके सांग मंचन पर बहुत से लोग मोहित थे। जैसे -

तेरे माथे ऊपर शहर बोरला, काना म्हं डांडे बाली।
या तो मैं भी जाण गया तेरी दीखे अदा निराली।
तेरी गोल पुतली काली बाबा सै गजब की घूर।
चाँद किसा चेहरा चमकै बहू कसर क्याकी ना सै।
मुँह बटवा-सा आँख कटीली टेढ़ी तेरी अदा सै।
खा सै दो नैना की घूर तनै देख लिया जरूर।।[122]

इस प्रकार जियालाल साँगी ने इन पंक्तियों के माध्यम से नारी की आँखों की सुन्दरता का वर्णन किया है।

उन्होंने अपने साँगों में अलंकारों का अत्यधिक प्रयोग किया है।

जियालाल साँगी ने अपनी काव्य-भाषा में छन्दों का भी बहुविध प्रयोग किया है। चौकलिया, रागनी, बहरेतबील, भैरवी, गजल, कव्वाली, दोहे, ताटंक छन्द के साथ-साथ रसों का भी उल्लेख अपने काव्य साहित्य में प्रयोग देखने को मिलता है। उन्होंने रसों के रूप में शृंगार, करुण, वीर, हास्य रस आदि का स्वरूप उनके साहित्य में देखने को मिलता है।

दिनांक 8 नवम्बर 2004 को दिल का दौरा पड़ने से इनका देहांत हो गया।[126]

चौ. रामशरण अलीपुरा -

चौ. रामशरण का जन्म 08 मार्च 1963 को गाँव अलीपुरा खालसा, तहसील घरौंडा, जिला करनाल में रोड़ जाति में गाँव के किसान चौ. आभेराम के घर हुआ।[127]

पाँच भाई-बहनों में रामशरण अलीपुरा अपने पिता कि सबसे छोटी संतान थे। चौ. रामशरण का स्वर्गवास 18 दिसंबर 2011 को गाँव में ही हुआ। रामशरण अलीपुरा पारिवारिक परिस्थितियों के कारण आठवीं कक्षा तक ही शिक्षित हो पाए। चौदह वर्ष की आयु में स्कूल छोड़ने के बाद खेती का कार्य सौंपे जाने से कवि ने हल चला कर खेती करना प्रारंभ किया। पाठशाला के समय से ही संगीत से विशेष लगाव होने के कारण रामशरण जी ने खेती के साथ-साथ गायकी भी जारी रखी। आवाज़ ऊँची, दमदार और सुरीली होने के कारण गाँव और आस-पास के लोग उनके द्वारा गायी रागनियों को बड़े ध्यान से सुनते और हौंसला बढ़ाते। धीरे-धीरे उन्हें बहुत-सी रागनियाँ याद हो गईं जिनको वे महफिल मे गाने लगे। कुछ अंतराल के बाद उनकी मुलाकात गाँव के ही मंदिर में रहने वाले संन्यासी श्री सतनारायण से हुई। रामशरण अलीपुरा ने सतनारायण को गुरु धारण कर ज्ञान प्राप्त किया। गायकी के लिए सुर लहदारी और कविता के लिए छंद रचना का ज्ञान उन्होंने इधर-उधर सांग-मंडलियों में बैठ कर अपनी मेहनत से सीखा। अपनी कविताओं में भी रामशरण ने गुरु को बहुत महत्त्व दिया है।

रामशरण अलीपुरा अपने साथ मंडली भी रखते जो स्टेज गायकी में उनके साथ रहती थी। उन्होंने खुद कुरुक्षेत्र रेडियो स्टेशन में बहुत बार प्रस्तुति दी, उनके बनाये हुए कई सांग रोहतक रेडियो स्टेशन में रिकॉर्ड हैं। रामशरण द्वारा रचित सांगों की कुल सख्या 27 है। उनके द्वारा रचित सांगों के नाम निम्न हैं - 'शिवजी का ब्याह', 'रामायण', 'मीराबाई', 'जैमल फत्ता', 'हकीकत राय', 'अम्बराजा', 'श्रवण कुमार पितृभक्त', 'नर सुल्तान', 'अजीत सिंह राजबाला', 'ज्यानी चोर', 'बीजा सोरठ', 'हीरामल जमाल', 'राजा भोज शरणदे', 'पद्मावत', 'अजामिल ब्राह्मण', 'पूर्ण भक्त', 'राजा हरिश्चन्द्र', 'कृष्ण सुदामा', 'महाभारत कथा', 'कृष्ण लीला', 'प्रहलाद् भक्त', 'राजा वीर विक्रमाजीत', 'शकुन्तला दुष्यंत', 'नल दमयन्ती', 'गोपीचंद', 'राजा उत्तानपात', 'चन्द्रकिरण' आदि।

'पूर्ण भगत' सांग के माध्यम से उन्होंने सामाजिक बुराइयों जैसे चोरी, जारी, जुआ, मदिरापान पर कटाक्ष किया है -

चोरी जारी जुआ जामनी मदिरा पान बुरा हो सै।
परनिंदा और बुरी संगति, तन का अभिमान बुरा हो सै।
क्रोध जलेवा दुखदाई, मलीन शैतान बुरा हो सै।
जो बुआ बहाण मौसी नै तक ले उसका ध्यान बुरा हो सै।[129]

'कृष्ण सुदामा' सांग में निःस्वार्थ मित्रता को दर्शाया है और बताया है कि मनुष्य को मुसीबत के समय में अपने दुख-दर्द अपनी रिश्तेदारी, दोस्त, सगे को बताना चाहिये -

भीड़ पड़ी म्हं यार प्यार म्हं सबनै जाणा चाहिये पिया।
रिश्ते नाते सगे सोई तै मरम बताणा चाहिये पिया।
साची बात पै अटल खड़्या रह प्रण निभाणा चाहिये पिया।[130]

'राजा हरिश्चन्द्र' सांग में धर्म परीक्षा को दर्शाया है उन्होंने बताया कि मुसीबत के समय जगत में कोई साथी नहीं मिलता, मनुष्य को अकेले ही अपनी मुसीबतों का सामना करना पड़ता है -

ना कोये विपत पड़ी म्हं प्यारा, यू सै मतलब का जग सारा।
प्यारा ना बोल रह्या, हृदय छोल रह्या।
तन डोल रह्या, क्युकर खड़ी हो पूत नै ठा कै।[131]

'राजाभोज शरणदे' सांग में समाज को बताया है कि बुरे व्यक्ति की बराबरी अच्छे मनुष्य नहीं कर सकते -

आपा मार भला जग हो सै।
बुरे की बराबरी कद लग हो सै।
दखे चोर जार तो ठग हो सै।
जो झूठी करै सफाई साच का पाछै लागै बेरा।[132]

'राजा वीर विक्रमाजीत' सांग में उन्होंने समाज को बताया है कि नारी की सदैव कद्र करनी चाहिये उनका निरादर नहीं करना चाहिये जैसे लिखा है -

बीर की सदा कद्र करो, बीर गुण की खान हो सै।
नारी रत्न कही जिस कै, सुर मुनि विद्वान हो सै।
सदा शारदा दुर्गे लक्ष्मी, सतरूपा किसा ध्यान हो सै।
कह रामशरण नारी जगमाता जिनै धर्म का ज्ञान हो सै।
नारी का अपमान बुरा हो ना नाश करण की देरी।[133]

'अम्बराजा' सांग में सरवर नीर बतलाते हैं कि हमने किस प्रकार कष्ट सहकर जिंदगी यहाँ तक व्यतीत की और कवि द्वारा समाज को भी यही शिक्षा दी गई है कि मनुष्य को दुख विपता में कभी हार नहीं माननी चाहिए बल्कि डट कर सामना करना चाहिए जैसे लिखा है-

माँग माँग कै मंगता होज्या, पड़-पड़ सवार बणै सै।
रगड़ा खा-खा लोहा ठोठ भी खांडे की धार बणै सै।
सोने का कुन्दन हो जल कै फेर जेवर तैयार बणै सै।
मीठा बोल कै जग नै जीतै जो उसका प्यार बणै सै।
रै आईना घड़ी सुख की बैरण इसी किस्मत सै म्हारी।[134]

'अजीत सिंह राजबाला' सांग में अजीत सिंह के पिता के पास जागीर ना रहने पर अजीत सिंह का ससुर राजबाला को अजीत सिंह के पास भेजने से मना कर देता है, ऐसे ही समाज में भी घटनाएँ घटित हो रही हैं जिससे रिश्ते नातों को बहुत ठेस पहुँचती है जैसे कवि ने लिखा है -

धीरज धर्म और मित्र नारी बख्त पड़े म्हं परखे जा।
हीरे मोती लाल दबे धरे, नहीं घड़े म्हं परखे जा।
लोह मोम का बेरा लागै जिब काम अड़े म्हं परखे जा।
गुण अवगुण भी परखे जा जिब लगे किनारे मर कै।[135]

रामशरण की लोकनाट्य-रचना बहुत ही स्वाभाविक एवं नैसर्गिक थी। बहुत कम आयु में इनका देहांत हो गया।

ओमप्रकाश जाटव शिकारपुर -

ओमप्रकाश का जन्म सन् 1937 के आसपास जिला बुलंदशहर उत्तर प्रदेश के गाँव शिकारपुर में हुआ। इनके पिता का नाम मानसिंह व माता का नाम बिशनी था। इनका देहांत 19 नवम्बर 2017 को हुआ। उस समय उनकी उम्र लगभग 80 वर्ष थी। रामकुमार और दिनेश उनके पुत्र हैं। इन्होंने महीपाल सिंह के संसर्ग में रहकर कविता का ज्ञान प्राप्त किया। डाकू फूलनदेवी लोकनाट्य के मंगलाचरण में वे लिखते हैं -

ओउम नाम भगवान का मतना बंदे भूल।
विश्वास रख तू एक दिन होगी अर्ज कबूल।
मनै सुमर लिए जगदीश।
महीपाल सिंह सतगुरु मेरे जिन्हें निवाता शीश।[138]

इनके लोकनाट्य हैं - 'डाकू फूलनदेवी', 'काला देव उर्फ जोबन आली हूर', 'ध्रुव-तारावती', 'राजा नल', 'मंझा,' 'हरिश्चंद्र', 'पूर्णमल', 'अमरसिंह राठौड़', 'सत्यवान

सावित्री', 'राजा चरण का इतिहास' आदि। इन्होंने बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर पर अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं।

इनके कई सांग मौलिक सांग हैं। जैसे 'डाकू फूलनदेवी', 'काला देव उर्फ जोबन आली हूर', 'राजा चरण का इतिहास' आदि। 'डाकू फूलनदेवी' लोकनाट्य में कवि ने फूलनदेवी की पारिवारिक पृष्ठभूमि और उनकी दबंगई और दुस्साहस को आधार बनाया है। हालांकि उनके इस लोकनाट्य को इतिहास सम्मत नहीं समझ लेना चाहिए। इसमें जिस रूप में घटनाएँ आई हैं, वे फूलनदेवी के जीवन से मेल नहीं खाती हैं। लोकनाट्य के प्रारंभ में वे फूलनदेवी का परिचय कुछ यूं देते हैं -

जिला इटावा कानपुर के निकट बहमई गाम।
यमुना नदी किनारै पै फूलनदे का शुभ धाम।
फूलनदे का शुभ धाम देवदीन पिता थे जिसके भाई।
माँ का नाम मूला देवी, ऐसा सुनने म्हं आई।
रुकमणी, रामकली, भूरी और मुन्नी बहन माँ जायी।
एक ग्राम महेशपुर फूलनदे जो पुत्रीलाल का ब्याही।
जरा कम करिए हल्ला, चलो मत बेढब चल्ला।
कोई ठाली कोई झगड़ा झोता है।
सुनो गौर कर फूलनदे का सांग शुरू होता है।[139]

इस सांग में फूलनदेवी की पति द्वारा उपेक्षा, लाला राम और श्रीराम, सुरेन्द्रसिंह, कैलाश के प्रसंग आए हैं। वह बीच-बीच में अपने परिवार वालों की भी आर्थिक सहायता करती है। फूलनदेवी का पुलिस के थाने पर प्रभाव देखा जा सकता है -

फूलनदे ने नाक म्हं किया हमारा दम।
कैसे पकड़ें हम उसे बहुत आ लिए तंग।
बहुत आ लिए तंग डकैती रोजाना की डाले।
मरने से बिलकुल ना डरती जाने कितनों के घर घाले।
डाल डकैती फेर डटै ना फौरन ही वहाँ से चाले।[140]

फूलनदेवी अपने ऊपर हुए अत्याचार का बदला लेने वाली एक निडर निर्भीक महिला के रूप में जानी जाती है। यह सांग उनकी प्रशस्ति गाता है।

'सांगीत काला देव उर्फ जोबन आली हूर' ओमप्रकाश का एक मनोरंजन प्रधान सांग है। रामनगर में एक रामसिंह नाम का साहूकार था। रामनगर में एक

काला देव नाम का राक्षस शिशुओं और स्त्रियों को उठाकर ले जाता था। शिशुओं को वह खा जाता था। पहले तो रामसिंह उसे पकड़ने वाले के लिए एक हजार का इनाम रखता है। परंतु जब कोई तैयार नहीं होता तो वह स्वयं इसका बीड़ा उठाता है। वह एक साधु के आश्रम में जाता है और साधु की ध्यानावस्था में उसके आश्रम की सफाई कर देता है तो साधु उस पर प्रसन्न होता है और उसे आशीर्वाद देता है कि काला देव राक्षस उसके ही हाथों मारा जाएगा। रामसिंह पहाड़ पर जाता है और कालादेव को मारकर वहाँ बंदी सभी महिलाओं को बचाता है। उनमें एक रूपवती उस पर मोहित हो जाती है। रूपवती उसे बताती है कि वह एक बड़े सेठ रूपसिंह की पुत्री है। बाद में उनका विवाह हो जाता है और रामसिंह अपने रामनगर में आकर शासन करते हैं।

यह लोकनाट्य एक राजा की अपनी जनता के प्रति जिम्मेदारी से परिपूर्ण लोकनाट्य है। यह वीरता का भी दिग्दर्शन कराता है। जब राजा रामसिंह कालादेव राक्षस को मारता है तो उस समय की रागनी में उत्साह देखते ही बनता है -

बातन बातन बतबड़ है गई बातन म्हं ठन गई तकरार।
गाली गुप्ता हुई दोनों में होने लगी घूंसा मार।
छुटकर सुंदरी काले देव से रामसिंह के लगी पिछार।
भजन मनाया सही रामसिंह का, सुनिए अर्ज मेरी करतार।
सोती लायो उठाकर मोय कब को बैरी ताबेदार।
रूपनगर से लायो मोकू देव नहीं पक्को बदकार।
देर करो ना अब तुम अपनी फौरन सूत लेओ तलवार।
ऐसे काबू म्हं ना आवै उड़ा देओ दुश्मन की नार।
इतनी सुनकर रामसिंह नै फौरन सूत लई तलवार।
ऐसी मारी काले देव म्हं, सिर भुट्टा-सा लिया उतार।[141]

अंतिम पंक्तियों में दृश्य बिंब का अद्भुत प्रयोग हुआ है। जब रामसिंह का रूपवती के साथ विवाह होता है तो फेरों के समय गाया जाने वाला लोकगीत का भी उपयोग कवि ने किया है। फेरों पर औरतों का गाना दर्शनीय है -

मेरी लाडो की पहली भमरिया रे कै बेटी बाप घर।
मेरी लाडो की दूजी भमरिया रे कै बेटी बाप घर।
मेरी लाडो की तीजी भमरिया रे कै बेटी बाप घर।
मेरी लाडो की चौथी भमरिया रे कै बेटी बाप घर।

मेरी लाडो की पाँचई भमरिया रे कै बेटी बाप घर।
मेरी लाडो की छठई भमरिया रे कै बेटी बाप घर।
मेरी लाडो की सातई भमरिया रे कै बेटी बाप घर।[142]

ओमप्रकाश कृत सांगीत कालादेव उर्फ जोबन आली हूर भगवत बुक डिपो से सन् 1971 में प्रकाशित हुआ था और इसका मूल्य 75 पैसे था। इन्होंने और भी लोकनाट्य लिखे परंतु वे उपलब्ध नहीं हो पाए।

अध्यापक रामकरण सिंह -

अध्यापक रामकरण सिंह का जन्म गंगेश्वरी गाँव जिला ज्योतिबा फूले नगर उत्तर प्रदेश में पिता उमराव सिंह व माता रामदेई के घर 1 जनवरी 1948 को जाटव जाति में हुआ। ये अपने पिता के अकेले पुत्र थे। इन्होंने बी.ए., बी.टी.सी. कक्षाएँ उत्तीर्ण की थीं।[143]

ये अध्यापक थे। इनकी अध्यापकीय प्रवृत्ति इनके लोकनाट्यकारों में भी झलकती है। इनके दो लोकनाट्य उपलब्ध हुए है - 'भीमराव अंबेडकर' तथा 'तड़फती चिताएं' उर्फ सास बहू का झगड़ा। दोनों ही लोकनाट्य सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना से परिपूर्ण है। जहाँ 'भीमराव अंबेडकर' लोकनाट्य डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के शिक्षा संघर्ष को दिखाता हुआ दलित वंचित समुदाय पर उसके प्रभाव को दर्शाता है वहीं 'तड़फती चिताएँ' दहेज की विकराल समस्या के बीच एक स्त्री के त्याग और उसकी हत्या की कहानी को दर्शाता है। इनके गुरु का नाम शामलदास था। कवि ने एक रागनी की चौथी कली में लिखा है -

गुरु शामलदास भी गावें, कथ गंगादास भी गावै।
रचे रामकरण इतिहास तुच्छ ये प्रचारी।[144]

स्वयं को तुच्छ कहना हृदय की शालीनता की निशानी है और प्रचारी शब्द समाज सुधार की भावना से परिपूर्ण कवि के लिए प्रयुक्त होता था।

इनका भीमराव अंबेडकर लोकनाट्य अंबेडकर के जीवन संघर्ष पर आधारित लोकनाट्य है। वे उनके विषय में लिखते हैं -

खड़ा होकर समझाता हूँ, पत्थर की तरह फौलाद था ये।
रामजी राव की चौदहवीं अम्बेडकर औलाद था ये।
लो बैठो आसन लाता मैं, थोड़ा-सा मुझको समझाना।
इनके कार्यकलापों के बारे म्हं भाई बतलाना।[145]

अगली रागनी में ये लिखते हैं -

छुआछूत की दीवारों को टक्कर से तोड़ा बाबा नै।
जो जहरीले नाग उनका जहर निचोड़ा बाबा नै।
इस दुनिया का घूमें बिना कोई देश ना छोड़ा बाबा नै।
झाड़ झंकाड़ कंटकों सै ना मुखड़ा मोड़ा बाबा नै।[146]

रामकरण का डॉ. भीमराव अंबेडकर लोकनाट्य दलित चेतना का लोकरूप है। जब बालक अंबेडकर स्कूल में पढ़ने के लिए जाता है तो सवर्ण अध्यापक की उपेक्षा का जवाब देता हुआ कहता है -

चुप रहते सदियों से आए अब चुप रहने का काम नहीं।
सदियों से कुचलते आए हो अब रहना हमें गुलाम नहीं।[147]

डॉ. अबेडकर अमेरिका में पढ़ने जाते हैं तो वहाँ के समाज को देखकर आश्चर्यचकित होते हैं। वहाँ जाति-पाँति का भेदभाव नहीं था।

छुआछूत से निकलकर किया अमेरिका म्हं प्रवेश।
मानव-मानव म्हं यहाँ नहीं था तनिक भी द्वेष।[148]

अमेरिका और इंग्लैंड में अध्ययन के दौरान अंबेडकर ने विश्व की अनेक सभ्यताओं और संघर्ष का अध्ययन किया। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि भारत के अछूतों की सबसे बड़ी समस्या अशिक्षा ही है। तभी उन्होंने शिक्षा, संगठन और संघर्ष का नारा दिया। भारत में आकर वे प्रत्येक नागरिक के मानवाधिकारों के लिए लड़ते हैं। भारत की जातिवादी विडंबनाओं पर हैरत करते हैं -

पता नहीं किस गलती पर हम सबको लोग कुचलते।
भारत माँ के लाल सभी हम एक जगह पर पलते।
एक मिट्टी म्हं जन्म लिया, हम एक भूमि म्हं खेले।
कौन हुआ अपराध आज हम दोनों हाथ धकेले।
आपस म्हं रही फूट इसलिए रह गए आज अकेले।
सहन नहीं अन्याय सदियों से दुख बहुत झेले।
बने रहे औरों के चेले खड़े हाथ सब मलते।[149]

इस लोकनाट्य में डॉ. अबेडकर का उद्बोधन काव्यात्मक रूप में दिखाया गया है। उनके देहांत पर कवि का छंद दर्शनीय है -

सर झुकाते हम सभी भीम से विद्वान को।
बार-बार करते प्रणाम दलितों के भगवान को।
ना पहुँचा कोई ना पहुँचे उस भीम से इनसान को।
ना अपने लिए कुछ किया सब कुछ किया जहान को।[150]

'तड़फती चिताएं' उर्फ सास बहू का झगड़ा एक व्यावहारिक सामाजिक लोकनाट्य है। जिसमें दहेज के कारण भारतीय युवतियों के दुखद जीवन को कथानक बनाया गया है। मदनसैन और चंद्रवती पति पत्नी थे। चंद्रवती एक बालिका को जन्म देकर सालभर में चल बसी। लड़की का नाम बीरमती रखा गया। मदनसैन ने शर्मादेवी से पुनर्विवाह कर लिया। उसके एक पुत्र हुआ। वह बीरमती की पिटाई किया करती। 13 वर्ष की बीरमती की शादी राजमहल में कर दी जाती है। राजपाल बैंक कर्मचारी था परंतु माँ दहेज ना लाने के कारण बीरमती को मारना चाहती है। राजपाल की बहन धर्मवती इन सारी चीजों को गहराई से देखती है। अपनी भाभी को बचाने के लिए वह अपनी माँ का स्वयं शिकार हो जाती है और आग में जलकर मर जाती है। बीरमती की सास दूध में जहर मिलाकर बीरमती को भी मार डालती है। वह दहेज के लिए पागल हो गई थी। उसे आजीवन कारावास की सजा मिलती है। दहेज विषय पर केन्द्रित यह लोकनाट्य अद्भुत लोकनाट्य है। इसमें रागनीमय संवादों में सभी पात्रों का मनोविज्ञान साफ होता चला जाता है। राजपाल की माँ राजपाल को अपनी बहू बीरमती की शिकायत कुछ यूं करती है -

लेज्या अपनी संग बहू हमें ना खातिर म्हं लाती।
चबड़ चबड़ मुँहजोरी कर दिनभर जीभ चलाती।
ना कुछ ऐसा मिला दहेज तो भी हम इसको भर रे।
भग जागी मर जागी बेटा इसलिए हम डर रे।
कोई नहीं कर सकती जितना हम इसको कर रे।
इसको अपने संग म्हं ले हम इकले ही बेहतर रे।
ना पीहर म्हं कुछ जर रे, जो इतना इठलाती।[151]

अंत में जब वो दूध में जहर मिलाकर अपनी बहू बीरमती को मार देती है तो पूरा गाँव उस दहेज की लोभी को लानत भेजता है। गाँव वाले कहते हैं -

धन के लोभी लालची सुन लो मत पाप कमाओ भारी।
निर्दोष दीन गरीबों की कितनी बेटी मारी जारी।

धनियों के यहाँ बुरी तरह रोती पुत्रियों की खुवारी।
इनके लिए सरकार म्हं भी कानून नहीं कोई सरकारी।
नहीं शरमाते अत्याचारी ना दिल शरमाया लोगों का।[152]

अध्यापक रामकरण सामाजिक जागरण के कवि थे। इनकी भाषा, शब्द प्रवाह और भावबोध अत्यधिक स्वाभाविक और संप्रेष्य था। बुद्धन सिंह और वीरेन्द्र सिंह इनके शिष्य थे। इनका उद्‌भव उत्तर प्रदेश सामाजिक राजनीतिक व आंदोलन के मद्देनज़र हुआ जान पड़ता है। 8 मई 2008 को इनका देहांत हो गया।[153]

मंगतराम भकलाना -

मंगतराम भकलाना का जन्म हरियाणा का वर्तमान जिला हाँसी में पिता हीरालाल व माता घोटा देवी के घर चमार जाति में हुआ था। वे मंगतराम मेहरा लिखते थे। इन्होंने उस समय के सुविख्यात लोकनाट्‌यकार चौ. जगतसिंह अल्हाण को अपना गुरु बनाया था जो इनके लोकनाट्‌यों के अनेक गीतों की अंतिम कली में बड़े सम्मान के साथ आए है। ये फौज में भी रहे। दिनांक 19 नवम्बर सन् दो हजार को इनका देहांत हो गया।

इन्हें उन्मुक्त उद्‌भावना का लोकनाट्‌यकार कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। इनके इस प्रकार के लोकनाट्‌यों के नाम कुछ इस प्रकार हैं - 'खड़ी चोट हरियाणा की', 'काची बहू पड़ौस में', 'खोपर छोरा पटवे का', 'कुएँ की पनिहारी', 'फौजी छोरा पार का', 'गुलशन की नई बहार', 'बहम की दवा' आदि। इनके अतिरिक्त मंगतराम भकलाना ने 'गूगा पीर', 'पूरणमल', 'अलबेला लकड़हारा', 'राजा हरिश्चंद्र', 'पिंगला भरथरी' आदि लोकनाट्‌य भी लिखे। अपने गुरु के विषय में ये लिखते हैं -

सात मील पै नगर नारनौंद बसती गुण की खान।
कवि जगतसिंह सतगुरु मिले गुरु कहूँ के भगवान।[154]

इनके लोकनाट्‌यों व गीतों में पारंपरिक विश्वासों के प्रति मोह झलकता है। ये पौराणिक या स्मृतियों में उल्लिखित ज्ञान को ही सबसे बड़ा मानते हैं। इनकी ऐसी अनेक रागनियाँ हैं। इनकी चेतना यथार्थ का अंकन करने में विशेष रूप से सक्रिय रहती है। 'पिंगला भरथरी' लोकनाट्‌य में जब विक्रम अपनी भाभी पिंगला को किसी गैर-पुरुष के साथ देख लेता है, तो वह अपने बड़े भाई भरथरी को यथास्थिति से अवगत कराता है कि इस प्रकार का जार-कर्म राजमहलों में डूबो देता है। 'पिंगला

भरथरी' लोकनाट्य से यही गीतांश दर्शनीय है -

गऊ गधे का मेल भरथरी देख्या आज महल के म्हं।
पिंगला राणी डूब गई ना आई ल्हाज महल के म्हं।
मेरी बात नहीं सै झुट्ठी तेरी तै गाँठ भ्रम की फुट्टी
उसणै ऐश भतेरी लुट्टी, नहीं अंदाज महल के म्हं।
रजपूतां का भाई रूला दिया, सिर का ताज महल के म्हं।[155]

'पिंगला भरथरी' लोकनाट्य एक स्त्री के जार-कर्म के कारण राजपरिवार के बिखरने का संदेश देता लोकनाट्य है। भरथरी अपने निश्छल और असहाय भाई की बात पर यकीन नहीं करता और अपनी पत्नी पिंगला के धोखे में आ जाता है और अपने सगे भाई को अपने राज्य से बाहर निकाल देता है। लोकनाट्य के अंत में उसे अपनी पत्नी के छल का पता चलता है। तो वह अपने किए पर पश्चात्ताप करता है। कुछ इसी प्रकार का संदेश मंगतराम ने 'पूरणमल' लोकनाट्य में भी दिया है। पूरणमल अपनी मौसी के जार-कर्म का शिकार होता है।

मंगतराम भकलाना का प्रभाव क्षेत्र हाँसी, हिसार, जींद, रोहतक आदि जिला थे। इनकी एक लोकनाट्य मंडली होती थी। परिवारों में विशेष खुशी के अवसरों पर ये लोकनाट्यों का मंचन करते थे। लोकनाट्यों के मंचन में यथाअवसर वे समसामयिक विषयों पर सर्जित गीतों के माध्यम से सुधारात्मक संदेश भी लोगों को देते थे। इनका एक ऐसा ही गीत प्रचलित हुआ था जिसमें वे ईश्वर के समक्ष उसकी न्यायप्रियता को लेकर सवाल खड़ा करते हैं -

बदी करणिया मौज करैं सै कोन्या मोल सच्चाई का
परमारथ की कदर रही ना ऊँचा नाम बुराई का।
परमेश्वर भी पड़ कै सोगे सच्चे स्वामी न्यांकारी।
साधु संत बैरागी त्यागी कड़ै गए वे ब्रह्मचारी
कलियुग के चक्कर म्हं फँसकै लोग रहे ना व्यवहारी।
झूठ कपट छल बेईमानी म्हं बहगी जनता सारी।
पंचायतां म्हं करै फैसले खाज्या माल जमाई का।[156]

इन्होंने शराब, प्रदूषण, अशिक्षा को लेकर अनेक गीतों की रचना की है। हरियाणा की जीवन शैली में खेत, खेल, खान-पान-पहरान, स्वभाव, देश सेवा आदि को लेकर इन्होंने एक गीत की रचना की। उसके कुछ अंश है -

हरा भरा हरियाणा सै अड़े सब बातां के ठाठ दखै।
दूध-दही-घी-मक्खन तै भाई भरे रहै सै माट दखै।
लाम्बे-लाम्बे तगड़े-तगड़े हरियाणे के नर-नारी।
बड़े कमाणे बड़े समाणे फसल होवै बढ़िया म्हारी।
कुश्ती और कबड्डी खेलैं पड़ै दंगल म्हं किलकारी।
दूर-दूर तक धाक बैठरी जाणै सै दुनिया सारी।
छैल गाभरू इसे खिलारी नहीं किसे तै घाट दखै।[157]

मंगतराम ने दहेज की बीमारी से भी लोक को सचेत किया है। इस संदर्भ में उनकी रागनी पर्याप्त प्रसिद्ध हुई-

दहेज बीमारी खतम करो तुम भारतवासी सब मिल कै
बेफादे के खर्चां तै भाई दूर रहो सारे रल कै।[158]

इस रागनी की चारों कलियों में कवि के कवित्व की सामाजिक प्रतिबद्धता झलकती है।

ठाकुर तुलाराम सिंह 'बेफिकर' -

ठाकुर तुलाराम सिंह 'बेफिकर' गाँव आकलपुर डाकखाना खूपुरा जिला बुलंदशहर उत्तर प्रदेश के निवासी थे। ये आर्यसमाज से प्रभावित थे और अपने नाम के पीछे आर्यभजनोपदेशक भी लगाते थे। आर्य समाज की शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार करने के लिए लोक कवियों ने रागनी व लोकनाट्यों का सहारा भी लिया। तुलाराम बेफिकर ने कई लोकनाट्यों की रचना की जिनमें 'सत्य की विजय', 'फूलकुमारी धर्मवीर', 'भयंकर समाचार', 'दुखित लड़की' और 'चित्र-विचित्र' आदि उपलब्ध हैं। तुलाराम बेफिकर ने सभी लोकनाट्य अपनी मौलिक कथाओं पर आधारित ही रचे हैं। इन्होंने मुख्य रूप से सामाजिक पारिवारिक संबंधों पर आधारित मुद्दों को उठाया है।

'चित्र-विचित्र' लोकनाट्य में 'रूप-बसंत' की कथा की तरह इन्होंने विमाता की दरिंदगियों को दर्शाया है। इस लोकनाट्य की कथा कुछ-कुछ सुविख्यात 'रूप-बसंत' लोकनाट्य के पर्याप्त नजदीक है। उज्जैन के राजा बीरमसैन की पत्नी मायावती अपने अंतिम समय में अपने पुत्रों 'चित्र-विचित्र' के प्रति चिंतित होती हुई अपने पति से कहती है -

रानी को दिल का मर्ज हुआ तो बहुत घनी घबराती है।
राजा को पास बिठाकर के यों रो रोकर समझाती है।

दो बच्चे मेरे निशानी हैं बस इनको गले लगाता तुम।
दूजी शादी मत करना बच्चों को खूब पढ़ाना तुम।।[159]

कुछ समय बाद उसका देहांत हो जाता है। राजा बीरमसेन ने बड़े लड़के चित्र की शादी भी चंपावती से की थी, परंतु मंत्री की मक्कारी के कारण खुद भी केलावती से शादी कर ली। केलावती ने आते ही अपनी मृत सौतन के दोनों बच्चों को ठिकाने लगाने का काम किया। चित्र-विचित्र अनेक झंझावातों का सामना करते हुए अंत में अपने पिता से मिलते हैं। यह लोकनाट्य चित्र-विचित्र के साहस की भी कहानी कहता है।

'दुखित लड़की' लोकनाट्य आर्थिक अभावों की करुण कथा का लोकनाट्य है। एक गरीब ब्राह्मणी सरिता देवी अपने बच्चों का मुश्किल से लालन पालन करती है। और ग्यारह वर्ष की बेटी कांता व छह वर्ष के पुत्र उमाकांत को छोड़कर चल बसती है। उसके बाद उनके बुरे दिनों की शुरुआत होती है। इस सांग की पहली ही रागनी की टेक दर्शनीय है -

गरीब मजदूरों का भाई कोई ना ठौर ठिकाना।
जैसे-तैसे पेट भरें मुश्किल से मिलता खाना।[160]

इस रागनी की चौथी कली हृदय विदारक है -

मृतक शरीर के पास खड़े दोनों बच्चे रोवैं थे।
पास नहीं कोई आवै था सब आनंद म्हं सोवैं थे।
रात अंधेरी माँ-माँ कह अपनी आँखें खोवैं थे।
आपत्ति के मारे हम निश-दिन झगड़े झोवैं थे।
शंकर सिंह देते हैं भाइयो समाज को यह ताना।
तुलाराम बेफिकर हर जगह कविता करके गाना।[161]

इस सांग में भारत में धनियों के चरित्र पर भी कड़ा प्रहार किया गया है। ग्यारह साल का उमाकांत एक सेठ की दुकान पर नौकर लग जाता है। जब सेठ उससे उसकी सोलह साल की बहन के बारे में सुनता है तो उसका जार-संस्कार कुलांचे मारने लग जाता है। वह दावत के बहाने दोनों भाई-बहनों को अपने घर बुलाता है और हल्का नशा खिलाकर कांता के साथ जोर जबरदस्ती करना चाहता है। कवि ने सही कहा है -

इस भारत के धनवानों का देखा ढंग कुढ़ाला।
निर्धन जन के साथ करैं सब जानबूझकर चाला।
भारतवर्ष का अफसरान भी ऐसा न्याय करै सैं।
धनवानों से मिले रहै निर्धन पर जुल्म करै सैं।
निर्धन बेचारे इस तरह से न्यूं भारी कष्ट भरै सैं।
लाख रौब करके धनवाले फिर भी मौज करै सैं।
पुलिस वाले तो गरीब का दे काढ़ सभी देवाला।[162]

सेठ के जारकर्म के कारण कांता पर विपत्तियों के पहाड़ टूटते है परंतु वह साहस करती हुई अपने स्त्रीत्व को बचाए रखती है।

'भयंकर समाचार' धर्मदेवी सत्यवती की कथा है। इस नाट्य के मंगलाचरण में कवि की सदिच्छा दर्शनीय है -

जितने सेठ साहूकार, करें निर्धन पर अत्याचार।
गरीब हर तरह से है लाचार।
हे करतार घर घर खाने को नाज रखियो।
हजार पर चार आने का बस ब्याज रखियो।[163]

इस लोकनाट्य में एक माँगेराम ब्राह्मण की लालची प्रवृत्ति के कारण धर्मदेवी अत्यधिक दुख पाती है। वह धर्मदेवी की ससुराल की ओर से धर्मदेवी को लेने पहुँचता है तथा एक खान को ढाई हजार रुपये में बेच देता है। यहीं से उसके दुर्दिन शुरू होते हैं। वह सूझ-बूझ से खान पठानों से बचकर आती है। यह सांग एक स्त्री के साहस का सांग है।

'फूलकुमारी-धर्मवीर' लोकनाट्य बहन फूलकुमारी के दो दरिंदे भाइयों की कथा कहता है। मात्र सत्रह सौ रुपये के लिए फूलसिंह और भुल्लू गूजर ने अपने जीजा को जहर देकर मार दिया। हालांकि वह बच गया। इस लोकनाट्य में कवि ने लालची भाइयों की असामाजिकता को दर्शाया है।

'सत्य की विजय' लोकनाट्य में तुलाराम बेफिकर ने पर्याप्त उतार-चढ़ावों के बाद अंत में सत्य की विजय दर्शायी है। जयपुर के बड़ौदा गाँव के सेठ दीनदयाल व शंभुदयाल दो भाई थे। शंभुदयाल के लड़के देवदत्त का विवाह चंद्रवती से होता है। शंभुदयाल का देहांत हो गया तथा देवदत्त पढ़ने के लिए काशी चला गया। पाँच वर्ष हो गए तो दीन दयाल का जार-संस्कार चंद्रवती पर हावी होने लगा जिसके कारण

चंद्रवती को घर बार छोड़कर भागना पड़ा। अबला जानकर सेठ सेढूमल उसे अपने घर ले जाता है। निस्संतान सेढूमल को पचास वर्ष की आयु में संतान होती है तो वह इसका श्रेय चंद्रवती के कर्मों को देता है। यहाँ भी सेठ के गोद लिए पुत्र मूलचंद ने ईर्ष्यावश उस बालक की हत्या कर दी तथा दोष मढ़ दिया चंद्रवती पर। उसे वहाँ से भी जाना पड़ता है। बाद में वह एक खान के हत्थे चढ़ती है। खान भी उसे पत्नी बनाकर काबुल ले जाना चाहता है। मौका पाकर वह उसकी हत्या कर देती है। अंत में वह साध्वी बन जाती है और उसके पति देवदत्त से उसका मिलन होता है और राजा उसे सताने वाले सभी को कठोर दंड देता है।

ठाकुर तुलाराम सिंह बेफिकर एक मंजे हुए लोकनाट्य थे। उन्होंने कथा के रूप में बनी बनाई कहानियों को नहीं चुना, बल्कि अपनी कहानियाँ गढ़ीं और लोकनाट्यों का सृजन किया। कहानी के बीच बीच में वे सामाजिक उपदेश भी दे जाते हैं। जैसे वे जारकर्मी को अपने लोकनाट्यों में सजा दिलवाते हैं। शिक्षा की महत्ता पर जोर डालते हैं। सच्चे प्रेम के समर्थक नज़र आते हैं, महिलाओं की नैतिकता के हिमायती हैं। 'सत्य की विजय' लोकनाट्य में जब देवदत्त अध्ययन के लिए काशी जाते हैं तो उस समय उसके संबंधी उसे कहते हैं -

देवदत्त जी मात पिता के गम म्हं अति घबराने लगे।
नगर निवासी अगड़ पड़ोसी आकर के समझाने लगे।
लाने लगे रास्ते पर क्यों हुए दुखी अतिअंत पढ़ो तुम विद्या।
सारे धंधे छोड़ दियो पढ़ना लीजो धार सुनो।
थारे पिता जैसा थारा भी हो जागा सत्कार सुनो।[164]

पिता के मरने के बाद पत्नी को घर छोड़कर देवदत्त पढ़ने के लिए काशी चला जाता है।

पं. रामेश्वरदास बदनारा -

पं. रामेश्वरदास बदनारा का जन्म गाँव बदनारा जिला, कैथल में पिता धनपत राय के घर सन् 1926 में हुआ। इनकी माता का नाम चमेली देवी था। जब ये मात्र चार महीने के थे तो घर में आग लग जाने के कारण इनकी माता का देहांत हो गया तथा उसके पंद्रह दिन बाद इनके पिता जी चल बसे। इस प्रकार पं. रामेश्वर दास का बचपन माता-पिता के नैसर्गिक लाड़ प्यार के बिना ही बीता। इनके दादा हैदराबाद में रहते थे। माता पिता के देहांत के बाद इन्हें भी अपने दादा के साथ

जाना पड़ा। वहाँ द्रविड़ पाठशाला में इनका प्रवेश कराया गया। इन्होंने वहाँ संस्कृत, मलयालम और तेलुगू भाषाओं का अध्ययन किया। वहीं से इन्हें कविता आदि लिखने का शौक हुआ। दिनांक 14 जनवरी, सन् 2008 को लगभग 82 वर्ष की आयु में इनका देहांत हुआ।

इनके चार लोकनाट्यों की पांडुलियाँ प्राप्त हुई हैं, वे हैं - 'पिंगला भरथरी', 'इतिहास राजा अंब का', 'सत्यवान सावित्री' तथा 'पृथ्वीसिंह किरणमई'। इनके अतिरिक्त भी इन्होंने कई लोकनाट्यों की रचना की हैं, जो अब अनुपलब्ध हैं। इन्होंने अनेक फुटकर रागनियों की भी रचना की है, जिनमें ईश्वर की स्तुति, बुराइयों का त्याग, हरियाणा की महिमा का गुणगान आदि विषय हैं।

रामेश्वरदास स्वयं को प्रचारी कहते हैं तथा वे प्रचारियों की तरह ही अपने लोकनाट्यों का मंचन करते थे। उन्होंने सांग नहीं किए। वे खाली समय में प्रचार करते थे। उनका मुख्य पेशा पंडिताई करना था। इनके लोकनाट्य बेहद स्वाभाविक रूप में विकास पाते हैं। हालांकि इनके लोकनाट्यों की कथाएँ मौलिक नहीं हैं, तथापि इन्होंने उनमें कुछ नया देने की कोशिश अवश्य की है। यथा 'पिंगला भरथरी' लोकनाट्य में जब अमरफल शहर की वेश्या के पास पहुँचता है और वह उसे पुनः राजा के पास पहुँचा देती है तो अधिकांश लोकनाट्यकारों ने वेश्या के प्रसंग की रागनी नहीं लिखी, परंतु रामेश्वरदत्त बदनारा ने अमरफल को लेकर एक वेश्या की जद्दोजहद और आत्मग्लानि को एक रागनी में दिखाया है। वह सोचती है कि उसने सारी उम्र पता नहीं कितनी पतिव्रता स्त्रियों के घरों को उजाड़ा है और दूसरों के धन पर राज किया है। वेश्या की आत्मग्लानि दर्शनीय है -

लिया अमरफल चिंता नै फेर करण लगी विचार।
रहकै अमर मनै के करणा थुक्कैगा संसार।
सती नार पतिभरताओं के पति भलो दिए।
सिर म्हं मारे जूते जब वह निर्धन हो लिए।
और दूसरे टोह लिए यूं कर लिए खसम हजार।।[165]

राजा के सामने जाकर बयान करती है कि इस फल की खास जरूरत राजा को ही है। वह राजा के सहीस व अपने संबंध को भी राजा के समक्ष स्पष्ट रूप से बताती है -

गैरो के घर लूट-लूट कै खाए उमर गुजारी सै।
सच्चे दिल तै आज तलक ना करी किसे तै यारी सै।
तबियत हो ली खारी सै कर भक्ति पार तिरूं राजा।[166]

इस सांग में बड़े नाटकीय अंदाज में एक जारिणी के जार-कर्म का पर्दाफाश होता है। जिसके परिणाम स्वरूप पुरुष (राजा) को वैराग्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझता। वह अपने छोटे भाई विक्रम को राजपाट सौंपकर जंगलों में चला जाता है और संन्यास ले लेता है। विक्रम ने प्रारंभ में अपने भाई भरथरी को लाख समझाने की कोशिश की थी परंतु जार या जारिणी इतने विश्वसनीय रूप में प्रस्तुत होते हैं कि प्रभावित व्यक्ति को दूसरों में ही खोट दिखाई देता है।

उनका 'राजा अंब' लोकनाट्य भी पर्याप्त नाटकीयता और मार्मिकता से परिपूर्ण है। अनेक लोकनाटयकारों ने यह सांग 'सरवर नीर' 'अंब-अमली' आदि के नाम से भी लिखा है। कहानी वही है। इस सांग में भी लोकनाट्यकार ने एक राजा की वचन-बद्धता की दृढ़ता के साथ-साथ एक गरीब महिला के ऊपर अमीर की जार-दृष्टि का यथार्थ चित्र खींचा है। एक सौदागर सराय में काम करने वाली स्त्री (रानी अमली) को सराय की मालकिन भठियारी से खरीदकर ले जाता है परंतु स्त्री अपने पतिव्रता धर्म की दुहाई देती है। वह कहती है -

मैं पतिव्रता नार धर्म पै तेरे बदल क्यूं ख्याल गए।
धर्म के कारण छूटे म्हारे, धन द्रव्य खजाने माल गए।[167]

भठियारी राजा अंब व उनके दोनों पुत्रों को भी सराय से निकाल देती है और बाद में राजा अपने पुत्रों से बिछड़ भी जाता है। इस सांग में पर्याप्त उतार-चढ़ाव है। अंत मे सबका मिलन होता है और जार-कर्मी सौदागर को सजा मिलती है।

'सत्यवान सावित्री' एक स्त्री के त्याग, पतिव्रता की परीक्षा का सांग है तथा 'पृथ्वीसिंह किरणमई' सांग स्त्री-पुरूष की नैतिकता की परीक्षा का सांग है। 'पृथ्वीसिंह-किरणमई' सांग दूसरे लोकनाट्यकारों ने 'चापसिंह-सोमवती' के नाम से भी लिखा है। कथा बिलकुल वही है केवल पात्रों के नाम बदल गए हैं। यह एक लौकिक कथा पर आधारित है। जब शेरखान पनिहारिनों से पृथ्वीसिंह की पत्नी किरणमई के विषय में पूछताछ करता है तो वे उसे आगाह करती है।

शेरखान मैं जाण गई तू अपणी जात गँवावैगा।
क्षत्राणी तै बतलावण का तुरत नतीजा पावैगा।
गैरमर्द का काम नहीं रजपूतां का रणवास जहाँ।
ग्यारा ड्यौढ़ी लागै सै वा किरणमई रहै खास जहाँ।
बंदूकां के पहरे है तू करै जान को आस जहाँ।
अज्ञान अंधेरा के करले भला सूरज का प्रकाश जहाँ।
तेरी जान की खैर नहीं जो पृथ्वीसिंह सुण पावैगा।[168]

इस सांग के अंत में पतिव्रता स्त्री की जीत होती है तथा षड्यंत्रकारी शेरखान को फाँसी दी जाती है। रामेश्वरदास की फुटकर रागनियों ने भी यही आदर्श प्रस्तुत किया है।

रामसिंह कलछीना -

रामसिंह का जन्म गाँव कलछीना जिला गाजियाबाद, उत्तरप्रदेश में हुआ। ये खटीक जाति से थे। इनके गुरु का नाम था खलीफा अब्दुल मजीद। अब्दुल मजीद चौधरी सेढू सिंह हापुड़ निवासी की परंपरा में थे।

रामसिंह ने अनेक लोकनाटयों की रचना की। इनके नाम हैं - 'हँसते पान बोलती सुपारी' (भक्त गुलरतन), 'नल का जन्म', 'नल का ब्याह' (गजमोतिन और नागवती से), 'कत्लेआम आशिक दगाबाज औरत' (रतीभान रूपवती) 'होली कंवर निहालदे', 'होली हकीकत राय', 'होली मंझा निकासी' (नल का जन्म), 'होली राजवा रेवी', 'ख्याल पकड़' और 'खोल माया देवी' आदि।[169]

इस समय इनका 'रतीभान रूपवती' सांग ही उपलब्ध है। इस सांग में उनका नाम मुंशी रामसिंह भी लिखा हुआ है। 'रतीभान रूपवती' सांग 'कत्लेआम आशिक दगाबाज औरत' और 'करनी का फल' नाम से भी प्रचलित था। रामसिंह अपने सांग ईश्वर की वंदना से करते है। उन्होंने अपने गुरु के विषय में लिखा है -

सेढू कहै झुकी रैन अंधेरी, कहै मजीद लो खबर सवेरी।
कहै रामसिंह शाहिर मेरी, सुध लीजो भगवान।
शुभ राखो कलछीने को शीस ले।[170]

'रतीभान-रूपवती' सांग में एक जारिणी की दगाबाज़ी की कथा है। झूनागढ़ के राजा रघुसेन और रानी रतनकेसरी का राजकुमार रतीभान अपने प्रिय वजीर के पुत्र के साथ शिकार खेलने के लिए जाता है तो उसका संपर्क रतनपुरी की राजकुमारी रूपवती से होता है। रूपवती की शर्त थी कि जो भी उसके प्रेम में अपने सर को काटकर उसे सौंपेगा, वह उसी से शादी करेगी। रतीभान तालाब पर जाकर अपना सिर काट देता है। उसका मित्र दुखी होता है तथा उसकी चिता जलाने के लिए कफन लेने जाता है तो उपकथा में एक दाने को मारने के कारण एक राजकुमारी की शादी का दबाव उस पर पड़ता है तो वह राजकुमार रतीभान की कटार से उसकी शादी करवा देता है। रूपवती रतीभान की लाश पर रोती है तो शिव-पार्वती आकर रतीभान को पूर्ववत् बना देता है। दोनों पति-पत्नी बनकर जंगल में एक मुनि के

आश्रम में रहते हैं। एक दिन रतीभान भिक्षा माँगने के लिए गया हुआ था तो ईश्वर द्वारा रूपवती के सत की परीक्षा लेने की प्रेरणा से मुनि में काम की भावना जाग गई और उसने रूपवती के सामने प्रस्ताव रखा। रूपवती पहले ना-नुकर करती है परंतु बाद में मान जाती है और मुनि के कहने से रात में सोये हुए रतीभान की गर्दन भी काट देती है। मुनि व रूपवती आश्रम छोड़कर भाग जाते हैं। पुनः शिवजी व पार्वती प्रकट होते हैं तथा दोबारा रतीभान को स्वस्थ करते हैं। सांग के अंत में रूपवती एक वेश्या के रूप में पकड़ ली जाती है। इस सांग में काफी उतार-चढ़ाव हैं।

लोकनाट्यकार रामसिंह ने यह सांग दोहा, मुकताल, चमोला, रागनी, व गजल में लिखा है। लेखक दृश्य परिवर्तन भी दोहा से करते हैं, यथा -

कहने को तो बहोत है, कौन बढ़ावे जाल।
यहाँ का किस्सा छोड़ कै, दूजा लिखूं हवाल।।[171]

रामसिंह रतीभान को सच्चा आशिक मानता है जिसने अपनी प्रेमिका के लिए सिर का ही दान दे दिया।

यार वह प्यारा नहीं जो यार हो दस बीस का।
चाँद वह प्यारा नहीं जो निकले है दिन तीस का।
सच्चा आशिक वह हुआ जिने दान करा है शीश का।
पार्वती ने जिस वक्त सुमरन करा जगदीश का।[172]

इनके लोकनाट्य की शैली बता रही है कि इनका प्रणयन बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में किया गया होगा।

पं. कामसिंह -

पं. कामसिंह का जन्म गाँव रामनगर (छान्या) जिला जींद हरियाणा में 1932 में हुआ था। इनके पिता का नाम पं. हरफूल तथा माता का नाम पार्वती था। पं. कामसिंह ने घर पर ही प्रारंभिक शिक्षा ग्रहण की। इन्होंने कर्मकांड (पंडिताई) को ही अपनी आजीविका का साधन बनाया। इन्होंने तारबाबू कृष्णचंद्र को अपना गुरु बनाया। तारबाबू कृष्णचंद्र पं. भैयाराम के शिष्य थे।

इन्होंने 'अंजना पवन', 'ध्रुवजन्म', 'रामचंद्र का बनवास' तथा 'विराटपर्व' आदि लोकनाट्यों की रचना की। इसके साथ ही इन्होंने सत्तर के आसपास फुटकर रागनियाँ भी लिखीं। इन फुटकर रागनियों में उन्होंने गुरु भक्ति, अध्यात्म चिंतन जैसे पुराने विषयों के साथ वर्तमान में सुरसा राक्षसी की तरह मुँह फैलाए खड़ी

जनसंख्या वृद्धि, भ्रूण हत्या, महंगाई, भ्रष्टाचार, मद्यपान तथा दान दहेज जैसी समस्याओं का कच्चा चिट्ठा भी खोला है।"[173]

पं. कामसिंह ने लोकनाट्यों का मात्र सृजन किया। उन्होंने कभी लोकनाट्य मंच पर अभिनीत नहीं किए। जनसंख्या वृद्धि किस प्रकार मनुष्य को एक सुन्दर-सुखद जीवन से वंचित कर देती है, इसका कवि कामसिंह ने सुन्दर चित्रण किया है -

अपणे हाथां दुखी रहै कहै दुखी करे भगवान तनै।
घणा कुटुंब दुख दिया करै, कती कर्या ना ध्यान तनै।
छोटी-सी कोठड़ी सास घुँटै किस तरियाँ ढूँढ़ बसाया जा।
पाँच कमावै दस का खर्चा क्युकर काम चलाया जा।
पोह का म्हीना फिरै उघाड़े कपड़ा नहीं सिमाया जा।
ऐ सोड़ म्हं पाँच पलुरे, क्युकर देश बचाया जा।
दो बालक के थोड़े थे, पर नहीं बजाई तान तनै।।[174]

पं. कामसिंह भारतीय राजनीति में व्यक्तिगत छींटाकसी से भी पीड़ित थे। उनका मानना था कि भारत को आज़ादी एक लंबे संघर्ष के बाद मिली है। इसके लिए समाज के हर वर्ग ने प्रयास किया है। कांग्रेस की भूमिका इसमें अत्यधिक सराहनीय रही। एक फुटकर रागनी की टेक व एक कली देखी जा सकती है -

स्वाधीन सुख-रूप औषधि पड़ी नहीं पाई थी।
खून पसीना एक कर्या जब आज़ादी आई थी।
पराधीन सपनेहुँ सुन नाहि, ऋषि दयानंद पढ़गे।
देश-प्रेम की शिक्षा ले कै आगे-सी नै बढ़गे।
राज विदेशी हम रइयत, वे तीर गात म्हं गड़गे।
तिलक, गोखले नै करी कांग्रेस, सबके मन भाई थी।[175]

इन्होंने पुरातन कथाओं पर लोकनाट्यों को नवीन स्वरूपों में ढालकर प्रस्तुत किया।

दिनांक 26 अक्तूबर 2008 को इनका देहांत हो गया।[176]

महाशय दीनदयाल चंद्रावल -

दीनदयाल का जन्म गाँव नई चंद्रावल, सब्जी मंडी, घंटाघर, नई दिल्ली में दिनांक 26 मार्च 1940 को पिता भाना राम और माता गंगा देवी के घर हुआ था।

इन्होंने घर पर ही नाममात्र अक्षर-ज्ञान प्राप्त किया था। शीघ्र ही ये महाशय दयाचंद मायना के संपर्क में आ गए। उनके साथ गायन-मंडलियों में जाने लग गए। ये उनके साथ हारमोनियम बजाया करते थे। महाशय दयाचंद की लोकनाट्यकला और गायकी से प्रभावित होकर इन्होंने उन्हें अपना गुरु धारण कर लिया। ये कमर्सियल हायर सेकेंडरी स्कूल, दरियागंज में सफाई-कर्मचारी के पद पर कार्यरत थे। इन्होंने महाशय दयाचंद की विचारधारा से प्रभावित होकर सामाजिक बदलाव से परिपूर्ण सांग और फुटकर रागनियाँ लिखीं। इनके सांगों के नाम हैं- 'डॉ. बी.आर. अंबेडकर', 'गोपीचंद', 'कमला-संतराम', 'सत्यवान-सावित्री' और 'रूप-बसंत' आदि। इसके साथ-साथ इन्होंने पर्याप्त मात्रा में फुटकर रागनियाँ भी लिखीं। इनकी अनेक रागनियाँ महाशय दयाचंद मायना की रागनियों की तर्ज पर हैं। 'डॉ. बी.आर. अंबेडकर' सांग लिखा सांग में जब अंबेडकर के पिता बालक अंबेडकर को लेकर स्कूल जाते हैं तो 'अछूत' शब्द को लेकर उनका स्कूल के सवर्ण मास्टर से वाद-विवाद होता है, तो उस समय की रागनी में कितने मौलिक ढंग से दीनदयाल जी ने जातिवादी मास्टर का मुँह बंद किया है -

बिच्छू-भिरड़-ततैया जग म्हं शेर साँप और गुहेरा।
ये सारे अछूत बताए छूते पट जा बेरा।।
ना मानों तै छू कै देखो बिच्छू सर्प गुहेरे नै।
महाल की मक्खी भिरड़ ततैया लिपटे तेरे चफेरे नै।
छोड़ै कोन्या शेर चाब जा हाड मांस लहू तेरे नै।
तू क्युकर अछूत बतावै मनै और बेटे मेरे नै।
मनुष्य कोई अछूत नहीं सै क्यूं भेजा फिरग्या तेरा।[177]

इस रागनी की बाकी तीनों कलियाँ भी कमाल के तर्क के साथ 'अछूत' चीजों के बारे में बताया है। और उनको लानत भेजी है जो आदमी को अछूत समझते हैं। यह सांग अंबेडकर जी के जीवन-संघर्ष का लोकनाट्यात्मक रूप है।

जब अंबेडकर समाज को देखते हैं कि लोगों के व्यवहार में बदलाव तो आ गया है। भाषा, वेशभूषा, रहन-सहन और विचारों में बदलाव आ गया है, परंतु जातिवादी भावना नहीं बदली। तो उनको बडा ताज्जुब होता है कि ऐसा कैसे हो गया। उस समय की रागनी में भी दीनदयाल ने अद्भुत तर्क प्रस्तुत किया है। टेक तथा एक कली दर्शनीय है -

माँ नै मदर पिता नै फादर, भाई नै ब्रादर कहण लगे।

नाम अछूतां का ना बदल्या, न्यूं भीम के आँसू बहण लगे।।[178]

x *x* *x*

घी नै बटर, बहन को सिस्टर, सबकी बदली लाइफ यहाँ।
कहते हैं हसबैंड पति को और पत्नी को वाइफ यहाँ।
संस्कृत का किया निरादर और इंग्लिश म्हं फहण लगे।[179]

जब अंबेडकर शिक्षा ग्रहण करने के लिए विदेश जाते हैं तो उनकी पत्नी रमाबाई बाधा नहीं बनती, बल्कि उनकी सहायक बनकर उनका हौंसला बढ़ाती हैं। उस समय की रागनी देखी जा सकती है -

बख्त पड़े पै साथ देणिया असल लुगाई हो सै।
सती बीर का जति मरद एक घनी गुसाईं हो सै।।
भारत म्हं माँ सतियों की तहरीर सुनी होगी।
एक सत्यवान की सावित्री सती धीर सुनी होगी।
नर्वदा ने दी बदल पति की तकदीर सुनी होगी।
पाँव म्हं मार कुल्हाड़ी ल्याई नीर सुनी होगी।
कोढ़ तलक भी दूर करे या तै इसी दवाई हो सै।[180]

x *x* *x*

सतरा बीसे की झाल पिया मन करड़ा कर डाटूंगी।
पतिव्रता के नेम टेम तै मैं दिन अपने काटूंगी।
तू बैरिस्टी पढ़ण जा सै मैं हरगिज ना नाटूंगी।
गुरु दयाचन्द की चरण धूल नै खांड समझ चाटूंगी।
कह दीनदयाल जिब छेर भरा ना तै के कविताई हो सै।।[181]

इन्होंने अनेक फुटकर रागनियों में समसामयिक समस्याओं जातिवाद, दहेज, इंदिरा की हत्या, पाखंड, अंधविश्वास आदि पर भी बहुत ही सटीक ढंग से लिखा है। दिनांक 25 मई, 2010 को इनका देहांत हो गया।

कदम सिंह -

कदम सिंह का जन्म गाँव कोयर, जिला करनाल, हरियाणा में सन् 1920 के आसपास हुआ था। इनके पिता का नाम चढ़त सिंह और माता का नाम भगीरथी था। कदम सिंह के साथ उन्हीं के परिवार के रिश्ते में भाई लगने वाले ईशम सिंह

भी थे। ईशम सिंह ने उन्हें अपना गुरु बना लिया था। कई बार तो वे मिलकर सांग सृजन कर लेते थे। इसलिए अनेक रागनियों में उन दोनों का ही नाम छाप के रूप में मिलता है। कदमसिंह-रेशमसिंह ने निम्न सांगों का सृजन किया - 'वीर विक्रमाजीत', 'लैला-मजनू', 'जंगा-सुनेहरी', 'रूप-बसंत', 'दीपक-सलोनी', 'अंजना पवन', 'सत्यवान-सावित्री' आदि। इनके गुरु का नाम था- शौरण गिर। 'रूप-बसंत' सांग की रागनी की चौथी कली में उन्होंने अपने गुरु का नाम स्पष्ट लिखा है -

जब रानी की हालत देखी मेरी आई छाती भर कै।
ऐसी रानी नहीं मिलेगी देख लिए दुनिया फिर कै।
गुरु शौरण गिर के बिन औरत के सुन्ना हो राजा घरवार।।[182]

रूप-बसंत सांग में रूप व उसकी मौसी के संवादों को देखा जा सकता है

मौसी : मैं तेरी ताब्बेदार तू नाक चढ़ावै ना।
रूप : बेशर्मी की बात मात मनै भावै ना।
मौसी : मन मिल जा हौ मैला ना होती शर्म प्यार।
रूप : तेरी नैया डोलै खाटी डूबेगी अधर धार।
मौसी : आ बैठ कार त्यार रूप घबरावै ना।
रूप : टकरावैगी कार तू तेज चलावै ना।।[183]

इनके 'जंगा और सुनेहरी' सांग में अंग्रेज कालीन भारत के किसानों-मजदूरों की दयनीय स्थिति दिखाई गई है। जंगा जारिणी और षड्यंत्रकारी बेगम के चंगुल में फँस जाता है। वह शरबत के बहाने उसे शराब पिला देती है तथा उसके सच्चे बाल कटवा देती है। इस प्रकार उसकी ताकत समाप्त हो जाती है तो उस समय वह अपना अनुभव सभी के साथ साझा करता है -

मेरे की तरियो धरियो ना सिर बैर बुराई का।
मर्द जाम कोय करियो ना इतबार लुगाई का।
मदन कँवर दिया गेर कुएँ म्हं माणसखाणी नै।
एक पन्ना सेठ खोया बेईमान सेठानी नै।
सारी दुनिया जाणै मेनका तेरी कहणी नै।
महाराज भरथरी घर तै काढ्या पिंगला राणी नै।
बिक्रम भाई कै लाया था टिक्का स्याही का।।[184]

कदमसिंह सांग सृजित करते थे तथा रेशम सिंह उनका मंचन करते थे। इन्होंने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं, जो ईश्वर की आराधना और सामाजिक विषयों पर आधारित हैं।

अनका देहांत 15 दिसंबर, 2004 को हो गया।

रघुबीर दास शर्मा -

रघुबीर दास शर्मा का जन्म चरखी दादरी में पं. लक्ष्मीनारायण मरहटा के घर 15 अगस्त 1925 को हुआ था।

इन्होंने पर्याप्त मात्रा में लोकनाट्यों की सृजना की। इनके लोकनाट्य हैं - 'श्री पार्वती मंगल', 'सावित्री-सत्यवान', 'सती लज्जावती', 'दमयंती स्वयंवर', 'सत्यवादी हरिश्चंद्र', 'अंजना दिशोटा', 'श्रीकृष्ण लीला', 'द्रोपदी चीरहरण', 'परमभक्त सुदामा', 'श्रीकृष्ण सुदामा चरित', 'भक्त पूर्णमल', 'हीर-रांझा', 'राजबाला-अजीतसिंह', 'जगदेव-बीरमती', 'रतनकौर हरपाल', 'अमरसिंह राठौड़' आदि।[185] इनकी फुटकर रचनाएँ 'काव्य भगीरथी' पुस्तक में संकलित हैं।

रघुबीर शर्मा के अधिकांश लोकनाट्य पहले से प्रचलित कथाओं तथा लोकनाट्यों पर आधारित हैं। इनमें कथा की मौलिकता का अभाव तो है, परंतु कौरवी लोकनाट्यकारों में अधिकतर में यही प्रवृत्ति देखने को मिलती है।

इनके कथानकों में भक्ति, पति-पत्नी एकनिष्ठता, स्त्री की पीड़ा, बचनबद्धता, प्रेम की उत्कृष्टता आदि मुख्य भाव समाहित हैं।

'नल-दमयंती' लोकनाट्य में एक व्यक्ति के जीवन में उसकी बाल अवस्था को सबसे महत्त्वपूर्ण माना है। इसलिए माता-पिता को बचपन में अधिक सतर्क सचेत रहने की आवश्यकता है। बचपन में यदि कुसंस्कार बन गया तो वह जल्दी से जाता नहीं है। कवि का कथन काबिलेगौर है -

बाल अवस्था की शिक्षा ही काम उमरभर आती है।
पत्थर जैसी लकीर पड़ज्या जो आदत पड़ जाती है।
लाख यतन करने से भी वह दूर नहीं हो पाती है।
रस रूप जीवन म्हं रहती मिल अमृत की भांति।[186]

कवि रघुवीर दास शर्मा के लोकनाट्य 'जगदेव बीरमती', 'रतनकौर हरपाल', 'सती लज्जावती' आदि विशुद्ध सामाजिक लोकनाट्य हैं।

चंदन सिंह बीबीपुर -

चंदन सिंह बीबीपुर का जन्म गाँव बीबीपुर, जिला जींद, हरियाणा में पिता श्री मातूराम व माता श्ररमती मनभरी देवी के घर दिनांक 3 जनवरी, 1941 को वाल्मीकि जाति हुआ था। इनके गुरु का नाम ज्ञानचंद था। ज्ञानचंद जी इन्हीं के गाँव से थे। चंदन सिंह जी डीटीसी (दिल्ली ट्रान्स्पोर्ट कॉर्पोरेशन) में स्टोर-कीपर के पद पर कार्यरत थे। खाली समय में ये सांस्कृतिक कार्यक्रम और लोकनाट्य सृजन करते थे।

चंदन सिंह रागनी कंपीटिशन के खास कलाकार थे। कई बार इन्होंने इन प्रतियोगिताओं में प्रथम स्थान प्राप्त किया था। इनके लोकनाट्यों के नाम हैं - 'मीराँबाई', 'शाही लकड़हारा', 'ब्रिगेडियर होशियार सिंह', 'पूरणमल', 'सरवर-नीर', 'नौटंकी-फूलसिंह', 'धर्मजीत-राजबाला' आदि। इन सात लोकनाट्यों के अतिरिक्त इन्होंने पर्याप्त मात्रा में फुटकर रागनियाँ भी लिखीं।

इनका देहांत 22 अक्तूबर, 2010 को हो गया।

हरदेवा सिंह -

हरदेवा सिंह का जन्म 15 जनवरी 1940 को गाँव मकड़ौली खुर्द, जिला रोहतक में हुआ था।[187] इनके पिता का नाम श्री रंगीराम और माता का नाम भगवानी देवी था। ये चमार जाति से थे। बचपन से ही इनको गाने व रागनी सृजन का शौक हो गया था।

इन्होंने अपने ही गाँव के अमरसिंह को अपना गुरु बनाया तथा उनके सान्निध्य में गायन कला में पारंगत हो गए। इन्होंने 'चापसिंह सोमवती', 'कृष्ण-सुदामा', 'नरसी का भात', 'गऊ हरण', 'नेता जी सुभाष चंद्र बोस', 'बिल्वा-मंगल'[188] आदि सांगों की रचना की। उनकी अपार ख्याति को देखते हुए उन्हीं के गाँव के कर्णसिंह मकड़ौलिया ने भी उन्हीं को अपना गुरु बनाया। हरदेवा सिंह ने अनेक फुटकर रागनियों की भी रचना की। राजीव गाँधी की हत्या पर लिखा गया इनका गीत हरियाणाभर में पर्याप्त सुप्रसिद्ध हुआ था। अपने गुरु अमरसिंह का नाम इन्होंने एक रागनी की चौथी कली में कुछ इस प्रकार लिया है -

हरदेवा सिंह दास चरण का गुरु अमरसिंह का चेरा सै।
के फरयाद करूं तेरे आगै तनै सब क्यांहे का बेरा सै।
तू दयावान सै आप काट दे जुणसा संकट मेरा सै।
तेरी दया बिन मन मंदिर म्हं बिलकुल घोर अंधेरा सै।
प्यार का बंधन बांध दिया मोह ममता का जाल तू ही।।[189]

लोकनाट्यकार हरदेवा सिंह युगबोधीय चेतना से पूर्णतः सजग-सचेत कवि थे। वे आजादी के कुतूहल और आकांक्षाओं के समय के कवि थे जो देख रहे थे कि जिस कारण आजादी आई थी, वह तो फलीभूत हो ही नहीं रहा। राजनीतिक लोक अपना घर भरने में लग गए हैं। भ्रष्टाचार, जातिवाद, आतंकवाद, बेईमानी सब कुछ यूं का यूं बरकरार है। नैतिक मूल्य डूब रहे हैं। कवि अपना धर्म समझकर समाज के यथार्थ को लोगों के समक्ष रखता है। ऐसी ही युगबोधीय चेतना से परिपूर्ण एक रागनी की टेक तथा पहली कली दर्शनीय है -

कौण बचावै आज देश नै इसे बख्त ओळे म्हं।
देश उजड़ता दिक्खै सै मनै कुर्सी के रोळे म्हं।।
इस कुर्सी खातिर देश के नेता दीन धर्म नै खोजाँ सै।
अपने घर दुश्मन आगै बात कान म्हं चोजाँ सै।
जात पाँत का जहर गेर कै बीज नाश का बोजाँ सै।
जनता जलती ये आग बाळ कै भीतर बड़ कै सोज्याँ सै।
कौण नाट ज्या होण लाग रही दोफारी दिल धोळे म्हं।[190]

हरदेवा मकड़ौलिया की फुटकर रागनियों में व्यवस्था पर करारा तंज झलकता है।

सफदरजंग राणा -

सफदरजंग राणा का जन्म 1947 के आसपास रुस्तम ंग राणा के घर गाँव छपरौली जिला बागपत में हुआ था। इनकी माता का नाम रक्खीजंग राणा था। इनकी पत्नी का नाम पटवारनजंग राणा था। इनके गुरु का नाम था - सरूपा नाथ। इन्होंने अनेक लोकनाट्यों की रचना की। इनके लोकनाट्यों के नाम हैं - 'सेठ ताराचंद', 'चंद्रहास', 'राजा हरिश्चन्द्र', 'नरसी का भात' (दो भाग) 'गुरु गोरखनाथ जी की कथा' और रविदास जी के भजन। इन्होंने देशभक्ति भाव की अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं। इनके साथ-साथ इन्होंने 'धरती धकेल', 'खुर्पापाड़' और 'सोल्हू का ब्याह' जैसे हास्य नाटकों का भी सृजन किया। इन्होंने अनेक सामाजिक समस्याओं पर रागनियाँ लिखीं। इनकी आवाज लोगों के सिर चढ़कर बोलती थी। इन्होंने लंबे समय तक आकाशवाणी पर भी गाया। शराब को लेकर पति-पत्नी की नोक-झोंक दर्शनीय है -

पत्नी : दारू पीणी छोड़ पिया तेरा चेहरा पड़ग्या काळा हो।
पति : पीवण दे रंग लेवण दे गोरी क्यूं कर रही सै टाळा हो।[191]

महंगाई पर कटाक्ष दर्शनीय है -

सब कहै महंगाई महंगाई, महंगाई कहाँ।
चलैं नोट करारे जो देखे जहाँ।
गली रै गली कूचे कूचे रंग ढंग देख अचरज भारी।
नंगे नाच और सरकस देखैं बाल बूढ़े अनेक मस्ती छारी।
जा कै लेन म्हं लागै टिकटाँ खातर।
चाहे रोटी खाण का घर म्हं ना रहे जाथर।
खावै से मिठाई रै मिठाई होटल के म्हां।
चलै नौट करारे जो देखे जहाँ।[192]

'राजा हरिश्चन्द्र' लोकनाट्य में जब रोहताश को विषियर डस लेता है तो वह अपनी माता को पुकारता है। उस समय की मार्मिक रागनी कुछ इस प्रकार है

डस गया नाग बैरी मात जहरी बाग म्हं।
डाका री पड़ग्या लुटगी माया तेरी बाग म्हं।
एक डंक लाया गिरग्या चक्कर खा कै मात मैं।
काया म्हं भड़क लागरी जहर चढ़या गात म्हं।
हाय मरग्या मात तेरा काल घेरी बाग म्हं।[193]

सफदरजंग राणा ने बहुत ही सामान्य से लगने वाले विषयों पर रागनियाँ लिखीं। इनकी रागनियों में परस्पर मनोविनोद अधिक है। इनको मस्ती, चुहल और चुटकलेबाजी का स्वस्थ मनोरंजन का कवि कहा जा सकता है। दिनांक 29 जुलाई 2012 को इनका देहांत हो गया।

पं. रामरतन कौशिक -

पं. रामरतन कौशिक का जन्म सन् 1924 में पिता मामराज एवं माता पणमेशरी के घर गाँव टीला जिला गाजियाबाद में उत्तर प्रदेश में हुआ। इनकी पत्नी का दयावती था। इनके गुरु का नाम था प्रेमचंद। प्रेमचंद जी पं. रामरतन कौशिक के पिता के मामा लगते थे।[194] (रामकुमार शर्मा)

पं. रामरतन कौशिक ने अनेक लोकनाट्यों की रचना की। उन द्वारा रचित लोकनाट्यों के नाम है - 'डाकू सुन्दर सिंह', 'सरवर-नीर', 'सावलदे राजा कारक', 'मां की ममता', 'द्रोपदी स्वयंवर', 'शल्य पर्व', 'गदा पर्व', 'दुर्योधन', 'अभिमन्यु विवाह', 'श्रवण कुमार', 'सौदागर बच्चा प्रेमवती', 'जानी चोर महकदे', 'नल-दमयंती',

'संत रविदास', 'हरिश्चंद्र', 'रणक्षेत्र में अर्जुन', 'वनपर्व-पाण्डव पर्व', 'उद्योग पर्व', 'पांडव जन्म', 'बागड़ देश की लड़ाई' (बाबा जाहरसिंह का दूसरा भाग), 'ध्रुव भगत', 'अजीत सिंह राजबाला', 'नौटंकी', 'राजा मोरध्वज', 'पूर्णमल', 'नरसी का भात', 'सत्यवान सावित्री', 'रूप-बसंत', 'चंद्रवती नासकेतु' आदि।

अपने गुरु के विषय में रामरतन टीला ने इस प्रकार जानकारी दी है -

ज्ञान बिना मन मूरख मेरा शरण को त्याग हठीला हुआ है।
विद्याहीन भरमता डोले मन विषयों म्हं पीला हुआ है।
कामाशक्त भोग म्हं रंजित जड़ सम चित मशीला हुआ है।
प्रेम गुरु सेवा से कुछ ज्ञान हुआ मन ढीला हुआ है।[195]

'सौदागर बच्चा प्रेमवती' लोकनाट्य में कवि रामरतन ने परनारी के जहर की बेल समान बताया है। यह लोककला का पारिवारिक आदर्श भी रहा है। लगभग सभी लोकनाट्यकारों ने जारकर्म को परिवार नाम संस्था के लिए घातक बताया है। इस सांग में कवि का कहना है -

मस्ती म्हं ठोकर मारी ऋषियों म्हं क्रोध जागग्या।
श्राप दिया अजगर होग्या पुण्य उसमें जभी तागग्या।
कोटि वर्ष तक रहा दुख म्हं भुंडा रोग लागग्या।
न्यू परनारी बेल जहर की जिस पै चित पागग्या।
रामरतन कहै कर्मगति पै माणस बांधै सेहरा सै।[196]

लोकनाट्यों की अनेक कथाओं में पति-पत्नी के बीच जार-जारिणी के आने से परिवारों के सत्यानाश की कहानियाँ दिखाई जाती है। इसका कारण यह है कि सामाजिक अपने आस-पास ऐसे लोगों को चिह्नित करें और परिवार संस्था को बचाएँ।

इनका 'माँ की ममता' लोकनाट्य बेहद मार्मिक है। इसमें एक व्यक्ति वेश्या के झाँसे में आकर अपनी ही माता का हृदय निकालकर वेश्या को सौंप देता है। उसकी माता मरते समय भी उसकी मंगल कामना करती है। रागनी का अंश दर्शनीय है -

काढ़ कटारी चढ़ा छाती पै जहाँ दूध पिया था।
तेज कटारी मार दई करा बज्र का हिया था।
तड़फ-तड़फ बुढ़िया बोली हर का ध्यान किया था।

मेरे बेटे तू सुख से बसिये प्राण त्याग दिया था।
ले कै चला कालजे नै चल वेश्या धोरै आया।।[197]

रामरतन ने प्रायः पहले से प्रचलित कथाओं पर ही लोकनाट्यों का सृजन किया। इनका इनके आस-पास पर्याप्त प्रचार हो गया था। इनका समूह 'टीले की टोली' के रूप में जाना जाता था। इन्होंने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं, जिन्हें वे अक्सर लोकनाट्यों के प्रारंभ से पहले या बाद में गाया करते थे। भारत की राजनीति में आई कलुषता के लिए कवि रामरतन ईश्वर से दूर करने की याचना करता है -

हे भगवान दया के सागर दूर कंगाली कर दे।
देश की जनता दुखी तू इसका पैदा वाली कर दे।[198]

x *x* *x*

देश की सत्ता आज प्रभु फिर गुंडों ने अपनाई है।
अंग्रेजी तालीम आज भी देश के सिर मंडलाई है।
हिन्दी पढ़ें मिनिस्टर इस इंगलिश ने खाली कर दे।[199]

पं. रामरतन कौशिक की रचनाओं में भाषा की स्वाभाविकता का गुण विद्यमान है। दिनांक 11 जून 2008 को इनका देहांत हो गया।

निष्कर्ष -

इस काल में कौरवी लोकनाट्य में सामाजिक उद्‌भावना के नवीन आयाम रचे। इस काल की सबसे महती विशेषता थी कि इन लोकनाटयकारों ने अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता का निर्वहन भी किया था। इस समय और भी अनेक लोकनाट्यकार अपने-अपने क्षेत्र में इस विधा में चार चाँद लगा रहे थे। चंद्रलाल बादी के चाचा मांगेराम ने अपने ही बड़े भाई मंगलचंद को अपना गुरु बनाया। चंद्रलाल बादी के शुरुआती दौर में मांगेराम ने उनकी खूब मदद की। वे रागनियाँ भी लिखते थे और उन्होंने अनेक सांगों का निर्माण भी किया था। इनका 'इंदल दिसोटा' पयाप्त सुप्रसिद्ध हुआ था। इस सांग में कहीं-कहीं चंद्रलाल बादी की भी रागनियाँ मिलती हैं। कहीं-कहीं इनकी संयुक्त छाप मिल जाती है, यथा -

चाली जा बांदी इब घणी वार लावै मत।
सोने के पहरा दूं कड़े बात मेरी तान सत।
अभिमानी अज्ञानी मांणस डूब जा सै अलबत।

प्राकृति और जीव ईश्वर अनादी हैं पाँचों तत्त्व।
चंद्र मांगेराम घटा ले पत छेड़ कै बदकार नै।।[200]

जब चंद्रलाल बादी का उभार हुआ तो मांगेराम का अवसान होता चला गया। इस काल में जयसिंह बघेल जोधपुर, जिला पलवल, हरियाणा, पं. भगवान सिंह ब्रजवासी उर्फ सहाय गाँव खाँमी, पलवल, हरियाणा (नल-दमयंती), अभयराम शर्मा खटौली, सहारनपुर (झाँसी की रानी), चौ. बलवंत सिंह नंबरदार (धर्मपाल शांताकुमारी, अंजना-पवन, विक्रम-भरथ्री, विराट पर्व, चापसिंह-सोमवती), जवाहरलाल सोनी पाटली (मस्ताना आशिक), रघुबीर शरण बेचैन (ऋषिपाल चतरा), लटूर सिंह मल्हैड़ा (दहेज प्रथा), रामप्रसाद नौगमा (ऊषा अनिरुद्ध लीला), शेरसिंह जांगड़ा सारंगपुर, हरियाणा (फौजी की बहू), बिट्टू सिंह दौलतगढ़ (द्रोपदी चीर हरण) आदि ने अनेक लोकनाट्यों का सृजन किया।

लोकनाट्यकार पुरानी कथाओं को नवीन परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कर रहे थे तथा नए विषयों पर भी लोकनाट्य रच रहे थे।

यह समय आज़ादी के लगभग चालीस सालों के बाद का समय था और बीसियों वर्ष तक रहा। इस समय आज़ाद भारत के कई युद्ध हो चुके थे। लोकनाट्यकार विदेशों के हस्तक्षेप से परिचित थे। समाज में चल रहे सामाजिक राजनीतिक आंदोलनों का उस पर प्रभाव पड़ रहा था। वे दहेज की विकरालता को महसूस कर रहे थे, जाति-पाँति की विडम्बना उन्हें झकझोर रही थी। वे इस बात को अनिवार्य मानने लगे थे कि यदि सामाजिक मसलों को उन्होंने लोकनाट्यों का विषय नहीं बनाया तो दर्शक उन्हें नकार देंगे। इसलिए सामाजिक विषय लोकनाट्यों में स्थान पाते चले गए। यह समय सांगियों की सामाजिक प्रतिबद्धता का समय था। उन्होंने सांगों की मार्फत अनेक स्कूल, कॉलेज, चौपाल, धर्मशाला, गौशालाएँ बनवाईं। अनमेल विवाह, नैतिकता, पर्यावरण, सामाजिक-धार्मिक सौहार्द, दानशीलता, स्त्री-पुरुष बराबरी, राष्ट्रीय चेतना, सुखद पारिवारिक माहौल इस काल के लोकनाट्यकारों के मुख्य ध्येय थे। 'फूलनदेवी' पर लोकनाट्य की निर्मिति इस काल की महती विशेषता थी, जो स्त्री स्वाभिमान का मार्ग-प्रशस्त करती थी। विशेषकर उत्तर प्रदेश में जो चेतना कांशीराम लेकर आए थे, वह लोकनाट्य के क्षेत्र में भी भागीदार बन रही थी।

ऐसा नहीं था कि पारंपरिक विषयों पर लोकनाट्यों की रचना एकाएक बंद हो गई थी, वे अब भी रचे जा रहे थे परंतु उनके समानांतर लोकनाट्यकारों का एक ऐसा वर्ग उभरा था जो नवीन और मौलिक कथाओं पर लोकनाट्य लिखने और मंचन

करने में विश्वास करता था। चंद्रलाल बादी बाकायदा एक चलता-फिरता सांग उद्योग थे। उन्होंने अपनी सांग लोकप्रियता के कारण अकूत धन कमाया। वे सांग का पर्याय बन गए। उन्होंने पर्याप्त मात्रा में सांगों का सृजन व मंचन किया।

भाषा की दृष्टि से भी यह काल लोकनाट्य का परिपक्व अवस्था का काल था। पृथ्वीसिंह बेधड़क युग और महाशय दयाचंद मायना युग की सुधारवादी प्रवृत्ति का अगला पड़ाव इस काल में देखा जा सकता है। इस काल में रागनी के लिए फिल्मी गीतों की तर्ज प्रायः स्वीकार कर ली गई। चंद्रलाल बादी फिल्मी गीतों पर रागनी बनाने में इतने माहिर थे कि जब वे उस रागनी को गाते थे तो लोग फिल्मी धुन को भूल जाते थे और वह धुन कौरवी लोकगीतों में घुलकर चंद्रलाल बादी के नाम से पक जाती थी। उनकी रागनी 'होग्या गात सूख के माड़ा पिया दे-दे मनै कुव्हाड़ा' इतनी सुप्रसिद्ध हो गई थी कि उनके बाद इस रागनी की तर्ज को आधार बनाकर अनेक लोकनाट्यकारों ने रागनियाँ बनाई थीं।

यह समय दोचश्मी रागनी का भी स्वर्णकाल कहा जा सकता है। चंद्रलाल बादी ने अपार संख्या में दोचश्मी रागनियाँ लिखीं और हर ढंग की लिखीं। दोचश्मी रागनियाँ लोकनाट्य में नाटकीयता की मात्रा को द्विगुणित कर देती हैं। इनसे पात्रों की मनःस्थिति बेहतर तरीके से अभिव्यक्ति पाती है।

संदर्भ -

1. सांग सम्राट चंद्रलाल बादी ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पी-16, सेक्टर-14, पंचकूला-134113 (हरियाणा), प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ 24
2. वही, पृष्ठ 24
3. वही, पृष्ठ 25-26
4. वही, पृष्ठ 26
5. वही, पृष्ठ 32
6. वही, पृष्ठ 33-34
7. वही, पृष्ठ 34
8. वही, पृष्ठ 6-8 (अनुक्रमणिका)

9. वही, पृष्ठ 62-63
10. वही, पृष्ठ 72
11. वही, पृष्ठ 75-76
12. वही, पृष्ठ 82
13. वही, पृष्ठ 82-83
14. वही, पृष्ठ 91
15. वही, पृष्ठ 91
16. वही, पृष्ठ 96
17. वही, पृष्ठ 96-97
18. हरियाणवी सांग : एक परिशीलन, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, हरियाणा, प्रथम संस्करण 2021, पृष्ठ 254
19. वही, पृष्ठ 254
20. वही, पृष्ठ 255
21. वही, पृष्ठ 257
22. वही, पृष्ठ 245
23. वही, पृष्ठ 256
24. वही, पृष्ठ 258
25. वही, पृष्ठ 258
26. वही, पृष्ठ 257
27. वही, पृष्ठ 257
28. वही, पृष्ठ 256
29. कवि लिल्ला मीर ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, शब्दश्री प्रकाशन, 1087/30, गली नं. 5, मयूर विहार, गोहाना रोड, सोनीपत, हरियाणा - 131001, प्रथम संस्करण 2024, पृष्ठ 18
30. वही, पृष्ठ 14 (अनुक्रमणिका)
31. वही, पृष्ठ 29
32. वही, पृष्ठ 39
33. वही, पृष्ठ 40
34. वही, पृष्ठ 44

35. वही, पृष्ठ 44-45
36. वही, पृष्ठ 45
37. कौरवी लोक साहित्य, डॉ. नवीन चंद्र लोहनी, भावना प्रकाशन, 109-ए, पटपड़गंज, दिल्ली-110091, द्वितीय संस्करण 2016, पृष्ठ 77
38. सांगीत सरवर नीर (गुच्छा), बलराज सिंह भाटी, भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 1
39. अजीतसिंह-राजबाला (गुच्छा), बलराज सिंह भाटी, भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर, संस्करण 1978, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 20
40. अजीतसिंह-राजबाला (गुच्छा), बलराज सिंह भाटी, भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर, संस्करण 1978, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 25
41. सांगीत गोपीचंद (गुच्छा), बलराज सिंह भाटी, भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 3
42. सांगीत सरवर नीर (गुच्छा), बलराज सिंह भाटी, भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 2
43. लोककवि पण्डित देबीदत्त, डॉ. केशोराम शर्मा, शब्द सेतु, ए-140, गली नं. 3, कबीर नगर, दिल्ली - 11094, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ 19
44. वही, पृष्ठ 23
45. वही, पृष्ठ 22
46. गुरशरण मुक्तक शतक, वैद्यभूषण पं. गुरशरण दास, ग्राम बैरंगपुर उर्फ नई बस्ती, दादरी, गौतमबुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 1
47. महाराणा प्रताप (पहला भाग), वैद्यभूषण पं. गुरशरण दास, भगवत बुक डिपो, पुरानी तहसील, मेरठ, प्रथम संस्करण 1980, पृष्ठ 1
48. कौरवी लोक साहित्य, डॉ. नवीन चंद्र लोहनी, भावना प्रकाशन, 109-ए, पटपड़गंज, दिल्ली-110091, द्वितीय संस्करण 2016, पृष्ठ 71
49. श्री सुदामा चरित्र, वैद्यभूषण पं. गुरशरण दास, श्री रामचरित मानस मंडल, नई बस्ती, ग्रेटर नोएडा, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 2
50. सेवाराम बखेता ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, शब्द-शब्द संघर्ष प्रकाशन, 189-सी, गली नं. 5, मयूर विहार, गोहाना रोड, सोनीपत - 131001 (हरियाणा), प्रामि संस्करण 2019, पृष्ठ 21

51. वही, पृष्ठ 21
52. वही, पृष्ठ 13 (अनुक्रमणिका)
53. वही, पृष्ठ 32
54. वही, पृष्ठ 33
55. वही, पृष्ठ 33
56. वही, पृष्ठ 33
57. वही, पृष्ठ 35
58. वही, पृष्ठ 35-36
59. वही, पृष्ठ 41
60. वही, पृष्ठ 41
61. महाशय दीवान सिंह सिंघवा ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, अयन प्रकाशन, जे-19/39, राजापुरी, उत्तम नगर, नई दिल्ली - 110059, प्रथम संस्करण 2023,
62. वही, पृष्ठ 31
63. वही, पृष्ठ 11-12 (अनुक्रमणिका)
64. वही, पृष्ठ 79
65. कवि सुल्तान सिंह शास्त्री रचनावली, प्रो. राजेन्द्र बड़गूजर, अमन प्रकाशन, 104-ए/80 सी, रामबाग, कानपुर - 208012 (उ.प्र.) प्रथम संस्करण 2021, पृष्ठ 18
66. वही, पृष्ठ 18
67. वही, पृष्ठ 21
68. वही, पृष्ठ 22
69. वही, पृष्ठ 36
70. वही, पृष्ठ 39-40
71. वही, पृष्ठ 44-45
72. वही, पृष्ठ 45
73. वही, पृष्ठ 46

74. वही, पृष्ठ 50

75. वही, पृष्ठ 50

76. श्यामलाल सौरम (काच्चा श्याम) रचनावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, साहित्य संस्थान, ई-10/660, उत्तरांचल कॉलोनी, (नियर संगम सिनेमा), लोनी बॉर्डर, गाजियाबाद- 201102, प्रथम संस्करण 2023, पृष्ठ 19

77. वही, पृष्ठ 19

78. वही, पृष्ठ 20

79. वही, पृष्ठ 26-27

80. वही, पृष्ठ 28

81. कवि शिरोमणि पं. जगदीश चंद्र वत्स ज्ञान सागर, बनारसी दास शर्मा एवं सुरेश जांगिड़ उदय, अक्षरधाम प्रकाशन, करनाल रोड, कैथल, हरियाणा - 136027, प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ 17

82. वही, पृष्ठ 3-4 (अनुक्रमणिका)

83. वही, पृष्ठ 22

84. वही, पृष्ठ 89

85. वही, पृष्ठ 148

86. वही, पृष्ठ 300

87. वही, पृष्ठ 21

88. लोकनाट्यकर रामकंवार खालेटिया ग्रंथावली, प्रो. राजेन्द्र बड़गूजर, वाग्देवी प्रकाशन, 1087/30, गली नं. 5, मयूर विहार, गोहाना रोड, सोनीपत-131001 (हरियाणा), प्रथम संस्करण 2022, पृष्ठ 29

89. वही, पृष्ठ 29

90. वही, पृष्ठ 30

91. वही, पृष्ठ 30

92. वही, पृष्ठ 16-17 (अनुक्रमणिका)

93. वही, पृष्ठ 64-65

94. वही, पृष्ठ 65

95. वही, पृष्ठ 66-67
96. वही, पृष्ठ 67-68
97. वही, पृष्ठ 68
98. वही, पृष्ठ 70
99. वही, पृष्ठ 71
100. वही, पृष्ठ 71-72
101. वही, पृष्ठ 73
102. वही, पृष्ठ 74
103. वही, पृष्ठ 74
104. पं. लक्ष्मीचंद वैद्य के पुत्र श्री अनिल शर्मा से हुई बात के अनुसार।
105. हकीकत राय, पं. लक्ष्मीचंद वैद्य, कुलभूषण कविराज पं. लक्ष्मीचंद शर्मा वैद्य शास्त्री, मुकाम पोस्ट गंगेरू, जिला मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 2
106. माँ का प्यार, पं. लक्ष्मीचंद वैद्य, पं. कृष्णदत्त कामेश्वर प्रसाद बुकसेलर्स, सर्राफा बाजार, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश, प्रामि संस्करण 2000, पृष्ठ 1
107. हकीकत राय, पं. लक्ष्मीचंद वैद्य, कुलभूषण कविराज पं. लक्ष्मीचंद शर्मा वैद्य शास्त्री, मुकाम पोस्ट गंगेरू, जिला मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 2
108. वही, पृष्ठ 27
109. माँ का प्यार, पं. लक्ष्मीचंद वैद्य, पं. कृष्णदत्त कामेश्वर प्रसाद बुकसेलर्स, सर्राफा बाजार, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश, प्रामि संस्करण 2000, पृष्ठ 1
110. भारत भूषण सांघीवाल हरियाणवी ग्रंथावली, डॉ. रामपत यादव, सुकीर्ति प्रकाशन, डी.सी. निवास के सामने, करनाल रोड, कैथल, हरियाणा - 136027, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ 7
111. वही, पृष्ठ 39-40
112. वही, पृष्ठ 384
113. वही, पृष्ठ 41
114. वही, पृष्ठ 42
115. वही, पृष्ठ 202

116. वही, पृष्ठ 224
117. कौरवी लोकनाट्यकार भाग 1 (संपादक डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर), अमित कुमार, ज्योति प्रकाशन, 1087-ए, गली नं. 5, मयूर विहार, गोहाना रोड, सोनीपत-131001 (हरियाणा), प्रथम संस्करण 2022, पृष्ठ 100
118. वही, पृष्ठ 101
119. वही, पृष्ठ 100
120. वही, पृष्ठ 100
121. वही, पृष्ठ 101
122. वही, पृष्ठ 102
123. वही, पृष्ठ 102
124. वही, पृष्ठ 102
125. वही, पृष्ठ 103
126. वही, पृष्ठ 104
127. कौरवी लोकनाट्यकार भाग 1, सं. राजेन्द्र बड़गूजर, चौ. रामशरण अलीपुरा, जसबीर सिंह, ज्योति प्रकाशन, 1087-ए, गली नं. 5, मयूर विहार, गोहाना रोड, सोनीपत - 131001, प्रथम संस्करण 2022, पृष्ठ 109
128. वही, पृष्ठ 110
129. वही, पृष्ठ 110
130. वही, पृष्ठ 110-111
131. वही, पृष्ठ 111
132. वही, पृष्ठ 111
133. वही, पृष्ठ 111
134. वही, पृष्ठ 112
135. वही, पृष्ठ 112
136. वही, पृष्ठ 112
137. वही, पृष्ठ 112
138. डाकू फूलनदेवी, ओमप्रकाश शिकारपुर, भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 1

139. वही, पृष्ठ 1-2
140. वही, पृष्ठ 22
141. सांगीत काला देव उर्फ जोबन आली हूर, ओमप्रकाश शिकारपुर, भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर, प्रथम संस्करण 1971उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 11-12
142. वही, पृष्ठ 19
143. अध्यापक रामकरण के पुत्र आनंद से साक्षात्कार।
144. वही, साक्षात्कार
145. भीमराव अंबेडकर, अध्यापक रामकरण, जवाहर बुक डिपो, गुजरी बाजार, मेरठ, प्रथम संस्करण 1994, पृष्ठ 1
146. वही, पृष्ठ 2
147. वही, पृष्ठ 7
148. वही, पृष्ठ 11
149. वही, पृष्ठ 18-19
150. वही, पृष्ठ 27
151. तड़फती चिताएँ उर्फ सास-बहू का झगड़ा, अध्यापक रामकरण, जवाहर बुक डिपो, गुजरी बाजार, मेरठ, प्रथम संस्करण 1994, पृष्ठ 5
152. वही, पृष्ठ 21
153. अध्यापक रामकरण के सुपुत्र श्री आनंद कुमार से साक्षात्कार द्वारा।
154. हस्तलिखित पांडुलिपि, मंगतराम भकलाना, संग्रहालय, चौ. तारा चंद शिक्षा एवं लोक कला संस्थान (रजि.), गाँव मलिकपुर, जिला सोनीपत, हरियाणा।
155. वही।
156. वही।
157. वही।
158. वही।
159. चित्र विचित्र, ठाकुर तुलाराम सिंह बेफिकर, भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 2
160. दुखित लड़की, ठाकुर तुलाराम सिंह बेफिकर, भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 3-4

161. वही, पृष्ठ 7
162. भयंकर समाचार, ठाकुर तुलाराम सिंह बेफिकर, भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 1
163. वही, पृष्ठ 2
164. सत्य की विजय, ठाकुर तुलाराम सिंह बेफिकर, भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 2
165. हस्तलिखित पांडुलिपि, रामेश्वर दत्त बदनारा, संग्रहालय, चौ. तारा चंद शिक्षा एवं लोक कला संस्थान (रजि.), गाँव मलिकपुर, जिला सोनीपत, हरियाणा।
166. वही।
167. वही।
168. वही।
169. असली सांगीत रतीभान रूपवती रानी, रामसिंह कलछीने निवासी, जवाहर बुक डिपो, पृष्ठ 107
170. वही, पृष्ठ 29
171. वही, पृष्ठ 18
172. वही, पृष्ठ 75
173. काव्य कुसुम, कवि स्व. कामसिंह जी, पृष्ठ 4-5
174. वही, पृष्ठ 49
175. वही, पृष्ठ 75
176. वही, पृष्ठ 3
177. हस्तलिखित पांडुलिपि, महाशय दीनदयाल, संग्रहालय, चौ. तारा चंद शिक्षा एवं लोक कला संस्थान (रजि.), गाँव मलिकपुर, जिला सोनीपत, हरियाणा।
178. वही।
179. वही।
180. वही।
181. वही।
182. वही।

183. वही।

184. वही।

185. हरियाणा के लोकगायक (रघुबीर दास शर्मा), डॉ. पूर्ण चंद शर्मा, गीतिका प्रकाशन, बिजनौर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 193

186. वही, पृष्ठ 196

187. हरियाणा के लोकगायक (रघुबीर दास शर्मा), डॉ. पूर्ण चंद शर्मा, गीतिका प्रकाशन, बिजनौर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 225

188. वही, पृष्ठ 226

189. वही, पृष्ठ 228

190. वही, पृष्ठ 228

191. हस्तलिखित पांडुलिपि, सफदरजंग राणा, संग्रहालय, चौ. तारा चंद शिक्षा एवं लोक कला संस्थान (रजि.), गाँव मलिकपुर, जिला सोनीपत, हरियाणा।

192. वही।

193. वही।

194. रामरतन कौशिक टीला के पुत्र रामकुमार भारद्वाज से साक्षात्कार।

195. जानी चोर महकदे, पंडित रामरतन कौशिक, प्र. भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश, संस्करण 1969, पृष्ठ 6-7

196. सौदागर बच्चा प्रेमवती, पंडित रामरतन कौशिक, प्र. भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश, संस्करण 1969, पृष्ठ 9

197. माँ की ममता, पंडित रामरतन कौशिक, प्र. भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश, संस्करण 1974, पृष्ठ 16

198. वही, पृष्ठ 16

199. वही, पृष्ठ 17

200. इन्दल दिसोटा, मशहूर सांगी चंद्रलाल भाट उर्फ बादी, जवाहर बुक डिपो, गुजरी बाजार, मेरठ शहर, संस्करण दूसरी बार, 1956, पृष्ठ 5

बारहवाँ अध्याय

अर्वाचीन युग

(सन् 2004 ई. - अद्यतन)

प्रस्तावना -

चंद्रलाल बादी के अवसान के साथ ही सांग का प्रभाव भी महीन पड़ने लग गया। हालांकि अनेक कवियों ने सांग के मंचन की प्रक्रिया को बनाए रखा। जिनमें सूरजबेदी, धर्मवीर भगानिया, रामशरण शर्मा, बालक श्यामलाल, विष्णु कौयर, धर्मपाल भूत माजरा, बसेसर भूखड़ी, सप्पो मीर, श्यौनाथ त्यागी, समंदर, प्रवीण कुमार निंदाना, ममदा चूहड़ माजरा, विष्णुदत्त जाँटी, रमेश पाई, वेदप्रकाश शर्मा (वेदा) अकरम खान, तौका सांगी, संजय खेड़ा मस्तान, गंगाराम, गयूर खेड़ा मस्तान, शहीद भारती कसेरवा, झम्मन सरूरपुर, नकली राम नांगल (उ.प्र.), सप्पो मीर, फौजी प्रेमसिंह, धर्मसिंह शंकरपुर, दमन-वेद, सुगल सिंह, प्रदीप कुमार आदि हैं।

इन सांगियों ने वर्तमान समय में भी सांग विधा के मंचन को जीवित रखा हुआ है। हालांकि अब दर्शक कम हो गए है। जिस प्रकार पहले दस-दस किलोमीटर से सांग देखने पहुँचा करते थे, अब वह दृश्य नहीं रहा। मोबाईल ने सब कुछ हजम कर लिया। परंतु अभी सत्तर-अस्सी की उम्र के वे दर्शक बचे हुए हैं जिन्होंने सांग का चरम अपनी आँखों में देखा हुआ है।

वर्तमान काल में ऐसे सांगी बहुत कम बचे हैं जो स्वयं लोकनाट्य लिखते हैं तथा उनको मंचित करते हैं। अब सांगी या तो अपने गुरु के बनाए हुए सांगों का मंचन करते हैं या कुछ सांगी ऐसे भी हो गए हैं जिन्होंने सांग को एक व्यवसाय के तौर पर लिया है। इनके लिए गुरु-शिष्य-परंपरा का कोई मायने नहीं हैं। ये किसी के भी सांग कर सकते हैं। जिसके सांग इन्हें आर्थिक लाभ पहुँचा सकते हैं, ये उसी सांगी के सांग करने लग जाते हैं।

इस विलुप्त होती जा रही विधा को बचाने के लिए सरकार भी आगे आई है। सरकार का संस्कृति मंत्रालय इस दिशा में सांगियों को प्रोत्साहन देने के लिए अनेक योजनाएँ बनाता है। सांग के मंचन के लिए एकमुश्त राशि का भी प्रावधान सांस्कृतिक विभागों द्वारा किया जाता है। हरियाणा कला परिषद्, हरियाणा साहित्य अकादमी इस दिशा में सक्रिय है।

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय द्वारा युवा समारोहों में सांग को एक विधा के रूप में शामिल किया गया है। क्षेत्रीय और अंतर्क्षेत्रीय युवा समारोहों में विभिन्न महाविद्यालयों के सांस्कृतिक प्रकोष्ठ मंजे हुए सांगियों की मदद से युवाओं को सांग का प्रशिक्षण दिलवाते हैं। इससे युवा सांग की धरोहर से परिचित होते हैं। हरियाणा में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र के सांस्कृतिक एवं युवा मामले विभाग द्वारा रत्नावली का आयोजन किया जाता है जिसमें सांग एक मुख्य विधा के रूप में होता है।

वर्तमान समय में लोक-संस्कृति से जुड़े अनेक लोकनाट्यकार लोकनाट्य लिखने में व्यस्त हैं। मंचन का उन्हें तनिक भी ज्ञान नहीं है। वे इसकी परवाह भी नहीं करते कि कोई उनके लोकनाट्यों का मंचन भी करे। कई लोकनाट्यकारों ने बहुत ही सुंदर लोकनाट्य लिखे हैं। इन लोकनाट्यकारों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है -

भागसिंह आर्य -

भगतसिंह आर्य का जन्म हरियाणा के जिला कैथल में गाँव चंदाना में पिता कन्हैयालाल एवं माँ धन्नीदेवी के घर सन् 1932 में हुआ था।[1] इन्होंने पाँचवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की। उसके बाद पिता के साथ खेती-बाड़ी के काम में लग गए। इनका झुकाव आर्यसमाज की ओर था। ये भारतीय किसान युनियन के भी सक्रिय सदस्य रहे। जब भी भारतीय किसान युनियन की रेलियाँ होतीं, तो इनसे रागनी की फरमाईश की जाती थी। ये स्वनिर्मित रागनी सुनाते थे। अपने ही गाँव के जयसिंह को इन्होंने अपना गुरु बनाया। इनका विवाह जाखोली गाँव की छोटी देवी से हुआ। लगभग 84 वर्ष की आयु में इनका देहांत 19 नवम्बर 2016 को हुआ।

भगतसिंह आर्य जाट जाति से थे। ये सुधारवादी कवि थे। इन्होंने 'डाक्टर भीमराव अंबेडकर', 'काव्य जीवनगाथा दीनबंधू चौधरी छोटूराम', 'श्री स्वामी विरजानंद सरस्वती जीवन गाथा' लोकनाट्य लिखे। इसके अतिरिक्त 'ज्ञान का प्रकाश' व 'भजनमाला' इनके फुटकर रागनियों के संग्रह हैं।

इन्होंने लोकनाट्य 'श्री स्वामी विरजानंद सरस्वती जीवन गाथा' में विरजानंद जी के जीवन को कथा चरित के रूप में लिया है कि किस प्रकार वे अंधा होने के कारण घर से निकाल दिए गए और वे पूर्णानंद के संपर्क में आते हैं और वेदों आदि का अध्ययन करते हैं। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में लोगों को तैयार करते हैं। वे संदेश देते हैं -

स्वामी बोल्या पराधीन तो सुपने म्हं भी सुख नाई।
जगह जगह अंग्रेजों से काफी जनता टकराई।
नाना साहिब, तात्यां टोपे व लड़ी लक्ष्मीबाई।
गद्दार मिले अंग्रेजों से फिर आपस म्हं गुदगी खाई।
भारत पै थी करड़ाई जंग सैंकड़ों साल रहा जारी।[2]

इस लोकनाट्य में कवि भागसिंह आर्य ने भारतीय राजाओं के स्वार्थी चरित्र पर भी प्रकाश डाला है। 'राज्यों की मीटिंग बुलाई आगरा म्हं अंग्रेजों नै' रागनी की चौथी कली में लिखते है-

भागसिंह इस देश की गेल्यां राजे करगे गद्दारी।
सब राजों ने अपनी अपनी गद्दी लागे थी प्यारी।
सारी शर्त लिखाई आगरा म्हं अंग्रेजों नै।[3]

इस लोकनाट्य में दयानंद सरस्वती का भी विरजानंद से मिलन का भावुक दृश्य है। पूर्णानंद स्वयं दयानंद को विरजानंद से मिलने की कहते हैं। दयानंद अपनी तमाम शंकाएँ विरजानंद के समक्ष रखते हैं -

दयानंद बोल्या स्वामी जी मेरा मन का भ्रम मिटादे।
खा लिए धक्के बहुत जगह मनै असली राह दिखादे।[4]

इस रागनी में दयानंद पाखंड, साधुओं के नैतिक पतन, जातिवाद आदि को लेकर चिंतित दिखाई देते हैं। इस लोकनाट्य में एक निस्संतान सेठ लाला ज्योतिप्रसाद की उपकथा भी जोड़ी गई है जो थानेसर में एक गुरुकुल का निर्माण कराते हैं। यह काम वे आर्यसमाज की शिक्षाओं से प्रभावित होकर करते हैं। कवि तीव्र व्यंग्य के साथ पाखंडियों, कर्मकांडियों को पोप की संज्ञा भी देते हैं।

कथा राजा मोहन राय लोकनाट्य में कवि ने बाल विवाह, सतीप्रथा और विधवा विवाह जैसे विषयों को छुआ है। सतीप्रथा के पीछे छुपे पुजारियों के लालची

चरित्र की पोल खोली गई है। राजा राममोहन राय ने अपनी भाभी के सती होने के बाद प्रण किया कि वे इस प्रथा के खात्मे के लिए काम करेंगे। इस लोकनाट्य में कई रागनियाँ मार्मिक हैं जो स्त्रियों की वेदना को प्रकट करती हैं।

लोकनाट्यकार भागसिंह आर्य ने छोटूराम के जीवन को लेकर 'काव्य जीवन गाथा दीनबंधु चौधरी छोटूराम' लोकनाट्य भी लिखा। इस लोकगाथा में कवि ने शिक्षा की महत्ता और छोटूराम द्वारा किसानों के लिए किए जाने वाले ऐतिहासिक कार्यों का उल्लेख किया है। शिक्षा पर कवि का संदेश दर्शनीय है -

बिना पढ़ै तो पुरुष पिता पशु बराबर सै।
अनपढ़ माणस की दुनिया म्हं सभी जगह मर सै।
यही फिकर सै पढ़ने सै मनै कदे बीच म्हं हटा दे।
मैं आगे पढ़णा चाहूँ सूँ मनै दिल्ली दाखिल करवा दे।[5]

इनका एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण लोकनाट्य है - डाक्टर भीमराव अंबेडकर। शीर्षक पृष्ठ पर उन्होंने डॉ. बी.आर. अम्बेडकर को भारत के 'वीर सपूत' कहा है। इस लोकनाट्य का उद्देश्य डॉ. अम्बेडकर के संघर्ष को दर्शाना है। इस लोकनाट्य में अंबेडकर एक जगह कहते हैं -

हिन्दू हो कै हिन्दू गेल्यां क्यूं आ के टकराओ सो।
मेरा धर्म के न्यारा सै भाई क्यूं मनै धमकाओ सो।
मन्नै धूर्त बताओ सो आपस म्हं खोद रहे झेरा।
खुद राजा नै भेज्या इसमें कोई खोट नहीं मेरा।[6]

इस सांग में कवि भागसिंह आर्य ने डॉ. अम्बेडकर की जाति महार के बजाय चमार बताई है। वे मुझसे मिलने कैथल आया करते थे। मैंने उनकी इस त्रुटि पर ध्यान दिलाया, तो बोले, 'महार चमार एक्के बात है।' हांलाकि उन्हें अपनी त्रुटि का अहसास हुआ। उत्तर भारत में जिस प्रकार चमारों ने डॉ. अम्बेडकर को अपनाया उससे यह भ्रम होना स्वाभाविक था।

भागसिंह आर्य ने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं। उन्होंने जाति-पाँति, कन्या भ्रूण हत्या, स्त्री शिक्षा, फौजियों की वीरता, घर-परिवार की गलत नीतियों को दबंगता के साथ उठाया है। इनकी रागनियों में पर्याप्त सुगमता और शब्द प्रवाह स्वाभाविक है।

लड्डन सिंह बंजारा -

लड्डन सिंह का जन्म 5 सितंबर 1941 को गाँव खेड़ी तगान जिला मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश में हुआ। इनके पिता का नाम गिरवर सिंह व माता का नाम रेवा देवी था। इन्होंने अपने चाचा भिक्कूराम को ही अपना गुरु बनाया। लोग इन्हें 'दिलखुश' नाम से भी पुकारते थे।

इनके द्वारा रचित लोकनाट्यों के नाम हैं - 'कीचक वध', 'कर्णवध', 'द्रोपदी चीर हरण', 'द्रोण वध', 'महाभारत की आखिरी लड़ाई', 'कृष्ण भात', 'द्रोपदी स्वयंवर', 'द्रोण प्रतिज्ञा', 'चक्रव्यूह की लड़ाई', 'अंधे का विवाह', 'कर्ण-कुंती संवाद', 'कृष्ण समझौता', 'मलखान वध', 'हीर-रांझा', 'दुष्यंत शंकुतला', 'सेठ ताराचंद', 'पृथ्वीसिंह किरणमई', 'पिंगला-भरथरी', 'हकीकत राय', 'अजीतसिंह-राजबाला', 'लक्खी बंजारा', 'शहीद भगत सिंह', 'गोपीचंद', 'नरसी का भात' आदि।

इनका देहांत 20 जुलाई 2020 को हुआ।

वे अपने लोकनाट्य की शुरुआत अपने गुरु के स्मरण व एक भेंट से करते हैं। गुरु के स्मरण वे इस प्रकार करते हैं -

ऊँ नमो श्री भगवती मेरी हंस वाहिणी मात।
बीणा पुस्तक धारणी माई लज्जा तेरे हाथ।
मनै सुमर लिए जगदीश।
श्री भिक्कूराम सतगुरु मेरे कहूँ चरण निवाकर शीश।।[7]

'द्रोपदी चीर' सांग में कवि ने इस संसार की नश्वरता का पहली ही रागनी में कुछ यूं व्यावहारिक रूप में वर्णन किया है -

अय मूर्ख तेरी होय रजिस्ट्री ना, बकवास करै क्यूं ठाली।
कमरे वाला कमने नै जने कद म्हं करवा दे खाली।
तेरा मुश्किल होना पार डूबजा तू जिन लहरों पै बहता है।
तेरा गलत हिसाब देख के मेरा जी दुख सहता है।
तेरा ना तुझे भूल लगी तू किसको अपना कहता है।
तुझे जगत सेठ ने दे रखा तू जिस कमरे म्हं रहता है।
तेरे नाम के इस कमरे पै नंबर पड़े हुए जाली।[8]

कवि ने उस ईश्वर को जगत सेठ कहा है। वही एक मालिक है बाकी सभी कमरों के किरायेदार हैं। कुछ दिन के लिए कमरों में ठहरते हैं और उनको चले ही जाना होता है।

लड्डन सिंह लोकनाट्य के बीच में दोहा आदि का उपयोग भी करते है तथा राधेश्याम तर्ज का भी प्रयोग करते है। कथा के सूत्र जोड़ने में राधेश्याम तर्ज अपेक्षया प्रभावी होती है। एक प्रयोग दर्शनीय है-

दोहा : सुन दुर्योधन की बात को चला दुःशासन बलवान।
कुछ देर के बीच म्हं गया पहुँच महल दरम्यान।[9]

x x x

राधेश्याम : गया पहुँच महल दरम्यान द्रोपदी से ये फरमाया है।
उस अंधे के अंधे ने आज तुझे सभी बीच बुलवाया है।
चलना पड़ेगा जरूर तुझे अब देर करन का काम नहीं।
अंधे का अंधा कहना सीख ले नहीं तो छत्राणी के जाम नहीं।
इतनी सुनके द्रोपदी बोली देवर क्या भरके सांग चले।
दारू का नशा करा तुमने क्या कहीं खा करके भांग चले।
क्या कहीं खा करके भांग चले ये बात समझ म्हं ना आवे है।
मर्दों की पंचात बीच म्हं बता कौन स्त्री जावे है।[10]

इनके दोहा और राधेश्याम का स्वभाव कुछ-कुछ कुंडलिया छंद के समान हो गया है। लड्डनसिंह लोकप्रिय लोकनाट्यकार और गायक हुए। दूर-दूर तक इनका नाम था। इन्होंने फुटकर रागनियाँ भी पर्याप्त मात्रा में लिखीं। इनकी फुटकर रागनियों के विषय समसामयिक समस्याएँ होती थीं। रुपये की महिमा पर इनकी एक रागनी की टेक तथा पहली कली दर्शनीय है -

तू के करले कुछ कर सकता ना पास तेरे जब जर कोन्या।
बिन पैसे इस दुनिया म्हं सच्चे माणस की कदर कोन्या।।
पैसे वाले मानुष की भाई टूटी बात तलक जुड़ जा।
बिन पैसे आले मानुष के ब्याह की चिट्ठी तक मुड़ जा।
तू कैच कबूतर कैसे उड़जा जमे हुए तेरे पर कोन्या।[11]

x x x

पैसे ही से बात बूझते घर और रिश्तेदारी म्हं।
पैसे का ही खेल राजबल इस दुनिया सारी म्हं।
लड्डन सिंह लाचारी में मेरी सुणता कोई डगर कोन्या।।[12]

इनके रचे गीतों व लोकनाट्यों को और भी अनेक गायक गा रहे है।

किशनचंद शर्मा -

किशनचंद शर्मा का जन्म सन् 1941 में गाँव खुंगाई जिला झज्जर, हरियाणा में पिता मा. हरिराम के घर हुआ। किशनचंद शर्मा जब पाँच वर्ष के थे तो इनके पिता चल बसे। "सांग प्रणाली को नया मोड़ देने वाले गायक एवं लेखक पं. दीपचंद इनके नाना थे। मातृ और पितृ परिवार के संस्कार इन्हें सहज ही दान में प्राप्त हुऐ।"[13]

गाने की रुचि इनको बचपन से ही थी। उसमें और परिपक्वता लाने के लिए इन्होंने पं. कुंदनलाल को अपना गुरु धारण कर लिया। इन्होंने अनेक जगह सांगों का मंचन किया। 1962 में ये लोकसंपर्क विभाग में 'ड्रामा पार्टी' में एक कलाकार के रूप में नियुक्त हुए तथा इसी दौरान इन्होंने लगभग 20 सांगों का सृजन भी किया। इनके सांगों का नाम हैं - 'नौटंकी', 'सत्यवान सावित्री', 'राजबाला अजीतसिंह', 'रानी झाँसी', 'राव तुलाराम', 'किस्मत का खेल', 'पूर्णमल', 'प्रह्लाद भक्त', 'बीरमति बलराज', 'गूगा पीर', 'चापसिंह, 'राजा नल', 'रूप-बसंत', 'गोरखनाथ', 'जवाहर मल', 'किसान की बेटी'।[14] इन सांगों के अतिरिक्त इन्होंने लोकसंपर्क के उद्देश्यों के अनुरूप अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं, जिनमें स्वच्छता, शिक्षा, दहेज, नारी शोषण, नशा, पंचायती राज, कन्या भ्रूण-हत्या आदि विषय रहे। गुरु की महिमा का उन्होंने इस प्रकार वर्णन किया है -

गुरु बिन ज्ञान नहीं रहै जीवन म्हं अंधकार।
गुरु ये हमारे, कष्ट निवारे, नैया है मझधार।
गुरु बिन ज्ञान नहीं, तारै परले पार।
गुरु बिन लगता सब जग सूना, सूना सब संसार।।[15]

किशनचंद शर्मा जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी कलाकार है, इन्होंने रेडियो के लिए भी अनेक नाटकों का लेखन किया। ये कौरवी की कविताएँ भी लिखते हैं।

जबरसिंह खारी -

जबरसिंह खारी का जन्म सन् 1951 में पिता भूलेराम व माता मूर्ति देवी के घर गाँव चाँदसमंद, जिला मुजफ्फर नगर उत्तरप्रदेश में हुआ। पाँच वर्ष की आयु से ही इनको गाने का शौक हो गया। इन्होंने जाट कालेज मवाना से स्नातक की उपाधि अर्जित की तथा हरियाणा में बिजली विभाग में नौकरी प्राप्त की। इन्होंने सरकारी नौकरी से भी त्याग-पत्र दे दिया था और बाद में ये आर्यसमाज के संपर्क

में आ गए। इनके गुरु का नाम जगसोरन था। एक रागनी की चौथी कली में इन्होंने इसकी जानकारी कुछ यूं दी है -

ढके ढोल रहण दे जबरसिंह के रखा समझाणे म्हं।
उसको नुगरा कहा करै जो छाप काट ले गाणे म्हं।
मिलने की गर पड़ै जरूरत ना दिक्कत पड़ती आणे म्हं।
चांदसमंद मेरी बस्ती पड़ती खास खतौली थाणे म्हं।
गुरु जगसोरन समझणियां समझे न्यू भजन सुनाणा होग्या।[16]

लोकनाट्यकार जबरसिंह ने इस कली में छाप काटने वालों को नुगरा कहा है। जो एक गाली के समान है। जबरसिंह ने 'गोपीचंद', 'हकीकत राय', 'उधम सिंह' आदि लोकनाट्यों की रचना की। इसके साथ महाभारत तथा रामायण की अनेक उपकथाओं पर भी लोकनाट्यों की रचना की। 'हकीकत राय' लोकनाट्य में विद्यालय में हुए बालकों के झगड़े में जब हकीकत को फाँसी तोड़ने की नौबत आ जाती है और उसे हथकड़ी लगी हुई होती है, तो उसका पिता भागमल के मन को ठेस लगती है। उस समय की स्थिति का जबरसिंह ने बहुत ही मार्मिक चित्र खींचा है -

लगी हथकड़ी देख पिता की भरा आँख म्हं पानी।
हीया पाट के आवण लाग्या होगी थी बंद बाणी।
बड़े दुखों सै पाला लाल तू फाँसी पै टंग जागा।
दूजा बेटा पास नहीं मेरा कैसे नाम चल जागा।
गर तू फाँसी टंग जागा तो पड़ै मुसीबत ठानी।।[17]

जहाँ 'हकीकत राय' सांग अपने पुत्र को अपने से बिछड़ता देख एक माता-पिता के लिए दर्दनाक लगता है, वहीं गोपीचंद सांग में स्वयं माता अपने पुत्र को राजपाट का सुख त्यागकर जोग दिलवाकर अपने से अलग कर देती है। यह भी अद्भुत है। गोपीचंद की सोलह पत्नियाँ तथा बारह बेटियाँ हैं। वह उनक लालन पालन के लिए राजपाट सुचारू रूप से चलाना चाहता है परंतु माँ मैनावती जिद कर बैठती है कि उसे तो जाना ही होगा। वह कहती है -

गोपीचंद मेरे लाल मान जा तेरी समझावै महतारी।
छोड़ राज का मोह कंवर तू बण जा आज भिखारी।
मैनावती राणी बोली सुन गोपीचंद मेरी बात।
तेरे फिकर म्हं आज कंवर या सूख लिया मेरा गात।

पिता समान शरीर तेरा यो समझावै तेरी मात।
अपना कौन बुरा चाहृवै हो सबै अगत की चात।
सर पे धरके बोली हाथ माँ मार उठी किलकारी।।[18]

अनेक लोकनाट्यों के अतिरिक्त इन्होंने सामाजिक चेतना और बुराइयों से सचेत करती फुटकर रागनियाँ भी लिखी हैं। शराब, परिवार नियोजन, वैर-भाव, फूट और फैशन आदि पर भी उन्होंने पर्याप्त रागनियाँ रचीं। एक उपदेशक भजन दर्शनीय है -

दुष्ट यार से नफा नहीं चाहे कर लो खूब टराई।
भाई भाई म्हं फूट गेर दे बुरी हो सीख पराई।[19]

x *x* *x*

आज्ञाकारी पुत्र हो घर म्हं पतिव्रता हो नारी।
उस घर म्हं लक्ष्मी बास करै कम लागै पास बीमारी।
मेहनत करके फल चाहृवै करे पूरी आस गिरधारी।
सब कवियों का दास रहूं नित कह जबरसिंह खारी।
तो घट के परदे खोल आभारी मैं जय हो दुर्गे माई।[20]

जबरसिंह खारी के लोकनाट्य उपदेशक है तथा आर्य समाज का प्रभाव उनमें साफ झलकता है।

16 जनवरी, 2024 को इनका देहांत हो गया।

जनार्दन बैसौया -

जनार्दन बैसौया ने अनेक लोकनाट्यों का सृजन किया जिनमें से 'बदलता जमाना' (देवर भाभी का प्यार), 'लालच और दान' (धर्मवीर-फूलकुमारी) 'चंद्रमुखी-अमरपाल', 'मदनसेन चंद्रप्रभा', 'सत्यपाल मायादेवी', 'चंद्रमुखी-कर्णसिंह', 'भाई भाई', 'श्रवणकुमार', 'विराटपर्व', 'दानवीर कर्ण' आदि हैं। इन्होंने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखी हैं, जो 'जनार्दन का गुच्छा', 'नई झलक नया दौर', 'नया जमाना' आदि गुच्छों में प्रकाशित होते थे। इनके गुरु का नाम रामचंद्र नागर था जिसका वे अकसर वे अपनी कविताई में मंगलाचरण में उल्लेख करते थे। यथा -

आज उठी फिर लेखनी दया करो जगदीश।
सब कवियों का दास हूँ, कहूँ नवा के शीश।
ओउम् शब्द एक मूल।
रामचंद्र सतगुर मेरे मैं शिष्य चरणों की धूल।[21]

इन्होंने कई लोकनाट्यों की रचना की। 'बदलता जमाना' इनका एक मौलिक लोकनाट्य है जो बहुत ही भावुक कर देने वाला है। इस नाटक का दूसरा नाम 'देवर भाभी' का प्यार भी है। लोकनाट्य में दो भाइयों तथा बड़े भाई की पत्नी की कहानी है जिसमें बड़े भाई को अपनी पत्नी व छोटे भाई के संबंधों को लेकर शक होता है। जिससे एक भरा-पूरा परिवार टूटकर बिखर जाता है। शाहजहाँ के शासनकाल में बुदेलखंड का राजा जुझारसिंह था, उसके छोटे भाई का नाम हरदौल सिंह था तथा उसकी पत्नी का नाम सुशीला था। शाहजहाँ जुझारसिंह को दक्षिण में भेज देता है। वह पत्नी सुशीला को अपनी तलवार दे जाता है। इस बीच कादिर खाँ तलवार का पटा खेलने में सबकी छूट मार देता है तो हरदौल सिंह अपनी भाभी से अपने भाई की तलवार लेकर कादिर खाँ को हरा देता है। काफी दिनों बाद जब जुझार सिंह वापस आता है और छोटे भाई के हाथ में अपनी तलवार देखता है तो वह अपनी पत्नी तथा उस पर शक करता है जो हरदौल सिंह व सुशीला के लिए नागवार गुजरती है। और हरदौल स्वयं जहर खा लेता है। लाश को नदी में बहा दिया जाता है। नदी की झाल से उसका विष उतर जाता है तथा वह अपनी मंगेतर शोभावती के नगर प्रेमनगर में पहुँच जाता है। शोभावती का पिता उसका विवाह कर देता है तथा प्रेमनगर का राजा बना देता है। उधर विचित्रसिंह ने बुंदेलखंड पर आक्रमण कर जुझार सिंह व सुशीला को जेल में डाल दिया। जब हरदौल को इसकी खबर लगती है तो वह विचित्रसिंह को हराता है तथा वह अपने भाई को पुनः राजा बनाता है। इस लोकनाट्य में इतनी भावुकता पूर्ण नाटकीयता है कि जब बड़े भाई के मन-मस्तिष्क से पत्नी व छोटे भाई के संबंधों को लेकर शंका पैदा होती है और हरदौल जहर खा लेता है तो दर्शक गम के सागर में डूब जाते हैं। कवि ऐसा शब्द-दृश्य उपस्थित करते हैं कि दर्शक अश्रुपूर्ण हो जाते हैं। हरदौल सिंह जहर का पान खा लेता है और अपनी भाभी के पास जाकर कहता है -

> माँ के बराबर भाभी तुझको निर्दोष बनाया।
> तेरे दामन म्हं दाग लगा था मनै बिलकुल आण छुड़ाया।
> जहर का पान मनै खुद खाया होया तेरी खातिर कुर्बान री।

यह रागनी अत्यंत मार्मिक है और करुण रस से परिपूर्ण है।[22]

जब विचित्र सिंह के साथ हरदौल की लड़ाई होती है तो उस समय वीर रसपूर्ण रागनी में श्री कवि जनार्दन ने अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया है। उस समय की

रागनी की दूसरी कली देखी जा सकती है -

पहुँची खबर विचित्र सिंह पै लड़ने को कर दूल आया।
जिन्दा है वा मरा नहीं था, काँप उठी सारी काया।
जो कुछ होगी देखी जागी सब फौजों को हुकम सुनाया।
इतने ही म्हं हरदौल सिंह नै सारे शहर का घेरा लाया।
तीर कमान चले थे भाले बरछी और तलवार भाई।
दोनों ओड़ तै अड़े सिपाही करण लगे थे वार भाई।
अपने पराये की सुध ना थी हो रही मारा मार भाई।
फिर हरदौल सिंह का हाथी आगे बढ़ गया भाई।[23]

इनका 'चंद्रमुखी अमरपाल' लोकनाट्य एक खास स्त्री की करुण कथा कहता हुआ विमाता की ईर्ष्या डाह का एक अत्यधिक मार्मिक सांग है। समरसिंह की पत्नी उमावती को विवाह के ग्यारह वर्ष तक संतान नहीं होती तो वह अपने पति को कहती है -

नै क्षत्री सूना हो रण म्हं हथियार बिना।
भाई बिन हो बहिन नार सूनी भरतार बिना।
राजकुमार बिना मैं सूनी रंज घनेरा सै।[24]

और वह अपने पति की शादी अपनी ही बहन चंपा के साथ करवा देती है। विवाह करवाने के तुरंत बाद उसे गर्भ भी ठहर जाता है। चंपा भी गर्भवती हो जाती है। दोनों को पुत्र होते हैं। परंतु चंपा बड़ी बहन के लड़के अमरपाल से जलती थी कि यह बड़ा है और राजा भी यही बनेगा। तो वह उसे मारने के लिए षडयंत्र रचती है। उमावती उसकी मंशा को भाँप कर उसे जंगल में एक साधु के पास छोड़ आई। जब अमरपाल 18 वर्ष का होता है तो वीरपुर के राजा जगतसिंह की फौज में सिपाही भर्ती हो जाता है। जगतसिंह की पुत्री चंद्रमुखी उस पर मोहित हो जाती है। परंतु अमरपाल उसे समझाने का प्रयास करता है।

तेरा पिता मेरे बाप बराबर नमक उसी का खारा मैं।
मामूली-सा नौकर सूँ अड़ै करता पेट गुजारा मैं।
अड़ै सहारा ना मिलता तै फिरता यूं ही अवारा मैं।
उसकी इज्जत तै खेलूं कर सकता नहीं गवारा मैं।
जिसका खाया नमक उसी का बुरा करावण लागी क्यूं।[25]

अमरपाल एक जिम्मेदार, नैतिक, ईमानदार युवा के रूप में उपस्थित होता है। साथ ही जब राजा जगतसिंह को इस बात का पता चलता है कि उसकी पुत्री किसी मामूली सिपाही से प्रेम करती है तो उसका मन आहत होता है तो वह अपनी पुत्री से अनुनय-विनय करता है -

बेटी मतना रोपै चाळा, मेरा हो जागा मुँह काळा।
जोड़ूँ हाथ मैं, मत प्यार करै तू उस नौकर कै साथ म्हं।
राजसुता हो कै नौकर पै नीत डिगावण लागी।
नाम गाँव का पता नहीं क्यूं जी ललचावण लागी।
आवण लागी शर्म घनेरी, दुनिया हँसी उड़ावै मेरी।
तेरे उत्पात म्हं।[26]

जब वह नहीं मानती तो राजा अमरपाल को फाँसी की सजा का हुकम देता है। परंतु राजा समरसिंह ने टैक्स ना देने के कारण राजा जगतसिंह पर आक्रमण कर दिया। अमरपाल वीरता के साथ लड़ा और उसने समरसिंह को हरा दिया। समरसिंह अमरपाल का पिता था। अमरपाल की माँ भी आ जाती है।

इनका 'लालच और दान' लोकनाट्य समाज में गिरते जा रहे पारिवारिक संबंधों का यथार्थ प्रस्तुत करता है। यह लोकनाट्य 'धर्मवीर-फूलकुमारी' के नाम से भी खेला जाता है। ये दोनों इस लोकनाट्य के नायक नायिका है। धर्मवीर का विवाह फूलकुमारी के साथ हो गया। धर्मवीर फौज में था, सो कई वर्षों तक उसे छुट्टी नहीं मिली। फूलकुमारी ने उसे पत्र डालकर बुलवाया। उसने आते ही ग्यारह सौ रुपये अपने साले फूलसिंह को रखने के लिए दिए। फूलसिंह ने अपने भाई बल्लू को समझाया कि मनीराम पुलिस वाले की मदद से इसे मरवा देते हैं। जिससे ये रुपये उनके ही हो जाएंगे। लालचवश वे उसे दूध में जहर मिलाकर पिलाकर एक नदी में फैंक देते हैं। नदी की झाल में उसका जहर का नशा उतर जाता है। उसका बहनोई बिनयपाल की मदद से वह बच जाता है। फूलसिंह व बल्लू को इसकी एवज में फाँसी होती है तथा फूलकुमारी व धर्मवीर का पुनः मिलन होता है। इस लोकनाट्य में रुपये की महिमा का वर्णन है -

खोटे तै खोटा काम करा दे पैसा।
भाई को भी कत्लेआम करा दे पैसा।
लालच म्हं सुबह की शाम करा दे पैसा।
इस पैसे नै संसार भी भरमाया।[27]

इनके लोकनाट्यों 'श्रवण कुमार', 'विराटपर्व' ,'दानवीर कर्ण' तथा 'मदनसेन चंद्रप्रभा' की कथाएँ पहले से प्रचलित लोककथाएँ हैं। 'मदनसेन चंद्रप्रभा' लोकनाट्य में एक स्त्री की अपने पति के प्रति विश्वासघात का वर्णन है।

जनार्दन बैसोया की लोकनाट्य संयोजना बेहतरीन है। शब्दों का प्रवाह देखते ही बनता है। वे भावुक चित्र खींचने के अभ्यस्त हैं। दर्शकों व पाठकों को अपने बहाव में ले जाने की सामर्थ्य उनमें है। इन्होंने अधिकतर रागनियाँ फिल्मी गीतों की धुन पर लिखी हैं। जो इस काल की एक मुख्य प्रवृत्ति भी है।

जयकरण सिंह गुर्जर -

जयकरण सिंह गुर्जर का जन्म सन् 1940 में गाँव हरिपुर (उत्तरी पूर्वी दिल्ली) में हुआ। इनके पिता नत्थूराम तथा माँ का नाम नथिया था। इनकी पत्नी का दयावती था। ये डेढ़ा गौत्र के थे। ये आजीवन निस्संतान रहे। इन्होंने नई बस्ती गाँव के सुप्रसिद्ध लोकनाट्यकार गुर शरण दास को अपना गुरु बनाया। अपने गुरु के विषय में ये लिखते हैं -

हे ईश्वर परमात्मा कर जन का कल्याण।
गुरशरण दास गुरुदेव के नित्य रहे चरण का दास।[28]

जयकरण सिंह गुर्जर ने बेतहाशा लोकनाट्यों की रचना की। उनके लोकनाट्यों के नाम हैं - 'मदनपाल-चंद्रप्रभा', 'द्रौपदी चीरहरण', 'गऊ हरण', 'गौरा बादल', 'हीर रांझा', 'नरसी का भात', 'पृथ्वीसिंह किरणमई', 'रूपवती रतनसिंह', 'सरवर नीर', 'नवलदे राजा परीक्षित', 'सत्यवती सेठानी', 'चक्रव्यूह की लड़ाई', 'सेठ ताराचंद', 'कलयुग की सती', 'भीमराव अंबेडकर', 'अलाउद्दीन खिलजी', 'फूलकुमारी धर्मवीर', 'नौबहार', 'बिजली रानी', 'मोरध्वज, 'हरिश्चंद्र', 'विजयवती संतरपाल', 'कर्मवती हुमायूं', 'भगतसिंह', 'पन्नाधाय', 'अजीतसिंह राजबाला', 'सुंदर और सरकार', 'रूपवती जूड़ावत', 'पृथ्वीराज संयोगिता', 'भीष्म पर्व', 'फौजी श्यामसिंह', 'चित्र-विचित्र', 'औरंगजेब महामाया', 'मंझा दिसोटा', 'हत्यारी बहन', 'चित्तौड़ की लड़ाई', 'हरौला कांड', 'जयद्रथ वध', 'भूरा बादल', 'सतपाल चंद्रावती', 'शहीद राजेन्द्र त्यागी', 'रूपकौर राजा सूरजमल', 'कृष्ण सुदामा', 'शाही लकड़हारा', 'माँ की ममता', 'गोपीचंद', 'नल दमयंती', 'चंद्रहास', 'अमर सिंह राठौड़' आदि। इन्होंने अनेक मौलिक ऐतिहासिक लोकनाट्य लिखे।

जयकरण सिंह की खास बात यह है कि इन्होंने अपने लोकनाट्यों में पारिवारिक संबंधों का यथार्थ चित्रण किया है। इनकी कविताई में शब्द-प्रवाह इतना

स्वाभाविक है कि श्रोता या पाठक इसमें डूबता चला जाता है। इन्होंने भाई-बहन के संबंध को लेकर दो लोकनाट्यों की रचना की है - 'हरौला कांड' व 'हत्यारी बहन'। हरौला गाँव में दो सगे भाई जतन और बिजेन्द्र गाँव के ही तालाब में डूबकर मर जाते हैं। पूरे गाँव में मातम छा जाता है। उनकी बहन बिमला जिला गाजियाबाद लोनी के पास घिरोटा ग्राम में ब्याही थी। उसे स्वप्न में इस अनिष्ट का आभास होता है। अपनी सासू के समक्ष वह जिक्र करती है और अपने मायके आकर देखती है तो उसे अत्यधिक पीड़ा होती है। वह अपने दोनों भाइयों से अत्यधिक स्नेह करती थी। दोनों भाइयों की एक साथ लाश उठाती है तो पूरा गाँव शोक-संतप्त हो जाता है। कवि जयकरण मार्मिक दृश्यों का चितेरा है -

रोया सारा गाम मात को सर ल्हाशों पै धरती देख।
दो बेटा और दोनों गए नैम सब कुदरती देख।
सूर्य भी रोवण लाग्या, आगै-पीछे अरथी देख।
दिन म्हं रात, चढ़ी खोटी स्यात, बिलखे थी मात।
मेरे लाड़ फिजूल गए।[29]

'रक्षा बंधन' का त्यौहार भाई-बहन की स्नेह का उत्कृष्ट त्यौहार है। बहन का अपनी ससुराल में उसके भाइयों से आदर घटता-बढ़ता है। भाई यदि सक्षम है तो बहन ससुराल में सुखी रहती है। बिमला की पीड़ा दर्शनीय है -

दिल का दर्द दबा जग म्हं बिन भाइयाँ बहण रहै सै।
पीहर हो मजबूत सासरै होती काण रहै सै।
कहै जयकरण बिना गुरु के किसनै ज्ञान रहै सै।
नई बस्ती म्हं गुण विद्या का होता दान रहै सै।
है बालक शीशपाल गवईया होग्या शोर भतेरा।[30]

x x x

बख्त बख्त ये मात-पिता के धौरे जाया जा सै।
बिन भाइयों के हर छोरी नै पीहर उड़-उड़ खा सै।
क्यूं भाई मुँह मोड़ चले मेरी भोली भाली माँ सै।
दो भाई और दोनों मरज्यां कै जीने की राह सै।
हो ईश्वर की गलत निगाह सब दुनिया थूक बिलोती।[31]

यह लोकनाट्य इतना मार्मिक है कि जब रक्षाबंधन का त्यौहार आता है, तो

बिमला थाली में पहोंची सजाकर उस तालाब पर पहुँचती है जिसमें दोनों भाई डूबकर मरे थे।

जयकरण ने बहन के दोनों ही रूपों का दर्शन किया है। 'हत्यारी बहन' लोकनाट्य में दो बहनें रेशम और ग्यासो धन के लालच में आकर अपने छोटे भाई धन सिंह की हत्या भी कर देती हैं। रेशम अपनी बहन ग्यासो को समझाती है कि हम दोनों मिलकर धनसिंह को मार दें तो पिता की सारी संपत्ति उनकी हो जाएगी। पहले तो ग्यासो उसे इस बात के लिए लताड़ती है -

ग्यासो बोली हत्यारी तू कहती ना शरमाई।
वक्त की शोभा होया करै सै दुनिया कै म्हां भाई।
आज पिता सै कह दूंगी जो फिर यो बात सुनाई।
कौन भरेगा भात जिजकर सुन थूकै लोग लुगाई।
आँखों म्हं सूर्खी छाई क्यूं भूली सत की राही नै।[32]

परंतु आखिर उसे भी लालच आ जाता है और दोनों मिलकर अपने भाई की हत्या कर देती हैं। उनका पिता उन्हें पुलिस को पकड़वा देता है।

जयकरण गुर्जर जाति से थे। गुर्जर महिमा को लेकर भी उन्होंने एक रागनी लिखी है। वे डॉ. अबेडकर से प्रभावित थे। खासकर अम्बेडकर जी का विपरीततम परिस्थितियों में पढ़ना और समाज के दबे कुचले लोगों के लिए आजीवन संघर्ष करना कवि को आश्चर्यजनक लगता है। इसलिए उन्होंने 'अंबेडकर गौरव गाथा' लोकनाट्य भी लिखा। बालक अंबेडकर पढ़ने की इच्छा अपने पिता के समक्ष रखता है, तो पिता कहते हैं -

जात-पाँत गुरुवों के लेखे, ना बिलकुल होनी चाहिए।
इस तरियां सै किसी बच्चे की, ना जिंदगी खोणी चाहिए।
चाहिए जयकरण दुनिया कै माँ, भाई रखने ठीक वसूल।[33]

इस लोकनाट्य में कवि ने भारतीय समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था पर भी प्रहार किया है।

इन्होंने 'इंदिरा गाँधी हत्या' लोकनाट्य भी लिखा। इस लोकनाट्य में उन्होंने इंदिरा गाँधी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए भारत में किए गए राजनीतिक सुधारों पर प्रकाश डाला है। इंदिरा की प्रशंसा में कवि लिखता है

हिन्दू मुस्लिम सिख ईसाई सब भारत माँ के प्यारे।

सब धर्मों का मान करूँ थी मनै समझे कोन्या न्यारे।
जान गंवारे सहम हिन्द का क्या मेटा ना अंधकार।[34]

x *x* *x*

मेरी रूह को मिलै शांति ना रहै फूट भारत म्हं।
इस फूट कै कारण होगी कई बार लूट भारत म्हं।
कहीं बांध सड़क बिजली बिन ना रही खूंट भारत म्हं।
मनै फेर भी भरनी पड़गी खूनों की घूंट भारत म्हं।
रही घूट भारत म्हं सभी के साथ इन्द्रा जी।[35]

इन्होंने ऐतिहासिक महापुरुषों पर अनेक लोकनाट्यों की रचना की। 'औरंगजेब महामाया', 'शहीद राजेन्द्र त्यागी' आदि अनेक ऐसे ही लोकनाट्य है। इनका लोकनाट्य लेखन वृहद् अनुभव का रहा है।

मदन गोपाल शास्त्री -

मदन गोपाल शास्त्री का जन्म सन् 10 मार्च 1930 को गाँव पेटवाड़, जिला हिसार हरियाणा में हुआ था। इन्होंने शास्त्री, प्रभाकर तथा ओ.टी. की परीक्षाएँ पास कर हिन्दी तथा संस्कृत के अध्यापक के रूप में कार्य किया।

इनकी रचनाएँ हैं - 'नगरी नगरी द्वारे-द्वारे', 'कैसा हिन्दुस्तान है', 'शिक्षक समाज की व्यथा-कथा', 'कमल और कीचड़', 'गुदड़ी का लाल : लाल बहादुर शास्त्री' तथा 'हरियाणवी रामायण'।[36]

इन रचनाओं में से 'गुदड़ी का लाल : लाल बहादुर शास्त्री' व 'हरियाणवी रामायण' लोकनाट्य की श्रेणी में आती हैं। लाल बहादुर शास्त्री के जीवन को लेकर मदन गोपाल शास्त्री ने पहली बार लोकनाट्य की रचना की। 'हरियाणवी रामायण' हरियाणवी साहित्य की अनुपम उपलब्धि है, रामकाव्य-माला की रक्ताभ मणि है। लोकमान्यताओं और लोकविश्वासों से ओत-प्रोत यह रामायण लोकजीवन की आचारसंहिता-सी जान पड़ती है। इसमें श्रेय, प्रेम एवं हेय का मंजुल मेल बड़ी संजीदगी से संजोया गया है।[37]

'हरियाणवी रामायण' में जब रावण की मृत्यु हो जाती है तो लंका में रानियों के बीच किस प्रकार रुदन मच जाता है, इसका मार्मिक वर्णन किया है -

रावण की मरणे के सुण के महलां म्हं करलाट माच गया।
क्यूं लोहे की फिरी बुहारी क्यूं सबने यमराज चाट गया।

लगी राणियाँ रोवण-पीटण कई धरण म्हं लोट पोट थी।
केस खोल्य रही फोड़ चूड़ियाँ न्यारी पाटी कूंज जोट थी।[38]

सन् 2020 में लगभग 90 वर्ष की आयु में इनका देहांत हो गया।[39]

कृष्णचंद्र रोहणा -

कृष्ण चन्द्र रोहणा का जन्म 2 जून 1937 को गाँव रोहणा, जिला सोनीपत, हरियाणा में हुआ। इनके पिता गूगन राम शुल्कलान उर्फ भजनानंद तथा माता हरदेई थीं। उस समय हरियाणा पंजाब का ही भाग था।[21] ये चमार जाति से संबंधित हैं। इन्होंने स्वयं कई रागणियों में अपने गाँव का नाम भी उजागर किया है -

कितै ल्हुक रहा हो तै हो ली हांसी, साजन शान दिखा दे
हरियाणे के राग रागणी, कोई बढ़िया तर्ज सुणा दे
कृष्ण चन्द्र रोहणिया बसगी, तेरी दिल मैं कविताई।।[40]

इन्होंने संत लालचंद साहेब को अपना गुरु बनाया जो कबीर पंथ के पारख सम्प्रदाय में दीक्षित थे। कवि कृष्णचन्द्र ने रागणियों में अपने गुरु को यथास्थान स्मरण किया है -

लाल साहेब दयाल हैं सच्चे दीनानाथ
कृष्ण दास वंदन करे राखो सिर पै हाथ।[41]

इन्होंने 'संत कबीरदास', 'सेठ ताराचंद', 'डॉ. भीमराव अंबेडकर' आदि लोकनाट्यों की रचना की। संत कबीरदास इनका मौलिक लोकनाट्य है। कृष्णचन्द्र रोहणा ने अनेक फुटकल रागणियों की रचना की है जिसमें उन्होंने पर्यावरण, स्त्री-शिक्षा, आपसी भाईचारा, समता, अंधविश्वास आदि विषयों को आधार बनाया है। फुटकल रागणियों में देश-प्रेम की भावना, गुरु महत्ता, व्यवहार विमर्श, सामाजिक चेतना और शिक्षा की ललक की रागनियाँ हैं। रोहणा जी ने आत्मज्ञान से जुड़ी कई रागनियाँ भी लिखी हैं।

कृष्णचंद्र रोहणा परिश्रम को वे मनुष्य के चरित्र में अनिवार्य रूप से चाहते हैं। शुद्ध चरित्र का व्यक्ति देश का एक अमूल्य रत्न होता है -

बिना मेहनत का जो खाता, वो तै दाग खोड़ कै लाता।
बदनामी भ्रष्टाचार फैलाता चरित्र शुद्ध बणाणा चाहिए।

सारी दुनिया गुण गावै, जग मैं नाम कमाणा चाहिए।।
कृष्ण चन्द्र हो सफल जो जागै, गुरु दया तै भय भूल को त्यागै।
छन्द सब नै आच्छा लागै, लय-सुर के म्हां गाणा चाहिए।[42]

कवि का अंतर्मन देश के भ्रष्टाचारी चरित्र से भी आहत है। कवि चाहता है कि सभी लोकतांत्रिक संस्कार के अनुसार 'जीयो और जीने दो' के पक्षधर होकर रहें। भ्रष्टाचार, आतंक, भेदभाव, साम्प्रदायिक उन्माद और जातिवाद मनुष्यता के लिए खतरनाक प्रवृत्तियाँ हैं।

भ्रष्टाचार जो फैला हिन्द मैं, इसको हमें मिटाना है।
जीओ और जीने दो सबको, आतंकवाद हटाना है।
धर्म निरपेक्ष देश है अपना, सबको आगे बढ़ाना है।
कृष्ण चन्द्र आत्म ज्ञान से, मुक्ति पद पाना है।
है सन्तों का फरमान, अगर चाहो कल्याण।[43]

संत कबीर और रैदास मध्य-मार्गी और गृहस्थ रहकर सदाचरण को ही सबसे बड़ी भक्ति (साधना) मानने वाले व्यावहारिक कवि हैं। इनकी भक्ति में मोक्ष, निर्वाण के लिए धूनी रमाकर कंदराओं में बैठने के आडम्बर नहीं है। वे श्रम को महत्ता देते हैं। कबीर और रैदास के बारे में प्रचलित है कि उन्होंने आजीवन श्रम की महिमा को बनाए रखा। स्वयं करके खाया और दूसरों की कमाई पर राज करने वालों को नकारा। पंडे और पुजारी के वर्चस्व को चेतावनी दी। ऐसे संतों का अनुसरण करने वाले कृष्णचन्द्र के व्यक्तित्व की शिद्दत को समझा जा सकता है।

आधुनिक युग में कृष्ण चन्द्र रोहणा जी डॉ. बी.आर. अम्बेडकर को अपना सबसे बड़ा आदर्श मानते हैं। डॉ. अम्बेडकर की शिद्दत से ही भारत के दलितों, गरीबों को सम्मान से जीने का अवसर प्राप्त हुआ है। जिन्हें हजारों सालों से अपमानमयी जिन्दगी जीने के लिए विवश होना पड़ा, उन्हें डॉ. अम्बेडकर के संघर्ष से शिक्षा का अधिकार मिल पाया। सरकारी उपक्रमों में उनका प्रतिनिधित्व निश्चित किया गया। उन्होंने ही इन्हें बेगार से बचाया। स्वयं कृष्ण चन्द्र के शब्दों में -

बाबा साहेब के ओड़ की मेरै झाल ऊठै सैं।
इन की दया तै गरीब सारे मौज लूटै सैं।।
कितै नहीं मिलता था प्यार, जुल्म होते थे बेसुमार
ढोणी पड़ती बेगार, इब ना खाल चूटै सैं।।[44]

डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय संविधान में भारत के हर नागरिक को एक समान बनाकर मानव की गरिमा को बढ़ाया है। उससे पहले भारत जाति-वर्ण, धर्म में बंटा हुआ था। परन्तु भारत का संविधान लागू हो जाने के पश्चात् तो सभी नागरिकों की एक ही पहचान हो गई- 'भारत के लोग' । हालांकि सभी भारतीयों के दिलों में भारतीय

संविधान पूरी तरह से पैठ नहीं बना पाया है और ऊँचे वर्ण और जाति के लोग आज भी श्रेष्ठता के अभिमान में जीते हैं परन्तु दलितों के लिए यह संविधान उनके स्वाभिमान के लिए एक आदर्श संविधान है। 'कुडलिया' छंद में कृष्णचन्द्र रोहणा ने डॉ. अम्बेडकर के प्रदेय को दर्शाया है -

रवि चमके अम्बेडकर, मेट दिया अंधकार।
सच्चे राम दलितों के, दिला दिये अधिकार।।
दिला दिये अधिकार है, संविधान बनाया।
सब को किया समान, भ्रम भेद भाव मिटाया
भारत-रत्न सम्मान, बरणी नहीं जाय छवि
कृष्ण पूजा सदैव, बोधिसत्व विद्वान रवि।[45]

पं. जगन्नाथ समचाणा -

पं. जगन्नाथ समचाणा का जन्म 27 जुलाई 1939 को गाँव समचाना, जिला रोहतक, हरियाणा में पिता पं. जयनारायण एवं माता छोटी देवी के घर हुआ। बचपन से ही इन्हें गाने व रागनी-सृजन का शौक था। इनके गुरु का नाम था - पं. रामभक्त।

इन्होंने दसवीं तक शिक्षा प्राप्त की और दिल्ली विकास प्राधिकरण में लिपिक के पद से सेवानिवृत्त हुए।

लगभग बीस वर्ष की आयु में ही इन्होंने भजन-मंडली बना ली और कार्यक्रम करने लग गए। "इन्होने समाज-सुधार, देशभक्ति, ईश्वर भक्ति के लगभग 700 भजनों की रचना की। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'कृष्ण अवतार', 'कृष्ण सुदामा', 'गौकर्ण धुंधकारी', 'जलकरण', 'चंद्रहास', 'जाहरवीर', 'महाराज अग्रसेन', 'सीता-स्वयंवर', 'शिव-विवाह', 'अश्वमेध यज्ञ', 'लव कुश' आदि कथाओं को हरियाणवी संगीत में संजोया है।"[46]

'चंद्रकिरण' सांग में जब राजा मदनसैन चंद्रकिरण का फोटू देखकर उस पर मोहित हो जाता है और योगी बनकर उसे प्राप्त करने के लिए चल पड़ता है और चंद्रकिरण के महल की बाँदी उसे भिखारी समझ लेती है, तो उस समय मदनसैन द्वारा गाई गई रागनी की टेक व पहली कली दर्शनीय है -

हे बेमतलब क्यूं बकती बाँदी तेरी अक्कल मारी किसनै।
थारी चंद्रकिरण नै ब्याहवैगा रही समझ भिखारी जिसनै।[47]

x x x

अर्जुन कृष्ण बने भिखारी जो धन के भूखे ना थे।
सबनै देखे भीख लेण जब मोरध्वज के जां थे।
सत अजमाणा चाह्वै थे के शेर पूत नै खां थे।
वृंदा का सत तोड़ा जब श्री विष्णु जी की माँ थे।
श्याणी बेटी नहीं लपेटी दई बड़ा कँवारी किसनै।।[48]

पं. जगन्नाथ की रचनाओं में पुराण आदि के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

इनकी गायन शैली पर्याप्त आकर्षक थी। लोग उन्हें 'छोटा लखमीचंद' भी कहने लग गए थे। वे हरियाणा में अपने समर्थकों में पर्याप्त लोकप्रिय गायक थे।

सूरज बेदी -

सूरजभान बिबियन उर्फ सूरज बेदी का जन्म 26 दिसम्बर 1962[49] को हरियाणा के कैथल जिले के खनौदा गाँव में चमार जाति में हुआ। इनके पिता श्री पूर्णसिंह एक सामान्य व्यक्ति थे।

कवि सूरज बेदी ने एक रागनी की चौथी कली में अपना परिचय कुछ यूं दिया है -

जिला कैथल म्हं बसता है खनौदा मेरा गाम सै।
सैक्टर सात कुरुक्षेत्र म्हं मेरा सही मुकाम सै।
सूरजभान नाम मेरा साँग करने का काम सै।
कर परिश्रम रोजाना व्यायाम करिए।[50]

सांगी सूरजभान ने एक लोक कलाकार के रूप में 10-12 साल की आयु में ही श्री बीजा राम के सांगों में काम करना शुरू कर दिया था और 17-18 वर्ष की आयु में ये उस समय के सुप्रसिद्ध सांगी श्री चंद्रलाल बादी के सांग में शामिल हो गए। 1 जनवरी 1986 को पाँच-छह साल अपने गुरु श्री चंद्रलाल बादी के सांगों में सक्रिय काम करने के बाद ये लोक संपर्क विभाग की भजन पार्टी में शामिल हो गए। और लगभग 30 वर्ष नियमित सेवा करके 31 दिसंबर 2020 को सेवा-निवृत्त हुए। सरकारी नौकरी के साथ-साथ छुट्टी वाले दिन ये सांग भी करते रहे।

सूरज बेदी ने श्री चंद्रलाल बादी को अपनी गुरु बनाया। सूरज बेदी को अपनी प्रणाली पर गर्व है। 'लालबहार' सांग की एक रागनी की चौथी कली में वे लिखते हैं -

कांता : दादा शंकरदास की प्रणाली म्हं कथन कमाल कहै सै।

लाल : दादा मंगलचंद के हृदय म्हं नत्थू की चाल रहै सै।

कांता : गुरु चन्द्रलाल तेरा अता-पता बूझण का ख्याल रहै सै।

लाल : चरखी दादरी हरियाणे में जहाँ कुटम्ब तमाम रहै सै।

कांता : सामवेद गंधर्व विद्या कर गाणे का काम तेरा।

लाल : लगी सूरज के खटक बुरी काज करो सरेआम मेरा।[51]

सूरज बेदी ने अपने जीवन-काल में चार सांगों की रचना की है तथा अनेक समसामयिक विषयों पर भी अनेक फुटकर रागनियाँ लिखी हैं। इनके लोकनाट्य हैं - 'भारतरत्न भीमराव अंबेडकर', 'महाराणा प्रताप सिंह', 'लाल बहार-कान्ता देवी', 'शकुन्तला - दुष्यंत' आदि। इनके अतिरिक्त इन्होंने कुछ सांगों की दो-दो चार-चार रागनियाँ भी लिखीं। इन्होंने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं।

'महाराणा प्रताप सिंह' सांग की घटनाएँ भले ही इतिहास की तिथियों व घटनाओं से मेल न खाती हों परंतु फिर भी यह सांग वीर रस का एक अनूठा सांग बन पड़ा है। इस सांग के माध्यम से कवि ने प्रताप सिंह राणा के वीर चरित्र को वाणी दी है।

'लाल बहार-कांता देवी' सांग पूरी तरह मनोरंजन पर आधारित सांग है। इसमें कुछ चमत्कारों का सहारा भी लिया गया है। लोककथाओं में कुछ इसी प्रकार की चमत्कार की कथाएँ भी प्रचलन में हैं। इस सांग में पर्याप्त उतार-चढ़ाव आते हैं और केवल मनोरंजनार्थ लिखा गया है।

'शकुंतला-दुष्यंत' हरियाणा में एक लोकप्रिय सांग है, जिसमें एक पुरुष की स्त्री के प्रति निष्ठुरता और एक स्त्री को पुरुष की प्रेमिका बनने का खामियाजा भरना दिखाया गया है।

सूरज बेदी केवल कवि ही नहीं है, अपितु वे एक सधे हुए मंचीय कलाकार भी हैं वो कला की बारीकियों से गहरे से परिचित हैं। उन्हें अनुशासनहीन या सुर-ताल-लय से बाहर की गायकी कभी भी रुचती नहीं। इस समय रागनी विधा की जितनी तर्जें इन्हें याद हैं, शायद ही किसी को हों।

सूरज बेदी एक बहुत ही सामाजिक पारिवारिक लोककवि बनकर उभरते हैं। इनके सांगों में एक सुंदर परिवार व समाज का सपना है। इसी सामाजिक प्रतिबद्धता से लैस उनका एक सांग है - भारतरत्न भीमराव अम्बेडकर। इस सांग में भारत में

सामाजिक बदलाव का मसीहा डॉ. अम्बेडकर के जीवन की कुछ घटनाओं को उन्होंने सांग की कथा में पिरोया है। सांग की कथा में कई रागनियाँ बहुत ही मार्मिक व प्रेरणादायी हैं। जैसे जब भीमराव अम्बेडकर की माता का देहांत होता है तो वह अपने पुत्र से प्रण लेती है कि उसे सारी उम्र इस छुआछूत को मिटाने का काम करते रहना है। इस रागनी की टेक दर्शनीय है -

मात-पिता का भीम राव तू नाम करिए।
छुआछात मिटाणे का बेटा काम करिए।।[52]

बाबा साहब का 'शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो' एक-एक दलित शोषित बहुजन के लिए प्रेरणा बनकर उभरा। इसमें भी संघर्ष शब्द कवि सूरज बेदी को अधिक प्रिय लगता है तभी वे बार-बार संघर्ष शब्द का प्रयोग करते हैं -

संघर्ष करो और आगे बढ़ो, बाबा साहिब का नारा है।
संगठित रहो मत न्यारे पटो, हर बच्चा जान से प्यारा है।
अंधविश्वास मूर्तिपूजा ना ये कर्म हमारा है।
कर पूजा माँ-बाप की ये बच्चों का सहारा है।
सूरज करे गुजारा है, बण सेवक चंद्र गुणवान कै।[53]

जब साईमन कमीशन भारत में आता है और भारतीय समाज में जाति-वर्णों के आधार पर ऊँच नीच, आर्थिक स्थिति और प्रतिनिधित्व देने पर विचार करता है तो डॉ. अम्बेडकर भारत के दलितों की वास्तविक तस्वीर उनके सामने रखते हैं। वे विशेष रूप से भारतीय समाज के अंधविश्वासी चरित्र की उनके सामने बखियाँ उधेड़ते हैं -

अंधविश्वासी देश है, भारत को महान कहूँ कैसे।
चुगली निंदा झूठ कपट पत्थर को भगवान कहूँ कैसे।।
भूत प्रेत का देश है, माता और मसाणी है।
बजा कै डेरू कुद्दें रात-दिन डुब्या देश बिन पाणी है।
कहीं पै चंडी कहीं पै दुर्गा कहीं पै खप्पर महाराणी है।
कर्मयोगी बणै देश यही भीम की वाणी है।
इन्सान इन्सान का दुश्मन है, सही ईमान कहूँ कैसे।
चुगली निंदा झूठ कपट पत्थर को भगवान कहूँ कैसे।[54]

डॉ. अम्बेडकर ने दलितों में स्वाभिमान और शिक्षा के प्रति जागरूकता की भावना तैयार की। बाबा साहब के बाद पूरे भारतीय परिवेश में कांशीराम आए और

उन्होंने समाज से घृणा को समाप्त करने के लिए राजनीतिक मजबूती का मंच दिया। उनके इस मंत्र ने कवि सूरज बेदी को भी प्रेरित किया। वे साहब कांशी राम की जीवन शैली से बेहद प्रभावित हुए और एक गीत के माध्यम से उन्हें श्रद्धांजलि दी। उस गीत की टेक व कली दर्शनीय है -

क्या गुण गाऊँ कांशी राम जी, शब्द हमारे पास नहीं।
आप जैसा नेता आया ना और आण की आस नहीं।।
महान श्री कांशी राम जी रहे भ्रष्टाचार से दूर परै।
कांशीराम तनै मान गए, तू धमकी से नहीं डरै।
समझ गए हम तेरी बात नै तू गरीबी दूर करै।
इस युग के थे लोह-पुरुष, तुमसे टकराकै कौण मरै।
गरजते थे जब कांशीराम दुश्मन कै आवै साँस नहीं।
आप जैसा नेता आया ना और आण की आस नहीं।[55]

साहब कांशीराम जी जैसा प्रतिबद्ध राजनयिक बहुजन समाज में दोबारा पैदा होना मुश्किल है। उन जैसा दबंग, सुशिक्षित, ईमानदार और सूझ-बूझ वाला नेता दुर्लभ है। कवि उन्हें लौह पुरुष की उपाधि से नवाजता है।

कवि सूरज बेदी एक बहुआयामी कवि, सांगी है। जो अपनी कविताई के लिए अवसरों की ताक में रहते हैं। जहाँ-जहाँ उन्हें कविताई की आवश्यकता महसूस होती है। समाज जागरण के लिए वे जुट जाते हैं।

सतबीर पाई -

सतबीर पाई का जन्म सन् 1965 में पिता फूलाराम और माता सरती देवी के घर गाँव पाई, जिला कैथल, हरियाणा में चमार जाति में हुआ। गरीबी के कारण दसवीं से पहले ही पढ़ाई छोड़नी पड़ी। दिहाड़ी-मजदूरी करते-करते उत्तर भारत में कांशीराम के उभार के वैचारिक आंदोलन से जुड़ गए और एक सांस्कृतिक टीम का हिस्सा बन गए।

इन्होंने दो लोकनाट्यों की रचना की - 'शराबी' और 'राजरेखा'। इन लोकनाट्यों के अतिरिक्त इन्होंने अनेक फुटकर रागनियाँ लिखीं, जो बहुजन विचारधारा से प्रभावित हैं। ये उत्तर भारत में कांशीराम के सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन से प्रभावित थे। कांशीराम या अन्य बहुजन चिंतक जो अपने भाषणों में कहते थे, ये उन्हें काव्य का रूप दे देते थे।

'शराबी' लोकनाट्य के लोकनाट्यकार सतबीर पाई ने घरों में शराब के कारण

हुई बर्बादी का यथार्थ चित्र खींचा है। लोकनाट्य का कथानक तो बहुत अधिक विस्तृत नहीं है, परन्तु शराब के दुष्परिणाम से एक खाता-पिता घर किस प्रकार बर्बाद हो जाता है, इसका चित्रण बहुत मनोवैज्ञानिक ढंग से कवि ने किया है। शराबी की पत्नी शराबी से तंग आकर कहती है -

तेरे तै मेरी ना होणी थी शादी।
इसे बेदर्दी के संग ब्याह दी
आदी बण्या जान नै ना खैर
पाई सतबीर रहै सै सैर
हथेली पर रखा जहर, चाहिए चाटणा नहीं।[56]

सतबीर पाई की विशेषता यह है कि वे लोकनाट्य का प्रस्तुतीकरण और लेखन लोक के यथार्थ धरातल पर करते हैं। उसमें कहीं भी बनावटीपन नहीं झलकता। सारी रागनियाँ स्वाभाविकता के गुण से लैस हैं। शराब को लेकर पति-पत्नी की नोक-झोंक बिल्कुल स्वाभाविक है। सांग के अंत में पति अपनी पत्नी की बात को महत्त्व देता हुआ शराब छोड़ने का प्रण करता है और यह लोकनाट्य यहीं पर सुखांत रूप से समाप्त होता है। इस लोकनाट्य की अंतिम रागनी पर्याप्त प्रेरणादायक है, जिसमें शराबी को पछतावा होता है कि उसकी इस आदत के कारण उसका घर-परिवार बर्बाद हो गया -

पी कै दारू ना कदे फेर गली म्हं पड़ूंगा।
तेरी भाभी तै ना कदे फेर लड़ूंगा।
भाई रै मेरी अकल ठिकाणे आ ली।[57]

इनका 'राजरेखा' लोकनाट्य भी जार-कर्म के दुष्परिणामों को इंगित करता लोकनाट्य है। सेठ कंवलजीत की पत्नी के देहांत के बाद एक शांति नाम की स्त्री के संपर्क में आता है। कंवलजीत का पुत्र राज पिता की इस विवशता और गिरते स्वास्थ्य को देखकर अपने पिता का शांति के साथ विवाह की व्यवस्था कर देता है। शांति पहले से हरपाल से जार-कर्म से जुड़ी थी। शांति व हरपाल मिलकर सेठ कंवलजीत को लूटने की योजना बनाते हैं। राज अपने कालेज में पढ़ने वाली रेखा से प्रेम करता है। शांति व हरपाल सेठ कंवलजीत को मारकर इल्जाम राज के सिर लगवा देते हैं। राज को पिता की दूसरी शादी करने का पछतावा होता है। राज कहता है -

सुण्या करै थे नहीं बणी थी इतनी बड़ी कहाणी।
बालम का सिर काट गई दल नाट गई कटखाणी।
नार बेहूदी कोन्या बुद्धि गुद्दी पिच्छै मत हो सै।
समझदार जो नार ओड़ै परिवार कै भी पत हो सै।
जो करै गैर तै बात हाथ बुरी बीर जाती की लत हो सै।
मन ना लोचै सारी सोचै बोचै जो इज्जत हो सै।
राजी फेर जगत हो सै जो बोलै मीठी बाणी।[58]

सतबीर पाई बेहद आर्थिक समस्याओं से गुजरते हुए अकाल मृत्यृ को प्राप्त हुए। इनका देहांत 56 वर्ष की आयु में 28 अक्टूबर 2021 को हो गया।

ऋषिपाल खदाना -

ऋषिपाल खदाना का जन्म 1 जुलाई 1963 को गाँव खदाना जिला बुलंदशहर उत्तर प्रदेश में हुआ। इनके पिता का नाम लाजपत सिंह तथा माता का नाम रघुवीरो देवी था। इन्होंने स्नातक तक शिक्षा प्राप्त की। प्रारंभ में अन्य लोकनाट्यकारों की रागनियाँ गाईं तथा बाद में स्वयं लोकनाट्यों की रचना करने लगे।

ऋषिपाल खदाना के लोकनाट्य है- 'सत्यवान सावित्री', 'कारगिल बार्डर', 'महेन्द्र फौजी', 'दहेज की आग', 'गरीब की बेटी', 'लीलो चमन', 'गुरु गोरखनाथ', 'हकीकत राय', 'सरवर नीर', 'हूर मेनका विश्वामित्र', 'पन्ना धाय उदय सिंह', 'रूप बसंत', 'नरसी का भात', 'धर्मवीर फूलकुमारी', 'पूर्णमल' आदि।

इनके अतिरिक्त इन्होंने और भी अनेक फुटकर रागनियाँ लिखीं। इन्होंने पारंपरिक लोककथाओं पर तो लोकनाट्यों की रचना की है। इसके साथ समसामयिक विषयों पर भी लेखनी चलाई। कारगिल बार्डर, दहेज की आग, गरीब की बेटी, महेन्द्र फौजी इनके पूर्णतः मौलिक लोकनाट्य है।

इनके गुरु का नाम है - श्री बृजपाल सिंह। उनका नाम अकसर इनके सभी गुच्छों में प्रथम पृष्ठ पर मिलता है। कौशिन्दर इनके प्रिय शिष्य थे जो इनकी रागनियों को गाया करते थे। इन्होंने रागनियों की चौथी कली में यदा-कदा कौशिन्दर सिंह का नाम भी लिया है। कौशिन्दर द्वारा गाई गई रागनियाँ लोक में विशेष रूप से पसंद की जाती थीं। उनकी आवाज़ मधु थी।

'गरीब की बेटी' लोकनाटय में कवि ऋषिपाल सिंह खदाना ने गरीब घर में जन्म लेने वाली बेटी के अनंत दुखों का वर्णन किया है। गरीबदास धन के अभाव

में अपनी बेटी कमला की शादी की असमर्थता में फाँसी लगाने की कोशिश करता है तो एक धनी युवा अशोक आकर भावनावश उसकी बेटी कमला से शादी कर लेता है। जब वह अपने घर आता है तो उसकी माँ को यह बहुत बुरा लगता है। वह कमला को मारने की कोशिश करती है परंतु अनजाने में मटके का विषैला पानी अशोक पी लेता है तो वह बेहोश हो जाता है। इस लोकनाट्य की कई रागनियाँ मार्मिक हैं। एक दोचश्मी रागनी में गरीबदास और उसकी पत्नी की बेटी के विवाह को लेकर विवशता झलकती है।

स्यानी छोरी सै जवान, करो ब्याह शादी का ध्यान।
कोई हम-सा ना कंगाल, गोरी बिन पैसे बेहाल।
पास नहीं सै पैसा पाई, कैसे कर दूं ब्याह सगाई।
घणी गरीबी घर म्हं आई, टोटे की ना मिलै दवाई।
शर्म लागै पिया जवान बेटी सै कँवारी।
गलियारे म्हं लोग लुगाई, चर्चा करते म्हारी।
मनै आवै सै घणा ख्याल।[59]

'गरीब की बेटी' दहेज की समस्या पर लिखा गया लोकनाट्य है। जो एक गरीब की लड़की की दुर्गति दिखाता है। दहेज की समस्या को इंगित करता उनका एक लोकनाट्य और है, जिसका नाम ही 'दहेज की आग' है। लोकनाट्य में गरीब यादराम पंडित की बेटी उर्मिला विवाह योग्य हो जाती है। तो अपनी पत्नी के सवाल का जवाब देते हुए यादराम कहते हैं -

ऋषिपाल सिंह कंगाली म्हं सब कुछ सहना पड़ जा।
इज्जतदार आदमी नै लुच्चा बेईमान रगड़ जा।
पेश पड़ै ना माणस की जब घड़ी कसूती अड़ जा।
कीमत घट जाती नर की जब बण्या हुआ खेल बिगड़ जा।
कंगाली बड़ जा घर म्हं मानस का मोल घटावै।[60]

सांग के अंत में उर्मिला की ससुराल वाले दहेज के कारण उसे जलाकर मार डालते हैं।

इनका महेन्द्र सिंह फौजी लोकनाट्य एक सत्य घटना पर आधारित लोकनाट्य है। 'कारगिल बार्डर' भाग एक और भाग दो इन्होंने मई 1999 में कारगिल के युद्ध पर लिखा है। यह लोकनाट्य वीर रस और देशभक्ति से परिपूर्ण है। इन लोकनाट्यों की रागनियाँ श्रोताओं के अंदर देशभक्ति का जज्बा पैदा करती है। इनका

'लीलो-चमन' लोकनाट्य राय धनपत सिंह के 'लीलो-चमन' की नकल लगता है। ऋषिपाल खदाना अपने लोकनाट्यों में सामयिक मुद्दों को उठाते हैं।

महाशय केदारमल -

महाशय केदारमल का जन्म 8 मई सन् 1954 को गाँव फतेहपुर (दड़ौली) जिला रेवाड़ी, हरियाणा में पिता दयाराम व माता बीरली देवी के घर हुआ। इन्होंने सन् 1973 में कला स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की। इन्होंने दक्षिण हरियाणा के बहुचर्चित और सुप्रसिद्ध सांगी महाशय जयलाल को अपना गुरु बनाया। महाशय जयलाल रिश्ते में इनके जीजा (बहनोई) लगते थे। अपने गुरु के विषय में इन्होंने एक स्थान पर लिखा है -

जयलाल गुरु का नाम, केदार भजै सुबह-शाम।
राम समारै काज देखल्यो, सिर पै धर दे ताज देख ल्यो।
बजै सुरीले राज देख ल्यो, तनै लय सुर के म्हां गाणा सै।[61]

महाशय केदारमल ने नौ लोकनाट्यों की रचना की- 'अजीत सिंह राजबाला', 'राजा भोज', 'रतनकंवर चंपादेवी', 'चंद्रप्रभा मदनपाल', 'चित्र-विचित्र', 'राजा हरिश्चंद्र', 'राणा जसवंत सिंह', 'नरसी का भात' व 'चंदन गोपाल' । इन्होंने समसामयिक विषयों पर अनेक फुटकर रागनियाँ भी सृजित कीं।

इनका 'राणा जसवंत सिंह' लोकनाट्य एक मौलिक लोकनाट्य है जो मुगल बादशाह औरंगजेब और राणा जसवंत के बीच वीरता की प्रतिस्पर्धा को दर्शाता है, जिसमें राणा जसवंत सिंह विजयी होते हैं राणा जसवंत और बादशाह औरंगजेब की शर्त लगती है कि यदि औरंगजेब का शेर जीत जाता है तो जसवंत का पूरा परिवार फाँसी तोड़ा जाएगा और यदि जसवंत का शेर जीत जाता है तो औरंगजेब अपना पूरा राज उसे दे देगा। जसवंत सिंह के पास शेर नहीं था तो उसका पुत्र पृथ्वीसिंह शेर के साथ लड़ता है और शेर को मार डालता है। इस पर औरंगजेब उसे जहर बुझी पोशाक इनाम में देता है तथा जसवंत सिंह को कैद कर लिया जाता है। जब पृथ्वीसिंह पर जहर का असर हो गया तो बादशाह उसे डिब्बे में बंद कर नदी में फिंकवा देता है। नदी की झाल के कारण उसका जहर का असर कम हुआ। इस प्रकार वह कमलापुर शहर की राजकुमारी शकुंतला के पास पहुँचता है। शकुंतला का पिता रणधीरसिंह उसे बिजली के करंट लगाता है तो उसकी याद्दाश्त पुनः लौट आती है। उधर जसवंत की पत्नी एक नर्तकी का भेष बनाकर औरंगजेब को प्रसन्न

करती है तथा अपने पति से जेल में मिलती है। वह बाद में अपने पुत्र से मिलती है तथा गढ़ बूंदी के राजा शक्ति सिंह के पास पहुँचती है। औरंगजेब के साथ युद्ध होता है जिसमें औरंगजेब हार जाता है तथा जसवंत सिंह, दुर्गावती, पृथ्वीराज सिंह व शकुंतला आनंद से रहते हैं। इस लोकनाट्य में अनेक उतार-चढ़ाव आए हैं। इस लोकनाट्य की अंतिम रागनी उद्‌बोधनात्मक है -

पूत सपूत हो दुनिया म्हं रोशन कर दे नाम दिखे।
सबनै बेरा पाट्या गया तू सै छत्री का जाम दिखे।
बालकपण म्हं भीड़ पड़ी तू कती नहीं घबराया।
शेर बब्बर को मार लाल तनै जग म्हं नाम कमाया।
सारी दुनिया देखै थी ना तनै उल्टा कदम हटाया।
लिहाज बचाई हिन्दुआं की मुगलां का मान घटाया।
बादल बरगी तेरी छाया तनै जाणै जगत तमाम दिखे।[62]

इस रागनी में एक पिता द्वारा अपने सपूत पृथ्वीसिंह के प्रति वात्सल्यमय एवं गर्व की उद्‌भावना हुई है।

कवि का 'चंदन गोपाल' लोकनाट्य भी पारिवारिक रिश्तों को लेकर एक महती लोकनाट्य है। इस सांग में पति के देहांत के बाद सेठानी कलकत्ते से अपने देवर मोती को बुला लेती है। मोती को आते ही अपने भतीजों में अपने लिए खतरा दिखाई देता है तो वह उन्हें मारने के लिए योजना बनाता है। सेठानी को खबर लगते ही वह अपने दोनों बच्चों चंदन और गोपाल को लेकर घर छोड़कर चली जाती है। वह उन्हें एक बाबा के आश्रम में छोड़ देती है। सेठानी को एक बालक की हत्या का झूठा आरोप लगा दिया जाता है। उसे बीस वर्ष की सजा हो जाती है। मोती ऐयाशी करने लग जाता है। गोपाल पढ़ लिखकर जज बन जाता है। उसी की अदालत में चंदन का मुकदमा आता है। माँ के कहने से गोपाल चंदन को बरी कर देता है। इस लोकनाट्य की कई रागनियाँ शानदार है। पहली ही रागनी की टेक तथा एक कली दर्शनीय है -

अति लोभ सै बुरा जगत म्हं कोन्या करणा चाहिए।
अधर्म और कुनीति तै बंदे हरदम हरणा चाहिए।
अतिलोभ सै दुनिया म्हं होता देख्या पाप दिखे।
अतिलोभ कै कारण मारे बेटा नै भी बाप दिखे।
अतिलोभ कै कारण होज्या धर्म कर्म गरगाप दिखे।

अतिलोभ हो बुरी बीमारी आती कोन्या धाप दिखे।
डस दे बण जहरी साँप दिखे बिन आई ना मरणा चाहिए।[63]

इस किस्से में उस समय की रागनी जब सेठानी अपने नौकर भोलाराम को अपने देवर को लेने के लिए भेजती है। देवर मोतीराम को जब पता चलता है कि उसका भाई मर चुका है, तब वह एक रागनी में अपना दुख प्रकट करता है। यह रागनी अत्यंत मार्मिक है।

महाशय केदारमल ने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखी है। इनकी फुटकर रागनियों के विषय परस्पर विश्वास, सामाजिक बुराइयाँ, दहेज, लोभ, झूठ कपट, छल, बेईमानी, अनमेल विवाह, देशप्रेम, कन्या भ्रूण हत्या, शराब आदि रहे हैं। कन्या भ्रूण हत्या पर इनकी एक रागनी की टेक तथा पहली कली दर्शनीय है-

मतना मारै जननी माता ना देखी दुनियादारी।
जन्म धार कै तेरे आगन म्हं, मनै मारण दे किलकारी।
बेटी हो सै बेल वंश की तेरे समझण का टोटा सै।
अपने हाथां जड़ काटै, मनै यो ही दुख मोटा सै।
बीर मेरे तै फेंटण दे क्यूं भाग करै खोटा सै।
भाण भाई तै प्यार करै मिलज्या मरहम लोटा सै।
क्यूं धर रही सिर पाप भरोटा सै तेरी अक्कल किसनै मारी।[64]

महाशय केदारमल के लोकनाट्य मनोरंजन के साथ-साथ दर्शकों के साथ भावनात्मक संबंध जोड़ लेते हैं।

कल्याण सिंह 'बेफिकर' -

कल्याण सिंह बेफिकर का जन्म 5 जुलाई 1945 को गाँव रसूलपुर जिला बुलंदशहर उत्तर प्रदेश में हुआ। इनके पिता का नाम सुजान सिंह तथा माता का नाम सरूपी देवी था। इनके गुरु भगवानदास थे। इन्होंने दसवीं कक्षा तक पढ़ाई की और चार सरकारी नौकरियाँ छोड़ी और गायन में लग गए। इन्होंने अपने गुरु के विषय में लिखा है -

परम पिता परमात्मा धरूं तुम्हारा ध्यान।
चार चीज माँगी दिए ताल कंठ सुर ज्ञान।
भगवान दास गुरुदेव का रसूलपुर स्थान।
मैं चरणों का दास हूं कल्याण सिंह अज्ञान।[65]

कल्याण सिंह ‘बेफिकर’ के लोकनाट्य हैं - ‘अजीत सिंह राजबाला’, ‘सांगीत राजा मोरध्वज’, ‘चित्र विचित्र’, ‘सत्यवादी हरिश्चंद्र’, ‘कीचक वध’, ‘गऊहरण’, ‘बाणप्रस्थ’, ‘सरवर नीर’, ‘धर्मवीर फूलकुमारी’, ‘सुंदर और सरकार’ आदि।

इन्होंने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं। समसामयिक मुद्दों पर रागनी लिखने में ये सिद्धहस्त हैं।

कल्याण सिंह ‘बेफिकर’ ने ‘अजीत सिंह राजबाला’ लोकनाट्य की शुरुआत अजीत व राजबाला के विवाह के बाद से शुरू से की है जबकि अनेक लोकनाट्यकरों ने अजीत सिंह के पिता के युद्ध में मारे जाने से शुरुआत की है। उनका यह लोकनाट्य एक बेहतरीन लोकनाट्य बन पड़ा है। आर्थिक अभाव में दांपत्य सुख से वंचित और कर्त्तव्य-परायणता का दिग्दर्शन कराता यह लोकनाट्य कौरवी क्षेत्र में अनेक लोकनाट्यकारों का प्रिय रहा है। इस सांग में पत्नी-पति की आर्थिक स्थिति में साझेदार बनती हुई उसके साथ कमाती है। यह भी इस लोकनाट्य का एक महती उद्देश्य है। राजबाला अपने पति को कहती है -

हो घोड़े असवार चले कहीं जाके करे गुजरिया।
रुपये कमावेंगे हम, कर्ज चुकावेंगे हम ऐसे कटे ना उमरिया।
पीली फाटी दिन निकला सूरज नै किरन पसारी।
ले ईश्वर का नाम चले घोड़े ने भरी उड़ारी।
हाथ म्हं रही चमक कटारी छोड़ के भरी चले नगरिया।[66]

यदि पति-पत्नी दोनों परिश्रम करें तो उनका बेहतर भविष्य बन सकता है। उन्हें राजा जगतसिंह के राज्य में सिपाही की नौकरी मिलती है तथा स्थितियाँ बदलती हैं। वे राजा जगतसिंह के विश्वासपात्र बन जाते हैं। राजा जगतसिंह उन्हें उनका राज्य दिलवा देता है।

‘चित्र-विचित्र’ लोकनाट्य विमाता प्रदत्त दुख दर्दों की कहानी है। रानी रूपादे ने मरते समय अपने पति महीपाल को ताकीद किया था कि उसके दो बच्चे हैं, वह दूसरी शादी न करवाए। परंतु उसके मरते ही राजा ने कमलादे से विवाह कर लिया। कमलादे ने आते ही दोनों लड़कों को दरिया में फैंक दिया। एक को जहर दे दिया दूसरे को महल से धक्का दे दिया। चित्र-विचित्र दोनों लड़के बेहद संकटों से गुजरते हुए काफी दिनों के बाद पुनः अपने पिता से मिलते हैं। उनके पिता ने यह सोच लिया था कि अब वे इस दुनिया में नहीं हैं। बीच में चंपादे (चित्र की पत्नी) और सौदागर की उपकथा भी जुड़ती है। यह कथा कुछ-कुछ रूप-बसंत लोकनाट्य के

नजदीक बैठती है। उसने भी रूप-बसंत को विमाता के अत्याचारों को सहन करते हुए घर बार छोड़कर जाना पड़ता है और अनेक कष्ट झेलने पड़ते हैं। अंत में जब राजा महीपाल को दोनों बच्चे दिखते हैं तो उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहता। उस समय की रागनी में बेफिकर जी ने कमाल कर दिया है-

महीपाल की नज़र घूम गई दोनों पुत्र खड़े पाए।
एकदम उठे भूप गद्दी सै दोनों गोदी म्हं ठाए।
आज दई छत फाड़के दौलत ईश्वर ने उपकार किया।
धन्य-धन्य करतार, किया वो पार जो ध्यान तेरा लाए।[67]

यह लोकनाट्य एक सुखांत लोकनाट्य है। इस सांग की अंतिम रागनी में कवि ने पूरी कथा के निष्कर्ष और उद्देश्य पर प्रकाश डाला है। सौदागर रानी कमलादे व दासी को मार दिया जाता है। जैसी करनी वैसी भरनी। चित्र को राजगद्दी पर बिठा दिया जाता है। अंतिम रागनी की चौथी कली दर्शनीय है-

भगवानदास जो नर धोखा करते हैं।
वो इसी तरह से बिन आई मरते हैं।
जो है कुदरत के लेख नहीं टरते हैं।
जो जैसा करता कर्म भोग सरते हैं।
कल्याण सिंह ना चाले कोई चतुराई।[68]

'राजा मोरध्वज' लोकनाट्य सत्य, त्याग और वचनबद्धता की मिसाल पर टिका लोकनाट्य है। कृष्ण अर्जुन के भक्तिभाव के घमंड को मोरध्वज की प्रतिबद्धता से तोड़ते हैं। वचनबद्धता के कारण मोरध्वज साधु बने कृष्ण अर्जुन के शेर की क्षुधा को मिटाने के लिए अपने पुत्र धीरध्वज को आरे से काटने के लिए तत्पर हो जाते हैं। परीक्षा में खरा उतरने पर कृष्ण प्रसन्न होते हैं। यह लोकनाट्य पर्याप्त भावुकतापूर्ण लोकनाट्य है। स्वयं मोरध्वज और उसकी पत्नी को अपने पुत्र को आरे से काटना पड़ता है। पुत्र धीरध्वज पिता के वचन को झूठा ना सिद्ध हो जाने के लिए स्वयं पिताजी की खुशामद करता है कि वह बेटे की ममता त्यागकर उसे चीर डाले -

शेर जिमाना है संतों का मत बचनों से टरियो।
म्हारे कुल को दाग लग जाएगा बदनामी से डरियो।
पैदा सो नापैद जगत म्हं दो दिन की जिंदगानी है।
तूम दोनों आरा ठाकै करदो बेटे की कुर्बानी है।

हो जागी अमर कहानी है, ये दुनिया आनी जानी है।
रजपूतों की रीति सदा निज आन पै मरियो।[69]

यह लोकनाट्य भी अनेक लोकनाट्यकारों का प्रिय लोकनाट्य रहा है। कल्याण सिंह 'बेफिकर' के और दूसरे लोकनाट्यों में उनकी मौलिक बनावट साफ झलकती है। इनकी अधिकतर रागनियाँ फिल्मी गीतों की तर्जों पर आधारित हैं। हर रागनी के पहले दोहा लिखने का नियम-सा कवि ने बनाया हुआ है। इनकी वार्ताएँ स्पष्ट तथा रागनियों की योजक हैं जो कथा को समझने में महती भूमिका अदा करती हैं।

चतरभुज बंसल -

चतरभुज बंसल का जन्म गाँव सोथा, तहसील गुहला, जिला कैथल, हरियाणा में 1 अप्रैल 1951 को पिता लाला साधुराम बंसल व माँ किशनी देवी के घर हुआ। आप रजिस्टर्ड मैडिकल प्रेक्टिशनर हैं। आप लंबे समय से कौरवी लोकनाट्य के सृजन में लगे हुए हैं। कैथल में लंबे समय से कार्यरत साहित्य सभा, कैथल की मासिक गोष्ठियाँ आपकी प्रेरणा का केन्द्र हैं। आप नियमित रूप से इन मासिक संगोष्ठियों में अपनी रागनी अवश्य सुनाते हैं।

इनके सांगों के नाम हैं - 'सरवर नीर', 'गुगे का जन्म', 'नरसी भगत', 'चंद्रहास विषिया', 'प्रहलाद भगत', 'हीर-रांझा', 'पिंगला-भरथरी', 'धरू भगत', 'कृष्ण जन्म', 'राजा हरिश्चंद्र', 'महात्मा बुद्ध', 'राजा गोपीचंद', 'बीजा-सोरठ', 'रत्नावली', 'अग्रोहा नरेश', 'जीतबाला', 'शकुंतला-दुष्यंत', 'सत्यवान-सावित्री', 'पूरण भगत', 'शिव विवाह', 'जैनधर्म गाथा', 'दक्ष प्रजापति', 'परसु चरित्र', 'कश्यप वंशज', 'राजा परिक्षित', 'राजा रत्नग्रीव', 'राजा चित्रकेतु', 'राजा सुरथ', 'चित्र-विचित्र', 'श्रवण कुमार'। इसके अतिरिक्त इन्होंने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं, जिनमें इन्होंने सामाजिक समस्याओं को विषय बनाया। दहेज, शराब, गृह-कलह, शिक्षा, संस्कार और सामाजिक आदर्श इनकी फुटकर रागनियों के विषय रहे हैं।

नरसी भगत सांग में लोकनाट्यकार चतरर्भुज बंसल ने एक कंजूस की कृपणता और ईश्वर में आस्था द्वारा काम साधने का वर्णन किया है। कवि ने दान की महिमा पर प्रकाश डाला है, यथा -

दानी और भगत लोगां के, सारी दुनिया नै गुण गाए।
चतरभुज कहै दान करै जीनै, बड़े-बड़े उनै फल पाए।[70]

चतरभुज बंसल के लोकनाट्यों में हरियाणा की लोक संस्कृति विशेष रूप से समाहित हो गई है। संबंधों का परस्पर व्यवहार हरियाणा में किस प्रकार निर्वहन होता है उसकी झलक इनके लोकनाट्यों में मिलती है। बेटी के घर सामान्यतः पिता रहता नहीं है और खाना पीना भी लड़की के घर का लोक में निषिद्ध माना जाता है। नरसी भगत सांग में चतरभुज बंसल कहते हैं -

इज्जत म्हं पड़ै फर्क बाप की, हरदम बेटी के आणै तै।
देख लिया आजमा कै ना कुछ मिलै सिवा दुख पाणे तै।
अन्न, जल यहाँ का जहर बराबर, देर करो ना जाणै तै।
चतरभुज कहै पड़ै नरक म्हं, धन बेटी का खाणै तै।[71]

कौरवी क्षेत्र में पिता-बेटी के संबंध में लोक में आज भी यह प्रचलित है। 'ध्रुव भगत' लोकनाट्य ध्रुव के भगत होने की कथा तो है ही, इसके साथ इसमें दर्शाया गया है कि दो पत्नियों के बीच किस प्रकार ईर्ष्या डाह चलता है और कैसे वे परस्पर जलन रखती हैं। उत्तानपाद की पत्नी सुनीति निस्संतानता के कारण उनका दूसरा विवाह अपनी ही छोटी बहन सुरुचि से करवा देती है। सुरुचि आते ही अपनी बड़ी बहन के साथ लड़ने झगड़ने लगती है वह उत्तानपाद को कहती है -

घर तै बाहर काढ़ कै उसने, दूर मेरे तै घर दे।
जौवां का आट्टा नूण खाण नै, उसके धौरे धर दे।
एक दे कै बांस हाथ म्हं उनै काग उड़ानी कर दे।
कोठे पै चारों कानी धर-धर कुंडे दही के भर दे।[72]

कौरवी लोकनाट्य में स्त्री को सजा देने का यह प्रचलित तरीका है कि उसे 'काग उड़ानी' कर दिया जाए। यानि छत पर चारों कोनों में दही के कुंडे भरकर रख देना और स्त्री के हाथ में बांस पकड़ा देना कि कोई भी काग या दूसरे पक्षी उसमें चोंच ना मार सकें। यह सजा व्यावहारिक रूप से क्रूर सजा होती थी। यानि सारा दिन व्यर्थ में काम में संलग्न रहना। कवि ने सुनीति और सुरुचि के कारण घर में क्लेश और अशांति का चित्र खींचा है -

देख लिया बस माणस नै, जाड़ै लुगाई दो।
बसते-बसते घर की जड़ नै, पाड़ै लुगाई दो।
कांध खोद कै वा फँसे बीच म्हं, जिसकै होवै दो नारी।
ना खावै ना खावण दे रह सारा दिन दुख भारी।
चौबीस घण्ट्यां के क्लेश म्हं जावै सै मत मारी।

आकलमंद हुसियार आदमी, बात भूल जै सारी।
खूनी मुलजम की ढाल मर्द नै ताड़ै लुगाई दो।[73]

सुनीति और सुरुचि से एक-एक पुत्र पैदा होता है - ध्रुव और उत्तम। एक दिन ध्रुव अपने पिता की गोद में बैठा हुआ था तो सुरुचि ने उसे उनकी गोद से उतारकर लात मारी तथा कहा -

के मतलब था तेरा बता म्हारे रणवासां म्हं आवण का।
महल दुहागी दे राख्या मनै काम काग थारा डावण का।
आच्छी चाह्वै जै बगजा उरतै, हुक्म नहीं कुछ खावण का।
चतरभुज तै बोली इसनै, काम नहीं मुँह लावण का।[74]

चतरभुज बंसल बहुत ही व्यावहारिक कवि हैं। अपने लोकनाट्यों में वे व्यंजना के अधिक चक्कर में नहीं पड़ते हैं, यही उनके लोकनाट्य की ताकत है। वे एक सामान्य लोक की तरह लोककथाओं को देखते हैं। उनके 'पूरण भगत' लोकनाट्य में भी दो सौतनों के बीच बालक की दुर्दशा की कहानी है। इसमें नूणादे (पूरण की मौसी) के जार-कर्म की कहानी है। पूरण बारह वर्ष बाद भौंरे से निकलकर अपनी मौसी नूणादे से पहली बार मिलता है तो नूणादे का जार-संस्कार हिलौरें लेता है। वह उसके सामने जार-कर्म का प्रस्ताव रखती है -

जै ना मानी बात मेरी मेरा सेदै घणा श्राप तनै।
आ बैठ पिलंग पै लाड करूँगा कहणी थी या आप तनै।
बल्यां बिना कोन्या हटदे, जद आग-फूँस का मेल होवै।
हाण नै हाण लगै प्यारा, जे नहीं दूसरा गेल होवै।
हुस्न जवानी मिले बिना, कोना सांसारिक खेल होवै।
बळै नहीं कदे का दीवा जिस म्हं बाती ना तेल होवै।
सिर धुण-धुण कै रोवैगा तो के राखी पै थाप तनै।[75]

चतरभुज बंसल लोकनाट्य मात्र लिखते हैं। इन्होंने कभी इनका मंचन नहीं किया। न ही कोई इस प्रकार का इनका शिष्य हुआ जो इनके लोकनाट्यों का मंचन करता। ये कोशिश करते हैं कि इनकी रागनियों में शब्द उसी रूप में आएँ जिस रूप में उनका उच्चारण कौरवी क्षेत्र में होता है।

रामफल गौड़ -

रामफल गौड़ का जन्म दिनांक 1 अप्रैल 1965 को गाँव धनौरी जिला जींद

हरियाणा में हुआ। इनके पिता का नाम पं. रत्तीराम व माँ का नाम भूरोदेवी था। इन्होंने एम.ए, बी.एड. तक की शिक्षा ग्रहण की हुई है तथा वे शिक्षा विभाग हरियाणा में कार्यरत हैं।

ये लंबे समय से लोकनाट्य विधा में लेखन कार्य कर रहे हैं। कवि द्वारा रचित लोकनाट्य है - 'उषा अनिरुद्ध', 'बीजा सोरठ', 'सुभद्रा केशव', 'वीर हकीकत राय', 'संगीता संतोषकुमार', 'जीमूतवाहन मलयवती', 'किरसन जनम', 'किरसन सुदामा', 'कपिल मुनि', 'राजा बलि वामन अवतार' आदि। इसके अतिरिक्त भजनमाला पुस्तक में इनकी अनेक फुटकर रागनियाँ संकलित हैं। इस पुस्तक में इनका 115 कलियों का भजन (रागनी) भी संकलित है। यह अद्‌भुत है। आमतौर पर रागनी चार-पाँच-छह कलियों की होती है। इनका यह एक नया प्रयोग है। कपिल मुनि और राजा बलि वामन अवतार इनके मौलिक लोकनाट्य है।

इनके गुरु इनके पड़ोस के गाँव बरटा के रामेश्वरदत्त जी थे। ये लिखते हैं

गुरु साक्षात् परब्रह्म है, गुरु मुक्ति के धाम।
गुरु रामेश्वरदत्त के चरणों बार-बार प्रणाम।[76]

उन्होंने अनेक प्रचलित कथाओं पर सांग-सृजन किया है। लोकनाट्य 'वीर हकीकत राय' अपने धर्म की रक्षा के लिए मृत्यु का वरण करने वाले हकीकत की कथा है। इसका निष्कर्ष है कि किसी भी व्यक्ति का किसी भी व्यक्ति के धर्म के मामले में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। कथानक बादशाह शाहजहाँ के वक्त का है। हकीकत की कथा में बच्चों की उसके साथ धर्म को लेकर लड़ाई होती है। मौलवी मुस्लिम बच्चों की मदद करता है। बादशाह को सूचना दिए बिना ही हकीकत को कत्ल कर दिया जाता है तो बादशाह तमाम दोषियों को नदी में डुबोकर मरवा डालता है। जब हकीकत पर धर्म परिवर्तन का दबाव बनाया जाता है तो वह कहता है -

सब धर्मों म्हं सबसे ऊँचा मानवता का धर्म महान्।
फर्ज समझ न्याय करणा चाहिए सोच कै अपणा दीन ईमान।[77]

इस सांग के अंत में बादशाह हकीकत के माता-पिता को कुर्ता-टोपी देते हैं। यह बच्चे के आगमन का हरियाणवी शगुन है। बादशाह कहते हैं -

सबका मालिक एक जगत म्हं दूजा भगवान सै।
हिन्दू मुस्लिम सिख ईसाई सब उसकी संतान सै।[78]

यह सांग बादशाह शाहजहाँ की न्यायप्रियता भी दर्शाता है कि किस प्रकार उन्होंने बिना धर्म का पक्ष लिए अपराधियों को सजा दी।

रामफल गौड़ के लोकनाट्यों में कौरवी क्षेत्र के अनेक विलुप्त हो जा रहे शब्दों को भी संरक्षण मिला जान पड़ता है। यह बात काबिले गौर है कि रामफल गौड़ हरियाणा के एक उम्दा सुप्रसिद्ध कवि हरिकेश पटवारी के ही गाँव से हैं। हरिकेश पटवारी ने अनेक फुटकर रागनियों की रचना की और कौरवी क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की।

'जीमूतवाहन-मलयवती' लोकनाट्य में जब विद्याधरों के राजा जीमूतकेतू संन्यासाश्रम हेतु राजपाट अपने पुत्र को सौंपकर वनगमन करना चाहते हैं तो जीमूतगमन पितृसेवा की भावना से भरकर उसके साथ ही चलने का इरादा करता है। वह उनसे कहता है -

राजपाट की नहीं जरूरत नहीं तृष्णा धन म्हं।
मात-पिता थारी सेवा करणे गेल्यां जांगा बण म्हं।[79]

x x x

स्वार्थ खातर करते सेवा वे हो सैं पूत दाम के।
जो मात पिता की टहल करै ना वे हो सैं पूत नाम के।
घणे पूतों का क्या करणा जै हो ना कति काम के।
मात-पिता का कर्ज ना उतरै चाहे जूते बणो चाम के।
मात-पिता के आदर बिन घर नरक या सोची बात मन म्हं।[80]

रामफल गौड़ सांग के मध्य पारिवारिक सीख देने में सिद्धहस्त हैं। उनकी एक फुटकर रागनी में परायी सीख के दुष्परिणामों का यथार्थ चित्रण किया गया है। वे लिखते हैं -

सीख किसा कोई तेज जगत म्हं ना हथियार बताया।
जिसनै मानी सीख गैर की अपणा नाश कराया।
सीख गैर की न्यारे पाड़ै घरबार तलक बँटवा दे।
सीख गैर की दो भाइयाँ कै चौड़े सिर कटवा दे।
सीख गैर की रिश्तेदारी यारी तक छुटवा दे।
सीख गैर की बीर मर्द के उल्टे मन हटवा दे।
जिसकै लागै सीख गैर की ओ समझै ना समझाया।[81]

रामफल गौड़ ने ऐसी अनेक व्यावहारिक रागनियाँ लिखी हैं जो युवा पीढ़ी के काम आती हैं।

लेखराज चौहान-

लेखराज चौहान का जन्म 8 फरवरी सन् 1955 को तत्कालीन जिला रोहतक तहसील गोहाना के गाँव बली ब्राह्मनान में हुआ। उच्च शिक्षा ग्रहण कर अनेक विभागों में सेवाएँ देने के उपरांत ओरिएंटल बैंक आफ कॉमर्स के मुख्य प्रबंधक पद से सेवानिवृत्त हुए। ये चमार जाति से संबंधित हैं। इन्होंने मकडौली के हरदेवा सिंह को अपना गुरु बनाया। हरदेवा सिंह भी एक उच्च कोटि के कवि हुए हैं। इन्होंने अपने गुरु हरदेवा सिंह के बारे में लिखा है -

मनै सुमर लिए जगदीश।
श्री हरदेवा सिंह सतगुरु जी को सदा नवाऊं शीश।[82]

इन्होंने 12 लोकनाट्यों की रचना की- 'राम बनवास', 'हरफूल जाट', 'सरवर नीर', 'रूप बसंत', 'राजा हरिश्चंद्र', 'भीष्प प्रतिज्ञा', 'शहीद भगत सिंह', 'सत्यवान सावित्री', 'नल दमयंती', 'बाढ़ की तबाही', 'हरियाणे में शराब बंदी', 'कारगिल युद्ध' आदि। इन्होंने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं। जो शराब बंदी, साहस, दहेज, स्वाभिमान, किसान, परिश्रम, देशभक्ति आदि विषयों पर हैं। कवि कला के क्षेत्र में गुरु को अत्यधिक महत्त्व देते हैं। कवि का कथन है -

गुरु बिन ज्ञान नहीं होता यो दुनिया कहती आवै।
कितना ज्ञानी ध्यानी हो पर मंजिल कोन्या पावै।
हरदेवा जी शीश हाथ धरो थारे चरणों शीश निवावै।
लेखराज आज कै पाछै थारा शिष्य कहलावै।
रात गई ईब भोर भई था आज तलक मैं सोया।[83]

हरियाणा कृषि प्रधान प्रदेश है तथा हरियाणा में कृषि से जुड़े रोजगार ही अधिक है। किसान खेती में काम करने वाले मजदूर तथा बड़े जमींदार सब मिलकर अन्न उपजाकर सबका भरण-पोषण करते हैं। इन्हीं की मेहतन पर सभी का पेट पलता है। यह अपने खेतों में अथक परिश्रम करता है -

अन्नदाता किसान म्हारा यो सबका पेट भरै सै।
दूसरों की ये भूख मिटाता पर भूख से आप मरै सै।
चार बजे यो नींद से जागै जब सारी जनता सोवै।

सबनै प्यारी लागै निंदिया ये अपनी निंदिया खोवै।
सुबह सवेरे घर नै छोड़ दे और जा कै खेत नै बोवै।
रात ढले जब घर नै आवै दुखी ना मन म्हं होवै।
कुदरत के यो रहै भरोसै, मेहनत दिन रात करै सै।[84]

कवि ने भ्रष्टाचार को बड़ी नजदीकी से महसूस किया तथा स्वयं भुक्तभोगी भी रहा। कवि का मन इससे अत्यधिक दुखित हुआ। उनकी उद्भावना दर्शनीय है -

होगा होगा कैसे यो बेड़ा पार।
डूबण म्हं कुछ कसर रही ना हम फँसे बीच मझधार।
रिश्वत और सिफारिश बिना नौकरी की नहीं आस।
अनपढ़ का तै जिक्रा के सै घरां बैठे बी.ए. पास।
रिश्वत देण नै कर्जा ठा लै अपणे घर का कर ले नाश।
जिसकी कोई शिफारिस हो तो उसका झट से बण ज्या काम।
मारा-मारा हांडै कोन्या लागै ना कुछ उसके दाम।
सिलैक्शन वाली लिस्ट म्हं सबतै ऊपर उसका नाम।
नीचे से ऊपर तक सारै यो फैला भ्रष्टाचार।।[85]

उनका 'राम बनवास', 'बाढ़ की तबाही', 'कारगिल युद्ध', 'हरियाणे में शराबबंदी' आदि मौलिक लोकनाट्य हैं। कवि संवेद्य प्रतिभा का धनी है। उन्हें नए-नए विषय आकर्षित करते हैं। इनकी रचनाशीलता में सरलता, सहजता तथा कुछ नया लिखने-करने का प्रयास शुमार है।

पंडित हरिपाल गौड़-

हरिपाल गौड़ का जन्म गाँव रभड़ा, तहसील गोहाना, जिला सोनीपत हरियाणा में 15 अक्तूबर 1954 को पिता रामेश्वर दास व माँ गिन्नी देवी के घर हुआ। उच्चतर शिक्षा प्राप्त हरिपाल गौड़ ने अनेक लोकनाट्यों की सृजना की है। इनके गुरु पं. जयनारायण थे। पं. जयनारायण पं. माँगेराम के शिष्य थे। पं जयनारायण ने ताउम्र पं. माँगेराम के लोकनाट्यों का भी मंचन किया। अपना कोई लोकनाट्य नहीं लिखा। अपने गुरु के विषय में ये लिखते हैं -

वो मनै सुमर लिए भगवान।
रोम रोम म्हं रमा हुआ, गुरु पंडित जयनारायण।[86]

इनके लोकनाट्य हैं - 'कीचक वध', 'अभिमन्यु का ब्याह', 'शैलबाला', 'राजा भोज शरणदे नाई की', 'नर सुलतान निहालदे', 'पृथ्वीराज अच्छन बाई', 'पृथ्वीराज मुहम्मद गौरी', 'श्रवण कुमार', 'ध्रुवभगत', 'चंद्रहास', 'सरवर नीर' व 'अमरसिंह राठोड़' आदि। इन्होंने अनेक फुटकर रागनियों की रचना भी की है। इन्होंने कई मौलिक लोकनाट्यों की रचना की है। 'पृथ्वीराज अच्छन बाई' लोकनाट्य से एक उदाहरण दर्शनीय है -

जोहरी बिन कद्र लाल की रेते के म्हं रल्या करै।
भौंरा जाणै कद्र फूल की, पतंग दीप पै जल्या करै।
जति सती का धर्म समेरू नहीं हिलाया हिल्या करै।
मूर्ख, मूंज गुलाम आदमी बिना पिटै ना टल्या करै।
तू मेरी और मैं तेरा इब टेक राज दिलदार मेरी।
केवट बण कै पार तार दूणे नाव पड़ी मझधार मेरी।[87]

इनका सांग 'कीचक वध' जार-कर्म का एक अच्छा उदाहरण है। जार-कर्मी कीचक की दृष्टि सैरंध्री बनी द्रौपदी पर पड़ती है तो उसका जार संस्कार कुलांचे भरने लगता है। वह अपनी बहन सुदेष्णा पर दबाव बनाता है कि वह सैरंध्री को उसके महल में भेजे। सुदेष्णा जब सैरंध्री पर दबाव डालती है, तो सैरंध्री/द्रौपदी कहती है -

ढलती फिरती छाया हो सै सारी दुनिया जाणे री।
कीड़ी ऊपर कटक तोलर्‌या ना भगवान पिछाणै री।
ऐर गैर माणस समझै देख कै फीकै बाणै री।
रक्षक तै खुद भक्षक बणकै तेरा पाप की ताणै री।[88]

पंडित हरिपाल गौड़ के लोकनाट्यों में शब्दों का स्वाभाविक प्रवाह देखने को मिलता है।

रामभूल सिंह बड़गूजर -

रामभूल सिंह बड़गूजर का जन्म 1 जनवरी 1959 को गाँव अल्लीपुर जिला मेरठ में पिता नंदकिशोर एवं माता रामवती देवी के घर हुआ। इन्होंने बारहवीं तक की शिक्षा आदर्श नगर इंटर कालेज खजूरी, मेरठ से उत्तीर्ण की।

इनके गुरु का नाम जयपाल सिंह था -

जयपाल सिंह गुरु गाँव समसपुर, जब तेरी खबरें पावेंगे।

रामभूल सिंह तेरे फिक्र में वे जीते मर जावेंगे।
प्रेमसिंह कथा गावेंगे, वे रोवें बेपरवाह।[89]

जयपाल सिंह चंद्रलाल बादी के शिष्य थे।

रामभूल सिंह बड़गूजर ने कई लोकनाट्य लिखे - 'नवल्दे राजा परीक्षित', 'कारगिल की लड़ाई', 'निहालदे नर सुलतान', 'अर्जुन बनी लुगाई', 'शहीद कोमल शर्मा', 'वीर हकीकत राय' आदि। इनके अतिरिक्त इन्होंने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं। 'कारगिल की लड़ाई' (भारत की जीत) इनका बहुत ही वीर रसपूर्ण लोकनाट्य है। इस लोकनाट्य में रामभूल सिंह बड़गूजर ने 1999 में हुए कारगिल की लड़ाई में भारतीय शहीदों की वीरता को काव्यबद्ध किया है। विशेष रूप से शहीद अजय आहूजा, मेजर तलवार एवं मेजर मनोज की वीरता पर भी इस लोकनाट्य में श्रद्धांजलि रागनी है। इस सांग में एक काफिया दर्शनीय है -

हर भारतीय को ज्ञान हो, तिरंगे झंडे का ध्यान हो।
गऊ और संतों का सम्मान हो, वरदान दे परमात्मा।
हर दिल म्हं संतोष हो, मनोज मेजर सा जोश हो।
ना मरने का रोष हो, ऐसा ज्ञान दे परमात्मा।[90]

शहीद अजय आहूजा को समर्पित श्रद्धांजलि गीत में कवि ने एक कली में लिखा है -

मेरे मरने से कम ना होंगे, भारत माँ के लाल सुनो।
वीर बहादुर भारतवासी, राखैं माँ का ख्याल सुनो।
एक मिनट म्हं तोड़ भगा दे, थारे पाप का जाल सुनो।
मेरी मौत थारे खातिर, बन जा जान का जंजाल सुनो।
झुक ना सकेगी जुल्मों से, हिन्दुस्तान की टोली।[91]

अजय आहूजा को पाकिस्तानी सैनिकों द्वारा पकड़ लिया जाता है। उससे भारत की सेना के गुप्त रहस्यों के बारे में पूछताछ की जाती है। वह मरने को मर हो जाता है परंतु भेद नहीं देता। इस लोकनाट्य की वार्ता दर्शनीय है, "प्यारे भाइयो हमारे वीर बहादुर फौजियों में साहस की कमी नहीं है। हमारी सरकार अपने कारनामों की वजह से गिरती और बनती है। जिससे देश कमजोर होता है। नेता लोग वोट के चक्कर में जनता को ठगते हैं और कमजोर करते हैं। महंगाई और बेरोजगारी दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है जिसके कारण देश में दंगे-विवादों का जन्म होता है

और पड़ोसी देश इस कमजोरी का फायदा उठाकर हमारी सीमा पर घात लगाकर युद्ध के लिए हमें मजबूर कर देते हैं। जिसका हमें एक होकर मुकाबला करना चाहिए। ये ही देश के लिए देशभक्ति है।''[92]

इन्होंने 'अर्जुन बनी लुगाई' लोकनाट्य में अर्जुन और कृष्ण को लेकर एक मनघड़ंत कथा घड़ी है। जो जादुई जैसी लगती है। बाकी के लोकनाट्य बनी बनाई कथाओं पर हैं।

रामभूल सिंह बड़गूजर के लोकनाट्यों में मंगलाचारण के रूप में उपदेशक भजन भी मिलते हैं। खासकर वे शराब के बारे में लोगों को सचेत करते हैं। रागनी की टेक दर्शनीय है -

> दारू पीनी छोड़ो भाई, सही बताऊं मैं।
> नशा करणिया माणस की कथा सुणाऊं मैं।[93]

रामभूल बड़गूजर लंबे समय तक सांगों तथा फुटकर रागनियों के छोटे-छोटे गुच्छे बेचने का भी काम करते रहे।

सूबेलाल -

सांगी सूबेलाल का जन्म गाँव शाहपुर, जिला जींद, हरियाणा में सन् 1949 में पिता बुन्दू खान तथा माता नन्नो देवी के घर हुआ था। इनकी पत्नी का नाम प्रकाशो देवी था। ये डूम जाति से हैं। इन्होंने कंडेला निवासी श्री विष्णुदत्त को अपना गुरु बनाया। विष्णुदत्त सुप्रसिद्ध कवि पं. माईराम के शिष्य थे।

इन्होंने लंबे समय तक सांग किए। इन्होंने 'प्रेमजान', 'कीचक-वध', 'कृष्णजन्म', 'अंब राजा', 'जानी चोर', 'विक्रम-भरथरी', 'आशा-विश्वजीत' आदि सांगों का सृजन किया। इन्होंने लेखक को बताया कि 'आशा-विश्वजीत' सांग इन्होंने 'ज्वार-भाटा' हिन्दी फीचर फिल्म देखकर बनाया था और प्रेमजान सांग सेवाराम बखेता के साम 'बहम' से प्रेरित होकर बनाया था। सन् 1981-82 में इन्होंने अपना बेड़ा बाँधा और कई वर्षों तक सांगों का मंचन किया।

इनकी पत्नी का देहांत सन् 2014 में हो गया था। उस समय उन्होंने अपनी पत्नी की याद में एक विरह गीत लिखा था, जिसकी टेक इस प्रकार थी -

> दो हजार चौदा का दिन दूसरा म्हीना दिन बुधवार।
> उन्नीस तारीख ईश्वर की माँ प्रकाशो गई सुरग सिधार।।[94]

यह रागनी वे बहुत ही भावुक अंदाज में सुनाते हैं और पत्नी के साथ बिताए हुए दिन याद करते हैं।

कुंवर विशाल सिंह -

कुंवर विशाल सिंह अपने नाम के पीछे 'कवि किंकर' लगाते थे अर्थात् कवियों का दास। परंतु इनकी कविताई क्रांति और ओजगुण से भरी होती थी। इनके लोकनाट्य जोश से परिपूर्ण होते थे। तभी शीर्षक पृष्ठ पर जोशीला इतिहास लिखा होता था।

इनके पाँच लोकनाट्य प्राप्त हुए हैं - 'वीर करणसिंह', 'ऋषिपाल चतरा', 'नीरा नागनी', 'साली का प्यार' और 'मुखिया की चालाकी'। यह स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि इन्होंने और भी लोकनाट्यों की रचना जरूर की होगी जो अब अनुपलब्ध हैं। इन लोकनाट्यों की रंगत और इनका अनुभव-जगत् बताता है कि इनके कई लोकनाट्य विलुप्त हो गए। इनके ये सभी लोकनाट्य पूर्णतः मौलिक और स्वतः निर्मित कथाओं पर आधारित हैं।

'वीर करणसिंह' लोकनाट्य 1937 की एक सच्ची घटना पर आधारित है, जिसमें करणसिंह मुसलमानों के चंगुल से बच कर आता है। इसका दूसरा नाम 'गऊ रक्षक वीर करणसिंह' भी है। जमींदार वीर करणसिंह 22 गाँवों का मालिक था। उसका छोटा भाई उदयसिंह था। एक दिन करणसिंह शिकार के लिए जंगल में जाता है। परंतु कोई शिकार हाथ नहीं आता है। शाम को घर लौटते हुए उसे एक सुअर दिखता है जिस पर वह गोली चला देता है। सुअर अंधेरे में भाग जाता है और रात को एक मस्जिद में जाकर छुप जाता है। करणसिंह ने उसे ढूँढ़ने का प्रयास भी किया, परंतु वह उसे मिला नहीं। सुबह जब मुल्ला मस्जिद में आया तो वह सुअर के खून को देखकर आग बबूला हो गया और उसने मुसलमानों को एकत्रित कर लिया। सभा में निर्णय हुआ कि यह किसी हिन्दू की चाल है और जिसने भी यह किया है उससे पाँच ग्याभिन गऊओं का इसी स्थान पर कत्ल करवाया जाएगा। वे सब मिलकर करणसिंह के पास आते हैं और उसे सारा मसला बताते हैं। करणसिंह ने सबके सामने कहा कि वह खुद कल शिकार के लिए गया था। उसने एक सुअर को गोली भी मारी थी परंतु वह उसके हाथ नहीं आया। शायद यह वही सुअर हो। यदि ऐसा होगा तो वह मस्जिद को अच्छी तरह धुलवाई करवा देगा। वह सुअर को भी उठवा लेगा। वह उन सबके साथ मस्जिद में जाने के लिए तैयार हो जाता है। मस्जिद में अनेक मुसलमान एकत्रित हो गए। वहाँ जाने पर करणसिंह पर दबाव डाला जाने

लगा कि वह अपने हाथों इसी स्थान पर गाय को काटे। करणसिंह ने सूझ-बूझ से काम लिया और कहा कि मेरे घर पर एक जहर बुझी तलवार रखी है। कोई जाकर ले आए। वह अपने भाई के नाम संस्कृत में एक चिट्ठी लिखकर देता है जिसमें लिखा था कि तुरंत आए वह फँस गया है। चिट्ठी पढ़कर उसका भाई उदय सिंह अपने लोगों के साथ आता है तथा करणसिंह की प्राण रक्षा होती है और बड़ी घटना से छुटकारा मिलता है। यह लोकनाट्य भाव, कला, भाषा और नाटकीयता की दृष्टि से कुंवर विशाल सिंह का सबसे बेहतर लोकनाट्य है। सीधा सरल वीर करणसिंह मुसलमानों की बातों को सुनकर उनके साथ चलने के लिए तैयार हो जाता है -

राजपूत के सुर्ख नयन हुए इकदम से उठ खड़ा हुआ।
चलकर मुझको दिखलाओ वो कहाँ जानवर पड़ा हुआ।
यदि मेरा ही शिकार है तो उसको मैं उठवा लूंगा।
भिश्ती को बुलवा करके वह जगह खूब धुलवा दूंगा।[95]

करणसिंह के हृदय में सामाजिक सौहार्द कूट-कूट कर भरा था। वह उन पर पूरी तरह विश्वास करके उनके साथ चल पड़ता है। परंतु दूसरी ओर गुस्सा था। वे इसे सोची समझी चाल मान रहे थे। बाद में पुलिस के हस्तक्षेप से मामला सुलझता है। इस लोकनाट्य के अंत में कवि ने एक बेहद शानदार सौहार्द की रागनी लिखी है। जिसकी टेक और दो कलियाँ निम्न प्रकार हैं -

अपने मन म्हं प्रीत बसा ले, अपने मन म्हं प्रीत।
मन मंदिर म्हं प्रीत बसा ले, छोड़ दे मंदिर और शिवाले।

दिल की दुनिया कर ले रोशन, आँखों म्हं यह ज्योति जगा ले।
प्रीत है तेरी रीत पुरानी भूल गया ओ भारत वाले।
भूल गया ओ भारत वाले प्रीत है तेरी रीत।
क्रोध कपट का उतरा डेरा, छाया चारों ओर अंधेरा।
शेख ब्राह्मण दोनों रहजन एक से बढ़कर एक लुटेरा।
जाहिरदारी की संगत म्हं कोई नहीं है सगी तेरी।
कोई नहीं है सगी तेरी मन है तेरा मीत।।[96]

इनका 'साली का प्यार' अपने नाम के विपरीत एक नैतिक साली की दुर्धर्ष जिजीविषा की कहानी है। दुर्गा और उर्मिला दो बहनें थीं। दुर्गा का विवाह गढ़ बूंदी के अजीत सिंह से हुआ था। वह दुर्गा अपनी बहन उर्मिला की शादी में अपने पति को बुलाती है। वह मना कर देता है तो वह अकेले ही आती है। उर्मिला की बारात

उदयपुर से आती है। दुल्हे का नाम अमरसिंह था। अमरसिंह बांदी से वहाँ सबसे सुंदर स्त्री के बारे में पूछता है तो वह दुर्गा की ओर इशारा कर देती है। जार अमरसिंह जाकर दुर्गा का हाथ पकड़कर साली समझकर उसके साथ मसखरी करने लगता है तो दुर्गा क्रोधित हो जाती है और विवाह समारोह में ही तलवार निकाल लेती है। सभी उसे काबू करते हैं। लेकिन विवाहोपरांत वह अपने उस हाथ को ही काट लेती है जिसे अमरसिंह ने छुआ था। इस दृष्टि से यह अद्‌भुत नैतिक लोकनाट्य है। स्त्री-पुरुष संबंध में नैतिकता का कठोर रूप अपेक्षित है। दुर्गा का क्रोध दर्शनीय है -

भवानी दुर्गा बन करके एकदम गरजी थी शेर समान।
ओ? गीदड़ तू नहीं समझता क्या बूंदी की शान।
अजीतसिंह की पत्नी का कुत्ते करता अपमान।
गुंडे व्यभिचारी नहीं बनते जयपुर के मेहमान।
मजा चखाऊँ अभी तुझे ले साली का इम्तहान।[97]

'नीरा नागनी' व 'ऋषिपाल-चतरा' लोकनाट्य भी संघर्ष, वीरता, उत्साह और स्वाभिमान से परिपूर्ण लोकनाट्य हैं। इनकी फुटकर रागनियों में भी व्यंग्य, कटाक्ष और यथार्थबोध की झलक मिलती है। एक रागनी की टेक व पहली कली दर्शनीय है -

हर तरह से देश की जनता मोहताज है।
क्या गाँधी जी के स्वप्न का ये ही रामराज है।
हम सोचते थे कि देश म्हं आज़ादी आएगी।
फस्ले बहार बनके नए गुल खिलाएगी।
कैसी बहार पेट भराई नाज है।
जिसने करी कुर्बानी वो तो तंग हो रहे।
अंग्रेजी के जो पिट्ठू थे मलंग हो रहे।
घर का ही जेब कतरा पूरा जाल साज है।[98]

कुंवर विशाल सिंह ने सामान्य लोक प्रचलित शब्दावली में काव्य रचना की है। वे स्पष्ट-वक्ता और सामाजिक आदर्श के कवि हैं। वे अंग्रेजी के लोकप्रचलित शब्दों का उपयोग करने में नहीं हिचकिचाते हैं। उन्होंने पाखंड, अंधविश्वास और भ्रष्टाचार पर सटीक मारक टिप्पणी की है।

न्यादर सिंह बेचैन -

न्यादर सिंह बेचैन देहलवी ने अनेक लोकनाट्यों का सृजन किया। सांगीत 'जयमल फत्ता', 'पिंगला भरथरी', 'पूर्णमल भक्त', 'नेहरू की ललकार' उनके मुख्य लोकनाट्य है। बैचेन के लोकनाट्यों का स्वरूप पारंपरिक सांग की तरह नहीं है। उन्होंने रागनी की अपेक्षा कवितामयी शैली में नाट्य रचना की है। 'पिंगला-भरथरी' लोकनाट्य में उन्होंने एक राजघराने में एक जारिणी की करतूतों की चीरफाड़ की है। राजा भरथरी की पत्नी का नाम पिंगला है। राजा का छोटा भाई विक्रम है। पिंगला अपने सईस अश्वपाल से जार-कर्म करती है। हालांकि अश्वपाल की अनिच्छा है। परंतु वह उसे जबरदस्ती अपने पास बुलाती है। लोकनाट्य के प्रारंभ में पिंगला अश्वपाल को बांदी के माध्यम से बुलाती है तो पिंगला की मनःस्थिति को देखा जा सकता है -

अश्वपाल डरते चला अब बांदी के संग।
जा पहुंचा रनवास म्हं मन म्हं भरी उमंग।
मन म्हं भरी उमंग देख रानी मुस्काई।
लीना पास बिठाय खुशी रानी की छाई।
करे प्रेम ब्योहार खुशी दोनों ने मनाई।
लगा भोग का रोग फिरे पिंगला की दुहाई।[99]

पिंगला अश्वपाल को राजा बनाने का लालच देती है। परंतु अश्वपाल को अपनी वस्तुस्थिति का पता था और वह इस जार-कर्म के प्रति अपनी अनिच्छा जताता हुआ कहता है -

मैं निर्धन कंगाल हूँ दासों का भी दास।
डरता हूं मैं हर समय आते तेरे पास।
आते तेरे पास बड़ी मन दहशत खाऊँ।
जो नृप पाएं खबर तो नाहक मारा जाऊँ।
मैं परदेश जाऊँ आप आपे को बचाऊँ।
करकै नौकरी सुनो दिया नित्य टुकड़ा खाऊँ।[100]

परंतु पिंगला उसे पूरी तरह आश्वस्त करती है कि किसी को पता चलने वाला नहीं है। एक दिन विक्रम उनको रंगे हाथ पकड़ लेता है। विक्रम को गहरा दुख पहुँचता है। वह अपनी भाभी को इस जार-कर्म के दुष्परिणामों से सचेत करता हुआ कहता है -

गजब घूस घर म्हं लगी रानी है बदकार।
ये सहीस एक नीच संग करे प्रेम व्यौहार।
करे प्रेम व्यौहार ना मन म्हं दहशत खाती।
नीच प्रकृति की नार ना इससे पार बसाती।
राजघराने की इज्जत माटी म्हं मिलाती।
महाराज से कहूं न शोभा मम मुख पाती।
खानदान की लाज देखकर मन घबराता।
लिया बांदी ने देख उधर विक्रम को जाता।[101]

विक्रम अपने भाई को बताता है। वह उस पर यकीन नहीं करता। उल्टा पिंगला एक सेठ से साँठ-गाँठ करके विक्रम को फँसा देती है। अंत में राजा को एक अमरफल की उपकथा से पता चलता है कि पिंगला जारिणी थी। सैनिकों से कहकर वह अपने भाई को जंगल से बुलाता है तथा स्वयं संन्यास ले लेता है।

पिंगला भरथरी सांग अनेक कवियों का प्रिय सांग रहा है। ये कवि इस सांग के माध्यम से नैतिकता का पाठ भी अपने दर्शकों को पढ़ाते थे।

'पूर्णमल भगत' लोकनाट्य भी जारिणी के कुकृत्य को प्रदर्शित करता लोकनाट्य है। इस लोकनाट्य में तरूण पूर्णमल अपनी मौसी नौनादे के जार-कर्म का शिकार होता है। जिस कारण उसके पिता द्वारा उसे त्याग दिया जाता है। पूर्णमल अपनी मौसी को समझाता है -

अलट-पलट हो जाएंगे पृथ्वी और आकाश।
चंद्र सूरज ध्रुव गिर पड़ै जो मैं आऊँ पास।
माता जी मैं जो आऊँ पास रसातल पृथ्वी जावे।
स्यालकोट सुलतान का सारा अदब भुलावे।
माता जी कुल को लग जाए दाग ना धब्बा छुटने पावे।
न्यादर सिंह बैचेन तुझे कहाँ तक समझाए।।[102]

परंतु वह नहीं मानती। अपने पति से उसकी शिकायत करती है तथा जार-कर्म का उल्टा उसी पर दोष लगाकर उसे वनवास दिलवा देती है। यह सांग भी अनेक लोकनाट्यकारों का प्रिय सांग रहा है। इसमें एक जारिणी के कुसंस्कार से घर की तबाही दिखाई गई है।

न्यादर सिंह बैचैन ने 1962 के भारत चीन युद्ध पर भी अपनी काव्यात्मक संवेदना 'नेहरू की ललकार' पुस्तिका लिखकर प्रकट की है। इसमें उन्होंने आल्हा

की तर्ज पर भारत के आक्रोश को प्रकट किया है। प्रारंभ में वे लिखते है -

प्रथम मनाकर धरणीधर को गुरु अपने को शीश नवाय।
मर्द राग आल्हा की तर्ज म्हं बीर पंवाड़े देऊं सुनाय।
अति बलिदान दिए भारत नै, तब आज़ादी लीनी पाय।
प्रजातंत्र नै करी प्रगति, दुनिया देख-देख रह जाय।[103]

यह लोकनाट्य वीर रसपूर्ण है तथा भारतीय फौजियों की वीरता का बखूबी वर्णन हुआ है। यथा -

मरते-मरते भी दुश्मन को हिंद की ताकत देय दिखाय।
ये ही सोचकर बढ़े सूरमा, दहशत करी काल की नाय।
मारते जाएं बढ़ते जाए दल पूला-सा रहे बिछाय।
थोड़े जवान वीर भारत के चकिया चाल दिया मचवाय।
फौजें भागी तभी चीन की, जो रोके सै रुकती नाय।
मार देख भारत वालों की, चीनी गए सनाका खाय।[104]

न्यादर सिंह बेचैन के लोकनाट्यों में काव्य तत्त्व अधिक प्रबल रूप में आया है। सभी संवाद काव्य रूप में ही हैं।

फौजी प्रेम सिंह -

फौजी प्रेम सिंह का जन्म 12 मई 1963 को पिता चौ. ताराचंद बड़गूजर और माता दीपा देवी के घर गाँव मलिकपुर, जिला सोनीपत, हरियाणा में हुआ था। ये 21 मई 1982 से 31 मई 2020 तक भारतीय वायु सेना में भी रहे। वहाँ रहकर उन्होंने लोकनाट्य का पर्याप्त अध्ययन किया और इनका मन लोकनाट्य के सृजन में रम गया। इन्होंने बहुजन समाज-सुधारकों का अध्ययन भी किया और महसूस किया कि इन पर लोकनाट्यों की रचना होनी चाहिए। इसी कारण इन्होंने चार लोकनाट्यों की रचना की - 'झलकारी बाई', 'जोतिबा फूले', 'डॉ. बी.आर. अंबेडकर' और 'साहब कांशीराम'। इन्होंने कौरवी लोकनाट्य के इतिहास में झलकारी बाई, जोतिबा फूले और कांशीराम के जीवन पर सर्व-प्रथम लोकनाट्यों की रचना की। 11 मई, 2023 को साठ वर्ष की आयु में इनका देहांत हो गया।

फौजी प्रेम सिंह भी कौरवी क्षेत्र में एक अति महत्त्वपूर्ण लोकनाट्यकार के रूप में उभरे कलाकार हैं, जिनके पास पूरे भारत-भ्रमण के अनुभव के साथ-साथ भेदभाव की पीड़ा के दंश भी हैं। फौजी प्रेम सिंह अपने अतीत के प्रति जागरूक हैं। पूरा इतिहास उनके सामने है। 'डॉ. बी.आर. अम्बेडकर' लोकनाट्य में भीमराव

में बचपन से ही अधिकार चेतना विद्यमान थी। जब गाड़ी वाला उन्हें महार होने के कारण गाड़ी से नीचे उतार देता है तो उनके बालमन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ये घटनाएँ उन्हें संघर्ष करने के लिए तैयार करती हैं। हाथ-पैर, आँख-नाक-कान सब दूसरों जैसे ही होने के बावजूद उनसे भेदभाव किया जाता है तो वे इस व्यवस्था के प्रति अपने आक्रोश को वाणी देते हैं -

हम दोनूं बाळक सत के साथी बात खरी कह ज्यांगे।
अपणा हक लेवण की खातर इस दुनिया तै फह ज्यांगे।
कसूर हमारा साबित होज्या चुपचाप खड़े सह ज्यांगे।
थारे धर्म के यो थोथे दावे न्युए धरे-धराये रह ज्यांगे।[105]

और डॉ. अम्बेडकर ने अपने जीते-जी वह सब कर दिखाया जो उन्होंने ठाना था। विदेश में अध्ययन के दौरान भी उनका विदेशियों द्वारा अपमान किया जाता है परन्तु उन्होंने सहन किया। एक तो विदेशी भारतीयों से ही सही सलूक नहीं करते थे, फिर भारत के अछूत का पता लगने पर तो उनकी ज्यादतियों की इंतेहा हो जाती थी। इस अवसर की इनकी रागणी अत्यधिक भावपूर्ण बन पड़ी है। इसकी एक कली दर्शनीय है -

मैं सूं गरीब बाप का बेटा पढ़ने का चाव भार्‌या।
नीची जाति का दंश लागर्‌या छाती के म्हां घाव भार्‌या ।
घणा तरसाओ मतना रै, मैं रो द्यूंगा।[106]

यह देश सोने की चिड़िया हुआ करता है। मनुष्य के जीवनोपयोगी तमाम संसाधन यहाँ मौजूद थे, परन्तु षड्‌यन्त्रकारियों ने लगातार इस देश का जाति, धर्म, वर्ण के नाम पर दोहन किया। कवि एक नये भारत का सपना देखता है जिसमें कोई पाखंड न हो, कोई पुनर्जन्म या जन्म सुधारने के नाम पर ठगता न हो। फौजी प्रेम सिंह की सबसे बड़ी ताकत है उसकी रागणियों में वर्तमान समय की समस्याओं के समाधान। उसका युगबोध उसे हरियाणा का एक महती लोकनाट्‌यकार सिद्ध करता है। वे वर्तमान की स्वार्थपरता, दिखावा, आडम्बर, फरेबी चरित्र और षड्यंत्रकारियों का पर्दाफाश करते हैं -

दुनिया भरी स्वार्थ की, वो मारा-मारा फिर्‌या करै।
ले ले कर्जा भीड़ पड़ी मैं, दूणा उसनै भर्‌या करै।
ढोंगी, फरेबी, चालबाज, उसकी मेहनत पै फळ्या करै।
पाछले जन्म के पाप सोच कै, सब तै ज्यादा डर्‌या करै।
हराम की खा कै तिर्‌या करै, वो दुष्ट कमीणा हो सै।[107]

कवि शिक्षा को मनुष्य के लिए सबसे बड़ा सोपान मानते हैं। मानव जीवन को मानवी रूप देने में शिक्षा की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा प्राप्त व्यक्ति ही अपने जीवन की दुर्गतियों को महसूस कर सकता है तथा उनके समाधान के बारे में सोच सकता है। कवि अनपढ़ व्यक्ति को सबसे कमजोर मानता है। शिक्षा के कारण ही व्यक्ति का स्वाभिमानी व्यक्तित्व उजागर होता है -

जित विद्या बिन प्रकाश नहीं, के जिन्दगी जीणा हो सै।
अनपढ़ माणस दुनिया के म्हां, सब तै हीणा हो सै।।[108]

भारत के मूल निवासी दलितों को सदियों तक पढ़ने से रोका गया। षड्यन्त्रकारियों ने अपने धर्मग्रन्थों में इसकी व्यवस्था की। केवल सेवा करना उसका काम निर्धारित किया गया। कवि की तीक्ष्ण बुद्धि इस षड्यन्त्र को समझती है -

वेद-शास्त्र सारे म्हारे, करै पढ़ण का टाळा हे।
सदियां बीती करी गुलामी, कठपुतली की ढाळा हे।
नारी पैर की जूती समझी, सदियां तै बांधा पाळा हे।
शिक्षा तै अंधकार मिटै, हो चारूं ओड़ उजाळा हे।[109]

लोकनाट्यकार कहता है कि मनुष्य को शिक्षा द्वारा अपने जीवन को सार्थक करके अपने जीवन में स्वाभिमान का मार्ग प्रशस्त करना चाहिए। शिक्षा के माध्यम से उचित रोजगार करने वाले व्यक्ति को वे 'कमेरा' की संज्ञा देते हैं। समय रहते व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त कर अपने जीवन में उजाला करना चाहिए -

गुजर्या बखत फेर ना थ्यावै, सब नै बेरा हो सै।
शिक्षा बिन इस जग सारे म्हं, घोर अन्धेरा हो सै।
संघर्ष कर जो आगै बढ़ज्या, सिर जीत का सेहरा हो सै।
शिक्षा तै प्रकाश फैलावै, वो सही कमेरा हो सै।[110]

फौजी प्रेम सिंह के मस्तिष्क में पीढ़ियों का अन्तर स्पष्ट रूप से ऐतिहासिक के साथ विद्यमान है। कवि को वे चीजें विचलित करती हैं कि एक पीढ़ी भूखी मरती थी। उसने भूखे पेट अपने बच्चों को पढ़ाया और उसे कामयाब बनाया। उस कामयाब पीढ़ी के बच्चों में अनेक दुर्गुण पैदा हो गए और वे परिवार, समाज की मर्यादाओं का कोई ख्याल न रखें -

कोड़ी के भा बिक्या करती, उन चीजां के दाम होगे।
भूखे मरते लोगां के भाई, आज चालते काम होगे।

दारू के ठेके गाम की गेल्या, आजकल सरेआम होगे।
इज्जतदार घर बारी के, बेटे पोते बदनाम होगे।[111]

कवि सावित्रीबाई फुले, जोतिबा फुले, डॉ. अम्बेडकर तथा कांशीराम की परम्परा में ही दलितों की भलाई ढूँढ़ता है। आधुनिक युग में तो साहब कांशीराम ने झोंपड़ी में बसने वाले मजदूर में भी वोट की चेतना पैदा की है। उनका हजारों किलोमीटर साईकिल चलाना संघर्ष का एक मुहावरा बन गया है -

वोटां की ताकत और कीमत, लोगां नै समझाता हो।
प्रेम सिंह हक लेवण खात्तर, सोती कौम जगाता हो।
साईकल पै आता जाता हो, साहब कांशी राम दिखा दे।[112]

कवि ने जहाँ एक ओर मर्यादित और अनुशासित जीवन को घर परिवार और समाज के लिए आवश्यक माना है, वहीं जार-कर्म एवं व्यभिचार को घातक माना है।

फौजी प्रेम सिंह में समाज के बहुसंख्यक वर्ग की सुख-सुविधाओं, स्वाभिमान और उत्कृष्ट जीवन शैली के तमाम उपाय मौजूद हैं। उसका 'डॉ. बी.आर. अम्बेडकर' लोकनाट्य तो कौरवी के लोक साहित्य में अनूठा प्रयोग है ही, साथ ही उनकी फुटकल रागनियों में भी जागृति का भाव विद्यमान है। उनके कृतित्व में जागृति की शिद्दत है। वे आदमी के स्वाभिमान के कवि हैं। वे उसके अन्दर हीन भावना का प्रसार न कर उसकी हीन भावना के भूत को निकालने वाले लोकनाट्यकार हैं। वे महिलाओं के अधिकारों की बात करने वाले लोकनाट्यकार हैं। वे आधुनिकता के लोकनाट्यकार हैं। उनका मानना है कि शिक्षा आदमी के स्वभाव और उसके सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में उसे सम्मान से जीने के रास्ते प्रशस्त करती है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति अपनी ऐतिहासिक गुलामी का आकलन करने योग्य बनता है।

लहणासिंह अत्री -

लहणासिंह अत्री का जन्म गाँव फफड़ाना जिला करनाल, हरियाणा में 3 दिसम्बर 1950 को हुआ। इनके पिता का नाम पं. अमीलाल तथा माता का नाम सरती देवी था। इन्होंने आर.के.एस.डी. महाविद्यालय, कैथल से सन् 1973 में स्नातक की उपाधि प्राप्त की तथा बाद में म.द. विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा में अधीक्षक के पद से सेवानिवृत्त हुए।

इन्होंने 10 लोकनाट्यों की रचना की - 'लिछमी बहू', 'पंच फैसला', 'धर्मसुता, 'बाप का काज', 'रामरत्न का ब्याह', 'नज्मा', 'बल्लभगढ़ का नाहर', 'शिवजी का ब्याह', 'हीरामल जमाल', 'प्रीत कौर-चंद्रपाल' आदि।

लहणासिंहजी अत्री की एक खास विशेषता यह है कि इन्होंने अपनी बनाई कथाओं पर मौलिक लोकनाट्यों की रचना की है। 'हीरामल जमाल' व 'शिवजी का ब्याह' को छोड़कर बाकी सभी लोकनाट्यों की कथा इनकी अपनी हैं। इनके लोकनाट्यों में इनकी मौलिक उद्भावनाएँ आई हैं। लोकनाट्यों के साथ-साथ इन्होंने शताधिक फुटकर रागनियाँ भी लिखी हैं।

इनके गुरु का नाम था - पं. लखमीचंद भंभेवा। ये पं. मांगेराम के शिष्य थे और उनके ही सांगों का मंचन करते थे। अपने गुरु व गाँव का परिचय इन्होंने 'लिछमी बहू' लोकनाट्य में कुछ इस प्रकार दिया है -

गुरु लखमीचंद की सेवा करिये स्वर्ग लोक रस्ता मिलज्या।
ज्ञान का सागर भर्‌या पड़्या तनै लहणासिंह सस्ता मिलज्या।
के घर बैठे रिश्ता मिल ज्या, खुद फफड़ाने जावै क्यूं ना।
अगड़-पड़ोसी ताने मारैं, बात समझ म्हं आवै क्यूं ना।[113]

लहणा सिंह अत्री उन लोकनाट्यकारों में से है जो केवल लोकनाट्य की रचना करते हैं। इनके कई लोकनाट्य आकाशवाणी रोहतक तथा कुरुक्षेत्र से भी प्रसारित हो चुके हैं।

'लिछमी बहू' में रचनाकार ने बड़े कलात्मक ढंग से दहेज प्रथा का विरोध किया है। कहानी के अंत में बताया गया है कि असली दान दहेज तो एक अच्छे संस्कारों वाली बहू ही होती है जो पूरे घर को जगमग-जगमग कर देती है।"[5] इस सांग की रागनी 'किसा ठिकाणा चाह्वै सै' में कवि ने विवाह का असली मकसद बताया है कि सच्चा रिश्ता वह होता है जिसमें दोनों परिवारों को फलने-फूलने का अवसर मिले -

किसा ठिकाणा चाह्वै सै, तू खोल बता दे सारी।
दोनों ठ्योड़ बलै दीवा इसी चाहिए रिश्तेदारी।[114]

अपनी बेटी के लिए चिंतित 'लिछमी बहू' सांग में रुघनाथ की चिंता का निवारण करता हुआ उसका दोस्त भरतू उससे कहता है।

लोकनाट्यकार लहणासिंह अत्री ने अधिक सांग सामाजिक समस्याओं के समाधानार्थ लिखे हैं।

बीरबल निंबरिया -

बीरबल निंबरिया का जन्म 16 अप्रैल 1964 को पिता जैलाराम तथा माता रजनी देवी के घर गाँव भानपुरा जिला कैथल हरियाणा में हुआ। इन्होंने बारहवीं तक शिक्षा पाई तथा जनस्वास्थ्य विभाग, कैथल, हरियाणा में नियुक्ति प्राप्त की। इन्होंने दो लोकनाट्यों का सृजन किया -'मीरांबाई-गुरु रविदास' तथा 'डॉ. बी.आर. अंबेडकर'। इसके अतिरिक्त अनेक समसामयिक मसलों पर अनेक रागनियाँ भी लिखीं।

इनकी चेतना डॉ. अंबेडकर से प्रेरित है तथा इनके लोकनाट्यों में भी वह झलकती है। इन्होंने रविदास से संबंधित तमाम अंधविश्वासों का खंडन किया है। मीरांबाई व रविदास की कथा को निहायत लौकिक रूप दिया है। मीरां जब युवती हो जाती है तो उसकी माँ को उसके विवाह की चिंता होती है तथा वह अपने पति को कहती है -

क्यूं पड़्या भूल म्हं सोवै राजा तनै बात नहीं सै जाणी।
पिया जी! शादी कर दो, म्हारी मीरां होगी स्याणी।

स्याणी बेटी घरां बाप कै बोझ घणा सिर हो सै।
भरी जवानी कदम बहक जां फिसलण का डर हो सै।
समझणिये की सारे मर सै सुण राखी बात पुराणी।।[115]

मीरां बहुत छोटी आयु में ही विधवा हो जाती है तो उसके मन में वैराग्य बस जाता है। एक आध्यात्मिक गुरु के रूप में वह रैदास को अपना गुरु बना लेती है तथा संतों से आत्मीय संबंध जोड़ लेती है। उसके इस कदम से कट्टर जातिवादी लोगों को कष्ट पहुँचता है। उसकी सास को इससे धक्का पहुँचता है। वह क्या कहती है -

मीरांबाई नाशगई तू बहोत घणी हद करगी हे।
रविदास नै गुरु बणा म्हारी छाती पै पां धरगी हे।
इतनी माड़ी कार करी सब कुणबा छोहं म्हं आरां
के देश भरा था पाणी का तनै कर लिया गुरु चमारा।
काम कर्‌या तनै सबतै न्यारा, तू क्यूं ना जीती मरगी हे।[116]

बीरबल निंवरिया ने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं है। जो तर्क, विज्ञान और सदिच्छाओं पर आधारित हैं।

झम्मन लाल -

झम्मन लाल का जन्म सन् 1924 के आसपास अलिया मिरासी एवं गुड्डी के घर गाँव सरूरपुर कलाँ, जिला बागपत, उत्तर प्रदेश में हुआ था। ये डूम जाति से थे। ये पाँचवीं कक्षा तक पढ़े हुए थे। इन्होंने पं. सुल्तान सिंह रोहद को अपना गुरु बनाया। ये सांग कला में अत्यधिक निष्णात थे तथा पं. लखमीचंद के सांगों का मंचन किया करते थे। पं. लखमीचंद पं. सुल्तान सिंह रोहद के गुरु थे। झम्मन लाल ने भी अनेक रागनियाँ निर्मित की। सांग कला में पारंगत सांगी जब किसी दूसरे के सांग करता है तो उसका भी कवित्व जागृत हो जाता है तथा वह भी सांग की कथा में विभिन्न अवसरों की रागनियाँ निर्मित कर लेता है। इन्होंने 'पद्मावत', 'राजा नल' 'चापसिंह', 'ध्रुव भगत', 'पिंगला-भरथरी', 'लकड़हारा', 'सेठ ताराचंद' आदि लोकनाट्यों की कुछ-कुछ रागनियाँ निर्मित कीं। ये मूलतः मंच के लोकनाट्यकार थे। 'पिंगला-भरथरी' सांग की एक शामिल (दोचश्मी) रागनी की टेक व कली दर्शनीय है -

कालिज तै भागा आया बेईमान शर्म ना आई।
पिंगला भाबी तेरे धोरे ओपरा माणस दिया दिखाई।
भरा क्रोध बहस-सा होग्या, आडै न्यूं नेम-सा होग्या।
के तेरै बहम-सा होग्या ना पिंगला पास दवाई मेरे।
तेरा इलाज करा दे मेरा विक्रम भाई।[117]

'ध्रुव भगत' सांग में वे अपने गुरु सुल्तान सिंह के बारे में भी बताते हैं

मेरा सतगुरु सै सुल्तान, मिला मनै ज्ञान मारिए मतना।
कदे मेरी लिकड़ै जा जान मारिए मतना।
राजपाट बियाबान रहूँ भगवान मारिए मतना।
मनै हँस कै दे वरदान मारिए मतना।
तजूं सभी मोहजाल कहै झम्मन लाल हरि गुण गाया।[118]

9 अक्तूबर, 1999 को लगभग 75 वर्ष की आयु में झम्मन लाल का देहांत हो गया। इनके देहांत पर इनके प्रिय शिष्य गंगा राम ने एक श्रद्धांजलि भजन बनाया था। जिसकी टेक व अंतिम कली इस प्रकार है -

नौ तारीख दसवाँ महीना निन्यानवें में बंद सांस होग्या।
गुरु झम्मन लाल नै शरीर त्याग दिया सुर्गपुरी म्हं बास होग्या।
मिचगी आँख अंधेरा छाग्या गाँव सरूरपुर खेड़े म्हं।

बिना बुलाए गया नहीं खुश रहा सांग के बेड़े म्हं।
कह गंगाराम दुल्हेड़े म्हं वो झम्मन लाल का दास होग्या।[119]

गंगाराम -

गंगाराम का जन्म सन् 1950 में गाँव दुल्हेड़ा जिला झज्जर हरियाणा में पिता लक्खीराम व माता रुक्मण के घर हुआ। ये धानक जाति से संबद्ध हैं। इन्होंने झम्मन लाल को अपना गुरु बनाया। झम्मन लाल की प्रशंसा करते हुए ये अघाते नहीं हैं।

इन्होंने तीन लोकनाट्यों की रचना की - 'कृष्णजन्म', 'पद्मावत' व 'हरिश्चंद्र'। ये अनपढ़ हैं तथा अपने गुरु की संगत में जाकर ही इन्होंने छंद-सुर-ताल विद्या की तालीम हासिल की। ये अपने गुरु से मात्र तीन वर्ष ही छोटे हैं। झम्मन लाल इनके गाँव के आस-पास सांग करने आते थे तो उनकी सांग-कला से प्रभावित हुए और उनके शिष्य बन गए। अपने गुरु के बारे में वे लिखते हैं -

गुरु झम्मनलाल ज्ञान का गोला, गंगा राम बखत होया सोला।
भोला कृपा करै सरहाई, या नैया डूबती पार लगाई।
फिर दुश्मन पर करां चढ़ाई, बीज मिटावण नै।[120]

इनका 'पद्मावत' सांग ऐतिहासिक पद्मावत की कथा वाला नहीं है। अपितु कल्पना पर आधारित सांग है। इनके सांग वर्णनात्मक अधिक है। चंद्रदत्त और रणवीरसिंह शिकार खेलने के लिए जाते हैं। जंगल में जाकर बिछड़ जाते हैं और चंद्रदत्त तो शेरनी के पीछे चले जाते हैं तथा रणवीर पद्मावत के बाग की ओर पहुँच जाता है। पद्मावत की सखी उसे बाग में घुसने की मनाही करती है। परंतु इतने में पद्मावत आ जाती है तो वह छुपकर बैठ जाता है। पद्मावत की सहेलियाँ पद्मावत के सामने मर्दों की बुराई करती है तो रणवीर सिंह सबके सामने प्रकट होकर स्त्रियों की कमियाँ निकालता है। पद्मावत 12 फूल तोड़कर पहले सीने से लगाती है, फिर दाँतों से और फिर कानों से लगाकर सिर के ऊपर से फैंक गई। चंद्रदत्त और रणवीर की दोबारा मुलाकात होती है। पूछने पर चंद्रदत्त उसे बताता है कि पद्मावत ने तुझे रात के बारह बजे बुलाया है। रणवीर सिंह पद्मावत से मिलने जाता है तो उसे पीटकर भगा दिया जाता है।

गंगा राम की रागनियाँ बहुत सामान्य और जोड़-तोड़ की है।

हरेराम बैंसला -

हरेराम बैंसला का जन्म गाँव बड़ौली, जिला पलवल, हरियाणा में 5 मई, 1954

को हुआ। इनके पिता का नाम श्री सुनेहरी और माँ का नाम परसंदी था। सुनेहरी जी गुज्जर जाति के जमींदार थे। हरेराम ने दसवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की। स्कूली जीवन से ही इन्होंने गायन में महारत हासिल कर ली थी और अनेक गायन प्रतियोगिताओं में जाने लग गए थे। गुरु को लेकर इनके साथ एक अद्‌भुत वाकया जुड़ा हुआ है। इन्होंने अनेक प्रतियोगिताओं में पं. खिलन चंद को कई बार हराया था और बाद में उन्हीं को अपना गुरु बना लिया। लोकगायकी में गुरु का होना अपरिहार्य माना जाता है। बहुत कम लोकनाट्यकार या लोकगायक ऐसे हैं, जिनका कोई गुरु नहीं है।

इन्होंने पचास से अधिक लोकनाट्यों की रचना की, जिनमें से प्रमुख हैं - 'सांग नरसी भात, 'निहालदे सती', 'सरदार भगत सिंह', 'सेठ ताराचंद', 'सांग हरदौल भक्त', 'हत्यारी बहन', 'महाराणा प्रताप', 'डाकू लाखन सिंह का भात', 'इतिहास डाकू मान सिंह', 'इतिहास दहेज की आग', 'किस्सा तंदूर हत्याकांड', 'चित्रालेखा-मदनपाल', 'बेटी घर की लक्ष्मी', 'राजेश पायलट', 'इतिहास पृथ्वीसिंह - किरणमई', 'राजा नल दमयंती', 'अजीत सिंह - राजबाला', 'अर्जुन श्री कृष्ण युद्ध', 'नेताजी सुभाष चंद्र बोस', 'महेंद्र फौजी', 'बीरसिंह - सुंदर बाई', 'रुक्मिणी हरण, 'ऋषि बाल्मीक जी', 'श्रीराम जन्म', 'कीचक वध' आदि।

इन्होंने कई नए-नए विषयों पर भी लोकनाट्य लिखे हैं। इन्होंने कई शहीदों पर लोकनाट्य लिखे हैं। 'सरदार भगत सिंह' लोकनाट्य में एक काल्पनिक भारत माता की कल्पना की गई है। वह अग्रेजों के अधीन कष्ट पा रही है। कवि ने इसका मार्मिक वर्णन किया है -

भारत माता तड़फे थी था बंधन बुरा गुलामी का।
नीची गर्दन कर राखी धब्बा लग्या बदनामी का।
भारत देश गुलाम था और अंग्रेज का दर्जा स्वामी का।
नर-नारी भयभीत हुए ऐसा डर था नीच हरामी का।
आजादी की सम्मा के ऊपर गात जल्या परवाने का।[121]

इन्होंने कई ज्वलंत सामाजिक समस्याओं पर भी लोकनाट्यों की रचना की है। इनका 'इतिहास दहेज की आग' सांग दहेज की विकराल समस्या पर लिखा गया लोकनाट्य है। इस सांग में कवि हरेराम बैंसला ने दहेज के लोभियों को भेड़िया की संज्ञा दी है। ये भारत को खोखला कर रहे हैं। इस सांग की अंतिम रागनी में कवि ने कहा है -

कितने लोग दहेज के लोभी घिर रहे ऐसे केश के म्हं।
चूसे खून भेड़िया बनके फिरैं सफेद भेष के म्हं।
समझदार और निर्धन मानष सोचें लगी ठेस के म्हं।
कितनी माया रोज जले म्हारे हिन्दुस्तान देश के म्हं।
समझावै हरेराम बैंसला खास दहेज म्हं।[122]

हरेराम बैंसला ने अनेक सामसामयिक विषयों पर भी अनेक फुटकर रागनियाँ रची हैं। इनकी इस समय उम्र सत्तर के आसपास हो चुकी है। इनके लोकनाट्यों को इनके शिष्य गाते हैं।

सप्पो मीर -

सप्पो मीर का जन्म जनवरी 1954 को पिता बशीर अहमद व माता शरीफन के घर गाँव थाना भवन, जिला शामली, उत्तर प्रदेश में हुआ। इनके पिता स्वयं सारंगी वादक थे। इन्होंने मात्र पाँचवीं कक्षा तक पढ़ाई की। बहुत कम आयु में इनका सांगों के साथ जुड़ाव हो गया। मात्र आठ साल की आयु में ये अपने पिता के साथ सांग-मंडली में जाने लग गए थे।

इन्होंने उस समय के मशहूर सांगी फकरू मीर को अपना गुरु बनाया। फकरू मीर को सांगियों का सांगी कहा जाता था। इनकी गायन-कला तथा सांग-प्रस्तुतीकरण अत्यधिक कलात्मक होता था।

सप्पो मीर ने आठ अगस्त 1982 को अपना स्वतंत्र बेड़ा बाँध लिया तथा सांग करने लगे। इन द्वारा रचित सांग हैं - 'विजय-कांता', 'संत श्री रविदास', 'राणा पृथ्वीसिंह चौहान और किरणमई', 'विजय-कांता', 'पूर्ण भक्त का तीसरा भाग' आदि। 'विजय-कांता' इनका मौलिक सांग है। विजय और कांता का सांग बहुत रोचक और मनोरंजनप्रद है। फकरू मीर, लिल्ला मीर और सप्पो मीर का पर्याप्त मेल-जोल था। वे अपने सांगों में एक दूसरे की रागनियाँ साधिकार गा लिया करते थे। इनकी भाषा में ठेठ मेरठी झलक मिलती है। इनके सांगों की वार्ताएँ भी पद्यमय होती थीं। एक मनोरंजपूर्ण वार्ता दर्शनीय है -

बाबा : अलख-अलख।
नौकर : अरे तू मरा नहीं अब तलक?
बाबा : अरे आज तो मरने का तेरा वार है।
नौकर : मेरी तो बिलकुल इनकार है।
बाबा : अबे क्यूँ तेरे यम का पर्चा आया है?

नौकर : हाँ मुझे मलेरिया ने सताया है।

बाबा : अब तूने इसका इलाज भी कराया है?

नौकर : चाय के साथ पीने के तम्बाकू खाया है।[123]

ये नुस्खा वैद्य से तीन साल चार दिन म्हं पाया है।

इनका संत श्री रविदास सांग समाज में प्रचलित चमत्कारपूर्ण कहानी पर आधारित ही है।

मंगतराम शास्त्री -

मंगतराम शास्त्री का जन्म जिला जींद के गाँव ढाठरथ (सहरड़ा) में स्वर्गीय श्री टेकाराम वशिष्ठ व स्वर्गीय श्रीमती सुखदेई के घर 2 अप्रैल 1963 को हुआ।66 इन्होंने संस्कृत और हिन्दी से एम.ए. कक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। मंगतराम शास्त्री की बचपन से ही सांग आदि लोककलाओं में रुचि हो गई और स्वयं भी सांग रचने लगे। ये अनेक आंदोलनों से भी जुड़े रहे। परिणामस्वरूप उन आंदोलनों की शिद्दत इनकी रागनियों में भी झलकती है। धर्मवीर भारद्वाज का कथन है, "हरियाणवी लोकसाहित्य की बात आते ही सांगों का दृश्य आँखों के सामने घूमने लगता है। सांगों में राजा-रानी के किस्से लोगों को सारी-सारी रात बाँधे रखते थे, लेकिन इनमें जनपक्षीय संवाद की कमी रही। इस कमी को कई आधुनिक हरियाणवी गायकों और कवियों ने पूरा किया, इनमें मंगतराम शास्त्री का नाम भी अदब से लिया जाता है।"[124]

मंगतराम शास्त्री ने फुटकर रागनियाँ अधिक लिखीं। इनकी रागनियों के विषय, शिक्षा, नशा, कन्या भ्रूण हत्या, स्त्री की पीड़ा, दहेज, भ्रष्टाचार, ज्ञान-विज्ञान, अंधविश्वास, किसान तथा कर्मचारियों के आंदोलन होते हैं। इन्होंने दो सांग लिखे - 'कमला महिपाल' तथा 'सपना सरपंच का'। "इनके सांगों की विशेषता यह रही कि सारा परिवार बैठकर साथ देख सकता है और इन्होंने सांगों में व्यक्तित्ववादी महाशयगिरी को तोड़कर सामूहिक नेतृत्व को तरजीह दी। अपनी रचनाओं के माध्यम से शास्त्री ने नए वैकल्पिक समाज की अवधारणा भी बनाई।"[125]

एक शराबी की पत्नी की पीड़ा का उन्होंने इस प्रकार मार्मिक वर्णन किया है -

सिर पै गठड़ी हे माँ मेरी बोझ की री।
हेरी कोय दिल म्हं दर्द की मार।
बहोत दुहेला हे माँ मेरी जीवणा री।

दारू पी कै हे माँ मेरी ओ लड़ै री।
हे री ओ तो आवै सै आधी रात।
डर-डर मर जाँ एकली री।
सिर पै कर्जा हे माँ मेरी चढ़ग्या री।
हे री बड़ी बुरी सेठ की नीत टोकण आवै रात म्हं री।[126]

मंगतराम की रागनियों में लोकगीतों जैसा रसास्वादन मिलता है।

मंगतराम नवीन चेतना के लोकनाट्यकार हैं। वे भूमंडलीकरण की बारीकियों को समझते हैं। युद्धों के आर्थिक तकाजों को समझते हैं। वे साम्राज्यवादी देशों की महत्त्वाकांक्षाओं को भली-भाँति जानते हैं। वे सत्तासीनों को चेतावनी देते हैं कि वे अपने निजी स्वार्थों के चलते देश को युद्ध की आग में ना झोंकें। शास्त्री जी लिखते हैं -

सुणो देश के रखवालो क्यूं झोंके देश लड़ाई म्हं।
किस का दिन सै युद्ध म्हं सोचो, फैदा घणा समाई म्हं।
बणै चौधरी तीजा जब हो बैर पड़ोसी भाई म्हं।
दुनिया का इतिहास पढ़ो ना रहती कसर तबाही म्हं।
भाई भाई हो जाता है कती खून का प्यासा रै।
नहीं लड़ाई किसे बात का हल करो, ख्याल जरा-सा है।[127]

मंगतराम शास्त्री उदारमना है। वे सांग रागनी के सामाजिक बदलाव का सशक्त माध्यम मानते हैं।

मुख्त्यारलाल भाट-

मुख्त्यारलाल भाट का जन्म गाँव नयागाम हाँसी में हुआ। हाँसी तहसील हरियाणा के हिसार जिला की तहसील है। इनका गोत्र रोतांण था। मुख्त्यारलाल भाट की आवाज सुरीली थी। इन्होंने अनेक लोकनाट्यों की रचना की। ‘फौजी छोरा हरियाणे का’, ‘सरबती गाडण जोगी’, ‘चमेली खाद की’, ‘छोरी सांठिये की’, ‘छोरी कालिज वाली’, ‘दिलोजान पनवाड़ी’, ‘नथिया गिरकाणी’ आदि इनके लोकनाट्य है। इन्होंने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं।

इनके लोकनाट्यों में अधिकतर श्रृंगार रस के लोकनाट्य हैं, जो इनके नामों से भी ध्वनित हो जाता है। ‘फौजी छोरा हरियाणे का’ सांग अंतर्जातीय विवाह, आर्थिक असमानता, सामंजस्य और प्रेम का जीता जागता उदाहरण है। सांग में रामसिंह जमादार का लड़का शिवकुमार अपने ही सीरी (नौकर) हरिदत्त की लड़की

ओमपति को चाहने लग जाता है। ओमपति एक जिम्मेदार लड़की की भाँति उसे धमकाती है। उसकी रागनी की टेक से इस बात का पता चलता है -

हो मानजा देशां के बदकार।
दुख पावैगा छेड़ै बिरानी नार।।[128]

इस रागनी की चौथी कली में वह उसे जारी के दुष्परिणाम पर भी उदाहरणों द्वारा बतलाती है -

और सुणाऊँ सुणता जाइऐ जिसके इश्क जाग्या था।
चाँद मन म्हं पाप धार के घर गौतम के आग्या था।
बीर बिराणी तकणै तै स्याही का टीका लाग्या था।
हो इब देखै सब संसार।[129]

हालांकि जब ओमपति को पूरा विश्वास हो जाता है कि शिवकुमार उससे सच्चा प्रेम करता है तो वह भी उसे चाहने लगती है और घर परिवार वालों को बिना बताए दोनों गंधर्व विवाह कर लेते हैं। शिवकुमार फौज में नौकरी पर चला जाता है। ओमपति के घर जब माँ-बाप उसके पेट में पल रहे बच्चे को देखते हैं तो वे कुपित होते हैं और घर से निकाल देते हैं। उसे एक तारापति नाम की अनाथ लड़की शरण देती है। बाद में शिवकुमार का विवाह उन दोनों के साथ हो जाता है। 'सरवती गाडण जोगी' लोकनाट्य भी प्रेमकथा पर आधारित है। इसमें हरिपुरा के एक लड़के का गाड़ी लुहार की लड़की के साथ प्रेम दर्शाया गया है। पूरा सांग अत्यधिक रोचक है। इस सांग की कई रागनियों में लोकनाट्यकार ने अपने सांग करने वाले मुन्नीलाल डांसर का नाम भी लिया है, यथा -

उस गोरी बिन हरबाई सै मेरे मरण का ढाळा।
ली काढ़ जान थी सुथरी जोबन पै कटऱ्या चाळा।
मुखत्यार कहै उस गोरी का फैशन कती निराळा।
था सिर पै ओढ़णा काळा मुन्नीलाल नै गाई।[130]

'चमेली खादर की' लोकनाट्य भी प्रेम और नैतिकता की परीक्षा का लोकनाट्य है। धर्मसिंह और बिजे सिंह दो गाढ़े मित्र थे। धर्मसिंह को सपने में एक दिन हूर दिखाई देती है। कुछ दिन बाद उसे चमेली मिलती है तो वह उसे सपने में दिखने वाली हूर लगती है। दोनों का प्रेम होता है और शादी हो जाती है। धर्मकुमार फिल्म कंपनी में काम करता था। वह पत्नी को समझाकर काम पर जाने लगता है और

उसकी पत्नी चमेली क्या कहती है -

बीर-मर्द का दुख-सुख सारा सीर होया करै पिया।
मर्द किते जा घर की इज्जत बीर होया करै पिया।
बिगड़े खानदान की आज्या हाँसी होया करै सै।
सही खानदान की बस ज्यागी चाहे फाँसी होया करै सै।
दिखे दासी होया करै सै पति चाहे तीर होया करै पिया।।[131]

धर्मकुमार का मित्र बिजेसिंह धर्म की अनुपस्थिति में चमेली की नैतिकता की परीक्षा भी लेता है परंतु वह उस पर खरी उतरती है। वह अपनी बहन कोलपति की शादी बिजेसिह से करवा देती है। इस प्रकार यह लोकनाट्य नैतिकता से भरपूर सुखांत नाटक है।

मुख्त्यारलाल भाट के गुरु टेकचंद थे जो चुलाणा गाँव के थे। 'चमेली खादर की' लोकनाट्य में कवि ने अपने गुरु के गुरु का भी वर्णन किया है-

हे ईश्वर परमात्मा मनै सुमर लिया तेरा नाम।
टेकचंद सतगुरु मिले, दादा गुरु सिरिया राम।[132]

मुख्त्यारलाल भाट व मुन्नीलाल डांसर की जोड़ी खूब पसंद की जाती थी। उनके लोकनाट्यों के छोटे-छोटे गुच्छे प्रकाशित होते थे जिन पर इन दोनों का ही मुख्य पृष्ठ पर चित्र होता था।

इन्होंने अनेक फुटकर रागनियाँ भी लिखीं। कहीं कहीं ये द्विअर्थी शब्दों के प्रयोग में कामुक प्रवृत्ति जगाने का भी प्रयास करते थे। 'चमन की काची बुलबुल' गुच्छे में इनकी फुटकर रागनियाँ संकलित हैं।

दलबीर सिंह फूल -

दलबीर सिंह फूल का जन्म 8 जून 1969 को पिता फूलसिंह सेन एवं माता भतेरी देवी के घर गाँव लिसान, जिला रेवाड़ी में हुआ। इनके गुरु का नाम था - प्यारे साहब। इन्होंने महाशय भीमसिंह से भी काव्य की बारीकियाँ सीखीं। सांग का माहौल इन्हें अपने पूर्वजों से विरासत में मिला। इनके दादा घीसाराम सैन ढोलक वादक थे। इनक पिता भी ढोलक, तबला, हारमोनियम और खड़ताल बजा लिया करते थे। दलबीर सिंह मंचीय कवि भी हैं।

इन्होंने छह सांगों की रचना की - श्री नारायण जी, बाबू बालमुकुंद गुप्त जी, तारा राणी, बाजे भगत, सुन्दर कांड, बाबा साहेब डॉ. भीमराम अंबेडकर। इनके सांग

इन द्वारा रचित 'सांग सरोवर' पुस्तक में संकलित हैं। इनके ये सभी सांग पूर्णतः मौलिक हैं। इन द्वारा रचित 'बाजेभगत' सांग के नायक बाजे भगत कौरवी क्षेत्र के स्वयं एक बड़े सुप्रसिद्ध सांगी रहे हैं। बाबा साहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर में उन्होंने अपने गुरु की वंदना निम्न प्रकार की है -

दिल से मनाऊँ ध्याऊँ सतगुरु प्यारे।
दास की बिपत हरी लावो किनारे।
दयासिंधु दया की बूंद पिलाओ।
पतित पावन पतित का कष्ट हटाओ।
गले से लगाओ तेरा दीन पुकारे।।[133]

इस सांग में इन्होंने डॉ. अम्बेडकर के शिक्षा, स्वाभिमान व संघर्ष को आधार बनाया है। उनकी शिक्षाओं का भावी पीढ़ियों पर जो असर पड़ा उसे दलबीर फूल निम्न रागनी अंश में समझाते हैं -

खुद पढ़ कै पढ़ावण आग्या, भारत को जगावण आग्या।
दलितों को समझावण आग्या, मिट्ठे बोल बोल कै।
सबसे पहले साफ सफाई, सुन्दरता का ध्यान करो।
शिक्षा शेरणी का पी कै दूध जग म्हं न्यारी पहचान करो।
ज्ञान करो आगे आ कै, दुश्मन भागै मुँह की खा कै।
भीमराव समझावै जा कै, सबनै खोल खोल कै।।[134]

इस सांग की अंतिम रागनी में कवि दलबीर सिंह फूल अम्बेडकर जी के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करते हुए उनके बहुआयामी व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हैं -

वक्ता लेखक शिक्षक थारी करता जगत बड़ाई।
फरस से अरस तक तुमनै पा ली सभी उच्चाई।
विद्वानों के शिरोमणी थारी धजा शिखर लहराई।
पिता तुम्हारे मौला जी माता भीमाबाई।
भारत देश के भाण और भाई, आत्या तनै बुलावै सै।[135]

दलबीर सिंह फूल ने और भी अनेक फुटकर रागनियाँ लिखी है जिनमें सामाजिक समस्याओं पर विचार विमर्श किया गया है।

पालेराम पांचाल -

पालेराम पांचाल का जन्म गाँव संडील, जिला कैथल, हरियाणा में पिता

बीरूराम तथा माता चलती देवी के घर हुआ। ये पांचाल जाति से संबंधित है। जब ये मात्र डेढ़ वर्ष के थे तो इनके पिता का देहांत हो गया।

इन्होंने पाँच लोकनाट्यों का सृजन किया - गोपीचंद, पूर्णमल, छोटूराम, महाभारत तथा चंद्रप्रभा मदनसेन। इन सांगों के अतिरिक्त इन्होंने अनेक फुटकर रागनियों की भी रचना की थी। इनका छोटूराम लोकनाट्य मात्र 8 रागनियों का है। जिसमें उन्होंने उनके पैदा होने से लेकर शिक्षा प्राप्ति तक का समय दर्शाया है। इस सांग में छोटूराम की सूझ-बूझ का भी दिग्दर्शन हुआ है। इस सांग की रागनी 'लग्या सन् 1923 बण्या छोटू राम वजीर' में उन्होंने छोटूराम द्वारा किसानों के लिए किए गए कार्यों का उल्लेख किया है। इसकी चौथी कली दर्शनीय है -

अंग्रेजां का बणकै मिलकै काम जगत के काढ़ गया।
रोहतक के म्हं कालेज खोल्या विद्या की जड़ गाड़ गया।
भुल्यां नै चेतावनी मिलगी पकड़े सीधी सैड़ गया।
पढ़ण लिखण और विद्या के म्हां सब जाति का हिस्सा होगा।
जिसी कला इसी परखी जागी दुनियादारी शीशा होगा।
संडील नगर नै छोटूराम का एक दिन चालू किस्सा होगा।
कहै पालेराम मिटै कौन्या काढ़्या घी पत्थर म्हं लकीर।[136]

छोटूराम आजादी के आंदोलन के दौरान हरियाणा के एक बड़े नेता हुए, जिन्होंने शिक्षा और संगठन पर बल दिया था।

इनकी एक फुटकर रागनी 'लई देख ट्राई मार कै सही बात मिली ना कोई' काफी प्रसिद्ध हुई थी। इस रागनी में उन्होंने अंधविश्वासों का पर्दाफाश किया है। अंतिम कली में कवि ने मानव-मात्र की समता का संदेश दिया है -

इन्होंने शराब के दुष्परिणामों पर भी एक उद्‌बोधन रागनी लिखी है। इस रागनी की टेक व दूसरी कली दर्शनीय है -

ऐजी ऐजी गई बिगड़ जगत की चाल।
बिना शराबी दुनिया म्हं कोम माई का लाल।।[137]

x *x* *x*

बाप अर बेटा दोनों पीवैं माड़ी-सी भी शर्म नहीं।
सुसरा और जमाई पीवैं कोय पीणे का धर्म नहीं।
गुरु चेला कट्ठे पीवैं यू गुरुआं का कर्म नहीं।

पेग मार कै जावै पर्श म्हं पंचैती भी देख लिए।
ब्याहे बाणे म्हं रोका करदे बनड़े भात्ती देख लिए।
पी कै देवै गवाही झूट्ठी फर्जी साथी देख लिए।
साह पुरुषा की कौण सुणै नकली नै करदे भाल।[138]

पालेराम संडील के लोकनाट्यों और फुटकर रागनियों को अनेक गायक गाते है।

निष्कर्ष -

वर्तमान समय तकनीकी बहुआयामी समय है। विशेषकर कलाओं के प्रदर्शन के मामले में इस तकनीक ने पर्याप्त हस्तक्षेप किया है। व्यक्ति के हाथ में एक छोटे से यंत्र ने अथाह-अपार सूचनाएँ प्रदान कर दी हैं, जिसका प्रभाव जीवंत कलात्मक विधाओं पर पड़ा है। फलतः सांग का प्रत्यक्षदर्शी दर्शक घट गया है। इसलिए यह विधा अब संकट के दौर से गुजर रही है। कौरवी क्षेत्र में कहावत है - बाजे पै पाँह उट्ठै। यानी कारण की उपस्थिति में काम का होना। सांगी का मन उसके चारों ओर बैठे दर्शकों से घटता-बढ़ता है। जब दर्शक कम होंगे तो सांगी का मन भी डूब जाता है जिसका असर उसके प्रदर्शन पर पड़ता है। यही कारण है कि सांग विधा अब विलुप्ति के कगार पर है।

जहाँ पहले दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह दिन सांगों का मंचन होता था। सांगी आगे से आगे अग्रिम पेशगी प्राप्त करते रहते थे, सांग सृजन और मंचन अनवरत, अबाध गति से चलता रहता था, वहीं अब सांगियों की अंतिम पीढ़ी इसके अवसान से रूबरू हो रही है। अब यह मात्र धरोहर के रूप में प्रदर्शन की कला बनकर सिमटने लगी है। कला एवं संस्कृति विभाग सांग मंचन को बचाए रखने के लिए साल में कुछ कार्यक्रम करवाता है। जहाँ इस विधा ने सांगियों को एक समय में धनाढय श्रेणी में ला खड़ा किया था, अब सांगियों को रोजगार के लाले पड़े हुए हैं। जहाँ पहले बेड़ा लगातार चलता ही रहता था, वहीं अब बेड़ा बिखर गया है। सांगियों ने अपने दूसरे रोजगार ढूँढ़ लिए हैं। यह कला का क्षय है।

वर्तमान समय में जितने भी लोकनाट्यकार हैं, उनमें से अधिकतर लेखक हैं। ऐसे लोकनाट्यकार बहुत कम बचे हुए हैं जो लोकनाट्य लिखते हों तथा स्वयं उनको मंचित भी करते हों। अब यह कला धीरे-धीरे मनोरंजन की अपेक्षा बौद्धिक होने लगी है। वर्तमान काल का लोकनाट्यकार साहित्य की अन्य विधाओं से परिचित है। फलतः वह नए-नए विमर्शों पर लोकनाट्य लिखने लगा है।

इसी का परिणाम है कि अनेक सामाजिक मुद्दे और विमर्श लोकनाट्य का विषय बनने लगे हैं। फलतः डॉ. अम्बेडकर, कांशीराम, सावित्री बाई फूले, झलकारी बाई, कबीर, विरजानंद, स्वामी दयानंद, दहेज, गरीब लड़की, शराब, जाति-व्यवस्था आदि विषयों पर लोकनाट्य लिखे जाने लगे हैं। अर्वाचीन कवि का पुरातन विषयों में मोहभंग हुआ है। यह अलग बात है कि वर्तमान समय में इनका मंचन कम हो गया है।

वर्तमान समय में जन्मदिन, विवाह, किसी राष्ट्रीय त्यौहार या खुशी के अवसर पर सांग का कहीं-कहीं प्रचलन है। रागनी कंपीटिशनों की मात्रा अधिक हो गई है। रागनी कंपीटिशनों ने सांग के गौरव को नुकसान पहुँचाया है। इसने लोगों की रुचि में भी बदलाव किया है। सांग की अपेक्षा रागनी कंपीटिशन सांग के वैभव के साथ छेड़खानी है। इन रागनी कंपीटिशनों ने सांग कला को बिरान किया है। छापकटैया वाला अवगुण भी कंपीटिशनों की ही देन है। इन कंपीटिशनों के कारण गायकों ने रागनी के स्वामित्व की तमाम मर्यादाओं को लांघ दिया। रागनी का रचयिता कौन है, इसकी अपेक्षा पैसा व गायन शैली अधिक महत्त्वपूर्ण है। गायक ने अपने प्रचार के लालच में अनेक कवियों के स्वामित्व के साथ छेड़छाड़ की। रागनी किसी की और छाप किसी की।

जो लोकनाट्यकार मंचन से नहीं जुड़ा, उसकी रागनियों में शब्द, छंद, लय या गेयता की दृष्टि से भी कुछ खामियाँ मिलनी स्वाभाविक है। खुद मंच पर मंचित करने वाला लोकनाट्यकार जब लोकनाट्य का सृजन करता है तो उसका एक-एक शब्द सधा हुआ होता है।

संदर्भ -

1. चौ. भाग सिंह बेनीवाल आर्य के सुपुत्र श्री सुरेश कुमार आर्य से साक्षात्कार के माध्यम से जानकारी
2. श्री स्वामी विरजानंद सरस्वती जीवन गाथा, चौ. भाग सिंह बेनिवाल आर्य, पबनावा प्रिंटिंग प्रैस, बस स्टैंड से रेलवे रोड, ढांड (कैथल), हरियाणा, प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ 12
3. वही, पृष्ठ 14
4. वही, पृष्ठ 18

5. काव्य जीवन गाथा दीनबन्धु छोटू राम, चौ. भाग सिंह बेनिवाल आर्य, पबनावा प्रिंटिंग प्रैस, बस स्टैंड से रेलवे रोड, ढांड (कैथल), हरियाणा, प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ 3
6. वही, पृष्ठ 13
7. महाभारत गऊहरण, लड्डन सिंह बंजारा उर्फ दिलखुश, जवाहर बुक डिपो, मेरठ, पृष्ठ 1
8. द्रोपदी चीर, लड्डन सिंह बंजारा उर्फ दिलखुश, जवाहर बुक डिपो, मेरठ, पृष्ठ 2
9. वही, पृष्ठ 5
10. वही, पृष्ठ 5
11. लड्डनसिंह का गुच्छा, लड्डन सिंह बंजारा उर्फ दिलखुश, जवाहर बुक डिपो, मेरठ, पृष्ठ 21
12. वही, पृष्ठ 21-22
13. हरियाणा के लोकगायक (किशनचंद शर्मा), पूर्णचंद शर्मा, गीतिका प्रकाशन, बिजनौर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 51
14. वही, पृष्ठ 51-52
15. वही, पृष्ठ 53
16. जबर सिंह खारी का गुच्छा, जबर सिंह खारी, जवाहर बुक डिपो, पृष्ठ 4
17. वही, पृष्ठ 8
18. वही, पृष्ठ 10
19. वही, पृष्ठ 4
20. वही, पृष्ठ 5
21. बदलता जमाना (देवर भाभी का प्यार), जनार्दन बैसोया, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ - 2, प्रथम संस्करण 1978, पृष्ठ 1
22. वही, पृष्ठ 14
23. वही, पृष्ठ 20
24. चंद्रमुखी-अमरपाल, जनार्दन बैसोया, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ - 2, द्वितीय संस्करण 1978, पृष्ठ 2
25. वही, पृष्ठ 14

26. वही, पृष्ठ 20
27. लालच और दान (धर्मवीर फूलकुमारी), जनार्दन बैसोया, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ - 2, प्रथम संस्करण 1979, पृष्ठ 7
28. हरौला कांड (बहन की ममता), जयकरण सिंह, जवाहर बुक डिपो, निकट आर्य समाज, स्वामीपाड़ा, मेरठ - 2, प्रथम संस्करण 2003, पृष्ठ 1
29. वही, पृष्ठ 6
30. वही, पृष्ठ 12
31. वही, पृष्ठ 15
32. हत्यारी बहन, जयकरण सिंह, जवाहर बुक डिपो, निकट आर्य समाज, स्वामीपाड़ा, मेरठ - 2, प्रथम संस्करण 2003, पृष्ठ 5
33. अम्बेडकर गौरव गाथा, जयकरण सिंह गुर्जर, कौशिक प्रकाशन, 26, शर्मा इंटर कालिज, बुलद शहर, उत्तर प्रदेश, 8
34. इंदिरा गाँधी की हत्या, (इंदिरा गाँधी का संदेश), जयकरण सिंह, श्री भगवत बुक डिपो, पुरानी तहसील, मेरठ, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 1984, पृष्ठ 5
35. वही, पृष्ठ 8
36. हरियाणा के लोककवि (मदन गोपाल शास्त्री), पूर्णचंद शर्मा, गीतिका प्रकाशन, बिजनौर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 72
37. वही, पृष्ठ 75
38. वही, पृष्ठ 74
39. वही, पृष्ठ 75
40. कृष्ण चंद्र रोहणा हरियाणवी ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, अक्षरधाम प्रकाशन, करनाल रोड, कैथल, हरियाणा - 136027, प्रथम संस्करण 2012, पृष्ठ 22
41. वही, पृष्ठ 22
42. वही, पृष्ठ 25
43. वही, पृष्ठ 25-26
44. वही, पृष्ठ 26
45. वही, पृष्ठ 27
46. हरियाणा के लोकगायक (जगन्नाथ समचाणा), पूर्णचंद शर्मा, गीतिका प्रकाशन, बिजनौर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 85-86

47. वही, पृष्ठ 87
48. वही, पृष्ठ 87
49. सांगी सूरजभान बिबियान रचनावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, साहित्य संस्थान, ई-10/660, उत्तरांचल कालोनी (निकट संगम सिनेमा), लोनी बॉर्डर, गाजियाबाद - 201102, प्रथम संस्करण 2023, पृष्ठ 23
50. वही, पृष्ठ 23
51. वही, पृष्ठ 24
52. वही, पृष्ठ 43
53. वही, पृष्ठ 44
54. वही, पृष्ठ 45
55. वही, पृष्ठ 51
56. वही, पृष्ठ 51
57. वही, पृष्ठ 55
58. वही, पृष्ठ 56
59. गरीब की बेटी, ऋषिपाल सिंह, कौशिक प्रकाशन, 26, शर्मा इंटर कालिज मार्केट, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 8
60. दहेज की आग, ऋषिपाल सिंह, कौशिक प्रकाशन, 26, शर्मा इंटर कालिज मार्केट, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 5
61. महाशय केदारमल हरियाणवी ग्रंथावली, आलोक भांडोरिया, सुकीर्ति प्रकाशन, डी.सी. निवास के सामने, करनाल रोड, कैथल, हरियाणा - 136027, प्रथम संस्करण 2011, पृष्ठ 42
62. वही, पृष्ठ 164
63. वही, पृष्ठ 180
64. वही, पृष्ठ 229
65. अजीतसिंह राजबाला (दूसरा भाग), कल्याण सिंह बेफिकर, भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर (उत्तर प्रदेश), पृष्ठ 1
66. वही, पृष्ठ 7

67. चित्र विचित्र, कल्याण सिंह बेफिकर, मधुर प्रकाशन, निकट पशु चिकित्सालय, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 1997, पृष्ठ 27

68. वही, पृष्ठ 28

69. सांगीत राजा मोरध्वज, कल्याण सिंह बेफिकर, भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर (उत्तर प्रदेश), पृष्ठ 20

70. हरियाणवी सांग-माला, डॉ. चतरभुज बंसल, सुकीर्ति प्रकाशन, डी.सी. निवास के सामने, करनाल रोड, कैथल, हरियाणा - 136027, प्रथम संस्करण 2005, पृष्ठ 14

71. वही, पृष्ठ 14

72. वही, पृष्ठ 16

73. वही, पृष्ठ 16

74. वही, पृष्ठ 124

75. हरियाणवी सांग-सुधा, डॉ. चतरभुज बंसल सोथा, सुकीर्ति प्रकाशन, डी.सी. निवास के सामने, करनाल रोड, कैथल, हरियाणा - 136027, प्रथम संस्करण 2009, पृष्ठ 76

76. सांग वाटिका, रामफल गौड़ धनौरी, सुकीर्ति प्रकाशन, डी.सी. निवास के सामने, करनाल रोड, कैथल, हरियाणा - 136027, प्रथम संस्करण 2010, पृष्ठ 17

77. वही, पृष्ठ 10

78. वही, पृष्ठ 11

79. वही, पृष्ठ 86

80. वही, पृष्ठ 86

81. वही, पृष्ठ 15-16

82. गागर में सागर, लेख राज चौहान, राईटर्सग्राम, पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2021, पृष्ठ 9

83. वही, पृष्ठ 10

84. वही, पृष्ठ 12

85. वही, पृष्ठ 28-29
86. सांग सुधा, लोककवि हरिपाल गौड़, वाग्देवी प्रकाशन, 1087, गली नं. 5, मयूर विहार, गोहाना रोड, सोनीपत - 131001 (हरियाणा), प्रथम संस्करण 2019, मंगलाचरण।
87. वही, पृष्ठ 154
88. वही, पृष्ठ 13
89. कारगिल की लड़ाई (भारत की जीत), रामभूल सिंह बड़गूजर, जवाहर बुक डिपो, 300, स्वामीपाड़ा, मेरठ, प्रथम संस्करण 1999, पृष्ठ 3
90. वही, पृष्ठ 6
91. कृष्ण खिलाड़ी अर्जुन अनाड़ी, रामभूल सिंह बड़गूजर, श्याम प्रिंटिंग प्रेस, परीक्षितगढ़, मेरठ, प्रथम संस्करण 2002, पृष्ठ 16
92. अर्जुन बनी लुगाई, रामभूल सिंह बड़गूजर, श्याम प्रिंटिंग प्रेस, परीक्षितगढ़, मेरठ, प्रथम संस्करण 2002, पृष्ठ 2
93. वही, पृष्ठ 8
94. हस्तलिखित पांडुलिपि, सुबेलाल सांगी, संग्रहालय, चौ. तारा चंद शिक्षा एवं लोक कला संस्थान (रजि.), गाँव मलिकपुर, जिला सोनीपत, हरियाणा।
95. हस्तलिखित पांडुलिपि, कुंवर विशाल सिंह, संग्रहालय, चौ. तारा चंद शिक्षा एवं लोक कला संस्थान (रजि.), गाँव मलिकपुर, जिला सोनीपत, हरियाणा।
96. वही।
97. वही।
98. वही।
99. हस्तलिखित पांडुलिपि, न्यादर सिंह बेचैन संग्रहालय, चौ. तारा चंद शिक्षा एवं लोक कला संस्थान (रजि.), गाँव मलिकपुर, जिला सोनीपत, हरियाणा।
100. वही।
101. वही।
102. वही।
103. वही।

104. वही।

105. फौजी प्रेमसिंह कृत किस्सा भीमराव अंबेडकर तथा अन्य रागणियाँ, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, गौतम बुक सेन्टर, सी - 263 ए, चंदन सदन, हरदेवपुरी, शाहदरा, दिल्ली - 93, पृष्ठ 30

106. वही 35-36

107. वही 61

108. वही 60

109. वही 63

110. सांग साहब कांशीराम एवं अन्य सांग, फौजी प्रेम सिंह एवं मूर्ति देवी, ज्योति प्रकाशन, सोनीपत, हरियाणा, पृष्ठ 16

111. वही, 18

112. वही, 18

113. किस्मत के खेल निराले़ (हरियाणवी साँग-संग्रह), लहणा सिंह अत्री, सुकीर्ति प्रकाशन, कैथल, हरियाणा, पृष्ठ 15

114. वही, पृष्ठ 22

115. हरियाणवी लोक-गीत एवं कथा मीरा बाई, गुरु रविदास जी, बीरबल निंबरिया, इशु प्रेस, पृष्ठ 20

116. वही, पृष्ठ 52

117. झम्मन लाल सांगी की किताब, चेला गंगाराम, विनीता ग्राफिक्स, फरीदाबाद, पृष्ठ 30

118. वही 57

119. वही 81

120. वही, 12

121. हस्तलिखित पांडुलिपि, हरेराम बैंसला, संग्रहालय, चौ. तारा चंद शिक्षा एवं लोक कला संस्थान (रजि.), गाँव मलिकपुर, जिला सोनीपत, हरियाणा।

122. वही।

123. हस्तलिखित पांडुलिपि, सप्पो मीर, संग्रहालय, चौ. तारा चंद शिक्षा एवं लोक कला संस्थान (रजि.), गाँव मलिकपुर, जिला सोनीपत, हरियाणा।

124. हरियाणा के लोककवि (मंगतराम शास्त्री), पूर्णचंद शर्मा, गीतिका प्रकाशन, साहित्य विहार, बिजनौर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 66

125. वही, पृष्ठ 69

126. वही, पृष्ठ 67

127. वही, पृष्ठ 70

128. फौजी छोरा हरियाणे का, मुख्त्यारलाल रोतांण एवं मुन्नी लाल डान्सर, शंकरदास अंगनामल कागजी, हालू बाजार, पृष्ठ 2

129. वही, पृष्ठ 3

130. सरबती गाडण जोगी, मुख्त्यारलाल रोतांण एवं मुन्नी लाल डान्सर, शंकरदास अंगनामल कागजी, हालू बाजार, पृष्ठ 15

131. चमेली खादर की, मुख्त्यारलाल रोतांण एवं मुन्नी लाल डान्सर, शंकरदास अंगनामल कागजी, हालू बाजार, पृष्ठ 14

132. वही, पृष्ठ 1

133. सांग सरोवर, दलबीर सिंह फूल, शब्दांकुर प्रकाशन, मदनगीर, दिल्ली, पृष्ठ 173

134. वही, पृष्ठ 184

135. वही, पृष्ठ 198

136. हस्तलिखित पांडुलिपि, पालेराम पांचाल, संग्रहालय, चौ. तारा चंद शिक्षा एवं लोक कला संस्थान (रजि.), गाँव मलिकपुर, जिला सोनीपत, हरियाणा।

137. वही।

138. वही।

उपसंहार

कौरवी क्षेत्र लोकनाट्य की दृष्टि से अति समृद्ध क्षेत्र रहा है। इसका भौगोलिक क्षेत्र संपूर्ण हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश का भूभाग है। बुलंदशहर से हरियाणा की ओर का पूरा क्षेत्र कौरवी का क्षेत्र है। सहारनपुर, मुजफ्फरपुर, मेरठ, शामली, मुरादाबाद का उत्तरी भाग, बुलंदशहर का पश्चिमी भाग तथा संपूर्ण हरियाणा कौरवी लोकभाषा का क्षेत्र कहलाता है। यह क्षेत्र महाभारत कालीन कुरु जनपद के अंतर्गत आता है। इसी कारण इसका नाम 'कौरवी' पड़ा।

खड़ी बोली और कौरवी का संबंध अत्यधिक घनिष्ठ है। दोनों पर्याय भी हैं और अन्योन्याश्रित भी। कौरवी खड़ी बोली की लोकभाषा है, जिसमें अपार मात्रा में लोकसाहित्य की सृजना हुई है। लोकगीत, लोकनाट्य, लोकनृत्य, लोकगाथा की दृष्टि से कौरवी क्षेत्र पर्याप्त समृद्ध है। लोकनाट्य गीत, संगीत, नृत्य, वार्ता, नाटक आदि की मिली-जुली विधा है। लोकनाट्य विभिन्न विधाओं का संयोजन है। कौरवी लोकनाट्य भारत के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित लोकनाट्यों की ही तरह मनोरंजन का एक सर्वांगीण माध्यम है।

कौरवी लोकनाट्य (सांग) का वर्तमान स्वरूप अनेक पड़ावों को पार करता हुआ यहाँ तक आया है। इसके पीछे अनेक लोकनाट्यकारों का सतत् प्रयास एवं शिद्दत रही है। सांग से पूर्व मनोरंजन के लिए मुजरा, नकल, बहरूपिया आदि का प्रचलन था। समय की माँग के अनुरूप इसमें परिवर्तन होते रहे। पूर्व में यह पूरी तरह से पद्यात्मक ही रहा। दोहा, चोबोला, मुकताल आदि में प्रारंभिक लोकनाट्यों की रचना होती थी। शुरू में चोबोला चार पंक्तियों का होता था तो बाद में छह पंक्तियों का हो गया। प्रारंभिक लोकनाट्यकारों में सादुल्ला व किशनलाल भाट आदि माने जाते हैं। लोकनाट्य के वर्तमान रूप के लक्षण हमें किशनलाल भाट में परिलक्षित होते हैं। आरंभिक लोकनाट्यों के लिए कोई निश्चित मंच नहीं होता था। कलाकार गलियों में घूम-घूमकर कथा का गायन करते थे। लोकनाट्य मंडली में मात्र दो या

तीन लोग होते थे। एक ढोल तथा एक सांरगी होती थी। सांरगी बजाने वाला ही गायन भी कर लिया करता था। दर्शकों की संख्या भी कम ही रहती थी। फिर बाद में एक जनाना (स्त्री वेश में पुरुष) भी जुड़ने लगा। ये चार या पाँच कलाकार ही लोकनाट्य के प्रारंभिक रूप को अंजाम दिया करते थे। लोकनाट्य की कथा धार्मिक ही होती थी, जिसके कारण लोग मुजरे या नकल आदि की अपेक्षा लोकनाट्यों की ओर उन्मुख हुए। इसे लोग सपरिवार देख-सुन सकते थे।

किशनलाल ने पूरे लोकनाट्य के अंत में अपना नाम छाप (स्वामित्व) के रूप में जोड़ना प्रारंभ किया। यहाँ से लोकनाट्यों में 'छाप' लगनी शुरू हुई। इस समय लोकनाट्य विशुद्ध रूप से मनोरंजनात्मक ही लिखे गए।

इसके बाद बंसीलाल एक बड़े लोकनाट्यकार के रूप में उपस्थित होते हैं। होली के अवसर पर वे जगाधरी तथा आसपास के क्षेत्रों में लोकनाट्य का मंचन किया करते थे। बंसीलाल तक आते-आते लोकनाट्य के प्रति लोगों की धारणा में सकारात्मक बदलाव आया। बंसीलाल के लोकनाट्य मेरठ-हापुड़ के आसपास खेली जानी वाली 'होली' के अधिक निकट हैं। अंग्रेज विद्वान ने आर.सी. टेंपल ने इस मौखिक परंपरा के प्रलेखीकरण की शुरुआत की। उन्होंने किशनलाल भाट व बंसीलाल के लोकनाट्यों को लिखित रूप दिया।

इन लोकनाट्यों के समकालीन अनेक लोकनाट्यकार प्रलेखीकरण के अभाव में विलुप्त हो गए। किशनलाल भाट व बंसीलाल के समय की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि उन्होंने मनोरंजन के मामले में मुजरे के स्थान पर लोकनाट्य को स्थानांतरित कर दिया।

लोकनाट्य के क्षेत्र में एक बड़ा बदलाव शंकरदास के समय में दिखाई देता है। इन्होंने चोबोला, मुकताल तथा दोहा के स्थान पर रागनी को स्थापित कर दिया। यद्यपि शंकरदास की तमाम रागनियाँ चौकलिया और एक ही शैली में है, तथापि रागनी को लोकनाट्य का अनिवार्य अंग बनाने में उनका सबसे अधिक योगदान रहा है। चोबोला व दोहा आदि बाद में भी रहा लेकिन रहा गौण रूप में। रागनी मुख्य होती चली गई। शंकरदास युग में विभिन्न लोकनाट्यकारों में 'ज्ञान की लड़ाई' चलती थी। इसे खोल-बंद भी कहते थे। कई-कई दिन तक शास्त्रार्थ चलता था। शास्त्रार्थ का विषय होता था पौराणिक कथाओं पर आधारित ज्ञान। इस समय ज्ञान का मतलब था - पौराणिक ग्रंथों, स्मृतियों तथा वेदों की जानकारी। इस समय मुजरे या मनोरंजन के दूसरे साधक गौण हो गए थे और लोकनाट्य मुख्यधारा में आ गया था। शंकरदास युग प्राचीन लोकनाट्य परंपरा तथा आधुनिक लोकनाट्य का संगम स्थल भी कहा

जा सकता है। रागनी का रूप, सांग की विषयवस्तु, प्रस्तुतीकरण, लोगों की रुचि और बहुतायत मात्रा में लोकनाट्यकारों की उपस्थिति ने लोकनाट्य के भविष्य को उज्ज्वल बना दिया था। शंकरदास ने रागनी की टेक, कली, छाप, अंतरा आदि को व्यवस्थित कर दिया। उन्होंने हर रागनी की अंतिम कली में रचनाकार का नाम जोड़ना अनिवार्य कर दिया। रागनी प्रायः चार कलियों की होती थी। शंकरदास की सभी रागनियों में छाप के रूप में रचनाकार के रूप में उनका नाम अवश्य मिलता है।

शंकरदास के बाद एक करिश्माई लोकनाट्यकार के रूप में बाजे भगत का अवतरण होता है। बाजे भगत के साथ-साथ पं. दीपचंद, हीरादास उदासी, ताऊ सांगी आदि ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। रामलाल खटीक का भी पर्याप्त नाम हुआ। बाजे भगत तक आते-आते लोकनाट्य विधा व्यावसायिक रूप लेने लगी थी तथा लोकनाट्यकारों में प्रतिस्पर्धा की भावना बढ़ गई थी। कौरवी क्षेत्र सांग की विषयवस्तु और शैली से सराबोर होने लगा था। इस काल के चतरू सांगी को कई बार उनके प्रशंसकों ने चाँदी के सिक्कों में तोला था। लोग दस-दस मील सांग देखने जाया करते थे। राजस्थान से जुड़े कौरवी क्षेत्र में अलीबख्श का बोलबाला था। इन लोकनाट्यकारों ने लोगों के कवित्व को जगा दिया था। 1936 में बाजे भगत की कलागत ईर्ष्या के तहत हत्या हो गई।

बाजे भगत के बाद पं. लखमीचंद के अवतरण ने सांग विधा को चार चाँद लगा दिए। उनकी लोकप्रियता सांग का पर्याय बन गई। लखमीचंद ने सांग को सांस्थानिक रूप दिया। वे खुद अनपढ़ समान थे परंतु उन्होंने नियमित रूप से टीकाराम शास्त्री जैसे पढ़े-लिखे लोगों को अपने साथ रखा तथा सांग-मंचन के बाद का समय सांग में किस प्रकार पुराण, वेद, स्मृतियों के आख्यान स्थापित किए गए, इसी पर सर्वाधिक मनन किया जाता। पं. लखमीचंद में जाति व वर्ण के प्रति जितना पूर्वाग्रह है, संभवतः उनसे पहले के लोकनाट्यकारों में उतना नहीं है। उनको जहाँ भी अवसर मिला, वर्ण और जाति को श्रेष्ठ व्यवस्था कहने से नहीं चूके। उनको बाद में लोकसाहित्य अध्येताओं ने कविसूर्य सिद्ध कर दिया। क्योंकि वे उसी व्यवस्था के पोषक थे। सांग विधा को लोकप्रिय बनाने में बाजेभगत, पं. दीपचंद, चतरू के बाद पं. लखमीचंद का भारी योगदान है। वे शराब आदि व्यसन के भी आदी थे। परंतु उनकी सांग-प्रतिभा के समक्ष सब व्यसन गौण हो गए। इस समय लाला घनश्याम दास, पं. महोर सिंह गौड़, कवि जमुवामीर, पं. शादीराम, सगुवा सिंह, दयाचंद गोपाल, निहालचंद, नंदलाल मुनीमपुरिया, पं. हरफूल सिंह गौड़ आदि लोकनाट्यकारों ने सांग के क्षेत्र में अपना महती योगदान दिया। पं. लखमीचंद के लोकनाट्यों की विषयवस्तु

देखकर एक अचरज़ यह भी होता है कि वे युगबोध से पूरी तरह कटे हुए लोकनाट्यकार थे। लखमीचंद का समय स्वतंत्रता आंदोलन जनित अंग्रेजों की क्रूरता का समय था। हरियाणा में भी अनेक लोग शहीद हो रहे थे। राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजों ने भारतीयों के दिलों में आतंक की पैठ बनाने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी थी। सरेआम लोगों को यातनाएँ दी जा रही थीं। परंतु पं. लखमीचंद में एक भी शब्द उनके खिलाफ नहीं मिलता।

पं. लखमीचंद के समय अनेक सुधारवादी आंदोलन - आर्यसमाज, प्रजामंडल, डॉ. अम्बेडकर का समाज सुधार आदि चल रहे थे। भारतीय समाज में पर्याप्त उथल-पुथल थी। ऐसे में आर्य समाजियों ने लोकनाट्य तथा रागनी के समाज में प्रभाव को देखते हुए आर्यसमाज की शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार करने के लिए इसका ही सहारा लिया। ऐसे आर्यसमाजी लोकनाट्यकारों को 'भजनी' या 'प्रचारी' कहा जाता था। पृथ्वीसिंह बेधड़क ने इस समय लोकनाट्य की धारा को पूरी तरह से मोड़ने का प्रयास किया। इन्होंने सांग के साथ-साथ लोकनाट्य की एक सुधारवादी धारा समानांतर रूप से चलाई। इन्होंने अनेक स्वतंत्रता सेनानियों और वीर-महान लोगों के जीवनों पर लोकनाट्यों की रचना की। इन्होंने जाति की जड़ता पर कुठाराघात किया तथा वर्ण और जातियों को जन्मना न मानकर कर्म पर आधारित माना। पृथ्वीसिंह बेधड़क का अवतरण लोकनाट्य में सामाजिक सुधार की संभावनाओं के रास्ते खोलने के समान था। उन्होंने पर्याप्त लोकनाट्यों की रचना की। अनेक फुटकर रागनियाँ लिख निडरतापूर्वक वंचित तबकों और महिलाओं की आज़ादी की बात की। उन्होंने लोकनाट्य को पूरी तरह से समाज से जोड़ दिया, जिसका लखमीचंद में अभाव दिखाई देता है। इनके समय में अनेक आर्यसमाजी लोकनाट्यकार हुए। मुंशीराम जांडली, स्वामी भीष्म जी, चौ. ईश्वर चंद्र गहलोत, कुंवर जौहरी सिंह, बलवंत सिंह बुल्ली, बुंदू मीर तथा रूपचंद गन्नौर ने लोकनाट्य के क्षेत्र में पर्याप्त नाम कमाया। रूपचंद गन्नौर तो आल इंडिया रेडियो दिल्ली से भी गाते थे। पृथ्वीसिंह बेधड़क द्वारा चलाई गई इस समानांतर लोकनाट्य धारा का प्रस्तुतीकरण (मंचन) भी भिन्न था। लोक में सांगियों की अपेक्षा इनकी उपस्थिति भी उतनी सम्मानजनक नहीं थी। सांग में जनानों के ठुमके, विदूषक के द्विअर्थी संवाद, पक्का साज-बाज का ताम-झाम, लोगों को अधिक आकर्षित करता था। सांगियों के समक्ष सुधारवादी लोकनाट्य धारा का प्रभाव कम ही रहा।

राय धनपत सिंह निंदाना का लोक सांगीत के क्षेत्र में पदार्पण सांग कला का 'स्वर्णयुग' इस रूप में लेकर आया कि वे स्वयं एक 'सांग संकाय' के रूप में परिवर्तित

हो गए। इस 'धनपतसिंह स्कूल ऑफ सांग' से अनेक सुविख्यात सांगी निकले और सांग कला के आकाश में छा गए। इनके एक शिष्य बंदा मीर ने तो भारत-पाक विभाजन के बाद पाकिस्तान में सांगों का परचम लहराया। वे डूम जाति से थे तथा लोक की नब्ज पहचानते थे। उनकी 'आंगलियों की मार' शैली लोक के हृदय में गड़ती थी। लोक ने उन्हें खूब सराहा। यद्यपि हरियाणा में डूम जाति की जनसंख्या बहुत ही कम है, तथापि राय धनपत सिंह ने अपनी कला की उत्कृष्टता से लोगों की दिलों पर राज किया। उनके गुरु थे छंद, यति, गति, लय-सुर शास्त्र के ज्ञाता जमुवा मीर। इनकी शरण में रहकर इन्होंने सांग क्षेत्र की ऊँचाइयों को छुआ। भारत-पाक विभाजन के समय की एक प्रेमकथा को आधार बनाकर 'लीलो चमन' का सांग धनपत सिंह की खास उपलब्धि रहा। इन्होंने 'बादल बागी' सांग में भारतीय सामंतों-जमींदारों के अत्याचार दिखाकर गरीब किसान के पक्ष में आवाज़ बुलंद की।

राय धनपत सिंह के शिष्यों - बंदामीर महमी, बनवारी ठेल, श्यामलाल सौरम (काच्चा श्याम), ठहरो श्याम (पाक्का श्याम) तथा इनके शिष्यों ने अद्भुत काम किया। इसी समय पं. माँगेराम एक हरफनमौला सांगी हुए। इनके सांग इनके गुरु पं. लखमीचंद की अपेक्षा लोक के दुख-दर्द के अधिक निकट हैं। वर्ण या जाति के प्रति आग्रह भी उतना नहीं है। हालांकि इनका राय धनपत सिंह के साथ जाति के मसले पर कटु संवाद चला था और जाति के अहम् में भरकर इन्होंने राय धनपत को आपत्तिजनक शब्द कहे थे, तथापि माँगेराम का सांग के क्षेत्र में योगदान अद्भुत व अनुपम था। राय धनपत सिंह व उनके शिष्य सामाजिक सौहार्द की बात मुख्य रूप से करते रहे। उनके गुरु जमुवा मीर की रागनी 'जग का कर्ता एक देख क्यूं लड़ते पंडित काजी' इनका आदर्श बनी। देईचंद, पं. रघुनाथ, पं. तेजराम, मौजीराम स्वामी, गिरवर सिंह पंवार, पं. माईचंद, चौ. खचेडू दास आदि ने इस युग की सांग कला को अपने फन से संवारा।

हरियाणा की अति पिछड़ी जाति वाल्मीकि से आने वाले महाशय दयाचंद मायना ने लोकनाट्य कला के आदर्श को चार चाँद ही नहीं लगाए अपितु अपने समकालीन सांगियों, भजनीयों और लोककलाकारों को भी झकझोरा। इन्होंने सांग की समाज के साथ उपयोगिता को मुख्य रूप से इंगित किया। इनका मत था कि लोककला का आदर्श समाज की बेहतरी ही हो। केवल मनोरंजन के नाम पर वर्ण जाति, अवैज्ञानिकता और पुरातनपंथी का पोषण लोकनाट्य का आदर्श नहीं हो सकता। इस समय तक आते-आते लोकनाट्य ने अपनी सामाजिक भूमिका को ग्रहण कर लिया था। अनेक लोकनाट्यकारों ने समसामयिक मसलों पर लोकनाट्य

रचने प्रारंभ कर दिए थे। महाशय दयाचंद मायना ने दहेज, जाति, गरीबी, सामाजिक समता को अपने लोकनाट्यों का विषय बनाया था।

यह समय कौरवी क्षेत्र में रागनी कंपीटिशन का भी समय था जिससे लोग लोकनाट्य की अपेक्षा रागनी कंपीटिशनों की ओर झुके। इन रागनी कंपीटिशनों में कुछ ऐसे गायक आए जो रागनी या लोकनाट्य की रचना करना नहीं जानते थे। वे दूसरों की रागनियाँ गाते थे। पैसा उनके लिए अहम् था। रागनी के स्वामित्व से उन्हें कोई लेना-देना नहीं था। अनेक गायकों ने पैसे के लोभ में जाति-विशेष के श्रोताओं के समक्ष दयाचंद मायना की अनेक रागनियाँ मेहरसिंह के नाम से गा दीं। यह सरेआम दयाचंद मायना के आगे किया गया। उनको इस बात का गहरा दुख था कि उनकी रागनियाँ मेहरसिंह के नाम से गाई जा रही हैं। परंतु सामाजिक-आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण वे कुछ नहीं कर सके। बाद में उनकी ग्रंथावली प्रकाशित हुई और बाकायदा 'छापकटैया विमर्श' चला। जब जाकर वे रागनियाँ वापिस आईं। दयाचंद मायना शब्द-साधक थे। उन्होंने हर भाव, हर रस की रागनियाँ मनोयोग से लिखीं। मास्टर नेकीराम इस समय के दक्षिण हरियाणा के एक सुविख्यात सांगी रहे। धर्मपाल भालोठिया ने तो बाकायदा बीकानेर रियासत के प्रति बिगुल ही बजा दिया था। छज्जूलाल सिलाना और गुणपाल कासंडा ने अपने गुरु दयाचंद मायना के रास्ते पर चलते हुए अनेक मौलिक लोकनाट्यों का सृजन किया। इस युग में महाशय दयाचंद मायना ने लोकनाट्य की सामाजिक प्रतिबद्धता को अपरिहार्य कर दिया।

चंद्रलाल बादी ने लोकनाट्य के मामले में एक सुखद पहल इस रूप में की कि उन्होंने अपार मात्रा में सांगों का सृजन किया। अनुशासन के मामले में जोरदार रहे। एक समय पर उनका पूरे कौरवी क्षेत्र में एकछत्र राज रहा। इन्होंने सुप्रसिद्ध फिल्मी गीतों की तर्ज पर भी रागनियाँ लिखीं। इसकी शुरुआत राय धनपतसिंह के समय से ही हो चुकी थी। यह उस कवि की शिद्दत और कलागत उत्सुकता पर निर्भर करता था कि फिल्मी गीत की तर्ज़ के बावजूद वह भाव और कला व मौलिकता के मामले में रागनी को कौरवी लोकभाषा के कितना निकट लाकर प्रस्तुत करता था।

चंद्रलाल बादी का जन्म हरियाणा में हुआ था परन्तु वे रहे जाकर उत्तर प्रदेश के दत्तनगर गाँव में। इन्होंने अपार मात्रा में धन और यश कमाया। सामाजिक दृष्टि से इनके सांग उच्च कोटि के हैं। रामकिशन व्यास का भी इस समय परचम लहराया। चंद्रलाल बादी के सांग लोग सिनेमा की तरह टिकट खरीद कर देखा करते थे। चंद्रलाल बादी का समय दोचश्मी रागनी का भी स्वर्णकाल कहा जा सकता है। उन्होंने

दोचश्मी रागनी के खूब प्रयोग किए और वे सफल रहे। दोचश्मी रागनी लोकनाट्य में नाटकीयता का तत्त्व को और प्रगाढ़ कर देती है। सन् 2004 तक आते-आते लोकनाट्य का ह्रास होने लग गया था। मनोरंजन के दूसरे साधन आ गए थे।

वर्तमान समय में भी लोकनाट्यों का मंचन होता है। परंतु उनमें वह उत्साह नहीं बचा हुआ। लोकनाट्यकार का मनोबल उसके दर्शकों से घटता-बढ़ता है। दर्शक की रुचि अब लोकनाट्य में घटने लगी है। अब रागनी कंपीटिशनों की मात्रा बढ़ गई है। लोकनाट्य और रागनी कंपीटिशनों की कल्पना पूरी फीचर फिल्म व चित्रहार से की जा सकती है। उसके साथ मनोरंजन के दूसरे साधन आ गए हैं। टेलीविजन व मोबाईल लोकनाट्य का एक सशक्त व अपरिहार्य विकल्प बन गया है। इस समय लोकनाट्कारों द्वारा लोकनाट्य का मंचन कम लेखन अधिक हो रहा है। मंचन की कला से पूर्णतः अनभिज्ञ लोग भी सांगों का लेखन कर रहे हैं। कुछ अकादमिक लोग और सरकार लोकनाट्यों को संरक्षण देने का काम जरूर कर रही है। विश्वविद्यालयों में लोकनाट्य की विभिन्न अवसरों पर प्रतियोगिताएँ करवाना इसे बचाए रखने का उपक्रम है। लोकनाट्य समय के साथ जद्दोजहद कर रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अंजना देवी (गुच्छा), श्री 108 स्वामी भीष्म जी आर्योपदेशक, अग्रवाल बुक डिपो (रजि.), खारी बावली, दिल्ली - 6,
2. अम्बेडकर गौरव गाथा, जयकरण सिंह गुर्जर, कौशिक प्रकाशन, 26, शर्मा इंटर कालिज, बुलद शहर, उत्तर प्रदेश
3. अजीतसिंह राजबाला (दूसरा भाग), कल्याण सिंह बेफिकर, भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर (उत्तर प्रदेश)
4. अजीतसिंह-राजबाला (गुच्छा), बलराज सिंह भाटी, भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश, संस्करण 1978।
5. अजीतसिंह-राजबाला (गुच्छा), श्री 108 स्वामी भीष्म जी आर्योपदेशक, अग्रवाल बुक डिपो (रजि.), खारी बावली, दिल्ली - 6,
6. अर्जुन बनी लुगाई, रामभूल सिंह बड़गूजर, श्याम प्रिंटिंग प्रेस, परीक्षितगढ़, मेरठ, प्रथम संस्करण 2002।
7. अलीबख्शी ख्यालों का लोकरंग, डॉ. जीवन सिंह, बोधि प्रकाशन, सी-46, सुदर्शनपुरा इंडस्ट्रियल एरिया एक्सटेंशन, नाला रोड, 22 गोदाम, जयपुर-302006, प्रथम संस्करण, अगस्त 2018।
8. अहमद बख्श थानेसरी-कृत रामायण, संपादक बालकृष्ण मुज़्जर, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, प्रथम संस्करण 1983।
9. आदर्श भजनमाला (प्रथम खंड), लोककवि कुंवर जौहरीसिंह (संपादक डॉ. बलबीर शास्त्री), प्रकाशक डॉ. बलबीर शास्त्री, प्रधान, आर्यसमाज भैंसवाल कलां, सोनीपत हरियाणा, संस्करण मार्च 2015।
10. आदर्श भजनमाला (तृतीय खंड), कवि सम्राट चौ. ईश्वर सिंह गहलोत, (संपादक डॉ. बलबीर शास्त्री), प्रकाशक डॉ. बलबीर शास्त्री, प्रधान, आर्यसमाज भैंसवाल कलां, सोनीपत हरियाणा, संस्करण मार्च 2015।

11. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका, डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, हिन्दी परिषद्, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, प्रथम संस्करण, जून, 1952
12. इंदिरा गाँधी की हत्या, (इंदिरा गाँधी का संदेश), जयकरण सिंह, श्री भगवत बुक डिपो, पुरानी तहसील, मेरठ, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण
13. कनउजी लोक साहित्य में समाज का प्रतिबिम्बः डॉ. सुरेश चन्द्र त्रिपाठी, रूपायन प्रकाशन, आई ए, 1 सी, अशोक विहार, नई दिल्ली 10052, प्रथम संस्करण, सन् 1997।
14. कवि गिरवर सिंह पंवार ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, साहित्य संस्थान, ई-10/660, उत्तरांचल कॉलोनी (नियर संगम सिनेमा), लोनी बॉर्डर, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश 201102, प्रथम संस्करण 2023।
15. कवि जमुवा मीर रचनावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, साहित्य संस्थान, ई-10/660, उत्तरांचल कॉलोनी, (नियर संगम सिनेमा), लोनी बॉर्डर, गाजियाबाद- 201102, प्रथम संस्करण 2024।
16. कवि बनवारी ठेल ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, साहित्य संस्थान, ई-10/660, उत्तरांचल कॉलोनी, (नियर संगम सिनेमा), लोनी बॉर्डर, गाजियाबाद - 201102, प्रथम संस्करण 2023।
17. कवि लिल्ला मीर ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, शब्दश्री प्रकाशन, 1087/30, गली नं. 5, मयूर विहार, गोहाना रोड, सोनीपत, हरियाणा - 131001, प्रथम संस्करण 2024।
18. कवि शंकरदास व्यक्तित्व एवं कृतित्व : डॉ. जयकिशन सब्बरवाल, लोकवाणी संस्थान, बी 125, पश्चिम नत्थू कालोनी, शाहदरा, नई दिल्ली 110093, प्रथम संस्करण, सन् 1992।
19. कवि शिरोमणि पं. जगदीश चंद्र वत्स ज्ञान सागर, बनारसी दास शर्मा एवं सुरेश जांगिड़ उदय, अक्षरधाम प्रकाशन, करनाल रोड, कैथल, हरियाणा - 136027, प्रथम संस्करण 2015।
20. कवि शिरोमणि पं. रघुनाथ कवितावली, संदीप कौशिक, हरियाणा साहित्य संग्रह प्रकाशन, म.न. 793, नजदीक माता मंदिर, मंशना रोड, लोहारी जाटू, त. बवानी खेड़ा, भिवानी, हरियाणा - 127032, प्रथम संस्करण 2020।

21. कवि शिरोमणि पं. जगदीश चंन्द्र वत्स की काव्य अमृत-वृष्टि से प्रकट ज्ञान-सागर (सांग-संग्रह), बनारसी दास शर्मा एवं सुरेश जांगिड़ उदय, अक्षरधाम प्रकाशन, करनाल रोड, कैथल - 136027 (हरियाणा), प्रथम संस्करण 2015

22. कवि सुल्तान सिंह शास्त्री रचनावली, प्रो. राजेन्द्र बड़गूजर, अमन प्रकाशन, 104-ए/80 सी, रामबाग, कानपुर - 208012 (उ.प्र.) प्रथम संस्करण 2021।

23. कारगिल की लड़ाई (भारत की जीत), रामभूल सिंह बड़गूजर, जवाहर बुक डिपो, 300, स्वामीपाड़ा, मेरठ, प्रथम संस्करण 1999।

24. काव्य जीवन गाथा दीनबन्धु छोटू राम, चौ. भाग सिंह बेनिवाल आर्य, पबनावा प्रिंटिंग प्रैस, बस स्टैंड से रेलवे रोड, ढांड (कैथल), हरियाणा, प्रथम संस्करण 2015।

25. कृष्ण खिलाड़ी अर्जुन अनाड़ी, रामभूल सिंह बड़गूजर, श्याम प्रिंटिंग प्रेस, परीक्षितगढ़, मेरठ, प्रथम संस्करण 2002।

26. कृष्ण चंद्र रोहणा हरियाणवी ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, अक्षरधाम प्रकाशन, करनाल रोड, कैथल, हरियाणा - 136027, प्रथम संस्करण 2012।

27. कौरवी : लोक कला संस्कृति, डॉ. सुरेन्द्र कौशिक, संस्कृति निदेशालय, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 1999

28. कौरवी लोकगीत, सत्या गुप्त, उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, कैसरबाग, लखनऊ - 226001, प्रथम संस्करण 1989

29. कौरवी लोक साहित्य, डॉ. नवीन चंद्र लोहनी, भावना प्रकाशन, 109-ए, पटपड़गंज, नई दिल्ली - 110091, द्वितीय संस्करण 2016।

30. कौरवी लोकनाट्यकार भाग 1 (संपादक डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर), ज्योति प्रकाशन, 1087-ए, गली नं. 5, मयूर विहार, गोहाना रोड, सोनीपत, हरियाणा - 131001, प्रथम संस्करण 2022।

31. खड़ी बोली का लोकसाहित्य, सत्या गुप्त, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1964।

32. ख्याल-पकड़, चौ. मीरदाद हापुड़, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ, तीसरा संस्करण 1985।

33. ख्याल अलीबख्श, रेवती रमण शर्मा, मध्यप्रदेश आदिवासी लोककला परिषद्, मुल्ल रमूज़ी संस्कृति भवन, वाणगंगा, भोपाल, प्रथम संस्करण 2001।
34. गरीब की दीवाली, उस्ताद बुन्दूमीर खानपुर निवासी, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ शहर (उ.प्र.) प्रथम संस्करण 1962।
35. गागर में सागर, लेख राज चौहान, राईटर्सग्राम, पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2021।
36. गरीब की बेटी, ऋषिपाल सिंह, कौशिक प्रकाशन, 26, शर्मा इंटर कालिज मार्केट, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश,
37. गुणी पंडित सुखीराम रचनावली, हवा सिंह, ऋषि उद्दालक प्रकाशन, गाँव एवं डाकघर स्याणा, जिला महेन्द्रगढ़, हरियाणा - 123027, द्वितीय संस्करण 2015।
38. गुरशरण मुक्तक शतक, वैद्यभूषण पं. गुरशरण दास, ग्राम बैरंगपुर उर्फ नई बस्ती, दादरी, गौतमबुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश,
39. गोपाल रचनावली, डॉ. प्रेमचंद पातंजलि, डॉ. प्रेमचंद पातंजलि, बी.डब्ल्यू. 97 डी, शालीमार बाग, दिल्ली 110052, प्रथम संस्करण फरवरी 1994
40. चतरू सांगी, रमेश चंन्द्र एवं डॉ. रामफल चहल, सुकीर्ति प्रकाशन, कैनाल रेस्ट हाऊस के सामने, कैथल, हरियाणा, प्रथम संस्करण 2017।
41. चंद्रमुखी-अमरपाल, जनार्दन बैसोया, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ - 2, द्वितीय संस्करण 1978।
42. चित्र-विचित्र, कल्याण सिंह बेफिकर, मधुर प्रकाशन, निकट पशु चिकित्सालय, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 1997।
43. चौ. जगत सिंह अल्हाण रचनावली, प्रो. राजेन्द्र बड़गूजर, साहित्य संस्थान, ई-10/660, उत्तरांचल कॉलोनी (निकट संगम सिनेमा), लोनी बॉर्डर, गाजियाबाद - 201102, प्रथम संस्करण 2023।
44. चौ. तेजसिंह भजन-संग्रह, चौधरी तेजसिंह मलिक आर्योपदेशक, आचार्य प्रिंटिंग प्रेस, दयानन्दमठ, गोहानामार्ग, रोहतक (हरयाणा) - 124001, प्रथम संस्करण अप्रैल 2007
45. छापकटैया, सं. राजेन्द्र बड़गूजर, सिद्धार्थ बुक्स, डॉ. अंबेडकर गेट, मंडोली रोड, शाहदरा, दिल्ली - 110032, प्रथम संस्करण 2020।

46. जायसी ग्रंथावली, रामचंद्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, द्वितीय संस्करण सवंत् 1992।

47. जेल की रचनायें, श्री स्वामी भीष्म जी आर्योपदेशह (संपादक आचार्य वेदव्रत शास्त्री), हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर, जिला झज्जर, संस्करण फरवरी 2001।

48. जैमनाश्वमेध, शंकरदास, ठाकुर प्रेसिंह जिठौली, डाकखाना मऊ खास, जिला मेरठ, प्रथम संस्करण 1952।

49. झम्मन लाल सांगी की किताब, चेला गंगाराम (ग्राम दुलहेडा), विनीता ग्रैफिक्स, बी-एमसीएफ/188, सुभाष कॉलोनी बल्लभगढ़, फरिदाबाद, हरियाणा

50. ठहरो श्याम धरौदी रचनावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, साहित्य संस्थान, ई-10/660, उत्तरांचल कॉलोनी, (नियर संगम सिनेमा), लोनी बॉर्डर, गाजियाबाद - 201102, प्रथम संस्करण 2023।

51. डाकू फूलनदेवी, ओमप्रकाश शिकारपुर, भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश।

52. त्रिवेणी (साँग-संग्रह), लहणा सिंह अत्री, टैगोर प्रकाशन, नारनौंद (हिसार), प्रथम संस्करण 2018।

53. तड़फती चिताएँ उर्फ सास-बहू का झगड़ा, अध्यापक रामकरण, जवाहर बुक डिपो, गुजरी बाजार, मेरठ, प्रथम संस्करण 1994।

54. ताऊ सांगी, ओ.प्र. भारद्वाज, रुक्मिणी विवाह,

55. तीन कदम और, लहणा सिंह अत्री, टैगोर प्रकाशन, नारनौंद (हिसार), प्रथम संस्करण 2019।

56. तुलनात्मक अध्ययन, भ.ह. राजूरकर एवं राजमल बोरा, वाणी प्रकाशन, 4697/5, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-2, प्रथम संस्करण 1992।

57. दिल्ली अंचल की लोक संस्कृति, डॉ. जयनारायण कौशिक, हिन्दी बुक सेंटर, 4/5-बी, आसफ अली रोड़, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण, सन् 1998।

58. दहेज की आग, ऋषिपाल सिंह, कौशिक प्रकाशन, 26, शर्मा इंटर कालिज मार्केट, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश।

59. दादा निहालचंद का काव्यामृत, सम्पूर्ण सिंह बागड़ी, वाग्देवी प्रकाशन,1087, मयूर विहार, गली नं. 5, गोहाना रोड, सोनीपत, हरियाणा - 131001, प्रथम संस्करण 2921।

60. दुमैती स्नान, चौ. खचेड़ूदास बदनौली, जवाहर बुक डिपो, निकट आर्यसमाज, स्वामीपाड़ा, मेरठ, संशोधित संस्करण सन् 2000।

61. देईचंद ग्रंथावली, काग़ज़ प्रकाशन, सं. राजेन्द्र बड़गूजर, जिला कैथल, हरियाणा, - 136027, प्रथम संस्करण 2014।

62. धर्म के इतिहास, रामशरण, गाँव अलीपुर खालसा, कस्बा घरौंडा, जिला करनाल (हरियाणा), प्रथम संस्करण 2008।

63. धरती गाती है, देवेन्द्र सत्यार्थी, प्रवीण प्रकाशन, 1/1079 ई. महरौली, नई दिल्ली-110030, प्रथम संस्करण, सन् 1994

64. नवीन भावबोध के प्रबंध काव्यों में सांस्कृतिक चेतना, डॉ. प्रेमचन्द मित्तल, सूर्य प्रकाशन, नई सड़क नई दिल्ली-110006, प्रथम संस्करण, सन् 1990।

65. पंडित सरूपचंद की सांग प्रणाली, डॉ. केशोराम शर्मा, निर्मल पब्लिकेशन, ए-139, कबीर नगर शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2021।

66. पंडित माँगेराम ग्रंथावली, सं. पूर्णचंद शर्मा, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पी-16, अकादमी भवन, सैक्टर 14, पंचकूला, हरियाणा, प्रथम संस्करण 2013।

67. पं. लखमीचंद ग्रंथावली, सं. पूर्णचंद शर्मा, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, हरियाणा, प्रथम संस्करण 1992।

68. पंडित शादीराम ग्रंथावली, डॉ. दामोदर वासिष्ठ, श्री अंगीरा शोध संस्थान, 419/3, शांति नंगर, पटियाला चौंक, जींद, हरियाणा - 126102, प्रथम संस्करण 2008।

69. पंडवानी (महाभारत की एक लोक नाट्य शैली), निरंजन महावर, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 7/31, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002, पहला संस्करण 2014।

70. पाखंड खंडनी, पं. बस्तीराम शर्मा आर्योपदेशक, आचार्य प्रकाशन, दयानंद मठ, रोहतक - 124001, प्रथम संस्करण 2005।

71. पूरनमल भक्त (सचित्र), योगेश्वर बालकराम कृत, अग्रवाल बुक डिपो, 460, खारी बावली, दिल्ली-6।

72. प्रेमलाल चौहान रचनावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, अयन प्रकाशन, जे-19/39, राजापुरी, उत्तम नगर, नई दिल्ली - 110059, प्रथम संस्करण 2023।

73. फूला जाट नसीरन, चौधरी सगुवासिंह सिकैड़ा निवासी, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ शहर, बारहवाँ संस्करण, सन् 1962।

74. फौजी प्रेम सिंह कृत किस्सा भमराव अंबेडकर तथा अन्य रागणियाँ, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, गौतम बुक सेंटर, 'चंदन सदन', सी-263 ए, गली नं. 9, हरदेवपुरी, शाहदरा, दिल्ली - 110093, प्रथम संस्करण 2013।

75. बदलता जमाना (देवर भाभी का प्यार), जनार्दन बैसोया, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ - 2, प्रथम संस्करण 1978।

76. बाजे भगत ग्रंथावली, सं. रामफल चहल, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पी-16, अकादमी भवन, सैक्टर 14, पंचकूला, हरियाणा, प्रथम संस्करण 2014।

77. बीसवीं शताब्दी (उत्तरार्द्ध) में लिखित हरियाणा के हिन्दी नाट्य-साहित्य का शोधात्मक अध्ययन, डॉ. अनिल कुमार गोयल 'सवेरा', हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, प्रथम संस्करण 2007।

78. ब्रह्मज्ञान प्रकाश, श्री स्वामी शंकरदास, अग्रवाल बुक डिपो (रजि.)

79. बेधड़क भजन ग्रंथावली (प्रथम भाग), आचार्य वेदव्रत शास्त्री, परममित्र मानव निर्माण संस्थान, सिंधु भवन, सेक्टर 14, रोहतक, हरियाणा, प्रथम संस्करण 2008।

80. बेधड़क भजन ग्रंथावली (द्वितीय भाग), आचार्य वेदव्रत शास्त्री, परममित्र मानव निर्माण संस्थान, सिंधु भवन, सेक्टर 14, रोहतक, हरियाणा, प्रथम संस्करण 2008।

81. ब्रज और कौरवी लोकगीतों में लोकचेतना, कुमार विश्वास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पेपरबैक प्रथम प्रकाशन 2021।

82. भारत भूषण सांघीवाल हरियाणवी ग्रंथावली, डॉ. रामपत यादव, सुकीर्ति प्रकाशन, डी.सी. निवास के सामने, करनाल रोड, कैथल, हरियाणा - 136027, प्रथम संस्करण 2008।

83. भारतीय नाट्य साहित्य, सं. डॉ. नगेन्द्र, सेठ गोविंददास हीरक जयंती समारोह समिति, नई दिल्ली।

84. भारतीय लोकनाट्य परंपरा और आधुनिकता, भारतरत्न भार्गव, नई किताब प्रकाशन, 1/11829, ग्राउंड फ्लोर, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली - 110032, प्रथम संस्करण 2020।

85. भारतीय लोक नाट्य स्वांग : एक अध्ययन (बुंदेलखंड की पृष्ठभूमि में), डॉ. हिमांशु द्विवेदी एवं डॉ. नवदीप कौर, अरुण पब्लिशिंग हाऊस, 49-51, सेक्टर 17 सी, चण्डीगढ़ - 160017, प्रथम संस्करण 2016।

86. भारतीय लोक साहित्य, डॉ. श्याम परमार, राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड, बंबई, प्रथम संस्करण, 1954।

87. भारतीय संस्कृति का विकास, मंगल देव शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सन् 1970।

88. भारतीय संस्कृति के मूल तथ्य, डॉ. बैजनाथ पुरी, सुलभ प्रकाशन, 17, अशोक मार्ग, लखनऊ, प्रथम संस्करण सन् 1996।

89. भारतेन्दु समग्र, संपादक हेमंत शर्मा, प्रचारक ग्रन्थावली परियोजना, हिन्दी प्रचारक संस्थान, पो.बॉ. 1106, पिशाचमोचन, वाराणसी -221001, संस्करण 1987।

90. भीमराव अंबेडकर, अध्यापक रामकरण, जवाहर बुक डिपो, गुजरी बाजार, मेरठ, प्रथम संस्करण 1994।

91. भीष्म भजन-प्रकाश, श्री स्वामी भीष्म जी आर्योपदेशक (संपादक आचार्य वेदव्रत शास्त्री), आचार्य प्रकाशन, दयानंद मठ, रोहतक, हरियाणा - 124001, प्रथम संस्करण नवंबर 2011।

92. भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन, कृष्णदेव उपाध्याय, हिन्दी पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सन् 1960।

93. भोजपुरी लोकगाथा, डॉ. सत्यव्रत सिन्हा, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1957

94. मध्य प्रदेश : ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सिंहावलोकन, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्रथम संस्करण 1955

95. महात्मा गंगादास और उनका काव्य, डॉ. जगन्नाथ शर्मा 'हंस', दिव्यवाणी प्रकाशन, 414, खन्ना नगर, लोनी, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश - 201102, द्वितीय संस्करण 2022।

96. महाभारत का सार, लहणा सिंह अत्री, साहित्य सेवी संगठन, उचाना (जीन्द), हरियाणा, प्रथम संस्करण 2021।

97. महाराणा प्रताप (पहला भाग), वैद्यभूषण पं. गुरशरण दास, भगवत बुक डिपो, पुरानी तहसील, मेरठ, प्रथम संस्करण 1980।

98. महाशय केदारमल हरियाणवी ग्रंथावली, आलोक भांडोरिया, सुकीर्ति प्रकाशन, डी.सी. निवास के सामने, करनाल रोड, कैथल, हरियाणा - 136027, प्रथम संस्करण 2011।

99. महाशय दयाचंद मायना ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, अकादमी भवन, पी-16, सेक्टर 14, पंचकूला, हरियाणा - 134113, प्रथम संस्करण 2014।

100. महाशय छज्जूलाल सिलाना ग्रंथावली, डॉ राजेन्द्र बड़गूजर, गौतम बुक सेंटर, सी-263 ए, चंदन सदन, हरदेवपुरी, शाहदरा, दिल्ली - 110093, प्रथम संस्करण 2013।

101. महाशय दीवान सिंह सिंघवा ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, अयन प्रकाशन, जे-19/39, राजापुरी, उत्तम नगर, नई दिल्ली - 110059, प्रथम संस्करण 2023।

102. महाशय गुणपाल कासंडा हरियाणवी ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, सुकीर्ति प्रकाशन डी.सी. निवास के सामने, करनाल रोड, कैथल, हरियाणा - 136027, संस्करण 2012।

103. मा. दयाचंद आज़ाद सिंघाना ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, कागज़ प्रकाशन, 13, इंप्लॉईज़ कॉलोनी, खुराना रोड, कैथल, हरियाणा - 136027, प्रथम संस्करण 2013।

104. महाराजा अशोक, गुरु बुन्दूमीर खानपुर निवासी, जवाहर बुक डिपो, गुजरी बाजार, मेरठ शहर (उ.प्र.) प्रथम संस्करण 1957।

105. मंझा निकासी, चौ. खचेड़ूदास बदनौली, जवाहर बुक डिपो, निकट आर्यसमाज, स्वामीपाड़ा, मेरठ, संशोधित संस्करण सन् 2000।

106. मुंशीराम जांडली ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, सुकीर्ति प्रकाशन, डी.सी. निवास के सामने, करनाल रोड, कैथल, हरियाणा, प्रथम संस्करण 2011।

107. मालवी लोक साहित्य, डॉ. श्याम परमार, हिन्दुस्तानी ऐकेडमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1969।

108. माँ का प्यार, पं. लक्ष्मीचंद वैद्य, पं. कृष्णदत्त कामेश्वर प्रसाद बुकसेलर्स, सर्राफा बाजार, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 2000।

109. मीरदाद के ख्याल, चौ. मीरदाद हापुड़, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ, तीसरा संस्करण 1985।

110. यायावर देवेन्द्र सत्यार्थी, ओमप्रकाश सिंहल, वी.के. पब्लिशिंग हाउस, 10 सुभाष मार्किट बेरली, प्रथम संस्करण, 1991।

111. राजस्थानी लोकनाट्य-ख्याल (कुचामणी ख्याल के विशेष संदर्भ में), डॉ. विक्रमसिंह भाटी, राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर, चौपासनी शिक्षा समिति द्वारा संचालित एवं मेहरानगढ़ म्यूज़ियम ट्रस्ट, पो.बा. 165, मेहरानगढ़ दुर्ग, जोधपुर, प्रथम संस्करण 2022।

112. रामकिशन व्यास ग्रंथावली, सं. रामफल चहल, सुकीर्ति प्रकाशन, डी.सी. निवास के सामने, कैथल

113. राय धनपत सिंह निंदाना ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, आई.पी. - 16, सेक्टर - 14, पंचकूला, हरियाणा - 134113, प्रथम संस्करण 2022।

114. रूपचन्द का गुच्छा, संपादक श्रीपाल सांगवान, श्री भगवत बुक डिपो, पुरानी तहसील, मेरठ शहर (उ.प्र.), संस्करण 1985।

115. लालच और दान (धर्मवीर फूलकुमारी), जनार्दन बैसोया, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ - 2, प्रथम संस्करण 1979।

116. लोककला-सिरमौर निहालचंद-शिवचरण, रामबीर सिंह 'राम', शब्द-शब्द संघर्ष, 189-सी, मयूर विहार, गली नं. 5, गोहाना रोड, सोनीपत, हरियाणा-131001, द्वितीय संस्करण 2020।

117. लोककवि एवं संगीताचार्य पं. रामकिशन व्यास ग्रंथावली, डॉ. जयभगवान व्यास, अल्फा पब्लिकेशन्स, 4398/5, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002, प्रथम संस्करण 2012।

118. लोककवि पण्डित देबीदत्त, डॉ. केशोराम शर्मा, शब्द सेतु, ए-140, गली नं. 3, कबीर नगर, दिल्ली - 11094, प्रथम संस्करण 2017।

119. लोक चेतना और हिन्दी कविता, डॉ. हरिशर्मा, निर्मल पब्लिकेशन, नई दिल्ली-110094, प्रथम संस्करण 1997।

120. लोकधर्मी नाट्य परंपरा, डॉ. श्याम परमार, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 1959।

121. लोकधारा के नए आयाम, डॉ. भीमसिंह मलिक, शांति प्रकाशन, बाईपास, रोहतक, हरियाणा - 124001

122. लोकनाट्यकार रामकंवार खालेटिया ग्रंथावली, प्रो. राजेन्द्र बड़गूजर, वाग्देवी प्रकाशन, 1087/30, गली नं. 5, मयूर विहार, गोहाना रोड, सोनीपत-131001 (हरियाणा), प्रथम संस्करण 2022।

123. लोकनाट्य कथाकोश, डॉ. जयनारायण कौशिक, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, अकादमी भवन, पी-16, सेक्टर-14, पंचकूला-134113, प्रथम संस्करण 2017

124. लोकनाट्य सांग : कल और आज, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, हिन्दी साहित्य निकेतन, साहित्य विहार, बिजनौर (उत्तर प्रदेश) - 246701, प्रथम संस्करण 2015।

125. लोकरंग, डॉ. महेन्द्र भानावत, अनुसंधान विभाग, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर, राजस्थान,

126. लोक रंगमंच के आयाम, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, हिन्दी साहित्य निकेतन, 16, साहित्य विहार, बिजनौर (उ.प्र.), प्रथम संस्करण 2015।

127. लोकसाहित्य का अध्ययन, त्रिलोचन पाण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1-प्रथम संस्करण, सन् 1978।

128. लोक साहित्य, जगदम्बा प्रसाद पाण्डेय एवं श्री राकेश, प्रकाशन केन्द्र, रेलवे क्रासिंग रोड, लखनऊ - 226020।

129. लोक साहित्य - विधाएँ एवं दिशाएँ, कैलाश चन्द्र अग्रवाल, प्रथम संस्करण, सन् 1986।

130. लोकसाहित्य विमर्श, श्याम परमार, कृष्ण ब्रदर्स, कचहरी रोड़, अजमेर, प्रथम संस्करण, सन् 1972।

131. लोक साहित्य शास्त्र, डॉ. नंदलाल कल्ला, संजय बुक सेंटर, के, 38/6, गोलघर, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1997।

132. लोक साहित्य : सरस प्रसंग, (सं.) जगदीश पीयूष, शुभदा प्रकाशन, क्यू 22, नवीन शाहदरा, नई दिल्ली 110032, प्रथम संस्करण, सन् 1981।

133. लोक साहित्य : स्वरूप एवं मूल्यांकन, डॉ. श्रीराम शर्मा, निर्मल पब्लिकेशन्स, ए-139, गली नं. 3, सौ फुटा रोड, कबीर नगर, शाहदरा, 110094, प्रथम संस्करण, सन् 1997।

134. लोक साहित्य विज्ञान, डॉ. सत्येन्द्र, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा

49. लोक साहित्य : स्वरूप एवं मूल्यांकन, डॉ. श्रीराम शर्मा, निर्मल पब्लिकेशन्स, ए-139, गली नं. 3, सौ फुटा रोड, कबीर नगर, शाहदरा, 110094, प्रथम संस्करण, सन् 1997

135. लोकसाहित्य शास्त्र, डॉ. नन्दलाल कल्ला, संजय बुक सेंटर, के, 38/6, गोलघर, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1997

136. लोक साहित्य समग्र, रामनारायण उपाध्याय, हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन प्रा. लि. 21/30 पिशाच मोचन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सन् 1997।

137. लोक साहित्य के प्रतिमान, डॉ. कुन्दन लाल उप्रेती, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 1980।

138. लोक संस्कृति : आयाम और परिप्रेक्ष्य, (सं.) महावीर अग्रवाल, श्री प्रकाशन, एच 24/7, सिविल लाइन्स, कसारीडीह, दुर्ग, मध्यप्रदेश, प्रथम संस्करण, सन् 1993।

139. लोक संस्कृति और लोक साहित्य, (सं.) शशिभूषण सिंहल, हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 बी, असाफ अली रोड, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण, सन् 2000।

140. लोक संस्कृति और साहित्य, दिनेश्वर प्रसाद, जय भारती प्रकाशन, 447, पीली कोठी, नई बस्ती कीड़गंज, इलाहाबाद-3, द्वितीय संस्करण, सन् 1989।

141. लोक-संस्कृति और देवेन्द्र सत्यार्थी का हिन्दी साहित्य, सं. राजेन्द्र बड़गूजर, ज्योति प्रकाशन, 1087-ए, गली नं. 5, मयूर विहार, गोहाना रोड, सोनीपत, हरियाणा, प्रथम संस्करण 2019

142. लोक-संस्कृति की रूपरेखा, कृष्णदेव उपाध्याय, लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद - 1, प्रथम संस्करण 1988।

143. लोक संस्कृति के विविध आयाम, देवसिंह पोखरिया, श्री अलमोड़ा बुक डिपो, दमाल अलमोड़ा-263601, प्रथम संस्करण सन् 1994।

144. लोकसंस्कृति में राष्ट्रवाद, बद्रीनारायण, राधाकृष्णन प्रकाशन प्रा.लि. 2/38, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली-220002, प्रथम संस्करण, सन् 1996।

145. वाग्गेयकार पं. महोर सिंह गौड़ काव्यसंगीतमणि, सत्यवान शर्मा, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, हरियाणा, प्रथम संस्करण 2022।

146. विल्वमंगल, पं. बलवन्तसिंह उर्फ बुल्ली नांगल निवासी, गर्ग एण्ड को., थोक पुस्तकालय, 484, खारी बावली, दिल्ली - 6,

147. श्यामलाल सौरम (काच्चा श्याम) रचनावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, साहित्य संस्थान, ई-10/660, उत्तरांचल कॉलोनी, (नियर संगम सिनेमा), लोनी बॉर्डर, गाजियाबाद- 201102, प्रथम संस्करण 2023।

148. श्री शुकदेव स्वरूप पं. लखमी चंद सांगी का रत्न-कोष, लक्ष्मी नारायण शर्मा 'वत्स', छठा संस्करण, 2014

149. श्री स्वामी विरजानंद सरस्वती जीवन गाथा, चौ. भाग सिंह बेनिवाल आर्य, पबनावा प्रिंटिंग प्रैस, बस स्टैंड से रेलवे रोड, ढांड (कैथल), हरियाणा, प्रथम संस्करण 2015।

150. सतबीर पाई संपूर्ण रागणियाँ, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लब रोड, पश्चिम पुरी, नई दिल्ली-63, प्रथम संस्करण 2008।

151. सांग साहब कांशीराम एवं अन्य सांग, फौजी प्रेम सिंह एवं मूर्ति देवी, ज्योति प्रकाशन, 1087-ए, गली नं. 5, मयूर विहार, गोहाना रोड़, सोनीपत-131001, प्रथम संस्करण 2017।

152. सांगीत काला देव उर्फ जोबन आली हूर, ओमप्रकाश शिकारपुर, भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 1971।

153. सांगीत गोपीचंद (गुच्छा), बलराज सिंह भाटी, भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश।

154. सांगीत सरवर नीर (गुच्छा), बलराज सिंह भाटी, भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश,

155. सूरजभान का ब्याह, चौ. खचेड़ूदास बदनौली, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ, दूसरा संस्करण सन् 1971।

156. स्वतंत्रता सेनानी एवं लोककवि पं. कृष्ण चंद्र 'नादान' हरियाणवी ग्रंथावली,

रामफल चहल, सुकीर्ति प्रकाशन, डी.सी. निवास के सामने, करनाल रोड, कैथल, हरियाणा - 136027, प्रथम संस्करण 2012।

157. स्वतंत्रता सेनानी धर्मपाल भालोठिया ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, साहित्य संस्थान, ई-10/660, उत्तरांचल कॉलोनी (निकट संगम सिनेमा), लोनी बॉर्डर, गाजियाबाद - 201102, प्रथम संस्करण 2022।

158. सांग-सम्राट चंद्रलाल बादी ग्रंथावली, सं. राजेन्द्र बड़गूजर, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, सैक्टर 14, पंचकूला, हरियाणा, प्रथम संस्करण 2018

159. स्वांग नौटंकी, डॉ. इंद्र शर्मा 'वारिज', प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, अप्रैल 1984

160. सांग वाटिका, रामफल गौड़ धनौरी, सुकीर्ति प्रकाशन, डी.सी. निवास के सामने, करनाल रोड, कैथल, हरियाणा - 136027, प्रथम संस्करण 2010।

161. सांग सरोवर, दलबीर फूल, शब्दांकुर प्रकाशन, मदनगीर, नई दिल्ली - 110062, प्रथम संस्करण - 2021।

162. सांग सुधा, लोककवि करिपाल गौड़, वाग्देवी प्रकाशन, 1087, गली नं. 5, मयूर विहार, गोहाना रोड, सोनीपत - 131001 (हरियाणा), प्रथम संस्करण 2019।

163. सांगीत राजा मोरध्वज, कल्याण सिंह बेफिकर, भगवत बुक डिपो, डिप्टीगंज, बुलंदशहर (उत्तर प्रदेश)।

164. सोरण राम नैणा हरियाणवी रचनावली, सं. राजेन्द्र बड़गूजर, सुकीर्ति प्रकाशन, डी.सी. निवास के सामने, कैथल।

165. सांग रतनसैन राजा का (रचयिता हीरादास उदासी), पं. स्थाणुदत्त शर्मा (संपादक), भाषा विभाग, हरियाणा, प्रथम संस्करण 1975।

166. सांगी सूरजभान बिबियान रचनावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, साहित्य संस्थान, ई-10/660, उत्तरांचल कालोनी (निकट संगम सिनेमा), लोनी बॉर्डर, गाजियाबाद - 201102, प्रथम संस्करण 2023।

167. सांगीत अमरछड़ी, कविरत्न बुन्दूमीर खानपुर निवासी, भगवत बुक डिपो, पुरानी तहसील, मेरठ शहर (उ.प्र.), नवीन संस्करण 1980।

168. सांगीत चंद्रकिरन, पं. बलवन्तसिंह उर्फ बुल्ली नांगल निवासी, बासदेव गोकलचन्द बुक डिपो, गुज़री बाज़ार, शहर मेरठ, प्रथम संस्करण 1961 ई.।

169. सांगीत चंद्रहास, कविरत्न बुन्दूमीर खानपुर निवासी, पं. कृष्णदत्त, कामेश्वर प्रसाद बुकसेलर, बाजार सर्राफा, सहारनपुर (उ.प्र.), संस्करण 1980।

170. सांगीत जगत-मोहन, मशहूर सांगी सगुवासिंह सिकैड़ा निवासी, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ शहर, प्रथम संस्करण, सन् 1955।

171. सांगीत जादूगर सपेरा, मशहूर सांगी सगुवासिंह सिकैड़ा निवासी, जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस, गुजरी बाजार, मेरठ शहर, चौथा संस्करण, सन् 1967।

172. सांगीत पूरन मल (सम्पूर्ण), ला. घनश्यामदास मेरठ निवासी, बासदेव गोकलचंद बुक डिपो, गुजरी बाजार, शहर मेरठ, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 1955।

173. सांग सम्राट पं. लखमीचंद, डॉ. राजेन्द्र स्वरूप वत्स, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, प्रथम संस्करण 1991।

174. साहित्यिक निबंध, डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त लोकभारती प्रकाशन, 15 ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1, द्वादश संस्करण, सन् 1994।

175. सेवाराम बखेता ग्रंथावली, डॉ. राजेन्द्र बड़गूजर, शब्द-शब्द संघर्ष प्रकाशन, 189-सी, गली नं. 5, मयूर विहार, गोहाना रोड, सोनीपत - 131001 (हरियाणा), प्रामि संस्करण 2019।

176. सौदागर बच्चा, पं. बलवन्तसिंह उर्फ बुल्ली नांगल निवासी, बासदेव गोकलचन्द बुक डिपो, गुज़री बाज़ार, शहर मेरठ, प्रथम संस्करण 1959 ई.।

177. हकीकत राय, पं. लक्ष्मीचंद वैद्य, कुलभूषण कविराज पं. लक्ष्मीचंद शर्मा वैद्य शास्त्री, मुकाम पोस्ट गंगेरू, जिला मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश,

178. हत्यारी बहन, जयकरण सिंह, जवाहर बुक डिपो, निकट आर्य समाज, स्वामीपाड़ा, मेरठ - 2, प्रथम संस्करण 2003।

179. हरियाणा की लोकधर्मी नाट्यपरम्परा, डॉ. पूर्णचन्द शर्मा, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, प्रथम संस्करण, सन् 1983।

180. हरियाणा के लोककवि, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, गीतिका प्रकाशन, 16, साहित्य विहार, बिजनौर, (उ.प्र.) 246701, प्रथम संस्करण 2016

181. हरियाणा के सांगों में सौन्दर्य निरूपण, डॉ. विजयेन्द्र सिंह, हरियाणा, साहित्य अकादमी, चंडीगढ़ 469, प्रथम संस्करण, सन् 1988।

182. हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ. शंकरलाल यादव, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1960।

183. हरियाणा : भाषा, साहित्य एवं संस्कृति, पूर्णचंद शर्मा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज 2, वसंत कुंज, नई दिल्ली - 110070, प्रथम संस्करण 2023।

184. हरियाणवी लोककाव्य एवं नाट्य के गौरव मास्टर नेकीराम, डॉ. शिवताज सिंह, विवेक पब्लिशिंग हाउस, धामाणी मार्केट, जयपुर 302003, राजस्थान, प्रथम संस्करण 2012।

185. हरियाणा लोकमंच की कहानियाँ, राजाराम शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुंड रोड, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1958

186. हरियाणी साँगीत का उद्भव औरी विकास, डॉ. राम मेहर सिंह, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, पंचकूला, हरियाणा, प्रथम संस्करण 2007

187. हरियाणवी लोकनाट्यकार एवं सांगी (जीवन परिचय), डॉ. अनिल गोयल 'सवेरा', अर्चना प्रकाशन, 829, राजा गली, जगाधरी, जिला यमुनानगर, हरियाणा - 135003, प्रथम संस्करण 2006।

188. हरियाणवी लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, डॉ. गुणपाल सिंह सांगवान, हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ, प्रथम संस्करण, सन् 1989।

189. हरियाणवी सांग : एक परिशीलन, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, सेक्टर 14, पंचकूला, प्रथम संस्करण 2021।

190. हरियाणवी सांग-सुधा, डॉ. चतरभुज बंसल सोथा, सुकीर्ति प्रकाशन, डी.सी. निवास के सामने, करनाल रोड, कैथल, हरियाणा - 136027, प्रथम संस्करण 2009।

191. हरियाणवी सांग-माला, डॉ. चतरभुज बंसल, सुकीर्ति प्रकाशन, डी.सी. निवास के सामने, करनाल रोड, कैथल, हरियाणा - 136027, प्रथम संस्करण 2010।

192. हरौला कांड (बहन की ममता), जयकरण सिंह, जवाहर बुक डिपो, निकट आर्य समाज, स्वामीपाड़ा, मेरठ - 2, प्रथम संस्करण 2003।

193. हिन्दी का लोकसाहित्य, हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षोडश भाग, राहुल सांकृत्यायन एवं डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण 1960।

194. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास, श्री सोमनाथ गुप्त, हिन्दी भवन 312, रानी मंडी, इलाहाबाद, तीसरा संस्करण 1951।

195. हिन्दी प्रदेश के लोकगीत, कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन, प्रा.लि., के.पी. ककड़ रोड़, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सन् 1990।

196. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, काशी नगरी प्रचारिणी सभा, चौदहवाँ संस्करण, संवत् 2019 वि.६

197. हिन्दी नाटक : उद्‌भव और विकास, डॉ. दशरथ ओझा, राजपाल एंड सन्स, नई दिल्ली, 14वाँ संस्करण, 2014।

198. होली देवर भाबी (रणवीर सिंह चंद्रा), मशहूर सांगी सगुवासिंह सिकैड़ा निवासी, जवाहर बुक डिपो, गुजरी बाजार, मेरठ शहर, प्रथम संस्करण, सन् 1956।

English books -

1. The Legends of the Panjab, Captain R.C. Tempel, Director, Language Department, Punjab, Patiala, First Edition 1962

2. The Legends of the Panjab, Sir Richard Carnac Tempel, Manohar Publishers & Distributers, Reprinted 2022

3. The English And Scottish Popular Ballads, Volume 4, George Lyman Kittredge, Publisher Creative Media Partners, LLC, 2016

4. The Development of Dramatic Art, Donald Clive Stuart, Ph.D. 'Professor of Dramatic Art, Princeton University', D. Appleton and Company, MCMXXVIII, New York :: 322 London, 1928

5. The Cambridge History of English Literature, Volume 5, University Press, 1910

6. The Luminous Bard of Haryana LakhmiChand : A Study in Indian Culture, Life and the Folk Theatre, Krishan Chaander Sharma, Siddharth Publications, 10, DSIDC Scheme-II, Okhla Industrial Area Phase-II, New Delhi-110020, First Edition 1988

पत्र-पत्रिकाएँ -

1. संभावना, प्रधान संपादक देवीशंकर द्विवेदी, लोकसाहित्य विशेषांक, हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, अंक 15-16, जून 1993

2. सम्मेलन पत्रिका (लोकसंस्कृति अंक), प्रेमकपूर कंचन

3. त्रिपथगा अंक 6 (मार्च 1956), रामनरेश त्रिपाठी
4. चौमासा, अशोक मिश्र, जनजातीय लोककला एवं बोली विकास अकादमी मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल, वर्ष-37, विशेषांक 117, नवंबर, 2021-फरवरी, 2022
5. जनपद (पत्रिका) वर्ष 1, अंक 1, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
6. सापेक्ष (पत्रिका) रामनारायण उपाध्याय, अगस्त-सितम्बर 1986।
7. पुनर्लेखन शोध-पत्रिका, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, (सं. प्रो. सुधीश पचौरी एवं प्रो. रमेश गौतम)।
8. सप्तसिंधु, डॉ. मुक्ता, निदेशक हरियाणा ग्रंथ अकादमी, अकादमी भवन, पी-16, सेक्टर 14, पंचकूला - 134113
9. हरिगंधा (सांग विशेषांक), डॉ. पूर्णमल गौड़, (अतिथि संपादक राजेन्द्र बड़गूजर) हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, हरियाणा, अकादमी भवन, पी-16, सेक्टर 14, पंचकूला - 134113, अंक 295, मार्च 2019।

कोश-ग्रंथ -

1. भारतीय लोकसाहित्य कोश, डॉ. सुरेश गौतम एवं डॉ. वीणा गौतम, संजय प्रकाशन दिल्ली।
2. हरदेव बाहरी, राजपाल हिन्दी शब्दकोश, राजपाल एंड सन्स, कश्मीरी गेट, नई दिल्ली, पंचम संस्करण, 1995।
3. भार्गवाज स्टैण्डर्ड इलस्ट्रेटिड डिक्शनरी, प्रो. आर.सी. पाठक।
4. संक्षिप्त हिन्दी अंग्रेजी कोश, भोलानाथ तिवारी एवं महेन्द्र चतुर्वेदी।
5. लोकनाट्य कथा कोश, डॉ. जयनारायण कौशिक, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, प्रथम संस्करण 2017।
6. हरियाणवी-हिन्दी कोश, डॉ. जयनारायण कौशिक, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, अकादमी भवन, पी-16, सेक्टर 14, पंचकूला - 134113, प्रथम संस्करण 1985।
7. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ. अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली -110002, छठा छात्र संस्करण 2020।

8. हरियाणवी शब्दावली, डॉ. कौशल कुमार धैम्य, प्रकाशक - निदेशक, भाषा विभाग, हरियाणा, चंडीगढ़, प्रथम संस्करण 1976।

हस्तलिखित पांडुलिपियाँ -

1. हस्तलिखित पांडुलिपि, धनुषयज्ञ, भोला मिश्र, संग्रहालय, चौ. तारा चंद शिक्षा एवं लोक कला संस्थान (रजि.), गाँव मलिकपुर, जिला सोनीपत, हरियाणा।
2. हस्तलिखित पांडुलिपि, सुबेलाल सांगी, वही।
3. हस्तलिखित पांडुलिपि, कुंवर विशाल सिंह, वही।
4. हस्तलिखित पांडुलिपि, न्यादर सिंह बेचैन, वही।
5. हस्तलिखित पांडुलिपि, पालेराम पांचाल, वही।
6. हस्तलिखित पांडुलिपि, हरेराम बैंसला, वही।
7. हस्तलिखित पांडुलिपि, सप्पो मीर, वही।
8. हस्तलिखित पांडुलिपि, शुभकरण मांडी, वही।
9. हस्तलिखित पांडुलिपि, सूरत सिंह नांगल, वही।
10. हस्तलिखित पांडुलिपि, भुल्लन सिंह, वही।
11. हस्तलिखित पांडुलिपि, महाशय दीनदयाल, वही।
12. हस्तलिखित पांडुलिपि, सफदरजंग राणा, वही।
13. हस्तलिखित पांडुलिपि, साँवलिया भगत, वही।

परिशिष्ट

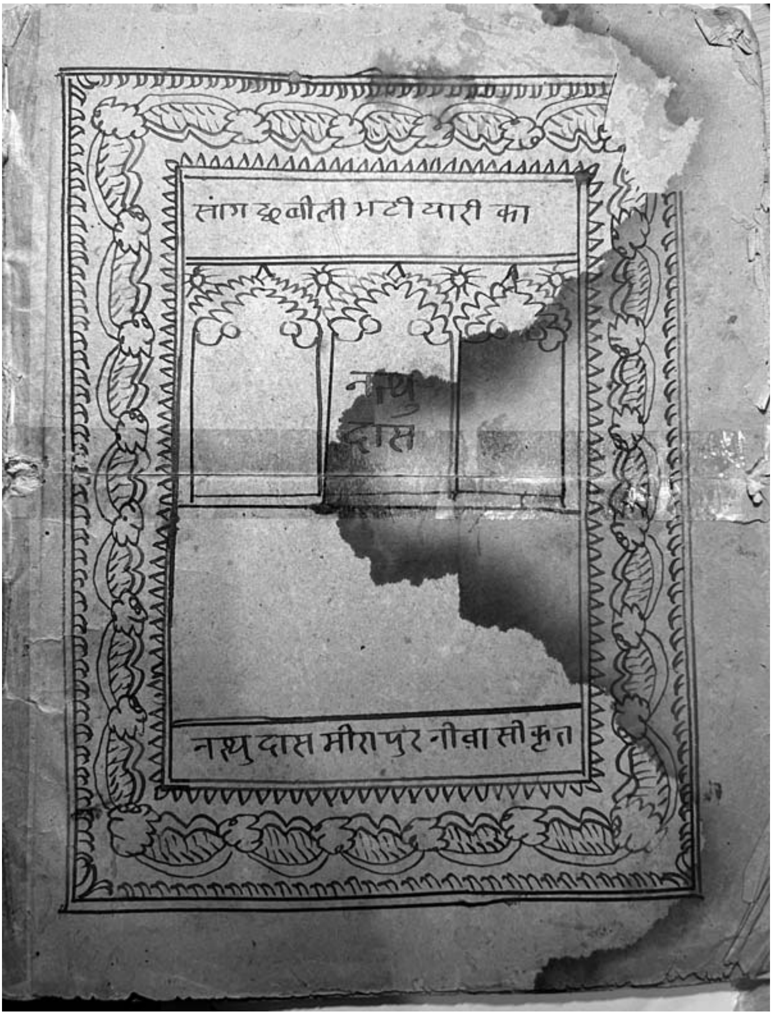

नत्थूदास मीरापुर निवासी कृत सांग छबीली भटीयारी का
रचनाकाल 19.10.1915 ई.

दयाचन्द का
नेताजी सुभाष
फोटो—श्री दयाचन्द
देहाती पुस्तक भण्डार (Regd.)
फोन : 261030
[मूल्य : 1.00

सबदरजंग का गुच्छा
सम्पूर्ण दोनों भाग
रेडियो, लाऊडस्पीकर व आकाशवाणी पर गाये जाने वाले
कुछ छटमा-छटमा रिकार्डों की रागनी इस पुस्तक
में संग्रह की गयी हैं।
इस पुस्तक के सब अधिकार
प्रकाशक के पास सुरक्षित
पं० कृष्णदत्त कामेश्वरप्रसाद
सर्राफा बाजार, सहारनपुर
[मूल्य १-५०

रेडियो सिंगर तथा ग्रामोफोन के महान गायक
सुर सम्राट "रुप चन्द" की
रुपचन्द का गुच्छा
पुरानो तहसील-मेरठ

सच्चे प्रेम की नई झलक
चारों भाग
उदयभान संतोषकुमारी
चारों भाग
नई रङ्गत की कविताएं
लेखक तथा प्रकाशक
पं० माईचन्द कविता भवन 'अलेवा' करनाल
मिलने का पता
तारा चन्द जैन, उकलाना मंडी जि० हिसार।

डॉक्टर
भीमराव अम्बेडकर
संविधान निर्माता, भारत रत्न डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर की अनुकरणीय जीवन गाथा!
भारत
के
वीर
सपूत
लेखक व उपदेशक : चौ० भाग सिंह आर्य
गाँव चन्दाना जिला कैथल
मो0 8295097620, 9996620340
प्रथम संस्करण (सन् 2011) 1000 प्रति
मूल्य : 10 रुपये

सर्वाधिकार ले० व प्रकाशक के आधीन है।
।। पुस्तक राजा हरिश्चन्द्र ।।
ॐ सत् के भजन रागनी नए रङ्ग की ॐ
नया डिजायन, चौ० मुन्शीराम की कथी हुई पुस्तक
स्वामी हरिश्चन्द्र
चौ० भलेराम
ले० व प्रकाशक चौ० भलेराम कोहाड़
मु० जाण्डली कलां, पो० फतेहाबाद जि० हिसार।
पुस्तक मिलने का पता—चौ० भलेराम कोहाड़

आधुनिक तर्जों से भरपूर
लड्डुनसिंह की खटक
जीते जी बेटे ने मालन मां दुखियारी मिल
प्र०-जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस
गुजरी बाजार, मेरठ

असली सांगीत
सांगीत राजा कारके
(पं० रेवानन्द थानाभवन निवासी कृत)
मिलने का पता:—
जवाहर बुक डिपो गुजरीबाजार
मेरठ शहर।

भजन इतिहास
शाही लकड़हारा
पुस्तकें मिलने का पता:—
भगवत बुकडिपो डिप्टीगन्ज बुलन्दशहर

चन्दा चित्र मुकुट
आधुनिक तर्जों में
प्रकाशक
जैन बुक हाऊस
पुस्तकें मिलने का पता

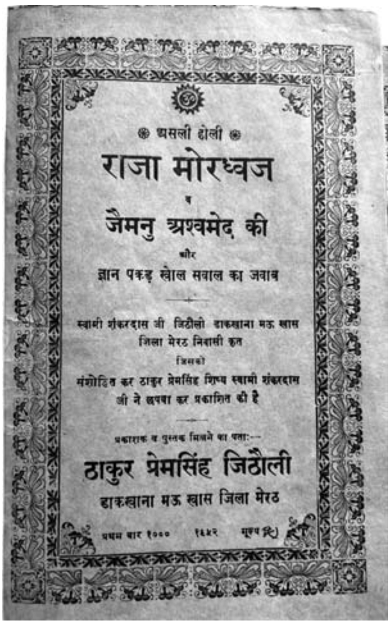
असली ढोली
राजा मोरध्वज
व
जैमनु अश्वमेद की
और
ज्ञान पकड़ खोल सवाल का जवाब
प्रकाशक व पुस्तक मिलने का पता:—
ठाकुर प्रेमसिंह जिठौली
डाकखाना मऊ खास जिला मेरठ

खास-खास रागनियों का
लीलो चमन
प्रकाशक व पुस्तकें मिलने का पता:—
भगवत बुक डिपो, डिप्टी गन्ज
बुलन्दशहर।

खास हरियाणे का देशी राग
चन्द्रपाल कनफाड़ा
(फिल्मी व देहाती तर्ज)
लेखक व प्रकाशक—

॥ असली सांगीत ॥
माया देवी
मिलने का पता :
सीताराम बुकसेलर (हरियाना)

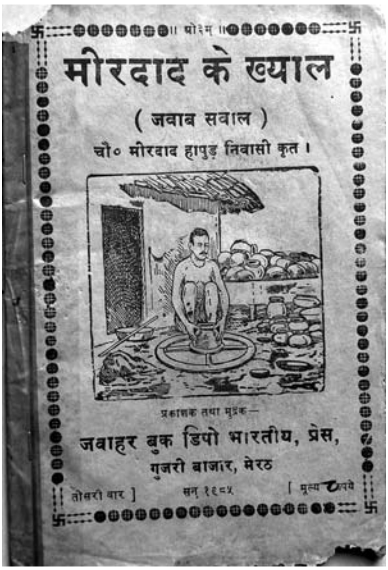
मीरदाद के ख्याल
(जवाब सवाल)
चौ० मीरदाद हापुड़ निवासी कृत ।
प्रकाशक तथा मुद्रक—
जवाहर बुक डिपो भारतीय, प्रेस,
गुजरी बाजार, मेरठ

नल पुराण प्रथम-भाग
होली नल का जन्म
मंझा निकासी
प्रकाशक तथा मुद्रक—
जवाहर बुक डिपो, भारतीय प्रेस
गुजरी बाजार, मेरठ